मात पिता सुत मेहळी, बंधव वीसारेह ।
सूराँ पूराँ सापुरुष, चारण चीतारेह ।।

चारण साहित्य का इतिहास

भाग २

राजस्थान के आधुनिक एवं वर्तमान ५८१ चारण कवियों, उनके काव्य
के विभिन्न रूपों तथा प्रवृत्तियों का जीवन-चरित सहित
ऐतिहासिक एवं आलोचनात्मक अनुशीलन

डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु
एम.ए., एल.एल. बी., पी-एच.डी.
रीडर, हिन्दी-विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

जैन ब्रादर्स
रातानाडा, जोधपुर.

प्रथम संस्करण : १९[illegible]७ ई०

मूल्य : पैंतालिस रुपये

प्रकाशक :
जैन ब्रादर्स, रातानाडा, जोधपुर
शाखायें : उदयपुर एवं जयपुर

मुद्रक :
राठी प्रिण्टर्स,
पुंगलपाड़ा, जोधपुर

जिसने मुझे जन्म दिया तथा अर्द्धशताब्दी तक
पालन-पोषण कर इस योग्य बनाया कि
मैं प्रस्तुत ग्रंथ लिख सकूँ--

उस,

लोक-गीतों एवं 'बातों' की मंजूषा
ममतामयी पूज्या माँ स्वर्गीय
राजी देवी (माजी) के
चरणों में सादर
समर्पित

—जिज्ञासु

सत्यमेव जयते

राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली

RASHTRAPATI BHAVAN, NEW DELHI-110004

(INDIA)

अगस्त 27, 1976

राजस्थान का चारण-साहित्य भारतीय साहित्य का एक उज्ज्वल अध्याय है। इसकी प्रशंसा करते हुए विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और महामना मदन मोहन मालवीय ने इसके सुव्यवस्थित अध्ययन-अध्यापन पर बल दिया था। डॉक्टर मोहनलाल जिज्ञासु ने इसी गरिमामय साहित्य का बृहद् इतिहास लिखकर न केवल भारतीय साहित्य को एक अमूल्य निधि प्रदान की है, बल्कि भारतीय इतिहास को भी समृद्ध किया है। इस महत् प्रयास के लिए मैं डॉ० जिज्ञासु को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि सभी साहित्य-प्रेमी इस ग्रंथ का स्वागत करेंगे।

—फखरुद्दीन अली अहमद
राष्ट्रपति, भारत सरकार,
नई दिल्ली।

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में चारण-काव्य का योगदान अतुलनीय है। मूल रूप से यह वीर-काव्य है। चारण कवियों ने मातृभूमि के रक्षार्थ ही इस अनोखे साहित्य की सृष्टि की है। उन्होंने योद्धाओं को राष्ट्र की बलिवेदी पर चढ़ना सिखाया है, साथ ही यदा-कदा स्वयं ने भी वैसा ही आदर्श प्रस्तुत किया है। इस साहित्य की सर्वोपरि उपलब्धि यह है कि इसने इतिहास की प्रमुख घटनाओं को बटोर कर, एक मायने में, इतिहास की धरोहर की रक्षा की है। सखेद कहना पड़ता है कि अब तक इस साहित्य का कोई क्रमिक और वैज्ञानिक इतिहास नहीं लिखा गया। डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु ने इस चुनौती को स्वीकार कर इस क्षेत्र में जो यह महत् कार्य किया है, वह एक अविस्मरणीय प्रयास है। आज से लगभग ८ वर्ष पूर्व विद्वान् लेखक ने इसके प्रथम भाग की एक प्रति मुझे भेंट की थी। उसमें लेखक की अन्वेषी मेधा, तार्किक क्षमता, विश्लेषण-पद्धति तथा निष्कर्ष की ओर बढ़ने की वैज्ञानिक दिशा देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। प्राचीन तथा मध्य-कालीन चारण-साहित्य की प्रायः समस्त प्रवृत्तियों को उजागर करने वाला ऐसा विशद ग्रंथ अब तक मेरी दृष्टि में नहीं आया था।

विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत द्वितीय भाग के छठे अध्याय को आधुनिक काल, प्रथम उत्थान (सन् १८००-१८५० ई०) की संज्ञा दी है। इन्हीं वर्षो में अंग्रेजों ने भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। राजस्थान के राजा-महाराजाओं ने भी उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। लेखक ने घटना-क्रम के मूल में स्थित राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक— सभी परिस्थितियों का विशद विवेचन किया है और अध्ययन की इसी पृष्ठभूमि में उसने उस युग के काव्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया है। उस युग के प्रमुख तथा गौण— प्रायः सभी कवियों के काव्य को ध्यान में रखते हुए लेखक ने अपनी स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं।

यह काल भारतीय इतिहास में कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है। इसी संक्रान्ति काल को राष्ट्रीय चेतना की काव्य-रचना का श्रेय है। डॉ० जिज्ञासु ने अपने शोध के आधार पर ऐसे २१ कवियों का परिचय प्रस्तुत किया है जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना की काव्य-रचना में अभूतपूर्व योगदान किया है। इसी प्रसंग में डॉ० जिज्ञासु द्वारा स्थापित एक मान्यता सर्वथा क्रान्ति-कारी है जिसके उल्लेख का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। उन्होंने लिखा है— "यह लक्ष्य करने की बात है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से भी पूर्व कविराजा बाँकीदास आसिया ने स्वाधीनता के लिए शंखनाद किया था—

आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आहँस लीधा खेंचि उरा।
धणियाँ मरै न दीधी धरती, धणियाँ ऊभाँ गई धरा॥"....

वस्तुतः राजस्थानी साहित्य के संदर्भ में उद्धृत इस ऐतिहासिक खोज पर राजस्थान को गर्व है।

प्रस्तुत ग्रंथ का सातवाँ अध्याय है आधुनिक काल, द्वितीय उत्थान (सन् १८५०-१६५० ई०)। इस काल-खंड में चारण-साहित्य का अभूतपूर्व विकास ध्यातव्य है। यह भारतीय राज्य-क्रान्ति के आस-पास का समय है जो गणतंत्र की स्थापना तक चलता है। इस अध्याय के अन्तर्गत इस काल के प्रमुख तथा गौण कवियों में ३६० कवि एवं कवयित्रियों का परिचय दिया गया है। इसी के साथ इस काल के उपलब्ध गद्य तथा पद्य का सर्वांगीण

प्रवृत्तिमूलक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें २५ राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी कवियों का सोदाहरण परिचय दिया गया है। जहाँ इस युग के प्रमुख साहित्यकारों के साहित्य का विशद विवेचन किया गया है वहीं उस युग के गौण साहित्यकारों के साहित्य पर भी बड़े ही निष्पक्ष भाव से विचार किया गया है। युग-निर्माण में इनकी भूमिका का रेखांकन भी अत्यन्त ही मनोयोग-पूर्वक किया गया है। यही विशेषता इस ग्रंथ की व्यावर्तक रेखा है।

डॉ० जिज्ञासु ने सन् १६५० से १६७५ ई० के काल-खंड को 'चारण काव्य का नवचरण' माना है जो उपयुक्त ही है। देश स्वतंत्र हुआ। भारत का नक्शा बदला। भूतपूर्व राज्यों के एकीकरण से राजस्थान को एक नया स्वरूप मिला। बदलती हुई युगीन मान्यताओं के साथ ही साहित्य की मान्यताएँ भी बदलीं। अब कवियों एवं लेखकों की रचनाओं में वाणी ने राष्ट्रीय चेतना का सर्वांगीण शृंगार प्रारम्भ किया। युगीन विचार-धाराएँ साहित्य में भी प्रवाहित हो उठीं। विद्वान् लेखक ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' शीर्षक के अन्तर्गत वस्तु-स्थिति का सही लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। इस अंतिम अध्याय में जिन चुने हुए जीवित ८२ कवियों के विवरण तथा उदाहरण दिये गये हैं उनसे यह परिवर्तन-काल समझ में आता है। वास्तव में स्वातंत्र्योत्तर चारण साहित्य का आरम्भ यहीं से होता है।

प्रस्तुत ग्रंथ में आये हुए कवियों की संख्या में 'घटत-बढ़त' हो सकती है. लेकिन इससे इस इतिहास की महत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अध्यवसायी लेखक ने राजस्थानी साहित्य का एक ऐसा आधार-ग्रंथ तैयार किया है जिसे भावी पीढ़ियाँ भुला नहीं सकेंगी। मेरी दृष्टि में डॉ० जिज्ञासु की इस सारस्वत सेवा का महत्त्व वही गिना जायगा जो टॉड और ग्रियर्सन का है।

जिज्ञासुजी एक पुराने साहित्यकार हैं, पुराने समीक्षक हैं। वे सहृदय कवि भी हैं। अध्यापन उनका व्यवसाय है। उनके इस ग्रंथ में उनके इन सभी रूपों का एक समन्वित स्वरूप देखने को मिलता है। यही, सच्चे अर्थों में अब लेखक का सही व्यक्तित्व भी है। निश्चय ही यह एक विस्मयकारी आनन्द का विषय है कि लेखक ने अकेले जितना महत्त्वपूर्ण कार्य किया है उसके लिए संस्थान बना करते हैं, योजनाएँ चला करती हैं।

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि डॉ० जिज्ञासु ने अपने इस प्रबन्ध में एक प्रबुद्ध अन्वेषक के रूप में बहुत कुछ ऐसा कहा है जो अन्यतम है। लेखक का यह निष्कर्ष कि जन्मना वीर चारण कवि वाणी का वरद पुत्र है और उसका ओजस्वी काव्य राष्ट्र की अमूल्य निधि है— एक अत्यन्त क्रांतिकारी स्थापना है। मैं इस महान् प्रयास-हेतु लेखक को साधुवाद देता हूँ। आशा है, साहित्य-जगत् इस ग्रंथ की उपलब्धि से गौरवान्वित होगा। मेरा विश्वास है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन का सर्वत्र अभूतपूर्व स्वागत होगा। अन्त में लेखक के लिए मेरी मंगल कामनाएँ—

अगस्त ३१, १९७६ ई०

—रामनिवास मिर्धा
पूर्ति और पुनर्वास मंत्री,
भारत सरकार, नई दिल्ली।

वक्तव्य

ईश्वर की इस रहस्यमयी सृष्टि में मनुष्य को ज्ञान की खोज करते समय थोड़ा ही प्राप्त होता है। वस्तुत: प्रकृति ने उसके लिए जो रख छोड़ा है, वह थोड़ा ही है। इस थोड़े को जानने के लिए जीवन भर साधना करनी पड़ती है। फिर भी मनुष्य को थोड़ा ही उपलब्ध होता है। राजस्थानी चारण-साहित्य के विषय में भी मुझे जो हाथ लगा, वह थोड़ा ही है। खेद है कि यह साहित्य समय के साथ-साथ अंधकार में विलीन होता जा रहा है। भविष्य में ऐसा न हो, इसके लिए मैंने 'चारण साहित्य का इतिहास' भाग १-२ के द्वारा इस जाति के कवियों तथा लेखकों को प्रकाश में लाने का उपक्रम किया है। अपने शेष जीवन में भी इसके संकलन, संशोधन एवं संवर्द्धन की महत्त्वाकांक्षा रखता हूँ। चारण-साहित्य मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

आज से आठ वर्ष पूर्व जब इसके प्रथम भाग का प्रकाशन हुआ था तब देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने मुझे इस परियोजना को पूरा करने के लिए प्रोत्साहन दिया जो प्रस्तुत द्वितीय भाग के रूप में पूर्ण हो रहा है। इन दोनों भागों में मैंने उपलब्ध सामग्री को मौलिक ढंग से प्रकट करने का प्रयास किया है। पाठक ही इस बात का निर्णय करेंगे कि मुझे इस कार्य में कितनी सफलता प्राप्त हुई है? अब मैं यह कहने की स्थिति में हूँ कि इतिहास के ये दोनों भाग लगभग एक हजार पृष्ठों के हैं जिनमें राजस्थान के प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक के ८५१ चारण कवियों तथा लेखकों का विवरण, विश्लेषण एवं विवेचन सन्निहित है। काल-क्रम के साथ-साथ आगे बढ़ना ही मुझे अभीष्ट रहा है। रचना-शैली पूर्ववत् है। प्रथम भाग के समान इसमें भी प्रत्येक

अध्याय के आरम्भ में काल-विशेष की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय है क्योंकि इनसे तत्कालीन साहित्य प्रभावित हुआ है। फिर कवियों तथा लेखकों का जीवन-परिचय है और अंत में उनकी रचनाओं का प्रवृत्तिमूलक विवेचन है। इसके अतिरिक्त स्वर्गीय कवियों के अलभ्य अठारह चित्र भी इस भाग में हैं। इस प्रकार प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक काल (सन् ६५०-१९७५ ई०) तक का साहित्य इस इतिहास में एक स्थान पर एकत्र हो गया है।

प्रथम भाग से आगे छठे अध्याय 'आधुनिक काल' (प्रथम उत्थान) का समय सन् १८००-१८५० ई० तक निश्चित किया गया है क्योंकि फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता की स्थापना के साथ (१८०० ई०) देशवासियों का सम्पर्क 'आधुनिकता' से हुआ जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। सन् १८५७ ई० की राज्य-क्रांति से इसमें अवरोध उत्पन्न हुआ और देशवासियों में चेतना आई। अतः आगे स्वतंत्रता प्राप्ति तक का साहित्य (सन् १८५०-१९५० ई०) राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। देशव्यापी गतिविधियों में राजस्थान ने भी क़दम से क़दम मिलाकर साथ दिया। इस काल के साहित्यकारों का जीवन-वृत्त तथा विवेचन सातवें अध्याय में दिया गया है। आठवें अध्याय (सन् १९५०-१९७५ ई०) में स्वतंत्रता-काल का साहित्य है जो पराधीन-काल से नवीनता लिये हुए है। अतः इसे अंतिम अध्याय के रूप में 'चारण काव्य का नवचरण' के नाम से अभिहित किया गया है। इन दोनों कालों के मध्य में लेखक वर्तमान चारण कवियों एवं लेखकों के साथ स्पष्ट देख रहा है कि इस साहित्य का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है। निःसंदेह यह राष्ट्र की मुख्य धारा से सम्बद्ध हो गया है।

भूतपूर्व मारवाड़ राज्य का एक मात्र जसवंत कॉलेज, जोधपुर जो अब विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हुआ है, गत ३० वर्षों से मेरे जीवन की सेवा-भूमि रहा है। अपने विद्यार्थी-जीवन में यहीं से बी० ए० उत्तीर्ण कर मुझे लखनऊ विश्वविद्यालय जाना पड़ा जहाँ से मैंने एम० ए० तथा एल-एल० बी० की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं (१९४६ ई०)। सौभाग्य से जिस मातृ-संस्था में पढ़ा-लिखा, खेला-कूदा तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लिया, वहाँ स्नातकोत्तर कक्षाओं के श्रीगणेश के साथ सर्वप्रथम स्थानीय हिन्दी-व्याख्याता चुना गया (१९४७ ई०)। तब से लेकर आज तक जोधपुर मेरी साहित्यिक क्रियाशीलता का प्रमुख

केन्द्र रहा है। यहाँ रहकर सहस्रों छात्र-छात्राओं को पढ़ाया-लिखाया, सभा-संस्थाओं के द्वारा मातृ-भाषा एवं राष्ट्रभाषा के उन्नयन हेतु कार्य किया और सृजनात्मक तथा आलोचनात्मक कृतियां लिखकर साहित्य-सेवा की। अध्यापक की सेवा-वृत्ति ऐसी है कि वह शुष्क वेतन पर निर्भर होकर अन्य साधन-सुविधाओं से वंचित ही रहता है। श्याम-पट्ट की श्वेत-शलाका ही उसकी शक्ति है। आज शिष्यों में भक्ति का अभाव है। इस वर्ग के प्रति समाज की उपेक्षा-वृत्ति खेद-जनक है। यदि सच पूछा जाय तो जो प्रभाव एक हवालदार का है, वह ऊँचे से ऊँचे अध्यापक का नहीं। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि एक इतिहासकार से जो अपेक्षायें की जाती हैं वे मुझ में नहीं। मेरे निकट के व्यक्ति और विद्यार्थी जानते हैं कि घर, परिवार, समाज एवं नौकरी की जटिलताओं में उलझे रहने पर भी मैं प्रस्तुत इतिहास को पूरा करने में लगा रहा, (१९५०-'७५ ई०) कठिन परिस्थितियों से जूझता गया। यहाँ तक कि शरीर से लाचार होने पर भी लगन नहीं छोड़ी। अतः आज इस द्वितीय भाग को पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। यह मेरे जीवन का परम सौभाग्य है कि राजस्थानी काव्य एवं संस्कृति के प्रकाश-स्तम्भ 'चारण साहित्य' पर मुझे लिखने का पुण्य अवसर मिला। जननी-जन्मभूमि के प्रति यह मेरा कर्त्तव्य भी था। लगता है, ईश्वर ने मुझे इस कार्य को पूरा करने के लिए ही जीवित रखा था। शरीर नश्वर है, आत्मा अमर। समय गुजर जाता है, इतिहास रह जाता है।

कोई भी साहित्यकार पहले मनुष्य है फिर कुछ और। मनुष्य की परम आवश्यकतायें हैं—वायु, जल, अन्न, वस्त्र, शिक्षा, जीविका, मकान और चिकित्सा। जीवन ग्रहों से प्रभावित एक चक्र है जिससे विवश होकर मनुष्य को अपना शुभाशुभ फलाफल भोगना ही पड़ता है। अपने श्रम एवं कर्म से जो मिला, उसमें संतोष किया किन्तु असंतोष यह देखकर हुआ कि जिस प्रकृति प्रदत्त शुद्ध वायु पर सबका समानाधिकार है, वह गत ५-६ वर्षों से मुझे नहीं मिल पाई। जिस घोर मानसिक अशांति एवं शारीरिक पीड़ा को सहकर मुझे दूषित वातावरण में साँस लेनी पड़ी, उससे स्वास्थ्य गिर गया और इतिहास को अन्तिम रूप देने में विक्षेप हुआ। इससे मेरा भावुक मन एकांतप्रिय और एकाकी हो गया। फिर भी इस जीवन ने समाज को कुछ दिया ही है, लिया कुछ भी नहीं। उसे सुविधा मिली, मुझे दुविधा। सामाजिक स्वच्छता

तथा स्वास्थ्य के हिमायती पास में आँख, नाक और कान बंद करके बैठे रहे। जातिवाद के घिनौने कीड़ों ने वातावरण विषाक्त बना दिया। पैसा प्रधान हुआ, मनुष्यता गौण। कुटिल मनुष्य ने जीवन जटिल बना दिया। कोई क्षेत्र दलीय भावना से अछूता न रहा। जब सामाजिक एवं आर्थिक बुराइयाँ बीमारियां बनकर यम की तरह जम गई और दम लेने लगीं तब ठीक समय पर आपात स्थिति की घोषणा की गई (१६७५ ई०)। यह देखकर हर्ष होता है कि स्वयं सरकार ने एक ऐसा कार्यक्रम बनाया है जिसके फलस्वरूप धन का वर्चस्व समाप्त हो रहा है और निर्धन को महत्त्व प्राप्त होता जा रहा है। आशा है कि समतामूलक समाज की स्थापना से स्वच्छ एवं स्वस्थ वातावरण का निर्माण होगा, जनता के कष्ट मिटेंगे और देश आगे बढ़ेगा।

लेखक का पथ कंटकाकीर्ण है। वह शूलों पर चलता है किन्तु फूलों की सृष्टि करता है। स्वयं विषपान करता है पर दूसरों को मधुपान कराता है। उसके नयनों की सीपी में आँसू मोती बन जाते हैं। वह निराशाओं के दल-दल में रहता है किन्तु उसकी लेखनी से आशाओं के शतदल खिल उठते हैं। साहित्य अभाव में आविर्भाव है। यह एक ऐसा तोष है जो 'आशुतोष' ही जान सकता है। आज की वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियाँ इस आदर्श की रक्षा कहाँ तक करेंगी, इसका उत्तर देना कठिन है। इतना प्रत्यक्ष है कि विज्ञान ने मनुष्य का जीवन भौतिक, विलासी, परावलंबी एवं कृत्रिम बना दिया है। वायु-दूषण इसी की देन है। एक नये ढंग की संस्कृति जन्म ले रही है जिसके भीतर और बाहर कोई तालमेल नहीं है। मनुष्य दिखावटी, बनावटी, और मिलावटी होता जा रहा है। विज्ञान ने उसे घेर लिया है। संदेह नहीं कि विज्ञान भूतल पर देवता बनकर आया है। इसके वरदान के फलस्वरूप जग जगमग हो गया है, घर-नगर अमरावती तुल्य दिखाई देते हैं, यहाँ तक कि मृत्युंजय होकर इसने पंचतत्त्व पर विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु यह सारा खेल बिजली और तेल का है। यदि इनका मिलना बन्द हो जाय तो फिर सब ओर अंधेरा और जड़ है। साहित्य ही इसे प्रकाश तथा चेतन स्वरूप प्रदान करता है। प्रकृति संसार को विनाश से बचा सकती है। इसके लिए प्रत्येक क्षेत्र में विकृति रोकनी होगी। आमोद-प्रमोद का तराना गया, हाथ-पैर हिलाने का जमाना आया है। साहित्य के क्षेत्र में निजत्व को प्राथमिकता न देकर समग्र समाज और राष्ट्र का हित-चिन्तन करना होगा। व्यर्थ के वाद-विवाद

साहित्य के पवित्र उद्देश्य को ही नष्ट कर देते हैं। मानव-हृदय भावों का अनंत भण्डार है। स्वतंत्र भारत में लेखन के नव-नव द्वार खुल गये हैं। साहित्यकार को चाहिए कि वह जीवन-मूल्यों, सिद्धान्तों, राष्ट्रीय-प्रेम, निष्ठा और प्रतिष्ठा का संरक्षण करते हुए मानव-हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का कलात्मकता के साथ चित्रण करे। जनता राष्ट्र-निर्माण में साहित्यकार की भूमिका बड़े चाव से देखना चाहती है।

प्रस्तुत भाग के प्रकाशन की कथा एक ऐसी व्यथा है जिसके लिए व्यवस्था का होना आवश्यक है। यह लेखक, प्रकाशक और मुद्रक का एक ऐसा विषम त्रिकोण है जिसका हल निकालना कठिन है। जिनके हाथों में प्रेस, पत्रिका तथा प्रचार है, वे चमक जाते हैं। साहित्य के सिंहासन पर अभिषिक्त होने में उन्हें देर नहीं लगती। यह दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को छापने के लिए प्रकाशक नहीं मिलते और लेखकों को मारा-मारा फिरना पड़ता है। मुद्रणालय की सुविधायें भी नहीं मिल पातीं। जोधपुर में तो ग्रंथ-योग्य प्रेस ही नहीं दिखाई देता। प्रकाशक की दृष्टि व्यावसायिक होती है, साहित्यिक नहीं। राजस्थानी के प्रकाशक तो नगण्य हैं। मैं भाई रमेशचंद्रजी जैन की प्रशंसा करूँगा जिन्होंने इस ओर रुचि प्रदर्शित कर राजस्थानी के क्षेत्र में यह प्रथम प्रकाशन किया है। मैं विनम्रतापूर्वक उन समस्त चारण बंधुओं के प्रति कृतज्ञता का भाव अर्पित करता हूँ जिन्होंने परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से इस इतिहास की सम्पूर्ति में सूचनायें देकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया। उनका यह सम्पर्क ही मेरा संदर्भ बना। यदि प्रस्तुत इतिहास के निर्माण में कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे उस ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने का कष्ट करें। जिन्हें ईर्ष्या तथा स्वार्थवश दूसरों में दोष देखने की ही आदत है वे गुप-चुप चवन्नी मूल्य तथा चवन्नी स्तर का सूची-पत्र छपाकर पैसा बटोर सकते हैं, लेकिन गुण ग्रहण नहीं कर सकते। अशिक्षित फुटकरिये लेखक इतिहास की इस गाढ़ी कमाई का दुरुपयोग कर अपनी क्षुद्रता का परिचय न दें। आलोचना स्वस्थ मन की निष्पक्ष उपज है, हृदय की कालिमा नहीं।

मैं उन समस्त महानुभावों का आभारी हूँ जिन्होंने समय निकालकर प्रस्तुत इतिहास के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। महामहिम राष्ट्रपतिजी ने

प्रेरणादायक आशीर्वचन देकर ग्रंथ का गौरव बढ़ाया है। राजस्थान के यशस्वी प्रतिनिधि अनुपम प्रतिभा के धनी माननीय श्री रामनिवास मिर्धा, केंद्रीय पूर्ति और पुनर्वास मंत्री, भारत सरकार ने विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखकर प्रस्तुत शोध-ग्रंथ को गरिमा प्रदान की है। मैं इन दोनों मनीषियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं उन विद्वानों का भी ऋणी हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ के विषय में अपनी सम्मतियाँ भेजकर मेरा उत्साह बढ़ाया है। अन्त में मुद्रणालय सम्बंधी काम-काज में शतदल के सबसे छोटे दल चि० अरुण कमल (कक्षा ७, बाल निकेतन) ने मेरी सहायता की है जिसके लिए मैं शुभाशिष देता हुआ उसके उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामना करता हूँ।

शतदल निवास, रातानाडा, जोधपुर —*मोहनलाल जिज्ञासु*

विजयदशमी, सं० २०३३

(२ अक्तूबर १९७६ ई०)

विषय-सूची

भाग २

छठा अध्याय

आधुनिक काल, प्रथम उत्थान [सन् १८००–१८५० ई०]

आधुनिक काल [प्रथम उत्थान]

सन् १८००—१८५० ई०

(१) काल-विभाजन:- राजस्थानी के चारण साहित्य में १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध परिवर्तन-काल माना जायगा। पश्चिम में ज्ञान-विज्ञान का एक नया सितारा चमक उठा था जिसके दर्शन राजस्थान ने इस समय में किये। फलत: क्षत्रिय नरेशों ने अँग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार कर संधियों पर हस्ताक्षर किये। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के संस्पर्श से इस काल में सर्वप्रथम आधुनिकता का अभ्युदय हुआ जिससे अनेक परिवर्तन हुए। विदेशी विचार-धारा का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा। फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता की स्थापना से शिक्षा का नया कार्यक्रम तैयार हुआ (१८०० ई०) अंग्रेजियत के प्रचार हेतु लार्ड वेण्टिक ने अनेक अँग्रेजी पुस्तकें राजस्थानी नरेशों के यहां उपहार स्वरूप भेजीं। एक प्रस्ताव में यहां तक कहा गया कि आगे पत्र-व्यवहार अँग्रेजी में किया जाय। अँग्रेजी का प्रभाव सर्वप्रथम हिन्दी-प्रदेश पर पड़ा अत: उसी में शिक्षा तथा शासन सम्बंधी कार्य आरम्भ हुआ। इससे डिंगल की गति कुंठित अवश्य हुई फिर भी काव्य-प्रेमी नरेशों के सुनहरे राज्य-काल में अनेक चारण कवि-रत्न जगमगा उठे। महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के अवतीर्ण होते ही एक नवीन अध्याय का सूत्रपात हुआ। (१८०३ ई०) भाषा एवं भाव की दृष्टि से आलोच्य काल में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए अत: साहित्य के क्षेत्र में यह एक संक्रांति काल कहा जा सकता है। वीर-काव्य-धारा ने तो इस धरा पर रुकना जाना ही नहीं। अन्य धारायें भी मंथर गति से प्रवाहित होती रहीं। साथ ही देश-काल के अनुरूप नवीन रचनायें होने लगीं। राष्ट्रीय विचार-धारा का प्रभाव चारण कवियों पर भी पड़ा अत: उन्होंने परतंत्रता से मुक्त होने की कामना प्रकट की। यह लक्ष्य करने की बात है कि राजस्थानी में जिस रीति-काव्य का प्रणयन हुआ, वह हिन्दी से भिन्न था। शृंगार के स्थान पर उसमें भक्ति, नीति एवं रीति का एक साथ

प्रयोग किया गया। डिंगल के रचयिता पिंगल की ओर भी झुकने लगे। इन समस्त विशेषताओं को ध्यान रखते हुए इस काल के साहित्य को पृथक अध्याय के अन्तर्गत रखा गया है।

(२) **राजनैतिक अवस्था :-** (क) राजस्थान एवं केन्द्रीय सत्ता- आलोच्य काल के प्रथम पचीस वर्षो का समय अराजकता एवं अँग्रेजी सत्ता का स्थापना-काल कहा जा सकता है। महादाजी सिंधिया के इस लोक से बिदा होते ही मराठों का प्रभुत्व शनैः शनैः क्षीण होने लगा। सेनानायकों के पारस्परिक संघर्ष, होल्कर घराने की विलीन होती हुई सत्ता एवं दौलतराव की दीर्घकालीन अनुपस्थिति से भी क्षत्रिय नरेशों की निद्रा भंग नहीं हुई। पिंडारियों ने तत्कालीन नरेशों की अयोग्यता का लाभ उठाना आरंभ किया। अन्त में अँग्रजों ने समस्त विरोधी शक्तियों को पादाक्रांत कर विभिन्न संधियों के द्वारा उन्हें अपने अधिकार में कर लिया।

उत्तरी भारत के मराठे अधिकारियों में गृह-युद्ध होते ही राजस्थान में पुनः अराजकता एवं अशांति फैल गई। आंतरिक सघर्षो एवं वाह्य अभियानों से विनाश की आंधियां चलने लगीं। मराठे अधिकारियों का प्रधान लक्ष्य यहाँ के राज्यों से किसी न किसी प्रकार कर वसूल करना था जिससे आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। मराठे सेनानायकों के अत्याचारों से कितने ही गांव जल गये, खेती उजड़ गई एवं मानव-जीवन कराह उठा। यह देखकर राजाओं ने मराठों से मुक्त होने के लिए अँग्रेजों से संधियां करना आरम्भ किया। लासवाड़ी-विजय के पश्चात् (१८०३ ई०) लार्ड लेक ने जोधपुर, जयपुर एवं अलवर के साथ संधियां की और मराठों को कर देने वाले राज्यों के साथ किसी भी प्रकार की सधि नहीं करने का वचन दिया। जोधपुर राज्य के उत्तराधिकार तथा उदयपुर में कृष्णाकुमारी के विवाह विषयक प्रश्नों ने विनाश में वृद्धि की। अमीरखां ने राजस्थान लौटकर निरन्तर सात वर्षो तक (१८१०-१७ ई०) अनेक कुकर्म किये। उसके सैनिकों एवं साथियों ने परिस्थिति को उग्र बना दिया। अतः समस्त नरेश सुख एवं शांति के लिए सजग हो गये और अँग्रेजों का संरक्षण प्राप्त करने के लिए मचल उठे। पिंडारियों को कुचलने एवं संधिवार्ता के लिए मेटकाफ ने राजस्थान के राज्यों को दिल्ली आमंत्रित किया। करौली एवं कोटा राज्यों के साथ अँग्रेजों ने संधि कर (१८१७ ई०) धीरे-धीरे राजस्थान के अन्य सभी राजाओं को अपने संरक्षण में ले लिया। अँग्रेजों के साथ होल्कर

के अन्तिम युद्ध से मराठों की शक्ति सर्वथा विलुप्त हो गई। संधि के अनुसार सिंधिया ने अजमेर अँग्रेजों को सौंप दिया (१८१८ ई०) इस प्रकार अँग्रेजों ने पिंडारियों का दमन कर समूचे राजस्थान पर अधिकार कर लिया (१८१६ ई०)

अँग्रेजी राज्य की स्थापना से राजस्थान के राज्यों का सम्बंध एजेण्ट गवर्नर जनरल, अजमेर से जुड़ गया। छोटी-मोटी रियासतों को मिलाकर एक समूह बनाया गया जिसकी देख-रेख के लिए एक राजदूत नियुक्त किया गया। बीकानेर एवं सिरोही राज्यों पर एजेण्ट गवर्नर जनरल की निजी देख-रेख रही। ये अँग्रेजी राजदूत देशी राज्यों एवं केन्द्रीय सत्ता के बीच एक कड़ी का कार्य देते थे। कहना न होगा कि इन्होंने नरेशों को नियंत्रित ही नहीं किया प्रत्युत उन्हें पाश्चात्य रंग में रंग दिया। सन् १८१६—४३ ई० का समय अँग्रेजों एवं विभिन्न राज्यों का सहयोग-काल था। नई मित्रता एवं संधियों के कारण अँग्रेजों ने यत्र-तत्र जंगली जातियों एवं अराजकतापूर्ण उपद्रवी व्यक्तियों को दबा दिया किन्तु विद्रोही सरदार एवं जागीरदार शांत नहीं रहे। अँग्रेजों ने उनके बीच मध्यस्थ बनकर अनेक पारस्परिक झगड़ों को निपटाया। महाराजा मानसिंह को तो यहां तक लिखा गया—'नरेशों से यह आशा की जाती है कि वे अपनी प्रजा को ठीक तरह संभालकर पूर्णतया नियन्त्रण में रखे। यदि वे अपनी प्रजा को अपने विरुद्ध विद्रोह करने के लिए बाध्य कर दें तब तो अपने कर्मो का फल भुगतने के लिए उन्हें तैयार रहना चहिए।'.....इस प्रकार अँग्रेजों ने कूट राजनीतिज्ञता से धीरे-धीरे अपनी नींव पक्की कर ली। सन् १८३२ ई० में जब लार्ड बेण्टिक अजमेर आया तब उससे मिलने के लिए प्रमुख नरेशों को आमंत्रित किया गया। अँग्रेजी गवर्नर जनरल का राजस्थान में यह प्रथम दरबार था।

(ख) प्रांतीय शासक एवं शासन व्यवस्था:—इस काल में राजस्थान के शासकों का अधिक पतन हुआ। पारस्परिक फूट के कारण मेवाड़, जयपुर एवं मारवाड़ राज्यों की विशेष क्षति हुई। मेवाड़ के राणा भीमसिंह के समय में चौथ वसूल करने का अधिकार होल्कर को प्राप्त हो गया। मारवाड़ एवं जयपुर राज्यों में संघर्ष हुआ देखकर कृष्णाकुमारी इस संसार से ही विदा हो गई जिससे विद्रोह हुआ और सरदार स्वतंत्र बन बैठे। शताब्दियों से मुसलमानों के निरन्तर वार सहकर भी मेवाड़ की शक्ति जितनी क्षीण नहीं हुई, वह कुछ ही वर्षों में मराठों से हो गई। महाराणा और अँग्रेजों के बीच दिल्ली में अहमद—

नामा लिखे जाने के बाद ही इस कष्ट का निवारण हो सका। महाराणा जवानसिंह एवं सरदारसिंह की विलासता एवं अयोग्यता से मेवाड़ के भाग्याकाश में अशांति की काली घटायें उमड़ आईं। जयपुर नरेश प्रतापसिंह के सामने आपत्तियों का पहाड़ लगा हुआ था। जगतसिंह जीवन के सभी विकारों से ग्रस्त था। जयसिंह (तृतीय) के समय लुटेरों के उपद्रव एवं षडयंत्र होते रहे। मारवाड़ के महाराजा मानसिंह को सिंहासनारूढ़ होते ही भीमसिंह की विधवा रानी के पुत्र धोकलसिंह से लोहा लेना पड़ा। कृष्णाकुमारी के विवाह को लेकर तो मानसिंह का अधिकार एक बार केवल जोधपुर के किले पर ही रह गया था। मानसिंह अँग्रेजों का पक्षपाती नहीं था अतः वह केन्द्रीय दरबारों में सम्मिलित नहीं हुआ। सरदारों से मनोमालिन्य एवं नाथ-सम्प्रदाय में अत्यधिक श्रद्धा-भक्ति होने से राज्य में व्यवस्था नहीं रह गई थी। उसका दीर्घ शासनकाल कष्टों की एक लम्बी-चौड़ी कहानी है।

इन तीन प्रमुख राज्यों के अतिरिक्त राजस्थान के अन्य राज्यों में भी सर्वत्र पिंडारियों, लुटेरों एवं मराठों का बोलबाला था। अँग्रेजों से संधि हो जाने पर इनका आतंक मिट गया किन्तु आंतरिक संघर्षों का अन्त नहीं हो पाया था। बांसवाड़ा के महारावल बहादुरसिंह एवं डूंगरपुर के महारावल जसवन्तसिंह (दूसरा) के समय में राज्य-गद्दी के लिए तनातनी चलती रही। करौली के महाराजा प्रतापपाल के समय में इसके लिए राजकीय कोष ही खाली नहीं हुआ प्रत्युत अनेक सरदारों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। संदेह नहीं कि अनेक राजाओं ने परिस्थिति की कठोरता से दबकर अँग्रेजों का आश्रय ग्रहण किया था जिनमें सांवतसिंह (प्रतापगढ़) एवं विजयसिंह, उम्मेदसिंह (बांसवाड़ा) के नाम लिए जा सकते हैं। बीकानेर के प्रतापसिंह एवं सूरतसिंह के शासन-काल में आंतरिक विद्रोह होते रहे। जैसलमेर का महारावल मूलराज (दूसरा) राजनीति एवं शासन-व्यवस्था से नितांत अनभिज्ञ, साहस शून्य एवं अकर्मण्य शासक था। अनेक राजाओं को व्यसन लगा हुआ था जिससे अपार हानि हुई। महारावल फतहसिंह (डूंगरपुर) ने शराब के नशे में अपनी रानी को तलवार के घाट उतार दिया। माधोसिंह (शाहपुरा) तो शराब, अफीम और भंग को एक साथ पचा लेता था। महारावल सांवतसिंह जीवन भर सुख की नींद नहीं ले पाया। नाबालगी की अवस्था में अयोग्य दीवानों ने अपना उल्लू भी खूब सीधा किया। महारावल गजसिंह भाटी (जैसलमेर) के दीवान सालमसिंह ने

राज्य को मनमाने ढग से लूटा और अत्याचार भी बहुत किये। इसी गजसिंह के शासन-काल में बासणपी का युद्ध राजस्थान का अन्तिम युद्ध था (१८३४ ई०) संक्षेप में, राजस्थान को शासन-व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। प्राचीन शासन-परम्परा का लोप हो गया। चतुर अँग्रेजों ने व्यावसायिक मनोवृत्ति को राजनीति का रूप देकर राग-रंग में डूबे राजाओं को अकर्मण्य बना दिया। राज्य-दरबारों का नैतिक स्तर शनैः शनैः गिरने लगा। यदि व्यक्तिगत विलास, आमोद-प्रमोद तथा अपने कृपा-पात्रों पर पानी की तरह पैसा न बहाया गया होता तो आर्थिक संकट ही न आता। राजनीतिक छल-कपट एवं आंतरिक षडयंत्रों ने स्थिति ही बदल दी। इस काल में कोटा के प्रधान मन्त्री झाला ज़ालिमसिंह ने अर्द्ध शताब्दी तक जिस योग्यता से शासन किया वैसा और किसी ने नहीं।

(३) सामाजिक अवस्था:—तत्कालीन राजनीति से समाज का जीवन निष्क्रिय हो गया। सर्वत्र पतन के चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग गये। अँग्रेजों के सम्पर्क में आने पर भी राजस्थान के राजघराने उनसे नवीन सैनिक शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाये। पराधीनता की शृंखलाओं में बद्ध होकर राजा-महाराजा अँग्रेजों के सेवक बन गये। ऐसे समय में अपनी प्राचीन परम्परा को बनाये रखने के लिए कई राजाओं ने चारणों को राज्याश्रय प्रदान किया, यहां तक कि जागीरदारों ने भी इस पद्धति का अनुशीलन किया। वे उनसे अपनी कीर्ति-गाथा सुनकर सन्तोष का अनुभव करते रहे, जनता को भुलावे में डालने के साथ-साथ अपने को भी प्रवंचित करते रहे और जनता के पास उनकी विविध कथाओं को सुनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया था। अव्यवस्था के कारण उसका दैनिक जीवन दुखी एव कष्टपूर्ण होता जा रहा था। सरदारों की स्थिति भी डांवाडोल थी। उनके साथ जनता भी विलासी होती जा रही थी। सर्वत्र कृत्रिमता-पूर्ण उत्सवों के आयोजन होते रहते जिनमें नाच-गान और राग-रंग की प्रधानता थी। नैतिक पतन होने से जीवन का विकास नहीं हो पाया। अब वीरता एवं सैनिक क्षमता निरर्थक प्रतीत होने लगी। गृहयुद्धों की भीड़भाड़ के साथ व्यभिचार भी अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया था। इतिहासकारों ने सवाई जगतसिंह के समय की अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे इस समय की हीनावस्था का पता चलता है।

(४) धार्मिक अवस्था :—धर्म के क्षेत्र में यद्यपि मध्यकालीन विचार-धाराओं की प्रधानता थी तथापि अब उनका वह आदर्श नहीं रह गया था।

राधा-कृष्ण देवी-देवताओं के रूप में नहीं, हास-विलास के रूप में जनता के सामने लाये गये। तत्कालीन चित्रों को देखने से इस कथन की पुष्टि होती है कि कामुकतापूर्ण भाव-भगिमाओं का चित्रण होने लग गया था। विभिन्न पंथ एवं सम्प्रदाय पूर्ववत् चलते रहे। महाराजा मानसिंह के राज्य-काल में नाथ-सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रभाव बना रहा। इसके लिए राज्य-कोष खाली किया गया और अनेक जागीरें भी लुटाई गईं। अँग्रेज राजदूत मि० लडलो को इसीलिए कठोर कार्यवाही करनी पड़ी थी। अँग्रेजों के साथ ईसाई पादरियों का भी आवागमन होता रहता था। ये राजस्थान में आकर अपने धर्म का प्रचार करने तथा लोगों को ईसाई बनाने लगे। इनका प्रभाव निम्नस्तरीय हिन्दू-मुसलमानों पर पड़ा और उनमें से कुछ लोगों ने इस नवीन धर्म को अंगीकार भी किया किन्तु हिन्दू धर्म में थोड़ी-बहुत आस्था रखने वाले लोग इस प्रभाव से बचे रहे। ईसाई-धर्म प्रचारकों के आने से मुद्रण कला का प्रचार हुआ जिससे राजस्थान में भी पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

(५) चारण साहित्य :—यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए भी चारण साहित्य का विकास होता गया। राज्याश्रय प्राप्त होते रहने से अनेक कवियों ने अपनी प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा किन्तु ज्यों-ज्यों पांडित्य के चमत्कार पर पुरस्कार का विधान बढ़ता गया त्यों-त्यों दानशीलता का लम्बा-चौड़ा वर्णन करके स्वर्ण-मुद्राओं को हथियाने की प्रवृति जोर पकड़ती गई। इससे वीर काव्य में भी कृत्रिमता आने लगी। रीति-काव्य का विकास हुआ किन्तु हिन्दी के रीति-काव्य पर जहां भौतिक भावनाओं की छाप है वहां चारण कवियों में पूजा-भावना के साथ पौराणिक चरितों का का काव्यमय रूप देखने को मिलता है। राष्ट्रीय रचनायें भी लिखी गईं किन्तु कम। हां, गद्य-साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ और उसमें उत्तम रचनायें लिखी जाने लगीं। इस प्रकार चारण साहित्य देश-काल के अनुरूप नवीन दिशा की ओर अग्रसर होने लगा।

(६) कवि एवं उनकी कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन (क) जीवनी खण्ड :-

१. ब्रह्मानंद—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७७१ ई०, और आबू तलहटी स्थित ग्राम खांण के निवासी थे। इनके माता-पिता का नाम क्रमश: लालवा देवी एवं शंभूदान था जो बड़े की धर्मपरायण थे। चारण-समाज में इनकी जन्म विषयक अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। संदेह नहीं कि ये अपने

पिता के सदृश धर्म की ध्वजा थे। माता-पिता ने इनका विशेष लाड़-प्यार से पालन-पोषण किया था। ये उनके तन-मन के लड्डू ही थे अतः बचपन में खांण के 'लाडूदान' कहलाये। आरंभ से ही ये धीर, गंभीर एवं एकान्त प्रिय थे। खेल-कूद में इनका मन नहीं लगता था। १५ वर्ष की आयु तक इन्हें समयोचित शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला फिरभी ईश्वर-प्रदत्त शक्ति से ये साधारण बातचीत में दोहा-गीत की रचना कर अपने बाल-सखाओं एवं ठाकुर-सरदारों को सुनाते तथा अपनी हाजिर-जवाबी से उन्हें प्रभावित करते रहते थे। इस अद्भुत कवित्व-शक्ति एवं लोकोत्तर-बुद्धि-प्रभा ने इन्हें अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। अनुमानतः २९-३० वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपना विद्याध्ययन समाप्त कर काव्य-क्षेत्र को आलोकित करना आरम्भ किया और इसी समय में इन्हें अपना धर्मगुरु मिला था।

लाडूदान के प्रचण्ड शरीर से तप-तेज झलकता रहता था। लम्बा कद, बड़ी आंखें, भरा चेहरा, गेहुआं रंग और विशाल बाहुयें! व्यक्तित्व प्रभावशाली था एवं स्मरण शक्ति तीव्र। कहते हैं कि १५ वर्ष की आयु में जब ये अपने पिता के साथ सिरोही नरेश के यहां गये तब इस बालकवि की काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर महाराव ने कहा–'आशा है, कच्छ-भुज में विद्याध्ययन कर यह महान बनेगा और वहां से लौटने पर हम इसे जागीर देंगे।' महाराव की आज्ञा से इन्होंने गांव धमकड़ा (कच्छ) जाकर लाधा राजपूत के यहां डिंगल साहित्य का अभ्यास किया और उसके पश्चात् भुज में लखपत-ब्रजभाषा पाठशाला में भर्ती हुए। अनेक विघ्न-बाधाओं को सहते हुए ये अपने शुद्ध संकल्प से विचलित नहीं हुए और शांति, धैर्य तथा संयम से ज्ञानोपार्जन करते गये। वहाँ ८ वर्ष तक रहकर इन्होंने काव्य-शास्त्र का अध्ययन किया और फिर राजपूताना के सिरोही, उदयपुर, जोधपुर एवं बीकानेर राज्यों तथा गुजरात-काठियावाड़ के बड़ौदा, जूनागढ़ एवं भावनगर राज्यों में घूमकर अपनी काव्य-प्रतिभा से अपार यश प्राप्त किया।

कवि के जीवन की प्रमुख घटना स्वामी सहजानंद के साथ प्रथम मिलन है (१८०३ ई०) क्योंकि इससे उसे एक सुनिश्चित दिशा मिली थी। जब ये घूमते-घूमते पुनः कच्छ में आये तब महाराव ने इनका बहुत आदर-सत्कार किया। वहां इन्हें पता चला कि कुल-गुरु रामानंद के शिष्य सहजानन्द स्वामी पधारे हुए हैं। अतः

ये राज कर्मचारियों के साथ उनके पास पहुँचे। प्रथम दर्शन से ही ऐसे प्रभावित हुए मानों जिस मूर्ति की खोज में थे. वह सहज ही में उपलब्ध हो गई है। इससे इनके आनन्द की कोई सीमा नहीं रहीं। स्वामीजी के 'सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम्' से से इनके हृदय का द्वार खुल गया और एक विशुद्ध भक्ति-भावना का स्रोत उमड़ पड़ा। इन्होंने उन्हें अपना गुरु बना लिया और भागवती शिक्षा ग्रहण की। जब तक भुज में रहे तब तक नित्य स्वामीजी के श्री चरणों में बैठकर ज्ञान का पंचामृत पान किया। ३२ वर्ष तक का सारा समय विद्याभ्यास में ही लगा रहा फिर ये अपनी जन्मभूमि खांण लौटे किन्तु कुछ समय वहां रहकर फिर भावनगर, जामनगर आदि काठियावाड़ के राज्यों में घूमते-घूमते पालीताण पहुँचे। भावनगर के महाराजा विजयसिंह गोहिल ने इनका भावभरा सत्कार किया और पालीताण दरबार ने भी उचित सत्कार एवं पुरस्कार से सम्मानित किया। यह उल्लेखनीय है कि राज-दरबार में ये भड़कीले वस्त्र एवं स्वर्ण-आभूषण धारण कर और अश्व पर आरूढ़ होकर नौकर-चाकरों के साथ पूरे लवाजमे के साथ जाते थे। इसी रूप में ये अपने इष्टगुरु से एक बार गांव गढ़डा (भावनगर) में मिले थे। राजा-महाराजा से सहस्रों रुपयों की भेंट पाने वाले इस कवि के भक्ति-भाव को देखकर स्वामीजी ने इन्हें विद्या-धन दिया और दूसरों को भी ज्ञान, वैराग्य एवं अलौकिक संपत्ति का दान देने के लिए कहा।

एक बार स्वामीजी ने लाडूनाथ से कहा कि गढ्ढा के दरबार की बहनें कुमार अवस्था से ही सांख्य योग के नियमों का पालन करने लग गई हैं. अतः गृहस्थाश्रम में रहने योग्य शिक्षा दे आओ। ये उनके पास गये किन्तु वहां म्होरी बा नामक बहिन ने ऐसा प्रतिवाद किया कि इन्हें चुप रह जाना पड़ा और स्वयं भी गृहस्थाश्रम त्यागने के लिए तत्पर हो गये। स्वामीजो के पास लौटकर इन्होंने सारा वृतांत कह सुनाया और अपना सारा लवाजमा त्यागकर उनके पास रहने लगे (१८०४ ई०) इसके पश्चात् ये अपके गुरुदेव के साथ घूमते-घूमते वड़ौदा राज्य के महसोना, विलादा, कलोल आदि स्थानों से होकर नोमीता गांव में आये जहां इन्होंने त्याग की भागवती दीक्षा ग्रहण की और अपना नाम वदलकर श्री रंगदास रख दिया। इस समय में गुजरात-काठियावाड़ की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक दशा शोचनीय थी जिसका लाभ उठाकर रामानंदी वैरागी साधु स्वामी नारायण द्वारा स्थापित नवीन सम्प्रदाय के साधुओं को नाना प्रकार से तंग करते थे। इससे वचने के लिए सहजानंद स्वामी ने

साम्प्रदायिक चिन्ह का त्याग करवा दिया और अपने साधुओं को परमहंस को दीक्षा दी। उसी समय इनका नाम श्री रंगदास से ब्रह्मानंद कर दिया गया। इस बीच इनके कुटुम्बी खांण गांव की एक सुयोग्य चारण कन्या से विवाह कराने के लिए इनके पास आये किन्तु इन्होंने इस मार्ग पर न चलने का व्रत पहले ही ले लिया था अतः मना कर दिया। निराश होकर सब सगे-सम्बंधियों को लौट जाना पड़ा। बड़ौदा नरेश सयाजी राव गायकवाड़ ने तो यहां तक प्रलोभन दिया कि यदि राजकवि का पद ग्रहण करो तो २५,००० की जागीर दे दूं किन्तु इन्हें तो त्यागी बनकर संसार के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करने की धुन सवार थी अतः नहीं माने सो नहीं माने।

ब्रह्मानंद शेष जीवन में अपने गुरु के साथ रहकर काव्य-रचना करते रहे। इन्होंने आजीवन धार्मिक कार्यों में अपना प्रशंसनीय हाथ बंटाया। जीवन के उत्तरार्द्ध काल में ये अपना अधिकांश समय देवालयों का निर्माण करवाने में व्यतीत करते थे। इनके जीवन के अंतिम २६ वर्ष स्वामी नारायण धर्म के प्रचार में ही लगे हुए थे। जब इनके गुरु स्वामी सहजानंद का स्वर्गवास हुआ (१८२९ ई०) तब इनके हृदय को गहरा धक्का लगा। शनैः शनैः गुरु-वियोग में इनका शरीर क्षीण होने लगा। इसी समय इनकी पीठ में एक फोड़ा निकल आया जिससे इन्हें ज्वर आने लगा। इसी रोग में अपने गुरु के दो वर्ष बाद इहलीला समाप्त कर उस लोक में उनसे मिलने चले गये (१८३१ ई०)।

ब्रह्मानंद स्वामी के लिखे हुए छोटे-बड़े २१ ग्रंथ उपलब्ध होते हैं—१. उपदेश चिंतामणी २. उपदेश रत्नदीपक ३. सम्प्रदाय प्रदीप ४. सुमति प्रकाश ५ वर्तमान विवेक ६. विदुर नीति ७. ब्रह्म विलास ८.-९. शिक्षा पत्री (हिन्दी व गुजराती) १०. सत्संग पचक ११. षटदर्शन १२. माया पंचक १३. देसावतार स्तुति १४. राधाकृष्ण स्तुति १५. सिद्धेश्वर शिवस्तुति १६. हरि-कृष्णाष्टक १७. रासाष्टक १८. हवलाष्टक १९. घनश्यामाष्टक २० हरि-कृष्ण महिमाष्टक २१. धर्मप्रकाश। अन्य संत कवियों के सदृश इनका राग विद्या पर भी पूर्ण अधिकार था अतः इनके रचे हुए लगभग ८००० स्फुट पद भी उपलब्ध होते हैं। इनमें से नं० ४, ६, ७, एवं २१ प्रकट हैं, शेष अप्रकट।

२. कृपाराम—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और शाहपुरा के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत मिलते हैं।

३. रामदान—ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७६१ ई०) और जोधपुर राज्य के निवासी थे। इनके पिता का नाम फतहदान था। इनकी कवित्व शक्ति पर प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंह (जोधपुर) ने इन्हें तोलेसर गाँव पुरस्कार में दिया था (१८०८ ई०) कुछ वर्ष तक ये मेवाड़ में भी रहे थे। इन्होंने 'भीम प्रकाश' नामक एक ग्रन्थ की रचना की जिसमें १७५ दोहे एव कवित्त हैं।

४. वांकीदास—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७७१ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम भांडियावास के निवासी थे। ये पूंजो को दसवीं पीढ़ी में हुए थे। इनके पिता-पितामह का नाम क्रमशः फतहसिंह एव शक्तिदान था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण की जो कवि थे। इसके पश्चात् सामान्य ज्ञान प्राप्त कर ये जोधपुर आ गये (१७८७ ई०) जहां इनका ज्ञान परिमार्जित होता गया। जोधपुर में इनकी शिक्षा का प्रबन्ध रामपुर के ठाकुर ऊदावत अर्जुनसिंह ने किया था। 'बंक इतेयक गुरु किये, जितयक सिर पर केश' कहकर इन्होंने अपने अनेक गुरुओं की ओर संकेत किया है। राजधानी में इन्होंने उनके श्री चरणों में बैठकर संस्कृत, फारसी, अपभ्रंश, डिंगल एवं पिंगल भाषाओं का अध्ययन किया तथा व्याकरण, काव्य, शास्त्र, इतिहास एवं दर्शन का ज्ञानोपार्जन किया। ५-६ वर्षो के सतत अध्ययन, मनन एवं चिन्तन ने इन्हें बहुज्ञ बना दिया, यहां तक कि इनके पास आर्ष-ग्रन्थों एवं देश-विदेश के इतिहास का अच्छा ज्ञान जमा हो गया। इससे इन्हें अन्य भाषाओं की साहित्य-परम्पराओं को आत्मसात करने में प्रर्याप्त सुविधा मिली। कहना न होगा कि इस गुरु-ज्ञान ने इन्हें काव्य तथा इतिहास का एक ऐसा धुरन्धर पडित बना दिया कि जिससे इनकी धवल कीर्ति सर्वत्र फैलने लगी।

इतिहास साक्षी है कि जोधपुर के तत्कालीन महाराजा मानसिंह विद्या-रसिक, काव्य-प्रेमी एवं कवि वन्धुओं के आश्रयदाता थे। वाँकीदास के असाधारण व्यक्तित्व एवं गुरु ज्ञान ने उन्हें भी आकर्षित किया। मानसिंह के गुरु नाथपंथी आयस देवनाथ ने इन्हें महाराजा के सामने उपस्थित किया जिससे ये उनके कृपा-पात्र बन गये। यहीं से उनके जीवन ने एक नवीन दिशा ग्रहण की और काव्य रचना आरम्भ किया (१८०३ ई०) प्रथम भेंट में ही महाराजा इनकी विलक्षण कवित्व-शक्ति, सत्य-प्रियता एवं निर्भीकता पर मुग्ध हो गये। यह उल्लेखनीय है कि महाराजा ने इनसे काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन किया और

सत्संग का पूरा-पूरा लाभ उठाया। इससे वे स्वयं भी उच्चकोटि के कवि बन गये। राज्याभिषेक के शुभावसर पर उन्होंने इन्हें कविराजा के उपटंक से अलंकृत किया एव अपना 'भाषा-गुरु' बनाया। इतना ही नहीं ताजीम, पांव में सोना, बांह पसाव, लाख पसाव एवं दो गांवों से पुरस्कृत भी किया। कागजों पर लगाने के लिए मोहर (मुद्रा) रखने तथा उस पर अपने शिक्षा-गुरु होने के वाक्य खुदवाने का मान-सम्मान प्रदान कर तो महाराजा ने पुरस्कार की पद्धति में नवीनता उत्पन्न कर दी।

वांकीदास और महाराजा मानसिंह के पारस्परिक मिलने का प्रसंग भी बड़ा रोचक एव दिलचस्प है। ईश्वरीय कृपा से कविराजा जैसे ज्ञान में बढ़े-चढ़े थे, वैसे ही शरीर से भी मोटे और भारी थे। इस मोटेपन से चलने-फिरने में असुविधा रहती थी। अवस्था के साथ तो यह कठिनाई और भी बढ़ती गई। जोधपुर के किले में जहाँ तक सवारी जाती, वहां तक ये पालकी में बैठकर जाते। उससे आगे कहार तथा छोटे नौकर इन्हें लकड़ी के तख्ते पर बिठाकर ले जाते थे। जब इनकी सवारी महाराजा के पास पहुँचती तब महाराजा खड़े होकर इन्हें ताजीम देते और ये तख्ते पर बैठे-बैठे ही विरुदावली सुनाया करते थे।

वांकीदास ज्ञान के सागर थे। ये डिंगल-पिंगल भाषाओं में तत्काल काव्य-रचना कर देते थे। इन्हें आशुकवि कहने से ही संतोष नहीं होता क्योंकि इनकी धारणा शक्ति अद्वितीय थी। एक बार ईरान का कोई एलची भारत का पर्यटन करता हुआ जोधपुर आ पहुँचा। महाराजा से साक्षात्कार होने पर उसने किसी इतिहास के ज्ञाता से बातचीत करने की अभिलाषा प्रकट की। यह देखकर महाराजा ने इन्हें उपयुक्त समझकर उसके पास भेजा। एलची इनसे मिलकर अत्यन्त प्रभावित हुआ और प्रसन्न ह कर महाराजा के पास इनकी प्रशंसा यों लिखकर भेजी—'जिस आदमी को आपने मेरे पास भेजा था, वह इतिहास ही का पूर्ण ज्ञाता नहीं, वरन् उच्चकोटि का कवि भी हैं। इतिहास का ऐसा पूर्ण और पुख्ता ज्ञान रखने वाला कोई दूसरा व्यक्ति मेरे देखने में अभी तक नहीं आया। इसे समस्त भूमण्डल के इतिहास का भारी ज्ञान है। मैं ईरान का रहने वाला हूँ पर ईरान का इतिहास भी मुझसे अधिक वह जानता है!' कहना न होगा कि महाराजा को अपने राज्याश्रित कवि की इस बात पर बड़ा गर्व था।

वांकीदास ने अयाची व्रत धारण कर रखा था। इनके काव्य-सौरभ से मस्त होकर उदयपुर के तत्कालीन महाराणा भीमसिंह का मन-मधुकर भी विह्वल हो उठा। उन्होंने कविराजा को अपने यहां आमंत्रित कर पुरस्कृत करना चाहा और इसके लिए उन्होंने मानसिंह से अनुनय-अनुरोध भी किया किन्तु इस अनन्य राज्य-भक्त ने विनम्र शब्दों में कहला भेजा—'मैं महाराजा मानसिंह को छोड़कर और किसी से भी दान नहीं लूंगा।' इससे स्पष्ट विदित होता है कि स्वर्ण-संचय कवि का लक्ष्य नहीं था।

वांकीदास एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे। व्यर्थ की 'जी हजूरी' इन्हें नापसन्द थी। यह उल्लेखनीय है कि इन्हें जो कुछ पुरस्कार प्रदान किये गये, वे इनकी काव्य-प्रतिभा के सुनहरे प्रतीक हैं। इनके वांकेपन के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। एक बार जब मानसिंह नेत्र-रोग से पीड़ित हो गये तब दूषित वायु से बचने के लिए उन्होंने पर्दे के भीतर बैठकर बातचीत करने का ढंग अपनाया। जब कविराजा की आवश्यकता हुई और इन्हें बुलाने के लिए नौकर गया तब इन्होंने बीमार होने का बहाना कर दिया। इनके पुत्र ने महाराजा के कुपित होने की ओर संकेत किया किन्तु ये अपने निश्चय पर डटे रहे। जब नौकर के द्वारा महाराजा को इस रहस्य का पता चला तब उन्होंने कहलवाया—'मेरी आंख की पीड़ा भले ही बढ़ जाय, कोई चिन्ता की बात नहीं पर आपको बाहर बिठाकर बात नहीं करूंगा।' यह सुनकर कवि का व्रत भंग हुआ था।

वांकीदास सत्यप्रिय थे अतः स्पष्ट वक्ता थे। अवसरानुसार राजघराने के अन्तः रहस्यों का भी भण्डाफोड़ कर देते किन्तु इसके पीछे सुधार की भावना रहती थी। मानसिंह ने अपने राजकुमार छत्रसिंह की शिक्षा का भार इन्हें सौंपा था किन्तु शुभलक्षण न देखकर इन्होंने पढ़ाना छोड़ दिया। जब महाराजा ने पढ़ाई बंद करने का कारण पूछा तब इन्होंने उत्तर दिया—'यह कपूत है। इसको शिक्षा देकर मैं अपनी कीर्ति में बट्टा लगाना नहीं चाहता।' कहना न होगा कि आगे चलकर यह कपूत पिता के लिए पीड़ा बन गया।

वांकीदास की निर्भीकता पर आश्चर्यचकित होकर रह जाना पड़ता है। ये वाह्याडम्बर के विरुद्ध थे और किसी के दबाव में आने वाले नहीं थे। एक वार अधिक वर्षा से सूरसागर जल से भर गया और चारों ओर हरियाली दिखाई देने लगी। ऐसी पावस ऋतु में मानसिंह अपनी रानी के साथ वहाँ की प्राकृतिक-

बाँकीदास आसिया [सन् १७७१-१८३३ ई०]

सुषमा देखने के लिए गये। पीछे-पीछे कविराजा भी पालकी में बैठकर निकल पड़े। मार्ग में जनाना सवारी जा रही थी, जिसके साथियों ने इन्हें ठहर जाने के लिए कहा किन्तु इन्होंने महाराजा के अप्रसन्न होने की चिंता न करते हुए कहा- 'ऐसी रानियां बहुत सी आती हैं।' रानी ने इस धृष्टता का वर्णन महाराजा से किया किन्तु उन्होंने इस बात को यों कह कर टाल दिया—'हम यहां आमोद-प्रमोद के लिए आये हैं इसलिए जिस किसी को हमारे आनन्द में बाधा उपस्थित करना हो वही यहां अर्ज करे, नहीं तो जोधपुर लौटने के बाद जो कुछ अर्ज करना हो, करे।' रानी भी अड़ी हुई थी। जोधपुर लौटने पर उसने पुनः इस घटना की ओर संकेत किया किन्तु महाराजा ने यही उत्तर दिया—'यदि मैं चाहूं तो आप जैसी बहुत सी रानियां ला सकता हूं परन्तु ऐसा दूसरा कवि मुझको नहीं मिल सकता। इसलिए अब इस विषय में मौन धारण करना ही अच्छा होगा।' यह सुनकर रानी की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया और वह चुप हो गई। इस प्रसंग से राज्याश्रित चारण कवि की प्रतिष्ठा के गुरुत्व एवं आश्रयदाता राजपूत राजा की गुणग्राहकता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है।

बांकीदास अन्याय का खुलकर विरोध करते थे। जालोर के घेरे में आयस (कनफड़ानाथ) देवनाथ की भविष्यवाणी को सत्य हुआ देखकर मानसिंह उसे अपना गुरु मानकर जलंधरनाथ के नाथ सम्प्रदाय वालों का बड़ा हिमायती बन गया। जब दूसरी बार महाराजा को राज्याधिकार मिला तब कनफटे नाथों ने प्रजा पर अत्याचार करने आरम्भ किये। बांकीदास इसे कैसे सहन कर सकते थे? इन्होंने विसहर के द्वारा राजा की निन्दा की। जब यह बात महाराजा के कानों तक पहुँची तब वे बिगड़ गये और इन्हें पकड़वाने का आदेश दे दिया। ये महाराजा के क्रूर स्वभाव से परिचित थे। बात को ताड़कर नौकर से तो हाजिर होने को कह दिया और स्वयं एक तेज ऊँट पर सवार होकर मेवाड़ की सीमा में पहुँच कर उदयपुर चले गये। महाराणा ने इनका बहुत आदर सत्कार किया। मानसिंह अपने कवि को खोकर बहुत पछताये। उन्हें इनका यों चले जाना विशेष रूप से अखरने लगा। निदान, अनुनय-विनय करने पर ये पुनः जोधपुर आ गये। बांकीदास अब वृद्ध हो गये थे। यहीं ६२ वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हो गया (१८३३ ई०) जिससे महाराजा को गहरी

ठेस लगी। वे तड़प उठे—

> 'सद्विद्या बहु साज, बांकी थो वांका वसु।
> कर सूधी कवराज, आज कठीगो आशिया।।
> विद्या कुळ विख्यात, राज काज हर रहस री।
> वांका तो विण वात, किण आगळ मन री कहां।।

कविराजा वांकीदास की छोटी-बड़ी कुल मिलाकर २७ रचनायें उपलब्ध होती है—१ सूर-छत्तीसी २. सीह-छत्तीसी ३. वीर-विनोद ४. धवल-पच्चीसी ५. दातार-बावनी ६. नीति-मजीरी ७. सुपह-छत्तीसी ८. वैसक-वार्ता ९ मावड़िया मिजाज १०. कृपण-दर्पण ११. मोह-मर्दन १२. चुगल-मुख चपेटिका १३ वैस-वार्ता १४. कुकवि-बत्तीसो १५. विदुर-बत्तीसी १६. भुरजाल-भूषण १७. गगा लहरी १८ भुमाल नख शिख १९. जेहल जस जड़ाव २०. सिद्धराय-छत्तीसी २१ संतोष-बावनी २२. सुजस छत्तीसी २३. वचन विविक पच्चीसी २४. कायर बावनी २५ कृपण पच्चीसी २६ हमरोट-छत्तीसी और २७. स्फुट-संग्रह। इन समस्त रचनाओं को ना० प्र० सभा, काशी ने ३ भागों में प्रकाशित कर काव्य-प्रेमियों के लिए बड़ा उपकार किया है। इनके अतिरिक्त अप्रकाशित रचनाये हैं—१. कृष्ण चंद्रिका २. विरह चद्रिका ३. चमत्कार चंद्रिका ४. चंद्र-दूषण-दर्पण ५. मान-यशो-मंडल ६. वैशाख-वार्ता-संग्रह (ऋतु वर्णन) ७. महाभारत का अनुवाद ८. प्रकीर्णक गीत ९. रस और अलंकार का एक ग्रंथ १० वृत्त रत्नाकर भाषा (छंद ग्रंथ) पद्य के सदृश गद्य के क्षेत्र में भी इनकी सेवायें सराहनीय हैं। इनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'ख्यात' है जो पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर द्वारा स्वामीजी के सम्पादन में प्रकाशित हुआ है (१९५६ई) इनकी उत्कट कवित्व-शक्ति ने प्रतियोगिता में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पदमाकर को भी पराभूत कर दिया था (१८१३ई०) कविराजा अपने चारों ओर घटित होने वाली बातों के प्रति बड़े सजग रहते थे। इससे इनका ऐतिहासिक ज्ञान अगाध हो गया। इस सम्बंध में डा. ओझा का कथन हैं—'मेरे संग्रह में उसकी लिखी हुई अनुमानतः २,८०० ऐतिहासिक वातों का संग्रह है, जो अब तक अप्रकाशित है। वह संग्रह केवल राजपूताने के इतिहास के लिए ही उपयोगी नहीं, वरन् राजपूताना के बाहर के राज्यों तथा मुसलमानों के इतिहास की भी उनमें कई बातें उल्लिखित हैं।'

५. ओपा—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७७४ ई० के आस-पास) और सिरोही राज्यान्तर्गत पेशुआ ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम बखतावरजी था। ये 'दीन विलास' के रचयिता सांईदीन महाराज के प्रिय शिष्य थे। उन्हीं की कृपा से ये हरि भक्त बने और काव्य-रचना करने लगे। इनका रचना-काल सन् १८०३ ई० के आसपास ठहरता है। ये शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे और बाहर बहुत कम आते-जाते थे। जब जोधपुर के महाराजा मानसिंह को इनकी विद्वत्ता एवं योग शास्त्र-ज्ञान का पता चला तब उन्होंने इन्हें अपने पास बुलाया और कई बातें पूछीं किन्तु ये उन्हें बड़ा मानकर दब गये और शंकाओं का समाधान नहीं कर पाये। गुड़ा मालानी) के स्वतंत्र राणा दीपसिंह की इन पर विशेष कृपा थी। एक बार जब ये उनके वहां गये तब खूब आदर-सत्कार किया गया। इनका निधन सन् १८४३ ई० के आस-पास हुआ था।

ओपा डिंगल के उच्च कोटि के विद्वान थे। इनका लिखा हुआ कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं होता किन्तु भक्तिरस से परिपूर्ण छप्पय एवं गीत बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। राजस्थान में इनके नीति विषयक उद्गारों का विशेष आदर है।

६. नवलदान—ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७६८ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के ग्राम जुडिया के निवासी थे। दुर्भाग्य से ८ वर्ष की अल्पायु में इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया अतः इन्हें अपने प्रारम्भिक जीवन में इधर-उधर ठोकरें खानी पड़ी। इनके पिता ठाकुर रुद्रदान (पाटोदी) के कृपा-पात्र थे अत' उनके हाथों इनका पालन-पोषण हुआ। उन दिनों पाटोदी में सांईदीन नामक एक फकीर रहता था जो विद्वान एवं करामाती था। इन्होंने उसके संरक्षण में रहकर प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। साधु-सन्यासी होने के कारण सांईदीन घूमता रहता और ये उसके साथ रहते थे। एक दिन ये दोनों आवर ठिकाने में आये जहां ठाकुर अनाड़सिंह ने नवल को अपने पास रख लिया। सांईदीन इन्हें नित्य नवीन विषय देना और ये उस पर कविता बनाया करते थे।

जब महाराजा मानसिंह (जोधपुर) जालोर के किले में बंद थे तब १७

चारण उनकी सहायतार्थ वहां पहुंचे जिनमें एक नवलदान भी थे। जोधपुर का राज्य मिलने पर मानसिंह ने सब चारणों को जीविकायें प्रदान कीं किन्तु इन्हें कुछ नहीं मिला। मानसिंह इनकी कुरूपता को देखकर औवड कहते थे। कालान्तर में इनकी हीन दशा देखकर महाराजा ने नैखा गांव प्रदान किया (१८१७ ई०) नवलदान का देहान्त सन् १८३० ई० में हुआ। इनके दो पुत्र हुए—बड़ा राजूराम और छोटा पीरदान। इन्होंने स्फुट गीत एवं कुंडलियां लिखी है। इसके अतिरिक्त 'आउवा का रूपक' नाम ग्रन्थ भी मिलता है।

७. महादान—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७८१ ई०) और मेवाड़ राज्यान्तर्गत सरसिया गांव के रहने वाले थे। इन्हें महाराणा भीमसिंह (मेवाड) का राज्याश्रय प्राप्त था। उस समय मानसिंह जोधपुर की गद्दी पर विराजमान थे। इन्होंने राठौड़ों के निन्दात्मक छंद बनाये थे इसलिए मारवाड़ नहीं आते थे। मानसिंह के आग्रह करने पर ये विशेष शर्तों के साथ मारवाड आये थे। मार्ग मे बड़ली के ठाकुर लालसिंह ने इनका स्वागत किया था। इन्होंने कहा—आपने मेरा बहुत स्वागत किया पर मैं आपकी प्रशसा तभी करूँगा जब आप कोई बहादुरी का कार्य करेगे। जब लालसिंह मराठों के साथ युद्ध में मारे गये तब इन्होंने उनकी वीरता पर गीत लिखे। इनकी कवित्व शक्ति पर प्रसन्न होकर मानसिंह ने सोढ़ावास नामक गांव प्रदान किया जो आगे चलकर महाराजा सरदारसिंह के समय में जब्त कर दिया गया। ये मानसिंह के समय में ही चल बसे। इस प्रकार इनका लिखा हुआ कोई ग्रंथ तो उपलब्ध नहीं होता किन्तु फुटकर काव्य बहुत मिलता है।

८. नाथूराम—ये लालस साखा में उत्पन्न हुए थे। (१७८० ई० के आस पास) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के गाँव जुडिया के निवासी थे। इनके पिता का नाम शम्भूदान था। इनका प्रारम्भिक विद्याध्ययन रामदान लालस के पास हुआ था। रामदान के कोई संतान नहीं थी अतः उन्होंने इन्हें अपना दत्तक पुत्र बना लिया। ये शिव के परम उपासक थे। धार्मिक वृत्ति होने के कारण ये सांसारिक विषय वासनाओं से सदैव दूर रहते थे। इन्होंने सदैव सत्य बोलने, व्यभिचार न करने, दुखी व गरीब को न सताने, मादक वस्तुओं को न छूने तथा मांस-मदिरा सेवन न करने की प्रतिज्ञा की थी। अपने पूर्वजों के आदर्श को बनाये रखने के लिए इनके वंशज अब तक मांस-मदिरा का सेवन नहीं करते हैं।
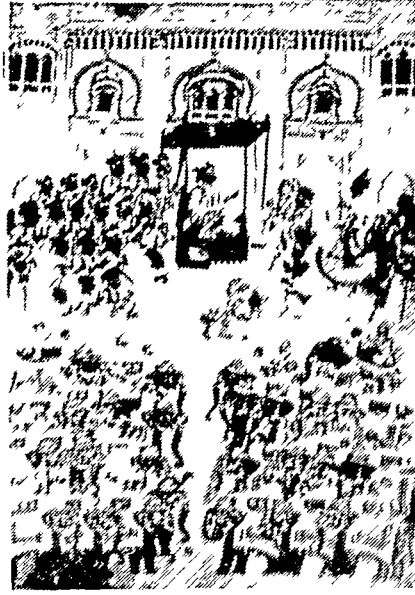
महाराजा मानसिंह द्वारा १६ चारणों को हाथी-सरोपाव

[वाँकीदास आसिया, अनाड़सिंह वारहठ, नवलदान लालस, नंदलाल महियारिया, पीयोजी सांदू, चैनजी सांदू, मोडजी महडू, वगसीराम वारहठ, वुधजी आसिया, भैरजी वणसूर, गिरवरदान सांदू, गोकलदास वारहठ, केसरजी रतनू, मोडजी आढा, जादूराम आढा, ईश्वरदास वारहठ, सुखोजी वोगसा, वालकदान लालस, रुगोजी वारहठ]

एक समय इनके पिता रामदान एवं जुडिया गाँव के भाई आवड़दान में भूमि के लिए झगड़ा हो गया। यह इतना बढ़ा कि दोनों को महाराजा की शरण में आना पड़ा। मानसिंह ने आवड़दान से पूछा—बताओ, अन्याय किसका है? आवड़दान ने उत्तर दिया—मैं क्या कहूँ, इनका पुत्र नाथूराम जो कह दे, वह मुझे स्वीकार है। मानसिंह ने फिर नाथूराम को बुलाया और पूछ-ताछ की। नाथूराम ने सत्यतापूर्वक कहा कि भूमि का स्वामी आवड़दान है फिर पिताजी एवं आप श्रीमान् जैसा उचित समझें, वैसा करें। इस पर महाराजा साहब बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें सिघासनी नामक गांव प्रदान किया। इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम था—चालकदान। इन्होंने किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की किन्तु स्फुट छंद पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

९. लच्छीराम—ये मांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और बीकानेर राज्यान्तर्गत बीकासर ग्राम के निवासी थे। इनके समय में जोधपुर की राज्य-गद्दी पर महाराजा मानसिंह विराजमान थे। ये महाराजा के गुरु नाथों का दिया हुआ दान नहीं लेते थे। एक बार जोधपुर के नाथों ने लोगों को तंग करना प्रारम्भ किया। यह देखकर इन्होंने उनकी निन्दा की अतः नाथ रुष्ट हो गये और इन्हें बुलाकर कहा—हम जीविका देते हैं, बुराई का वर्णन करना त्याग दो। जब ये नहीं माने तो उन्होंने मानसिंह को बहका कर इन्हें निकलवा दिया जिससे ये उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के पास चले गये और बहुत दिनों तक वहीं रहे। लच्छीराम के लिखे हुए स्फुट छंद उपलब्ध होते हैं।

१०. कृपाराम—ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के गांव खराडी के निवासी थे। इनके पिता का नाम जगराम था। बाल्यावस्था में ये जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के समकालीन थे। एक बार जब ये लड़के ही थे तब अपने ननिहाल गये हुए थे। वहां कोयला लेकर गांव के प्रत्येक घर पर चिन्ह बना दिये। यह देखकर एक वृद्ध पुरुष बहुत क्रुद्ध हुआ और व्यंग्य करता हुआ बरस पड़ा —'जब इतना लकीर खींचने का शौक है तब कागज़ पर लकीर खींचो ताकि दुनिया में नाम रहे।' बाल्यकाल होने पर भी यह बात इनके हृदय में कील की भांति चुभ गई। फिर नाना के घर से कुचामण के ठाकुर जालिमसिंह मेड़तिया के पास पहुँचे और प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने लगे। शनैः-शनैः काव्य के प्रति इनका अनुराग बढ़ता गया।

कृपाराम बड़े होने पर सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास चले गये और जीवन पर्यन्त वहीं रहे। लक्ष्मणसिंह ने इन्हें ढाणी प्रदान की जिसे 'कृपाराम री ढाणी' कहा जाता है। एक समय कृपाराम अपने रावराजा के साथ पुष्कर आये जहां रावराजा ने इनसे पूछा कि मैं कौनसा कार्य करूँ जिससे मेरा नाम अमर हो जाय। इन्होंने उत्तर दिया—गरीबों को अन्न-रोटी देने से। रावराजा ने ऐसा ही किया और सचमुच उस समय उनका नाम एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया। रावराजा ने प्रसन्न होकर इनको दो गांव प्रदान किये—१. भड़कोसनी (कृपाराम की ढाणी) और २. लच्छीपुरा।

कहते हैं कि कृपाराम ने 'चालसनेसी' नामक एक नाटक बनाया और एक अलंकार-ग्रंथ भी तैयार किया किन्तु खेद है कि आज इन ग्रन्थों का कहीं पता नहीं चलता। इनके नाम से कतिपय नीति तथा उपदेश विषयक दोहे-सोरठे अवश्य उपलब्ध होते हैं। ये सोरठे राजस्थान में 'राजिया रा सोरठा' के नाम से प्रचलित हैं। राजिया इनके नौकर का नाम है। उसी को सम्बोधित करके ये सोरठे रचे गये हैं। इनकी संख्या १७५ के आस-पास है।

११. वुद्धदान (वुधजी)-ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७८४ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के गाँव भांडियावास के निवासी थे। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण की। ये कविराजा बांकीदास के भाई थे और उनसे ईर्ष्या-द्वेष रखते थे। इनका कहना था कि मुझे पृथक पट्टे की कोई आवश्यकता नहीं। जो बांकीदास को मिले उसमें आधा भाग मेरा रहे। महाराजा मानसिंह इन्हें बहुत समझाया करते थे परन्तु ये उनसे भी अप्रसन्न रहते थे और नाथों की निन्दा किया करते थे। महाराजा इनको बालकनाथ के नाम से सम्बोधित करते थे।

एक बार पावस-ऋतु में इनको वाळा (नाहरू) रोग हो गया जिससे ये अत्यन्त दुःखी रहते थे। एक मयाराम दर्जी ने इनकी खूब सेवा की जिससे प्रसन्न होकर इन्होंने उसके नाम पर 'मयाराम दर्जी री वात' बनाई। इसके अतिरिक्त 'दवावैत मानसिंह री', 'देवनाथजी रा कवित्त', 'माखा रासो,' 'दवावैत हड़मानजी री' एवं 'भगतमाल' उल्लेखनीय रचनायें हैं। इनके बनाये हुए बहुत से फुटकर गीत भी मिलते हैं। इनका स्वभाव बड़ा उद्धत था।

इनको कोई गांव नहीं मिला। इनका देहान्त सन् १८६३ ई० के आसपास हुआ था।

१२. मायाराम—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत वड़ोई ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम लादूराम था। ये महाराजा मानसिंह के साथ जालोर के किले में रहे थे। इनको अपने जीवन-काल में बहुत दिनों तक कुछ नहीं मिला। इनके दादा वीरभांण रतनू पहले ही पर्याप्त कीर्ति अर्जित कर चुके थे। एक बार महाराजा उनका 'राजरूपक' ग्रन्थ पढ़ रहे थे। उन्होंने पूछताछ की कि इसके लिए ग्रंथकर्त्ता को क्या पुरस्कार मिला? जब उन्हें पता चला कि कवि को कोई पुरस्कार नहीं मिला तब उन्होंने मायाराम को बुलाया और कटारड़ा नामक गांव प्रदान किया। इनके लिखे हुए कतिपय ग्रन्थ कहे जाते हैं पर मिलते नहीं। फुटकर कविता अवश्य उपलब्ध होती है।

१३. आवड़दान—ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के जुडिया ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम हररूप था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा का प्रवन्ध पिता की देख-रेख में गांव में हुआ था। इनके रचना-काल के समय महाराजा मानसिंह राज्य-सिंहासन पर विराजमान थे : दूसरे भाई इनसे ईर्ष्या-द्वेप रखते थे और वे सब महाराजा के कृपा-पात्र थे। अतः ये मानसिंह के कृपा-पात्र नहीं बन पाये।

आवड़दान के समय में जोगीदास डाकू का आंतक छाया हुआ था। वह जोधपुर, जैसलमेर एवं बीकानेर राज्यों में लूट-खसोट किया करता था। उसने इन्हें अपने दल में मिलाना चाहा किन्तु इन्होंने विरोध करते हुए कहा—'मैं लूट खसोट की प्रवृत्ति के विरुद्ध हूं। हां, जब कभी तुम कोई वीरता का कार्य करोगे तब मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा करूंगा। यह सुनकर जोगीदास फलोदी नगर में शांत होकर बैठ गया। उसे वहाँ देखकर तीनों राज्यों की सेनाओं ने आक्रमण कर दिया। जोगीदास ने वीरतापूर्वक सामना किया और युद्ध करते-करते वीरगति प्राप्त की। वचनानुसार आवड़दान ने उसे गीत बनाकर अमरत्व प्रदान कर दिया।

जुडिया के कवियों में आवड़दान का स्थान सर्वोपरि हैं। ये कुछ कठोर

स्वभाव के अवश्य थे और अपनी विद्वता का घमण्ड भी रखते थे। इनके कोई पुत्र नहीं हुआ। इनका देहान्त सन् १८३८ ई० में हुआ था। इन्होंने १५-२० ग्रन्थ बनाये पर उनका कोई पारखी नहीं मिला। एक 'मुक्ति-प्रकाश' के अतिरिक्त शेष सभी नाम अज्ञात हैं।

१४. मानजी—ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के जुडिया गांव के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। इनके पिता का नाम विहारीदान था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण की। प्रौढ़ावस्था में ये भाद्राजु न के ठाकुर बख्तावरसिंह के कृपा-पात्र बने। धीरे-धीरे अपने सद्गुणों के कारण ये ठाकुर साहब के ऐसे विश्वासपात्र बन गये कि उन्होंने ठिकाने का सारा भार इन्हीं को सौंप दिया। ठाकुर साहब बहुधा कहा करते थे—

'दुख में धीरज देवणा, सुख में छाती सेक।
म्हारे लालस मानडो, आधा लकड़ी हेक॥'

कालान्तर में ठाकुर साहब के द्वारा ये महाराजा मानसिंह के भी कृपा-पात्र बन गये। महाराजा ने इनकी कवित्व-शक्ति पर प्रसन्न होकर बाली परगने का गांव सादड़ी प्रदान किया जो कवि के परलोकवासी होने पर जब्त कर लिया गया क्योंकि इनके कोई सन्तान नहीं थी। ये सन् १८६७ ई० तक जीवित रहे और फुटकर काव्य-रचना के द्वारा क्षत्रिय जाति की सेवा करते रहे।

१५. सायबदान—ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के कांवलिया गांव के निवासी थे। ये जन्म से ही अन्धे थे किन्तु स्मरण-शक्ति तीव्र होने के कारण काव्य-रचना में बड़े प्रवीण थे। ये महाराजा मानसिंह के समकालीन एवं उनके कृपा-पात्र थे। जालोर किले के घेरे में महाराजा ने डिंगल का अभ्यास इनसे किया था। महाराजा भीमसिंह के निधन के पश्चात् जब जोधपुर का राज्य मानसिंह को प्राप्त हो गया तब ये भी उनके साथ जोधपुर चले आये।

एक बार पोकरण ठाकुर सवाईसिंह जयपुर-नरेश जगतसिंह को ससैन्य जोधपुर पर चढ़ाकर ले आये और घेरा डाल दिया तब सायबदान मानसिंह का साथ छोड़कर भाग गये। इस घटना से महाराजा अप्रसन्न हो गये।

जब युद्ध में मानसिंह की विजय हुई तब ये ठाकुर बख्तावरसिंह (आउवा) के पास गये और अपना अपराध क्षमा कराने के लिए प्रार्थना की। ठाकुर साहब ने महाराजा के समक्ष क्षमा-दान दिलाते हुए कहा— 'नहचै रह्यौ न मन ठिकाने।' सायबदान के लिए यह कथन असह्य हुआ जिससे ये जोधपुर छोड़कर ईडर के तत्कालीन महाराजा गम्भीरसिंह के पास चले गये किन्तु कालान्तर में मानसिंह ने इन्हें अपने पास पुनः बुला लिया। इन्हें भवाळ नामक गांव प्रदान किया गया था।

सायबदान स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। उनकी वाणी निर्भीक थी। जब मानसिंह ने षड़यन्त्र रचकर मीरखां नवाब द्वारा पोकरण के ठाकुर सवाई सिंह को धोखे से मरवा डाला तब इन्होंने एक ऐसा गीत सुनाया कि महाराजा ने इन्हें पुनः निर्वासित कर दिया और ये पुनः गम्भीरसिंह (ईडर) के पास चले गये। यहां रहकर इन्होंने उनकी प्रशंसा में ३०० कवित्त लिखे।

१६. इन्दा—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७८६ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत विणलिया गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम जोरा था। जब मानसिंह जालोर के किले में बन्द थे तब ये भी उनके साथ थे। इन्होंने महाराजा से अपना पुराना गांव बासनी मांगा जो इन्हें दे दिया गया किन्तु इनके वंश में कोई जीवित न होने से ज़ब्त कर दिया गया। इनका देहान्त सन् १८४० ई० के आसपास हुआ था। इनके लिखे हुए स्फुट गीत उपलब्ध होते हैं।

१७. कोजूराम—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत विणलिया ग्राम के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। ये डिंगल-पिंगल दोनों में काव्य-रचना करते थे। इनके फुटकर गीत मिलते हैं।

१८. खोड़ीदान—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत पेसुआ ग्राम के निवासी थे। इनके बनाये हुए फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं।

१९. भोपालदान—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागोर परगने के गाँव भदोरा के निवासी थे। इनके समय में जोधपुर की राज्य-गद्दी पर महाराजा मानसिंह विराजमान थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें मिलती हैं।

२०. **जवानजी**—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पांचेटिया ग्राम के निवासी थे। ये महाराजा मानसिंह के समकालीन थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत मिलते है।

२१. **चीमनजी**—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पांचेटिया ग्राम के निवासी थे। इनकी कविता अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होती है।

२२. **चंडीदान**—ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७९१ ई०) और बूंदी के निवासी थे। इनके पिता का नाम बदनजी था जो बूंदी-नरेश के राज्याश्रित कवि थे। ये संस्कृत, पिंगल एवं डिंगल के उच्चकोटि के विद्वान थे। तत्कालीन नरेश रामसिंहजी पर इनका बड़ा प्रभाव था। ये आखेट के प्रेमी थे और अपने जमाने में बूंदी राज्य के शिकारियों में सर्वोपरि माने जाते थे। इनके विषय में यह दोहा उल्लेखनीय है—

'बदन सुकवि सुत कवि मुकुट अमर गिरा मतिमान।
पिंगल डिंगल पटु भये धुरन्धर चंडीदान॥'

चंडीदान के लिखे हुए ५ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं-सारसागर, बलविग्रह, (प्रकाशित) वंशाभरण, तीजतरंग और विरुदप्रकाश। इनका देहावसान सन् १८३५ ई० में हुआ था। इनके अन्तिम ग्रन्थ 'विरुदप्रकाश' पर प्रसन्न होकर बूंदी के महाराव राजा विष्णुसिंहजी ने इन्हें होसूदा नामक गाँव, लाखपसाव एव कविराजा का उपटंक प्रदान किया।

२३. **मोहबतसिंह**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७९४ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागोर परगने के गांव इन्दोकली के निवासी थे। इनके पिता का नाम किसनसिंहजी था। ये सिरीयारी ठिकाने के मंत्री रह चुके हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बहुत मिलती हैं। इनका स्वर्गवास सन् १८६९ ई० में हुआ था।

२४. **अनजी नारजी**—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत पेसुआ गांव के निवासी थे। ये महाराव शिवसिंह के समकालीन थे और उनके पास आया-जाया करते थे। इनके बनाये हुए फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं।

२५. **शंकरदान**—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पांचेटिया गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम शक्तिदान था। इन्हें सिरोही राज्य में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इन्होंने दो रचनायें लिखी हैं—रघुवंश एवं सिरोही का इतिहास। इसके अतिरिक्त फुटकर छंद भी उपलब्ध होते हैं जिनमें शवरी और द्रौपदी के दोहे प्रसिद्ध हैं।

२६. **गोपालदान**—ये दधवाड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत खेमपुर गांव के निवासी थे। मारवाड़ राज्य में राजकियावास नामक गांव इनके पूर्वजों को मिला था। इनकी कविता अच्छे स्तर की है इसलिए महाराजा मानसिंह के कृपा-पात्रों में से थे।

२७. **शक्तिदान**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शिव तहसील के ग्राम बाळेवा के निवासी थे। इनके समय में महाराजा मानसिंह (सन १८०३-'४३ ई०) जोधपुर की राज्य-गद्दी पर विराजमान थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

२८. **रायसिंह**—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७६३ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के गांव मृगेसर के निवासी थे। यह गांव इनके पूर्वजों को सांसण में मिला था जिसमें इनका भी भाग था। इनके पिता का नाम शक्तिदान था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा का पता नहीं चलता किन्तु विवाह सिरोही में हुआ था (१८१० ई०)। आरम्भ से ही इनकी रुचि भक्ति की ओर थी अतः घर में मन नहीं लगता था। ईश्वर-भक्त होने के साथ-साथ ये साहसी एवं शूरवीर भी थे। इनका गांव अरावली की तलहटी में होने से मेणा लोग चोरियां बहुत करते थे। जब वे मृगेसर से गायें चुराकर ले गये तब दोपा चौधरी ने पीछा किया। रात्रि में मुठभेड़ हुई। बंदूक की गोली लगने से दोपा तो वहीं काम आया किन्तु इन्होंने अकेले तीर-कमांण लेकर पचास मेणों को परास्त किया और स्वयं भी तीरों से बिद्ध होकर भूमि पर गिर पड़े। मेणें मरा हुआ जानकर भाग गये और दूसरे दिन घर लाकर इनकी चिकित्सा की गई किन्तु ये चलने योग्य नहीं रहे। उस समय सिंधिया-मराठा की सेना सेवाड़ी गांव के पास ठहरी हुई थी और उनके घुड़-सवारों ने इनका गाँव लूटकर आग लगा दी थी। सब लोग भय के मारे भाग गये पर इनके मकान के आगे एक लोवडी वाली बुढ़िया को देखकर अफसर ने इनका मकान जलाने की आज्ञा नहीं दी। कहते हैं, आवड़ देवी की कृपा से ये बच गये।

रायसिंह के विषय में एक-एक से बढ़कर रोचक प्रसंग उपलब्ध होते हैं जिनसे इनका चमत्कारी होना सिद्ध होता है। कोई आश्चर्य नहीं, इन्हें अलौकिक सिद्धियां प्राप्त हों। एक दिन ये पड़ोस के गांव लुणावा में सौदा लेने गये। मार्ग में लक्ष्मीनारायण के मंदिर में अयोध्या से आया हुआ एक अमलदार खाखी ठहरा हुआ था। वह नित्य चार तोला अफीम लेता था और ठाकुरजी के पैर के अंगूठे को डोरी से बांधकर कहता-- 'सांवरियां अफोम ला' तब भगवान अमल देते। उस दिन ऐसा करने पर आकाशवाणी हुई कि मेरा भक्त रायसिंह आ रहा है, उसकी कटारी के म्यान में ८ तोला अमल है, उसमें से अपनी खुराक लेकर चार तोला रायसिंह के लिए रहने देना। थोड़ी देर में ये अपने भाई सहित वहां आ पहुँचे। साधु ने नाम-पता पूछकर भगवान का संदेश दिया जिसे सुनकर इन्होंने कहा—'मेरे पास तो अफीम है नहीं। यह रही कटारी, आप स्वयं देख लीजिए।' साधु के देखने पर आठ तोला अमल निकल आया। भगवान की यह लीला देखकर इन्होंने अपने भाई से कहा—'मैं तो अब यहीं खाखीजी को गुरु बनाकर उनके चरणों में बैठकर भगवान का भजन करूँगा। घर नहीं चलूंगा. तुम जाओ।' इतना ही नहीं गुरु ने जो मंत्र बताया उसका जप करने लगे और उसी दिन से अमल लेने तथा हुक्का पीने लगे। थोड़े दिन बाद खाखी तो चला गया पर ये उसी मंदिर में भगवान का भजन करते रहे। एक दिन वहां खाखियों की जमात आई। रायसिंह को मंदिर में हुक्का पीते देखकर बाबा इन्हें धक्का मारकर बाहर निकालने लगे। इन्होंने कहा—'हुक्का तो भगवान भी पीते हैं।' इस पर खाखी बिगड़ गया और कहा—'ठाकुर को हुक्का पिलाकर दिखा दे नहीं तो तुझे पीटेंगे।' फिर हुक्का भरकर भगवान के आगे रखा गया। वह गुड-गुड बोलने लगा और मूर्ति के नाक में से धुआं निकलता दिखाई दिया। यह देखकर खाखी इनके पैर पड़ा और क्षमा मांगी।

एक बार रायसिंह को बहिन के पुत्र होने पर बुलाया गया किन्तु वह इनके पहुँचने के पूर्व ही चल बसी। अपने भाणजों को रोता हुआ देखकर इन्हें करुणा आई। उस समय इन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि मेरी आयु के बारह वर्ष देकर बहिन को जीवित कर दीजिये। कहते हैं, भगवद् कृपा से बहिन जीवित हो गई। सारे गांव वाले इनकी भक्ति का यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये।

एक बार रायसिंह रूपनगर के ठाकुर नवलसिंह का निमन्त्रण पाकर उनके यहां गये। वहां इनके पैर में बाळा निकल आया। इस समय ठिकाने के दरोगा मोती और उसकी पत्नी ने इनकी बहुत सेवा की जिससे प्रसन्न होकर इन्होंने दोहे लिखकर उसे अमर कर दिया।

रायसिंह जीवन के अन्तिम समय में त्यागी हो गये और विरक्त होकर बैठे रहते थे। इनका देहान्त ९८ वर्ष की अवस्था में सन् १८६१ ई० में हुआ। इनके सम्बंध में और भी अनेक जनश्रुतियाँ प्रवहमान हैं जिनमें एक नानिया नामक हरिभक्त के पुत्र तथा नत्थूराम नामक व्यक्ति को गाय को जीवित करना बताया जाता है। कहा नहीं जा सकता, इन घटनाओं में कहां तक सत्यता है?

रायसिंह विरचित 'मोतिया रा दूहा' नामक रचना में ३६० दोहे उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त फुटकर काव्य भी मिलता है।

२६. सालूदान—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेरगढ़ परगने के गाँव बिराई के निवासी थे। यह गाँव करीब ७०० वर्ष पूर्व बसा हुआ है और यहाँ पर कई कवि उत्पन्न हुए जिनमें इनके जैसा प्रतिभासम्पन्न कवि और कोई नहीं हुआ। ये महाराजा मानसिंह के समकालीन थे; मानसिंह के कृपा-पात्र श्री नवलदान इनके फूफा थे। इनके पिता-पितामह का नाम क्रमशः मानीदास एवं अखैराजो था। इनके एक ही भाई था। बाल्यकाल से ही इनमें कविता का चमत्कार विद्यमान था। इनके पिता का देहान्त इनके जन्म से ९-६ मास पूर्व ही हो गया था। कहते हैं कि इनके पिता ब्याह करने के दो-ढाई महीने पश्चात् चल बसे। जब उनकी अर्थी को झूंपे से बाहर निकाला गया तब कफन का एक छोर किंवाड़ से ऐसा अटका कि लोग विस्मय में पड़ गये। जो लोग उनके निःसंतान मर जाने पर वंश समाप्त हो जाने की चिन्ताजनक बातें कर रहे थे उनको सम्बोधित करते हुए एक शकुनी व्यक्ति ने कहा कि इस घर का द्वार सदैव खुला रहेगा। शकुन-शास्त्री ने कहा कि इस घर की बहू के गर्भ से ऐसा शिशु प्रकट होगा जो बड़ा ही विलक्षण बुद्धि का होगा। आगे चलकर यह बात सत्य निकली और सालू का जन्म हुआ। इससे प्रसन्नता की लहर उमड़ पड़ी और खूब आनन्द मनाया गया।

सालू के तीन पुत्र हुए। इनके मौसेरे भाई थे—जालजी, जो कसूंबला ग्राम (नागोर) के रहने वाले थे और अच्छी कविता करते थे। बाल्यावस्था में ये

अपनी मौसी के यहां रहे और वहीं पर कविता का अभ्यास करने लगे। जब ये बड़े हुए तब इनकी प्रशंसा इधर-उधर फैलने लगी। तत्कालीन गड़ानगर (मालानी) के ठाकुर ने इन्हें बुलाकर अपने पास बड़े सम्मान से रखा। वहाँ पर इनका इतना सम्मान हुआ कि इनकी काव्य-प्रतिभा, वाक्-पटुता एवं सदाचार पर मोहित होकर ठाकुर साहब ने प्रसन्न होकर इन्हें अयाचक बना दिया।

कहते हैं कि महाराजा मानसिंह को दानशीलता एवं गुण-ग्राहकता से प्रभावित होकर सालू ने एक गीत लिखकर नवलदानजी को दिया। जब नवलदानजी ने वह गीत महाराजा को सुनाया तब उन्होंने कहा कि मैं उस विभूतिवान पुरुष से मिलना चाहता हूँ। इस प्रकार जब इन्हें मिलने के लिए बुलाया गया तब इन्होंने क्षमा माँगते हुए यह कहकर मिलना अस्वीकार कर दिया कि मैं गड़ानगर का अयाची हो चुका हूँ, अन्य जगह अपना हाथ नहीं पसारूंगा।

सालू बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे। इनके समय में एक बार पोकरण ठाकुर सवाईसिंहजी के कुछ व्यक्तियों ने डकैतों का पीछा करते हुए पद-चिह्न लोप होने के आरोप में बिराई के चारणों को तंग करना आरम्भ किया। इस बात का पता लगने पर इन्होंने एक गीत ठाकुर को सुनाया जिसे सुनकर तत्काल शांति हो गई। गीत की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—'चूंथै धन चोर डंडोजै चारण।' इसी प्रकार एक बार बिराई के पास में पूर्व की ओर स्थित ठिकाना खुडियाला के तत्कालीन ठाकुर जुगतसिह ने बिराई के लोगों को खुडियाला के पास से कुओं पर मिट्टी लाने से रोक दिया और कहा कि ठिकाने के कोट के लिए एक-एक गाड़ी पत्थर डालकर कोई भी व्यक्ति मिट्टी ले जा सकता है। लोग खेती में लगे हुए थे अतः कोई चारा न देखकर उन्होंने इन्हें बुलवाया। ये तुरन्त आये और सारी बात सुनकर ठाकुर के पास जाकर बोले— 'ठाकुर साहब कोट के लिए जालीदार पाषाण नजर करूँ या सादा ही।' इसे सुनकर ठाकुर अपनी कुकीर्ति के भय को समझ गये और क्षमा माँगते हुए इनका बड़ा सम्मान किया तथा किसानों से खटपट करना बंद कर दिया।

सालू की जन्म एवं निधन तिथि अज्ञात है क्योंकि इनके गाँव में कोई अवशेष नहीं रह गया है तथा वंश में भी कोई जीवित नहीं है। सदेह नहीं कि ये डिंगल के एक महान कवि थे और अपने समय में पर्याप्त ख्याति-प्राप्त कर चुके थे। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

३०. किसना—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्त-

गत पांनेटिया ग्राम के निवासी थे। राजस्थान के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय वीर कवि दुरसा आढ़ा इनके पूर्वज थे। ये उनकी वंश-परम्परा की आठवीं पीढ़ी में प्रकट हुए थे। इनके पिता का नाम दूल्हाजी था। दूल्हाजी के छः पुत्र हुए जिनमें ये तीसरे थे। इनकी नसों में पूर्वजों का पुण्य रक्त प्रवाहित हो रहा था अतः आरम्भ से ही इनकी रुचि काव्य और इतिहास की ओर जा लगी। धीरे-धीरे इन्होंने संस्कृत, प्राकृत, व्रज एवं राजस्थानी भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर लिया और इनके प्रकाण्ड पंडित बन गये। साथ ही लक्षण-ग्रन्थों का अध्ययन कर इन्होंने विभिन्न काव्य-शैलियों से आत्मीय परिचय प्राप्त किया और फुटकर छंद-रचना में उनका सफल प्रयोग करने लगे।

किसनाजी की मेधा-शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। इनकी विशिष्ट काव्य-प्रतिभा एवं प्रौढ़ परिज्ञान ने मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा भीमसिंह को अपनी ओर आकर्षित किया। अपने इन्हीं गुणों के कारण ये उनके कृपा-पात्र बन गये और राज्याश्रय ग्रहण कर उनकी सेवा करने लगे। महाराणा ने इनकी कवित्व-शक्ति पर प्रसन्न होकर इन्हें सीसोदा नामक गांव से पुरस्कृत किया जो इनके वंशजों के अधिकार में रहा। इनकी साहित्य-सेवा का अनुमान केवल इस बात से ही लगाया जा सकता है कि जब कर्नल टॉड अपना राजस्थान का इतिहास लिख रहे थे तब इन्होंने उन्हें पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्रदान की थी।

किसना जी द्वारा रचे हुए दो ग्रंथ उपलब्ध होते हैं— 'भीमविलास' एवं 'रघुवरजस प्रकास।' 'भीमविलास' महाराणा भीमसिंह की आज्ञा पाकर लिखा गया था (१८२२ ई)। इसके पश्चात् ये 'रघुवरजस प्रकास' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखने में जुट गये जिसमें इनका अध्ययन बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ और उसे एक वर्ष की अवधि में समाप्त कर दिया (१८२४ ई०)। हर्ष का विषय है कि यह ग्रंथ राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, जोधपुर के द्वारा अब प्रकाशित हो चुका है (१९६० ई०) इन दो मुख्य ग्रंथों के अतिरिक्त कवि के लिखे हुए फुटकर गीत तो इतने अधिक उपलब्ध होते हैं कि जिनकी कोई संख्या निश्चित नहीं की जा सकती।

२१. चमनजी—ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत खेमपुर गाँव के निवासी थे। इनके समय में महाराणा जवानसिंह राज्य-गद्दी पर विराजमान थे। इनका फुटकर काव्य मिलता है :

३२. हरूदान—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर के निवासी थे। इनके समय में श्री सवाई रामसिंह (द्वितीय) राज्य-सिंहासन पर विराजमान थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

३३. भोमा—ये बीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और बीकानेर राज्य के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८२३ ई० के आसपास बताया जाता है। इन्हें राज्याश्रय प्राप्त था। इन्होंने छोटे-छोटे तीन-चार ग्रंथ बनाये हैं, जो बीकानेर के राज्य-पुस्तकालय में विद्यमान हैं।

३४. रामनाथ—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८०८ ई० के आस-पास) और चोखा का बास (सीकर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम ज्ञानजी था जो बड़े वीर थे। ये उनके तीसरे पुत्र थे। इन्हें आमास (खँडेला) में एक कोठी मिली थी। इनके छोटे भाई का नाम शिवनाथ था जो घर छोड़कर अज्ञात स्थान को चले गये थे। एक दिन किसी त्यौहार के अवसर पर सब भाई-बहन साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। माता को स्वभावत: शिवनाथ का स्मरण हो आया और आँखें डबडबा गईं। यह देखकर इन्होंने अपने छोटे भाई को ढूंढने की प्रतिज्ञा की और तत्काल घर से चल पड़े। ढूंढते-ढूढते ये महाराज बलवंतसिंहजी तिजारे के पास पहुँचे, जहां संयोग से शिवनाथ भी मिल गये। विद्वता एवं सभा-चातुरी पर मुग्ध होकर तिजाराधिपति ने इन्हें भी अपने पास रख लिया। जब छः महीने बाद इन्होंने वहां आने का उद्देश्य बताया और छोटे भाई को घर ले जाने की इच्छा व्यक्त की तब महाराज ने बड़ी कठिनता से एक सप्ताह की छुट्टी दी। विदाई के समय लाखपसाव, एक हाथी, एक खड्ग एवं सीहाळी नामक गाँव प्रदान किया। घर लौटने पर माता अपने पुत्र-रत्न को को पाकर नौनिहाल हो गई।

रामनाथ ने प्रतिज्ञा तो पूरी कर दखाई किन्तु छुट्टी समाप्त होते ही पुनः तिजारा जाना पड़ा। जब अलवर नरेश विनयसिंह ने वाममार्गी साधुओं की सहायता से तीन दिन के भीतर बलवंतसिंह, उसकी स्त्री एवं पुत्र को मरवा दिया तब तिजारा ज़ब्त हो गया और फलतः सीहाळी गाँव भी इनके हाथ से जाता रहा। इन्होंने महाराज से जाकर निवेदन किया कि राज्य पलट जाता है, चारणों को दिया हुआ गांव ज़ब्त नहीं होता किन्तु वे टस से मस नहीं हुए। निदान, ये यह कहकर दरबार से निकल गये कि जिस प्रकार असली चारण अपनी स्वत्व-रक्षा करते आये हैं वैसे ही मैं भी करके दिखाऊंगा। इसके पश्चात्

अलवर राज्य में प्रसिद्ध धरणा (सत्याग्रह) का आयोजन किया गया जिसमें १०१ चारण सहर्ष प्राणोत्सर्ग के लिए एकत्र हुए। अलवरेन्द्र के बड़े भाई ठाकुर हनुमंतसिंह (थाणा) एवं शाहपुरे वाली महारानी ने विनयसिंह को बहुत समझाया किन्तु वे नहीं माने। हनुमंतसिंह असंतुष्ट होकर महाराज से यह कहकर चले गये कि ऐसे अन्यायी एवं अत्याचारी राजा के राज्य में रहना भी महापाप है। उन्होंने ठिकाने का पट्टा लौटाकर अलवर में अन्न-जल ग्रहण न करने का व्रत लिया। शाहपुरा की महारानी ने भी जो चारण जाति एवं उनकी कुल-देवी श्री करणीजी की भक्त थी, अनशन आरम्भ किया। महाराज का मुसलमान मंत्री अम्मूजान जो चारणों की शक्ति से परिचित एवं प्रभावित था, कांप उठा। उसने खजाने की कुंजी महाराज को यह कहकर सौंप दी कि यदि कोई अनर्थ हो गया तो उसका दोष मुझे लगेगा। इस पर भी महाराज नहीं माने सो नहीं माने। उधर रामनाथ के नेतृत्व में सब चारण अपनी इष्टदेवी जगदम्बा (करणीजी) का पूजन करने लगे। कहते हैं, इसके प्रभाव से राजप्रासाद हिलने लगा और इस प्रकार की अनेक अशुभ घटनायें घटने लगीं। इनसे सर्वत्र हाहाकार मच गया पर अलवरेन्द्र की बुद्धि ठिकाने आ गई। तत्काल सवार दौड़ाकर धरणे को स्थगित करने की प्रार्थना की गई। महाराजा ने मालाखेड़ा के मुकाम पर हनुमंतसिंह को कहलाया कि मैं आपकी बात मानने के लिए तैयार हूं, आप शीघ्र लौट आयें। रामनाथ को मोहाळी के बदले सटावट नामक सुन्दर गाँव का पट्टा दिया गया और इस प्रकार धरणा समाप्त हो गया। अब विनयसिंह ने चमत्कार के के आगे नमस्कार करना ही श्रेयस्कर समझा।

महाराज विनयसिंह के पश्चात् शिवदानसिंह राज्य-सिंहासन पर विराजमान हुए। उनकी अप्रौढ़ावस्था में ब्रिटिश सरकार ने रामनाथ को उनका अभिभावक नियुक्त किया। महाराज शिवदानसिंह इस्लाम धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे और अंतिम समय में तो वे एक प्रकार से मुसलमान ही हो गये थे। आर्य संस्कृति के इस परम भक्त को उनका पट्टेदार बाल रखना बुरा लगा। जब वे समझाने पर नहीं माने तब इन्होंने एक दिन बलात् पकड़कर पट्टे कटवा दिये जिससे रुष्ट होकर उन्होंने प्रतिशोध लेना चाहा। ये एक क्षत्रिय-कुमार को पथभ्रष्ट होते कैसे देख सकते थे? राज्याधिकार मिलने पर शिवदानसिंह ने जेल का दारोगा भेजकर इन्हें बुलाया। स्वाभिमानी रामनाथ समझ गये और तुरन्त ही जगदम्बा का ध्यान कर अपने पेट में तीक्ष्ण कटार पहनकर चलने को तैयार

हुए। दारोगा ने जब दुष्टतावश व्यंग्य किया तब ये दूसरी कटार लेकर उस पर झपटे जिससे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। महाराज ने फिर इन्हें बाला किला अलवर में बंद कर दिया और सटावट गांव भी ले लिया। इस भग्नावस्था में भी ये विचलित नहीं हुए। एक बार जब महाराज किले की ओर गये तब इनको सुनाकर कहा—'इन सफेद बालों में अच्छी धूल डलवाई।' इन्होंने गरजकर उत्तर दिया—'मैंने तो अपने सफेद बालों की धूल कटार द्वारा झाड़ ली परन्तु आपके काले बालों की धूल झाड़े जाने पर भी नहीं झड़ेगी।' इस कठिन-काल में भगवान का स्मरण करने के अतिरिक्त इनका कोई और काम नहीं रह गया था।

रामनाथ ने दो विवाह किये थे। बड़ी पत्नी से परशुराम एवं छोटी से गंगादान नामक गुणवान पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनों ने शाहपुराधीश की सेवा में पहुँचकर अपने शस्त्र-कौशल एवं काव्य चातुर्य से उन्हें मुग्ध किया था। जब उन्होंने वरदान मांगने के लिए कहा तब इन दोनों ने अपने पिता को मुक्त कराने के लिए कहा क्योंकि वे शिवदानसिंह के भानजे थे। ठाकुर बिशनसिंह (डिग्गी) ने जमानत देना स्वीकार किया। सहभोज के समय बिशनसिंह ने यहां तक कहा—'मैं तो अपने जीवन भर में केवल एक बार इसी भिक्षा के लिए अलवर आया हूं'। अलवरेन्द्र एक इसी बात को छोड़कर सब-कुछ करने लिए तैयार थे। जब दोनों ने भोजन से हाथ खींच लिया तब अन्तःपुर से शाहपुराधीश की बहिन एवं अलवरेन्द्र की माता श्री रूपकुंवर ने बीच-बचाव किया और रामनाथ की मुक्ति की आज्ञा घोषित करवा दी और इनका गाँव भी लौटा दिया। इस प्रकार अपने पुत्रों के प्रयत्न से रामनाथ मुक्त हुए।

रामनाथ एक चतुर, दूरदर्शी एवं वीर चारण थे। साथ ही इन्होंने भक्त-हृदय पाया था। सटावट में डूंगरी पर स्थित जगदम्बा के देवालय में नित्य पूजन करने जाते और वहां से लौटकर भोजन करते थे। जब अधिक वृद्ध हो हो गये तब घर पर ही फुटकर भक्ति विषयक छंद बनाकर संतोष करने लगे। इनका स्वर्गवास ७० वर्ष की अवस्था में सन् १८७८ ई० में हुआ था। यद्यपि राम-नाथ ने सन् १८२३ ई० से ही फुटकर रचना करना आरम्भ कर दिया था तथापि इसका परिमार्जन बंदीगृह में हुआ। इन्होंने अपने हृदय की करुण चीत्कार को द्रौपदी के सोरठों द्वारा प्रकट किया है जो राजस्थान में "द्रौपदी-विनय अथवा

करण-बहत्तरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ७२ दोहे हैं, जिनका सम्पादन डॉ॰ कन्हैयालाल सहल ने किया है (१९५३ ई॰) इसी प्रकार जेल के दिनों में इन्होंने वीरवर पाबू राठौड़ पर भी सोरठे लिखे थे।

३५. रूपा—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और अलवर राज्यान्तर्गत माहद गांव के निवासी थे। इनके पिता का नाम उम्मेदरामजी था। ये बड़े दयावान एवं उदार व्यक्ति थे। समाज में प्रथम श्रेणी के दानियों में इनकी गणना होती थी और अलवर के एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इनके लिखे हुए गीत उपलब्ध होते हैं।

३६. गिरवरदान—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८२१ ई॰) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जैतारन परगने के वासनी गांव के निवासी थे। इनके पिता का नाम दयालदास था जो उच्चकोटि के कवि एवं गणितज्ञ थे। अतः इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता की देख-रेख में हुई। इनके परिवार में काव्य का स्वस्थ वातावरण था। इनके चाचा पन्नालाल जन्मांध अवश्य थे किन्तु अपने समय के उत्कृष्ट विद्वान माने जाते थे। उन्होंने भी इन्हें डिंगल का ज्ञान कराया। इसी प्रकार आलास ग्रामवासी सागरदान ने इन्हें वाक्-पटु बनाया। इनके विषय में कंटालिया ठाकुर गोवर्द्धनसिंह ने कहा था 'परवरिया सारी प्रिथी, गिरवरिये रा गीत।' गिरवर आशु कवि थे। इनके लिए तत्काल काव्य-रचना करना सुगम था। कई व्यक्तियों ने इन्हें कठिन से कठिन समस्यायें दी और इन्होंने सफलतापूर्वक उनकी पूर्ति कर दिखाई। रतलाम नरेश बलवंतसिंह ने इनका मान-सम्मान किया था। ये कुछ समय के लिए उनके पास रहे थे फिर मारवाड़ लौट आये। इनमें स्वाभिमान की मात्रा अधिक थी। अतः मान-सम्मान के आगे अपने स्वार्थ को भी ठुकरा देते थे। इनकी कवित्व-शक्ति अपने ढंग की निराली थी। इनके लिखे हुए स्फुट गीत उपलब्ध होते हैं।

३७. चतरजी—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्य के निवासी थे। महाराणा जवानसिंह इनके समकालीन थे। इन्होंने कई गीत लिखे हैं।

३८. वखतराम—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत पसून्द ग्राम के निवासी थे। इन्होंने महाराणा जवानसिंहजी के विषय में 'कीरत-प्रकाश' नामक ग्रन्थ रचा जो इनके वंशजों के पास अभी तक अप्रकाशित

अवस्था में सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त फुटकर गीत भी बहुत लिखे हैं।

३९. रिवदान—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७९३ ई० आसपास) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत विलाड़ा परगने के गाँव वोरून्दा के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। इनकी स्मरण-शक्ति तीव्र थी। अपने भाइयों से तंग आकर इन्होंने महाराजा मानसिंह की शरण ली और गीत के रूप में एक प्रार्थना-पत्र दिया। इसे पढ़कर महाराजा ने पूछा कि क्या चाहते हो? उत्तर में इन्होंने अपना सारा दुख कह सुनाया। महाराजा ने इनके दुख का निवारण कर दिया और ये पुनः अपने गाँव चले गये। कालान्तर में महाराजा तखतसिंह ने इन्हें एक दोहे पर पाँच-सौ रुपये दिये थे। वृद्धावस्था में ये उनके पास रहते थे। इन्होंने काव्य के द्वारा ठाकुर माधोसिंह (रायपुर) को प्रभावित किया और वहाँ के छोटे-छोटे जागीरदारों को अभयदान दिलाया था। इनके लिखे हुए स्फुट दोहे एवं गीत मिलते हैं।

४०. नाहर—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुरा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम रामदानजी था। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

४१. तेजराम—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत राजसमुद्र तहसील के पसूंद ग्राम के निवासी थे। महाराणा जवानसिंह इनके समकालीन थे। इन्होंने कई फुटकर गीत लिखे हैं।

४२. हरिसिंह—ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनका स्थान अज्ञात है। इन्होंने स्फुट गीत लिखे हैं।

४३. जादूराम—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्य के निवासी थे। इनके समय में महाराणा सरूपसिंहजी राज्य-गद्दी पर विराजमान थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

४४. स्वरूपदास—ये देथा शाखा में उत्पन्न हुए थे और ऊमरकोट इलाके के गांव रवारोड़ा के निवासी थे। इनके पिता का नाम मिश्रीदान था। रतलाम नरेश बलवंतसिंह इनके समकालीन थे। एक बार जब डाकुओं ने इनका मकान लूट लिया तब इनके पिता अपना गाँव छोड़कर अजमेर इलाके में बड़ली के ठाकुर दुलहसिंह के पास आ गये। इनके बचपन का नाम शंकरदान था। इन्हें

शिक्षा अपने चाचा परमानन्द से प्राप्त हुई जो अपने समय के विद्वान एवं त्यागी पुरुष माने जाते थे। इस शिक्षा के फलस्वरूप इनके हृदय में वैराग्य-भावना उत्पन्न हुई अतः ये घर से चुपचाप भाग गये और बड़लो के समीप देवलिया गाँव में पहुंचकर एक दादू पंथी साधु के शिष्य बन गये। जब यह बात चाचा को ज्ञात हुई तब उन्हें यह अच्छा नहीं लगा, क्योंकि उन्हें आशा थी कि ये बड़े होकर अपनी विद्वता से जीविका प्राप्त करेंगे न कि उनके समान साधु बनकर संसार से विरक्त हो जायेंगे—

'कीधो थो कुण कौळ, कह पाछो कासूं कियो।
बेटा थारा बोल, साले निस दिन संकरा।।'

स्वरूपदास त्यागी बनकर इधर-उधर घूमते रहे किन्तु अधिकांश में रतलाम और सीतामऊ ही रहते थे। कुछ दिनों तक ये वृन्दावन भी रहे। बलवतसिंह (रतलाम) इनके परम भक्त थे। वे स्वयं इनके पास आया-जाया करते थ। ये उन्हें अन्नदाता कहते तो वे इन्हें अमूल्य मणि की संज्ञा देते थे—

'माणक हूंत अमोल, बिछुड़ता कहिया वचन।
बलवंत थारा बोल, खारा निस दिन खटकसी।।'

स्वरूपदास का स्वर्गवास सन् १८६३ ई० में हुआ था। इनके लिखे हुए तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—'पांडव यशेन्दु चंद्रिका', 'हृदयनयनांजन' एवं 'वृत्ति बोध'। इनमें से प्रथम रचना प्रकट है, शेष दोनों अप्रकट।

४५. हमीर—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनका स्थान जाजपुरा जिला के ग्राम सरया में होना ज्ञात होता है। इन्होंने कई गीत लिखे हैं।

४६. दुरगादत्त—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८०३ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत लोळावास गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम गिरवरदान था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मोरटहूका के बारहठ तिलोकसिंह के संरक्षण में हुई थी। इन पर रतलाम-नरेश बलवंतसिहजी की पूर्ण कृपा थी अतः ये अधिकांश में उनके पास रहते थे। इनकी मृत्यु अपने गाँव में हुई थी (१८६६ ई०)। इन्होंने महाराजा बलवन्तसिंह को लक्ष्य करके 'एकदातारा री निसाणी' बनाई। एक 'नायिका भेद' का ग्रन्थ भी बनाया। इनके अतिरिक्त फुटकर गीत भी मिलते हैं।

४७. **कनीराम**—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८१५ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत खाटावास गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम प्रभुदान था। बाल्यकाल में इन्हें अपने पिता से शिक्षा प्राप्त हुई थी। आरम्भ से ही इनकी रुचि भक्ति की ओर थी। अतः आगे चलकर ये एक उत्तम भक्त कवि हुए। ये कविता में अपना उपनाम कनिया रखते थे। गाँव छोड़कर इधर-उधर आना-जाना इन्हें पसंद नहीं था। इनका स्वर्गवास सन् १८८८ ई० में हुआ। इनके लिखे हुए बहुत से फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं।

४८. **सूर्यमल**—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम कड़ियां के निवासी थे। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

४९. **दुलेराम**—ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे (१७८८ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मोगड़ा गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम हररूप था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के संरक्षण में हुई। इन्होंने हिन्दी-संस्कृत का ज्ञान पंडित कृष्णदत्त शास्त्री मसूदे वाले से प्राप्त किया। स्वामी स्वरूपदासजी के पास भी विद्याध्ययन किया था। ये उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के कृपा-पात्र थे किन्तु किसी कारणवश अप्रसन्न हो जाने से आउवा के ठाकुर बख्तावरसिंह के पास रहने लग गये। महाराजा मानसिंह के गुरू आयशनाथ इनसे बहुत मिलना चाहते थे पर ये अवहेलना करते गये। अतः उनके कारण इन्हें जोधपुर छोड़ देना पड़ा। इसके पश्चात् ये मसूदे के ठाकुर देवीसिंह के पास रहे और जीते जी जोधपुर नहीं लौटे।

एक बार जब स्वरूपदासजी पांडव यशेन्दु चंद्रिका' बना रहे थे तब ये उनके पास गये। वहाँ जाकर इन्होंने कहा कि आप जिस प्रासाद का निर्माण कर रहे हैं, उसमें सहायता रूप एक ईंट मैं भी भेंट करना चाहता हूँ। यह सुनकर स्वरूपदासजी ने आज्ञा दी कि भेंट करो, तब इन्होंने कवित्त भेंट किया। कहते हैं कि 'पांडव यशेन्दु चंद्रिका' के कर्ण पर्व की अधिकांश रचना इनकी है। ये डिंगल-पिंगल दोनों के अच्छे विद्वान थे। इनके बनाये हुए दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं— 'एकाक्षरी कोष' एवं 'प्रभुता प्रकाश'। 'प्रभुता प्रकाश' मसूदे के ठाकुर देवीसिंह की प्रेरणा का फल था। मेवाड़ में इनके फुटकर गीत और दोहे भी मिलते हैं। इनका अवसान-काल सन् १८५३ ई० है। इनके लड़के का नाम जादूराम था। मसूदे में जागीर स्वरूप इनको कुए मिले हुए थे जो अब तक इनके वंशजों के अधीन हैं।

५० मोडदान—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के भांडियावास गांव के निवासी थे। इनके पिता का नाम वुद्धदान (वुधजी) था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पिता की देख-रेख में हुई थी। कहते हैं जब इनके पुत्र नहीं हुआ तब इन्होंने पावूजी का इष्ट रखा और 'पावू-प्रकास' नामक एक ग्रंथ की रचना की जो प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने अपने जीवन में चार प्रतिज्ञायें की थीं—१. पुत्र होने पर उसका नाम पावूदान रखूंगा। २, आंगन में खड़ी खेजड़ी पर एक ठांण (स्थान) बनाऊंगा और वहां इष्टदेव की पूजा करूंगा। ३. खेत सेली में एक ओरण छोड़कर यथाशक्ति एक मन्दिर की स्थापना करूंगा और ४ पावूजी के जीवन-चरित का पूर्ण वर्णन कर एक ग्रंथ की रचना करूंगा। ईश्वरीय कृपा से जब इनके पुत्र उत्पन्न हुआ तब इन्होंने उसका नाम पावूदान रख दिया। इनके तीन पुत्र हुए—पावूदान, वैरीसाल और यशवंतसिंह।

मोडदान की गणना डिंगल के उच्चकोटि के कवियों में की जाती है। इनकी कुल दस रचनायें उपलब्ध होती हैं—'पावू प्रकाश.' 'जेखल सुजस जड़ाव,' 'तखत विनोद.' 'छंदरूप दीपमाला,' 'ग्रंथासंज्ञा प्रक्रियार्थ,' 'झमाल मामा गोविंदजी री,' देवनाथजी री वात,' वैरा सुजस विनोद,' 'प्रताप पचीसी' एवं 'ग्रंथ विसर्ग संधि।'

५१. सोम—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के वीडलिया गांव के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं।

५२. तिलोकदान—ये वारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तगत मोरटहूका गांव के निवासी थे। डिंगल के प्रसिद्ध कवि दुर्गादत्तजी इनके निकट सम्बन्धी थे। महाराजा मानसिंहजी इनके समकालीन थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

५३. आसा—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्य के सीसोदा ग्राम के निवासी थे। इन्होंने कई गीत लिखे हैं।

५४. हरा - इनकी न तो शाखा का पता लगता है और न स्थान का ही। हां. फुटकर गीत अवश्य उपलब्ध होते हैं।

५५. भगवानदास—इनकी न तो शाखा का पता लगता है और न स्थान का ही। हां, फुटकर गीत अवश्य उपलब्ध होते हैं।

५६. जीवराज—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनका स्थान अज्ञात है। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें मिलती हैं।

५७. बुधसिंह—ये सिढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८२६ ई०) और जोधपुर राज्यान्तर्गत मोगड़ा गाँव के निवासी थे। इनके पूर्वजों को नरसिंहगढ़ (मध्यप्रदेश) के नरेशों का वरद हस्त प्राप्त था और इन पर भी उनकी कृपा बनी रही। आरम्भ से ही ये विद्यानुरागी थे। बाल्यकाल में इन्होंने डिंगल-पिंगल के तत्कालीन विद्वान-कवि श्री दुलेरामजी सिढायच (मसूदा) से शिक्षा ग्रहण की। शीघ्र ही इन दोनों भाषाओं में रचनायें करने लगे। धार्मिक प्रवृत्ति के होने से इनका भक्ति विषयक रचनाओं में विशेष अनुराग था। ये अल्पायु में ही दिन के लगभग दो-सौ दोहों की रचना कर डालते। इस भक्त कवि के जीवन का शुभारम्भ मारवाड़ी में लिखे हुए एक गीत से हुआ (१८४३ ई०)।

बुधसिंह स्वतंत्र प्रकृति के कवि थे। इनमें स्वामी-भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। कर्तव्य का पालन करना इनके जीवन का धर्म था। राजपूत सभाओं में जिस ढंग की चतुराई चाहिए, वह इनमें थी। डिंगल-पिंगल दोनों भाषाओं के विद्वान थे। ये साहित्य-साधना के साथ योग-साधना भी करते थे। ये अपने समय के अच्छे वैद्यक माने जाते थे। घर पर ही औषधालय खोल रखा था जहाँ गरीबों का इलाज करते थे। समाज में जो भूखे व्यक्ति होते वे सदैव इनके यहाँ भोजन पाते। माया-जल में रहते हुए भी कमल के समान उसके ऊपर थे।

चारण-कवि होने से राजपूत राजघरानों की सेवा करना इनके जीवन का लक्ष्य था। इन्होंने श्री हनवंतसिंह (नरसिंहगढ़) की पुत्री विजयकुँवर का पाणिग्रहण जसवंतसिंह (जोधपुर) से कराया था (१८७२ ई०) विजयकुँवर के कहने पर ये नरसिंहगढ़ से जोधपुर आ गये और आजीवन उनके कामदार के पद पर प्रतिष्ठित हुए। यहाँ रहकर भी इनका सम्बन्ध वहाँ से बना रहा। श्री हनवंतसिंह (नरसिंहगढ़) ने इनकी तीव्र कवित्व-शक्ति से प्रभावित होकर कविराजा का उपटंक प्रदान किया था। महाराजाधिराज जसवंतसिंह (जोधपुर) ने इन्हें ताज़ीम एवं पैर में स्वर्ण देकर गौरव बढ़ाया (१८८९ ई०)। प्रथम श्रेणी के ताज़ीमी जागीरदार होने के कारण ये ठाकुर कहाते थे।

बुधसिंह उच्च कोटि के समन्वयवादी भक्त थे। ये सब कुछ ईश्वरीय लीला मानते थे। एक बार मदौरा में इनके घर पर आग लग गई और ये भक्ति की रचना लिखने में लीन थे। चट उठकर दूसरे स्थान पर चले गये और इस घटना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। एक पहुँचे हुए भक्त कवि के के सदृश इन्हें भी अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। अन्तिम समय में ये अन्न-जल का त्यागकर कर केवल गंगा-जल का ही सेवन करने लगे। इनका स्वर्गवास सन् १६०१ ई० में हुआ था। इनके तीन पुत्र हुए। युवावस्था में एक पुत्र के काल-कवलित होने के कारण ये संसार से उदासीन हो गये थे। इनके बड़े पुत्र का नाम पीरदान एवं छोटे का शक्तिदान है।

बुधसिंह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'देवीचरित' हैं। देवी के चरित पर आधारित यह प्रथम भावानुवादित महाकाव्य है। यह बारह स्कंधों में पूर्ण हुआ है और इसकी पृष्ठ संख्या हजार से ऊपर है। इसकी पाण्डुलिपि कवि के वंशज श्री माधोसिंहजी ने मुझे बताई थी। इसके अतिरिक्त स्फुट रचनायें भी उपलब्ध होती हैं जिनमें आश्रयदाताओं के शौर्य एवं औदार्य का वर्णन है। यह लक्ष्य करने की बात है कि कवि ने अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध रणक्षेत्र में वीरगति प्राप्त करने वाले चैनसिंह (नरसिंहगढ़)से प्रेरणा ग्रहण कर राष्ट्रीय गीतों का भी सृजन किया है (१८२४ ई०) गद्य के क्षेत्र में इनकी 'महाराजकुमार श्री चैनसिहजी री वार्त्ता' एक संक्षिप्त उल्लेखनीय रचना है।

५८. रामलाल—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत गांव कड़िया के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

५९. स्योदान—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८२१ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत ग्राम कुम्हारिया के निवासी थे। इनके समय में श्री सवाई रामसिंहजी राज्य-गद्दी पर विराजमान थे। इनका निधन सन् १८६० ई० में हुआ था। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६०. दलजी—ये महडू शाखा में उत्पन्न हए थे और डूंगरपुर राज्यान्तर्गत गांव वरोड़ा के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

६१. विसनदान—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनका स्थान अज्ञात है। इनके लिखे हुए फुटकर गीत मिलते हैं।

६२. **गंगादान**—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सीऊ गांव के निवासी थे। महाराजा तखतसिंह इनके समकालीन थे। इनकी लिखी हुई रचनायें कम मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

६३. **रामलाल आढ़ा**—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम सीसोदो (मेवाड़) के निवासी थे। इन्होंने फुटकर गीत लिखे हैं।

६४. **भारतदान**—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के गांव भांडियावास के निवासो थे। ये डिंगल के सुप्रसिद्ध कवि बाँकीदास के दत्तक पुत्र थे। इन्हें कविराजा का उपटंक मिला था। इनका रचना-काल सन् १८४१ ई० माना गया है। इनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम था मुरारिदान। इनके फुटकर गीत मिलते हैं।

६५. **शेरदान**—ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए थे और जैसलमेर जिलान्तर्गत ग्राम ऊजला के निवासी थे। महाराजा मानसिंह (जोधपुर) इनके समकालीन थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें उपलब्ध होती हैं।

६६. **भेरूदान**—ये वरणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम पारलाऊ के निवासी थे। इन पर जोधपुर-नरेश महाराजा मानसिंहजी की विशेष कृपा थी और ये उनके विश्वासपात्र थे। महाराजा इन्हें भाई के नाम से सम्बोधित करते थे—'जुगो जुग तपस्या साथ कीधौं जुडे भाइयों सरीसो भेर भाई।' महाराजा ने इनकी साहित्य-सेवा के उपलक्ष में पडासला गांव (पाली) सांसण में दिया और अनेक कुरब प्रदान किये थे जो किसो चारण को प्राप्त नहीं थे। इन्हें ठाकुर की उपाधि एवं पैर में स्वर्ण मिला। महाराजा 'नाथ-चन्द्रिका' के सौ दोहे सुनाते और ये उन्हें अक्षरशः लिख देते। इससे सिद्ध होता है कि ये चमत्कारवादी कवि थे और इनकी स्मरण-शक्ति तीव्र थो। काव्य-प्रेमी महाराजा ने इन पर दोहे लिखे हैं। यह लक्ष्य करने की बात है कि मारवाड़ के चारणों में केवल तीन ठिकाने ही ताज़ीमी सोना-नवीस हैं जिनमें से एक पारलाऊ और शेष दो ठिकाने हैं—मूंदियाण और चत्रां। इनकी स्फुट रचनायें मिलती हैं।

६७. **ओकजी**—ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सिवाना परगने के ग्राम सरवडो के निवासी थे। इनके समय में

भारतदान आसिया [रचना-काल १८४१ ई०, निधन १८६४ ई०]

महाराजा मानसिंह सिंहासनारूढ़ थे। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६८. मयाराम—ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और जैसलमेर राज्यान्तर्गत ग्राम माडवा के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। आशु कवि के रूप में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इनका लिखा हुआ स्फुट काव्य उपलब्ध होता है।

६९. भैंरूदान—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शिव परगने के ग्राम गुणाका के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। इन्होंने 'बेनरासा' नामक ग्रंथ बनाया जिसमें दुर्भिक्ष के कष्टों का वर्णन है।

७०. जैमल—ये झीबा शाखा में उत्पन्न हुए थे और जैसलमेर राज्य के झींकली गाँव के निवासी थे। ये उत्तम श्रेणी के कवि थे। इन्होंने रेगिस्तानी जहाजों (ऊँटों) का अच्छा वर्णन किया है। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

७१. करमानंद—ये देथा शाखा में उत्पन्न हुए थे और जैसलमेर राज्यान्तर्गत ग्राम मूलिया के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें मिलती हैं।

७२. नाथूदान—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के ग्राम शिव के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। ये राजनैतिक कार्यों में रुचि रखते थे एवं उच्च कोटि के विद्वान थे। डिंगल-पिंगल के अतिरिक्त फारसी के भी ज्ञाता थे। कवि के रूप में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। परवर्ती कविराजा मुरारीदानजी ने इन्हीं से अलंकार पढ़े थे। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

७३. चालकदान—ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के तोलेसर गाँव के निवासी थे। महाराजा मानसिंह इनके समकालीन थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

७४. कल्याणसिंह—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम मांडियावास के निवासी थे। इनके भाई

कविराजा बाँकीदास एवं बुद्धदान (बुधजी) साहित्य-क्षेत्र में पर्याप्त कीर्ति अर्जित कर चुके थे। ये साधारण श्रेणी के कवि थे। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

७५. दयालदास—ये उज्वल सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८०१ ई०) और बीकानेर राज्य के ग्राम कुबिया के रहने वाले थे। ये प्रसिद्ध कवि एवं इतिहास-लेखक थे। इन्होंने 'राठौड़ों री ख्यात' नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है। इनका देहान्त सन् १८९१ ई० में हुआ था।

७६. पन्नेसिंह—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम भांडियावास के निवासी थे। ये साधारण कवि होने के साथ-साथ एक वीर पुरुष थे। जब महाराजा मानसिंह जालोर के घेरे में बंदी हो गये थे तब जिन १७ चारणों ने महाराजा की सेवा की, उनमें एक ये भी थे। इससे प्रसन्न होकर महाराजा ने इन्हें भांडियावास तथा पचपदरा की सीमा पर काफी भूमि प्रदान की थी जिसे 'रावली सीम' के नाम से आज भी जाना जाता है। महाराजा की इन पर बड़ी कृपा थी। इनका देहान्त सन् १८३४ ई० में हुआ था। इनकी लिखी हुई फुटकर कविता मिलती है।

७७. चिमनदान—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८२८ ई० के आसपास) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के ग्राम बिराई के निवासी थे। इनके पिता-पितामह का नामक क्रमशः लुद्रदान एवं करणीदान था। इनके छोटे भाई का नाम नवलदान था। आज इनके परिवार में कोई भी जीवित नहीं है किन्तु जिन एक-दो वयोवृद्ध व्यक्तियों ने इन्हें देखा है, वे अभी जीवित हैं। उनके कथनानुसार इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बिराई से ४ कोस दक्षिण में स्थित 'जुढ़िया' नामक गांव में हुई थी। वहाँ पर जीवणदास एवं आवड़दान वयोवृद्ध कवि थे जो महाराजा मानसिंह के बड़े कृपा-पात्र थे। ये उनके दोहित्र होते थे। इनका बदन सुडौलथा-लम्बा कद, गोल व सुन्दर उभरा हुआ चेहरा, गोर वर्ण वडी वडी आंखें, सफेदझक दाढ़ी व उज्ज्वल वस्त्र रखते थे। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। ये सदैव अपने पास सवारी हेतु एक सुन्दर घोड़ी रखते थे। प्रायः पीली घोडी जो उन दिनों बहुत विख्यात थी और जिसे बिलाड़ा दीवान साहब लक्ष्मणसिहजी ने भेंट की थी।

चिमन बड़े ही बुद्धिमान व्यक्ति थे। इन्होंने अपनी प्रत्येक गाथा कविता में मिति सहित लिख दी है। ये एक निर्भीक वक्ता भी थे। बिलाड़ा दीवान

लक्ष्मणसिंह इनका बहुत मान-सम्मान करते थे। इनके यहां आपका आना-जाना भी बहुत रहता था। एक बार दीवानजी ने इन्हें प्रसन्न होकर स्वर्णयुक्त वस्त्र दिया था। इनका सबसे बड़ा गुण यह था कि ये प्रथम श्रेणी के गायन-पटु भी थे। ईश्वर-भक्ति में तल्लीन होकर जब ये राग अलापते तब लोग मंत्र मुग्ध हो जाते थे। इनकी दानशीलता प्रसिद्ध थी। अपने जीवन में हजारों रुपये राजा-महाराजाओं से प्राप्त किये और हजारों गरीबों एवं अपने याचक कवियों को दान में दिये। रावल और मोतीसरों ने इनकी दानशीलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जिसमें इनकी सात पीढ़ी तक के नाम व रीझ का वर्णन है—

'सबल, सिवो, परभो सकव, देवो, करन दिनेस।
कवियो नित रीझां करे, लुदरावत चिमनेस ॥'

इस प्रकार चिमन अनेक गुणों से युक्त थे। इनका जीवन बड़ा ही उज्ज्वल था। ये आजीवन अविवाहित थे अत. घर का बन्धन छोड़कर इच्छापूर्वक देशाटन करते थे। जहां इनका मन लगता, वहां रहते। उत्तम कविता करने के कारण बड़े-बड़े लोग इनका आदर-सत्कार करते थे। इन्होंने अपने जीवन के अन्तिम समय में साधु-वेश धारण कर लिया था। इनका निधन सन् १८८८ ई० में बाहर हुआ था।

चिमन डिंगल के परमोत्कृष्ट कवि थे। कविया गोत्र के चारणों में कविराजा करणीदान एवं महात्मा अनू को छोड़कर ऐसा कोई नहीं जो इनकी समता रखता हो। इतना होते हुए भी इनकी प्रसिद्धि इसलिए नहीं हुई कि ये अविवाहित थे। अतः सन्तान के बिना साहित्य जैसी वस्तु कौन संजोकर रखता? आज इनके ७ बड़े भारी ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं —'हरीजस मोखरथी,' 'सोढ़ायण,' 'जसवंत-पिंगल,' 'भाखा-प्रस्तार,' 'प्रागराव रूपक,' 'लिछमण-विलास' और 'श्रीरामदेचरित।' इनके अतिरिक्त फुटकर रचनायें भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। यह तो उस विपुल साहित्य का अवशिष्ट है अतः अभी पूरी छानबीन करने की आवश्यकता है। यह लक्ष्य करने की बात है कि इन्होंने परिपक्व होने पर ही वृद्धावस्था में अपने ग्रन्थों की सृष्टि की है, जो बहुत कम कवि कर पाये हैं।

७८. रामप्रताप—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत सेव.ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम नाहरजी था। इन्होंने भक्ति

भाव से प्रेरित होकर कई बार द्वारिका की यात्रा की थी। इन्होंने अधिकांश में ईश्वर-भक्ति विषयक फुटकर रचनायें लिखी हैं।

७६. **लक्ष्मीदान**–ये उज्वल सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम ऊजला के निवासी थे। इनके पिता का नाम नाथूराम था। इनका कविता और वार्ता करने का ढंग रोचक था। इन पर उदयपुर के महाराणा की विशेष कृपा थी। महाराणा ने इन्हें अपने यहां इनकी इच्छा के विरुद्ध नौकरी दी किन्तु ये उसे छोड़कर चले आये। इन्हें शराब पीते-पीते कविता उपजती थी। ये एक धनाढ्य व्यक्ति माने जाते थे। इनके चार पुत्र हुए जिनमें उदयराज सबसे छोटे थे।

लक्ष्मीदान ने महाराजा सरदारसिंह (बीकानेर) के समय साकडा गांव के राठौड़ों को लक्ष्य करके कविता लिखी है। ये लोग प्रायः डाका डालते रहते थे। डूंगजी-जवारजी के युद्ध का वर्णन कर इन्होंने राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है। इनकी लिखी हुई वीर एवं हास्य रस की कविता उपलब्ध होती है।

८०. **चंडीदान महियारिया**—ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और कोटा के निवासी थे। इन्होंने कई गीत लिखे हैं।

८१. **बीजोजी**—ये सुरताणिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जालोर परगने के ग्राम मेढावा के निवासी थे। इनके पिता का नाम साहेबदानजी था। जब महाराजा मानसिंह जालोर के किले में दुखी थे (१८०३ ई) तब इन्होंने उनका साहस बढ़ाया था। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

८२. **जुगतो**–ये वणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम कोटड़ा (जालोर) के निवासी थे। ये महाराजा मानसिंह के साथ जालोर के घेरे में उपस्थित थे। कहते हैं, कुल मिलाकर २७ कवि थे जिनमें दो राव एवं शेष सभी चारण थे। इन सबको लाखपसाव दिये गये थे।

जुगतो ने महाराजा मानसिंह की भरपूर सेवा की। इनका काम घेरे से बाहर जाकर दरबार के जेवर बेचकर खर्ची लाकर देने का था। जब कुछ नहीं रहा तब इन्होंने अपनी स्त्री तथा बड़े पुत्र जैतदानजी की स्त्री के सम्पूर्ण जेवर लाकर दरबार को दे दिये और उन्हें बेचकर सहायता की। यही नहीं, जब इससे भी काम न चला तब इन्होंने अपने द्वितीय पुत्र भैरूदान को जो बहुत सुन्दर थे, भाडरवा

गांव के महन्त के यहां सैकड़ों रुपयों में गिरवो रख दिया और खर्च को पूरा किया। इन्हें महाराजा ने पारलाऊ गांव प्रदान किया था। इनका एक चित्र भी श्री सीताराम लालस (जोधपुर) के संग्रहालय में विद्यमान है। महाराजा ने स्वयं एक छप्पय में घेरे के साथी इन समस्त कवियों के नाम पिरोये हैं—

'हाजर जुगतो हुतो पीथलो हरो पुणीजे।
भेर वनो भोपाल सिरे फिर ऊम सुणीजे।
दानो माहा दुबाह, इंद ने कुशलो आखां।
मेघ अने महराम सिरे सो वीसां शाखां।
पनो नगो नवलो प्रगट के हर सायब वडम कव।
महाराज अगर घेरा मही, सतरे जद रहिया सुकव॥'

इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

८३. पीथजी—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम मडोरा के निवासी थे। इन्हें महाराजा ने पीथोलाव गांव प्रदान किया था। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

८४. हरिगजी-ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मृगेश्वर गांव के निवासी थे। इन्हें खरुकड़ो गांव प्रदान किया गया था। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

८५. भैरूदानजी-ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम रेवाड़ा के निवासी थे। इन्हें वांणियावास गांव प्रदान किया गया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

८६. वनजी-ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम सूरपालिया के निवासी थे। इन्हें गोरेरी गांव प्रदान किया गया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

८७. भोपजी-ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम छीडिया के निवासी थे। इन्हें कालेड़ो गांव प्रदान किया गया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

८८. ऊमजी-ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मोरटहूका गांव के निवासी थे। इन्हें आनावस गांव प्रदान किया गया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

८९. दानजी–ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम वांगूडी के निवासी थे। इन्हें खेड़ा गांव प्रदान किया गया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

९०. कुसलजी–ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत चौपासनी गांव के निवासी थे। इन्हें कोटडा गांव प्रदान किया गया था जो जब्त हो गया। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

९१. मेघजी–ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बिडलिया ग्राम के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

९२. मयारामजी–ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत घड़ोई गांव के निवासी थे। इन्हें कटारड़ो गांव प्रदान किया गया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

९३. पनजी–ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत भांडियावास गांव के निवासी थे। इन्हें चिरडांणी खेड़ा गांव प्रदान किया गया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

९४. नगजी–ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के ग्राम खेण के निवासी थे। इनके पुरस्कृत गांव का पता नहीं लगता। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

९५. केहरजी–ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत गांव कांवलिया के निवासी थे। इन्हें ढाढरियो एवं जीवन खेड़ो नामक दो गांव प्रदान किये गए थे। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

९६. मोतीराम–ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और कृपाराम की ढांणी, सीकर के निवासी थे। इनके पिता-पितामह का नाम क्रमशः नगजी एवं कृपारामजी था, जो कवि एव विद्वान थे। अतः इनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। ये महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के पास आया-जाया करते थे। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

९७. गोपालदान सांदू–ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम भदोरा के निवासी थे। इनके फुटकर पद, सवैये एवं गीत कहे जाते हैं।

९८. राधावल्लभ–ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और किशनगढ़ राज्यान्तर्गत गोदियाणा ग्राम के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८०३ ई॰ के आस-पास आरम्भ होना है। इनके लिखे हुए 'भीष्मपर्व,' 'गीताभाषा' एवं 'शालिहोत्र' नामक ग्रंथ कहे जाते हैं।

९९. गंगादान बारहठ–ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और किशनगढ़ राज्यान्तर्गत गोदियाणा ग्राम के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८०३ ई॰ से आरम्भ होता है। इनकी स्फुट काव्य-रचना बताई जाती है।

१००. रामकरण–ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ के निवासी थे। डिंगल के प्रसिद्ध कवि कृपारामजी खिड़िया इनके समकालीन थे। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

१०१. श्यामदास–ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत देवरिया के ग्राम के निवासी थे। इन्हें महाराजा मानसिंह ने प्रसन्न होकर देवरिया गांव प्रदान किया था। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

१०२. परमानन्द–ये देथा शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम खारोड़ा के निवासी थे। ये महात्मा स्वरूपदास के चाचा थे। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

१०३. गीवोजो–ये भादा शाखा में उत्पन्न हुए थे और बूंदी के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

१०४. नन्दजो–ये मादू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

१०५. जवानजी बारहठ–ये बारहठ गोहडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और किशनगढ़ राज्यान्तर्गत गोदियाणा ग्राम के निवासी थे। इन्हें कविराजा का पद प्राप्त था। इनके लिखे हुए गीत कहे जाते हैं।

१०६. सागरदान–ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम आलावास के निवासी थे। इनका लिखा हुआ 'गुणविलास' नामक ग्रंथ बताया जाता है (१८१६ ई॰)।

१०७. चैनराम–ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत हणूंतिया गांव के निवासी थे। ये महाराजा बख्तावरसिंह के समय

में अलवर आए थे। महाराजा ने प्रसन्न होकर इन्हें गजुकी गाँव प्रदान किया था। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

१०८. भोखजी—ये दधवाड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम ढोकलिया के निवासी थे। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

१०९. जीवनसिंह—इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु ये करौली के निवासी थे। इन्होंने सन् १८१८ ई० के आसपास कई रचनायें लिखीं जो अप्राप्य हैं।

११०. समेलदान—ये रोहडिया बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे। और मारवाड़ राज्य में पोकरन के पास भाखरी गाँव के निवासी थे। ये रतलाम-नरेश बलवंतसिंहजी के कृपा-पात्र थे। इन्होंने अपने चाकर बस्तिया की सेवा पर प्रसन्न होकर कतिपय दोहे लिखे हैं जो अप्राप्य हैं।

१११. वंशीदास—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचभदरा परगने के गाँव भांडियावास के निवासी थे। इनके पुत्र का नाम भारमीदान था। इनकी सन् १८२१ ई० के आसपास 'श्री हुजूररामजी' और 'राठौड़ राजाओं की वंशावली' नामक पुस्तकें लिखी हुई कही जाती हैं। इनकी कवित्व-शक्ति बढ़ी-चढ़ी थी। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें तोष कवि की श्रेणी में गिना है।

११२. नरसिंहदास—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुर गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम रामदानजी था। इनकी कविता उपलब्ध नहीं होती।

११३. जसराम—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के घडोई ग्राम के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८२३ ई० से आरम्भ होता है। इनका 'राजनीति' नामक एक ग्रन्थ लिखा हुआ कहा जाता है।

११४. जवानजी—ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम सीसोदा के निवासी थे। महाराणा जवानसिंह इनके समकालीन थे। इनकी फुटकर काव्य-रचना कही जाती है।

११५. वदनजी—ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए थे और बूंदी के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८२५ ई० से आरम्भ होता है। इनके लिखे हुए 'होलकर पचीसी' एवं 'रसगुलजार' नामक ग्रंथ कहे जाते हैं।

११६. गंगाराम—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुर गांव के निवासी थे। कवि नरसिंहदास इनके भाई थे। इनकी कविता अप्राप्य है।

११७. नाथूराम सिढायच—ये सिढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८१२ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम ऊजला के निवासी थे। इनकी गणना मारवाड़ के प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों में की जाती थी। इन्होंने पोकरण ठिकाने की पंचायत में तीस वर्षों तक कुशलता से कार्य किया (सन् १८३६-'६६ ई०) इस ठिकाने की इन्होंने खूब सेवा की। इन्होंने जन-हित में भी कार्य किया है। अपने गांव ऊजला में चार तालाब बनवाये, कई कुए खुदवाये, एक बड़ा टाँका बनवाया तथा मंदिर का निर्माण कराया। इसलिए सरदारों में विशेष आदर-सम्मान प्राप्त था।

नाथूराम उदार प्रकृति के व्यक्ति थे। उल्लेखनीय है कि इन्होंने अपने मोतीसर को सर्वप्रथम एक हाथी प्रदान किया। ये महाराजा तखतसिंह एवं जसवन्तसिंह (जोधपुर) दोनों के कृपा-पात्र थे। इन्हें जसवंतसिंह ने जाटो भांडू (शेरगढ़) सांसण में दिया था किन्तु राजनैतिक कारण से एक वर्ष बाद वापस ले लिया। इनका निधन सन् १८६६ ई० में हुआ था। ये डिंगल के अच्छे कवि थे।

११८. सांवलदास—ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

११६. जसकरण—ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

१२०. तेजसी—ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम कवलिया के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

१२१. सगरामसिंह—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ के निवासी थे। इनके लिखे हुए स्फुट छंद बताये जाते हैं।

१२२. गेनजी—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और रूपावास गाँव (मारवाड़) के निवासी थे। इनके लिखे हुए स्फुट छंद बताये जाते हैं।

१२३. खेतसी—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मथानिया गाँव के निवासी थे। इनकी स्फुट काव्य रचना बताई जाती है।

१२४. त्रिलोक—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मोरहटहूका गाँव के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

१२५. खुमाण—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनका स्थान अज्ञात है। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

१२६. चतुरदान –ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यन्तर्गत सोजत परगने के बीजलियावास ग्राम के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८३३ ई० से आरम्भ होता है। इनका लिखा हुआ 'चतुर-रसाल' नामक ग्रंथ कहा जाता है।

१२७. गौरीदान—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुर गाँव के निवासी थे। कवि गंगाराम इनके भाई थे। इनकी कविता अप्राप्य है।

१२८. सूरतो—ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाड़मेर परगने के खारापार गाँव के निवासी थे। इनके लिखे हुए कतिपय गीत कहे जाते हैं।

१२९. चावण्डदान—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत सरसिया गाँव के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत कहे जाते हैं।

१३०. मंगलदास—इनकी शाखा का पता नहीं चलता किन्तु ये जयपुर राज्यान्तर्गत उदयपुर तहसील के जखल गाँव के पास ढाणी में रहते थे। इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अधिक पता नहीं लगता। ये सन् १८५३ ई० तक जीवित थे। इन्होंने 'गुरु-पद्धति,' 'तर्क खण्डन,' 'सुंदरोदय' आदि कई ग्रंथ बनाये हैं।

१३१. चिमनजी (मेवाड़) - ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ के निवासी थे। महाराणा स्वरूपसिंह इनके समकालीन थे। इनकी स्फुट काव्य-रचना बताई जाती है।

१३२. गोपालजी—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत सरसिया गांव के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत कहे जाते हैं।

१३३ व्रजनाथ—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर के निवासी थे। इन्हें महाराजा रामसिंह का राज्याश्रय प्राप्त था। इनका रचनाकाल सन् १८४३ ई० है। इनकी फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

१३४. मेघजी महडू—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत सरसिया गांव के निवासी थे। इन पर शाहपुरा के राजा लक्ष्मणसिंह की विशेष कृपा थी। इनके लिखे हुए फुटकर गीत बताये जाते हैं।

१३५ अनाड़दान—ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ढोकलिया गांव (मेवाड़) के निवासी थे। इनके भाई का नाम कमधी था। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

(ख) आलोचना खण्ड : पद्य साहित्यः—

१. प्रशंसात्मक काव्य (सर)—आलोच्य काल में प्रशंसात्मक काव्य को (सर) कहा जाने लगा। 'सर' आदर-सूचक अंग्रेजी शब्द है जिसका अर्थ है–श्रीमान। इसका प्रचलन पाश्चात्य शिक्षा के कारण हुआ। इसके रचयिताओं ने विशिष्ट राजाओं, जागीरदारों एवं महापुरुषों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। राजाओं एवं जागीरदारों के विषय में जहां एक ओर वीरता, दानशीलता, कृतज्ञता, तेजस्विता एवं प्रभुता के दृष्टान्त मिलते हैं वहां दूसरी ओर व्यक्तिगत स्वार्थ–भावना के वशीभूत होकर भी छंद-रचना की गई है। इसके अतिरिक्त कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने अपने गुरु-जनों के श्रीचरणों में नत मस्तक होकर काव्य का उपहार समर्पित किया है।

वीरता का गान करने वाले कवियों में बांकीदास, महादान, आवड़दान, मानजी, चंडीदान. रायसिंह, बुधसिंह एवं चिमनदान का प्रमुख स्थान है। बांकीदास कृत 'सुपह छत्तीसी', 'भुरजाल भूषण', 'जेहल जस जड़ाव', 'सिद्धराव छत्तीसी', 'मान जसो मंडन' एवं 'श्री दरबार रा कवित्त' नामक रचनायें प्रशंसात्मक हैं किन्तु इनमें कवि का ध्यान व्यष्टि की ओर कम तथा समष्टि की ओर अधिक है। इतना होते हुए भी कहीं–कहीं वह परोक्ष रूप से व्यक्तिगत प्रशंसा

करने लग जाता है। मारवाड़ के महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) की प्रशंसा में कवि ने कहा है—

'जितै जसो पह जीवियो, थिर रहिया सुरथांण।
आंगल ही अवरंग सूं, पड़ियो नह पाखांण॥'

इसी प्रकार राव राठौड़ अमरसिंह (नागोर) के लिए—

'हणियौ तै जम दाढ हथ, रोद सलाबत रेस।
साहजहांरो सोंकियो, अंबखास अमरेस॥'

महादान ने सुल्तानसिंह (नीमाज), मानसिंह (जोधपुर) एवं भीमसिंह (उदयपुर) की वीरता पर अनेक छंद लिखे हैं। लालसिंह (बड़ली) के लिए—

'वांका आखर बोल तो, चलतो वांकी चाल।
झड़िया वांकी षाग झटा लडियो बांको लाल॥
यो कहतो लालो अषर, दूलावत डाढाल।
जीवत गढ़ सूंपे जिका, गढ़पतियां ने गाल॥
मिले बिळाला भिजलसां, गढपत झालां गोड।
दूलावत अमलां नणा, रंग लाला राठौड॥'

आवड़दान ने जोगीदास (मारवाड़) की वीरता का वर्णन इस गीत में किया है—

'फौजा घेरियो गढ आंण फलोदी, बीरत षाग बजावे।
छत्तपत्तां रिणमाळां छोगो, जोजो भाग न जावे॥
रावळ साथ कटक रा जोरां, टूका दळ रजधांणी।
पाखरियां नाहर गढ पैठां, मार हयो मुक नाणी॥
झाटक कोट हुवा जूंझावो, रथ भाराथ रूचाळो।
पडियां सीस पछै पालट सी, अनड़ फलांदी वाळो॥'

मानजी ने कुंवारी कन्याओं के द्वारा भवानी की स्तुति के रूप में महाराजा मानसिंह की वीरता का प्रभाव इस गीत में व्यक्त किया है—

'पूजन कर गवर तणां पग पूजै, जग अरियां सह धिया जपै।
जां सिर वंर मन ऊछजियो, ओ गिरजा मत पिया अपै॥

सगती वचन सचा सुण लीजै, अरज मनीजै गवर इती।
खल ज्यां शीश विजाहर धीजै, वर मां दीजै वीस हथी ॥
झाट पगां जिण सूं कुण झालै, दुयण उघालै गवण दहै।
सुत गुमनेस जिकां उर सालै, किम हालै घर वास कहै ॥
चौकस आस किसी चुड़ला री, कहो री अवै सुहाग किसो।
देवी इसो भरतार न दै री, जिण सिर वैरी मान जिसो ॥'

महाराणा भीमसिंह (उदयपुर) की वीरता के लिए मानजी का कथन है—

'रसियो तल लाडो रहै, है आडो हिंदवांण।
जाडो थट जोधाहरो, जुध गाडो जमरांण ॥
जुध गाडो जमरांण, छवीलो छत्रपति।
जलहळ भूखण जोख, भाग भळहळ रती ॥
चन्दा वदन निहार दसू दिसियां चहै।
रसियो राणे राव, हिये वसियो रहै ॥'

चंडीदान ने महाराजा वलवन्तसिंह, गोठड़ा (बूंदी) की वीरता के लिए ये सोरठे लिखे हैं—

'पढियो तुरकां पीर, देव कळा जिम हिन्दवां।
वळवंत जेहा वीर, हुवा न कोई होवसी ॥
लोहां वळ हट लाग, पग २ दोयण पाड़िया।
अंगरेजां उर आग, वाळी भली वळूंत सी ॥'

रायसिंह ने सलूंवर (मेवाड़) ठिकाने के रावत केसरीसिंह की वीरता का वर्णन इस दोहे में किया है—

जे केहर नह जनमतो सुरियंद पदम सुजाव।
पकड़े हाथ परांणियां, हळ हाकत उमराव ॥'

बुधसिंह ने गीत 'नरसिंहगढ़ महाराजा हणवन्तसिंहजी रो' में अपने आश्रय-दाता की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

'नर नाहर सोभाग नृप, तवां अचळ वड तोल।
राजै जिण गादी रिधू हणवंत गुणां-हरोळ ॥'

इसी प्रकार—

'डंड अडंडा नित दियण, खंडण खळां खतंग।
मंडण कुळ हणवंतसी, सुभटां लियां सुचंग॥'

चिमनदान कृत 'जसवंत-पिंगल', 'प्रागराव रूपक', 'लिछमरण-विलास' एवं 'श्री रामदे-चरित' नामक काव्य-ग्रंथ प्रशंसात्मक हैं। यद्यपि पहला ग्रंथ छंद-शास्त्र का है तथापि इसमें जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह (द्वितीय) की प्रशंसा के पुट दिये गये हैं। महाराजा की वीरता के लिए कवि का कथन है—

'जसवंत बळवंत गुणवंत महाराज।
वर वीर मन धीर कंठीर सिरताज।
कुळ लाज भुज आज कवराज दुखकाप।
इळ सज्ज वडलज्ज कमधज्ज धिन आप॥'

भोपालदान, किसना, तेजराम, चिमनदान एवं लक्ष्मीदान ने दानशीलता का वर्णन किया है। सीसोदा गांव से पुरस्कृत किये जाने पर किसना ने महाराणा भीमसिंह (उदयपुर) की प्रशंसा में जो गीत लिखा, वह इस प्रकार है—

'कीजै कुण-मीढ न पूजै कोई, धरपत झूठी ठसक धरै।
तो जिम 'भीम' दिये तांबा पत्र, कर्वा अजाची भल करै॥
पटके अदत खजांना पेट, देतां बेटां पटा दिये।
सीसोदौ सांसण सीसोदा, थारा हाथां मौज थिये॥
मन महारांण धनौ मेवाड़ा, दाखै धाड़ा दसूं दसा।
राजा अन बांधे रजवाड़ा, तूं गढवाड़ा दिये तसा॥
अधपत तनै दिया रौ अंजस, लोभी अंजस लियारौ।
भांणै साच जणायौ 'भीमा', हाथां हेत हिया रौ॥'

भोपालदान के इस दोहे में महाराजा मानसिंह (मारवाड़) की दान-वीरता है—

'करी हमाली कौल, कासीदी, वावन करी।
तें मांना नभ तोल, व्रवी जिका घर वीदगो॥'

तेजराम ने महाराणा जवानसिंह (उदयपुर) की दानवीरता के लिए यह गीत लिखा है—

'चोड़ा उराटां नराटां जे भुज्जा तोड़ा थकै चाड़, नाळी जंत्र जोड़ दोनूं-तसाळां नवांन ।
सावदा भुमत्थां करथां गुनां जोड़ा हूंत रीजे, जोड़ा मांग रत्था घोड़ा समापै जवांन ॥
अथाळां मनंवी काच हुलवी को माच अंगा, लंबी धावा धार अंबी ऊमरा लेवाह ।
प्रलंबी नराजां रूंबी भांर लेता दीधा पानां, वाजा हेम साजा कीधा भलंबी बेवाह ॥'

विलाड़ा के उदार, गुणग्राही एवं साहित्य-प्रेमी अधिपति लक्ष्मणसिंह दीवान (मारवाड़) ने एक सुन्दर घोड़ी एवं स्वर्ण के कड़े मिलने पर चिमनदान ने चुटकी लेते हुए लिखा है—

'डर चोटी चोटी उड़ै, टीघोटी मृगडांण ।
गज मोटी तोड़ी गढ़ां, दी घोड़ी दीवांण ॥
माले में हाथी मडै, ज्यंगी पड़ै न जांण ।
कारीगर उपरा दिया, दिया कडा दीवांण ॥'

लक्ष्मीदान ने मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के लोड़ते ग्राम वासी भाटी गुलसिंह के लिए कहा है—

'तन मन हेतु ताकवीं, गायक मुजस गुनाह ।
तोने रंग सीसै तना, खटरित गेह खुलाह ॥'

वीर दाता के रूप में चिर प्रख्यात है। अतः कहीं-कहीं वीरता एवं दानशीलता की प्रशंसा एक साथ देखने को मिलती है, जैसे बाँकीदास, रायसिंह, तेजराम एवं चिमनदान के फुटकर छन्दों में। बाल्यकाल में रायपुर ठाकुर राठौड़ अर्जुनसिंह (मारवाड़) ने बांकीदास के लिए शिक्षा एवं निवास स्थान का समुचित प्रबन्ध किया था। इन उपकारों से प्रभावित होकर कविराजा ने यह दोहा कहा है—

'रवि रथ चक्र परोग रव, नाक अलंकृत नार ।
यूं हिज हक इळ पर अजो, दीपै सूर दतार ॥'

रायसिंह ने मूंडेटी (ईडर) के ठाकुर सूरजमल चौहान के लिए कहा है—

'अरक कहै सांभळ अरण, हाकल खड़ै व्रहास ।
समरे वैसी सूजड़ो, छोड़ै रथ सपतास ॥"

तेजराम का महाराणा जवानसिंह (उदयपुर) वीर है और दानी भी—
'राती चखां अनेळो अंगाळी चडां छाती रोप, साथं जियां सुमेळो बधावै हेकै साथ ।

जूना बैर जगातो बेरियाँ हूँ न करै जाती, ना करै बंदगी जाती भूरो प्रथीनाथ।
जाड़ै भाग भीमाणी प्रत्पो दळां-जाड़ी-जोड़, लखां बीजा अणी पांणी सौ भाग लैसोत।
प्रथीनाथ थारा बेहूं ऊधरां सभावां परां, दुजाला वार रा वांरू आजरा देसोत॥'

इसी प्रकार चिमनदान कृत 'जसवंत-पिंगल' नामक ग्रंथ में जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह (द्वितीय) के लिए कहा गया है—

'तखतेस नंद क्रोधार तेम, जुधवार भद्र वीरांण जेम।
जसवंत सींह प्रथमाद जीप, दुनियंद वंस दातार दीप॥'

कृतज्ञता के उदाहरण वांकीदास एवं रामनाथ नामक कवियों में देखने को मिलते हैं। जब बड़े होने पर वाँकीदास को यथेष्ट कीर्ति प्राप्त हुई तब एक दिन वे महाराजा मानसिंह के साथ हाथी पर चढ़े हुए कहीं जा रहे थे। इतने में अर्जुनसिंह मिल गये। उन्होंने कविराजा से पूछा कि आपको पुराने प्रसंग की याद है या नहीं। इस पर कवि ने कहा—

'माळी ग्रीखम मांय, पोख सुजळ द्रुम पाळियो।
जिण-रो जस किम जाय, अत घण वूठां ही अजा॥'

बंदीगृह से मुक्ति दिलाकर पुनः अपना गाँव दिलाने वाली शाहपुराधीश की बहिन एवं अलवरेन्द्र की माता श्री रूपकुँवरजी के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए रामनाथ का यह सोरठा-दोहा उल्लेखनीय है—

'तैं आयां नभ तोल, कत्री जंजीरां काढियो।
मोनै लीधो मोल, शाहपुरै शीशोदियै॥'
'रूपकँवरि निज रीझ रो, अचरज कासूं आण।
शाहपुरौ पीहर सरस, नान्हाणा वीकाण॥'

भोमा ने वीकानेर-नरेश रतनसिंह की तेजस्विता का वर्णन इन शब्दों में किया है—

'सघर रतन इळ सोहियो, कमंधा पत वीकाण।
तै पाट प्रतपै रतन सा, भूपतियां वंस भाण॥
ऐवासां नरपत अरस, रहत सलूणै रंग।
त्रेता सतजुग ने कहै, विघ किण आ चौरंग॥'

राजा-महाराजाओं की प्रभुता का वर्णन करने वाले कवियों में रामदान, नाहर एवं चिमनदान के नाम उल्लेखनीय हैं। रामदान ने गणगौर के शुभ दिवस पर महाराणा भीमसिंह (उदयपुर) के राजसी ठाट-बाट का वर्णन इन शब्दों में किया है—

'असंक सेन आरम्भ वोल नकीव वळीवळ।
गहर थाट गैमरां चपळ हैमरां चळो वळ॥
भाळ तेज भळहळै ढळै विहुँवै पख चम्मर।
दिन दूलह दीवाण ए चढ़ियौ छक ऊपर॥

तिण वार आप दरियाव तट विडग छंडि जगपति वियौ।
दीवाण भीम गणगौर दिन एम रांण आरम्भियौ॥'

बुधसिंह कृत जसवन्तसिंह (जोधपुर) के विवाहोत्सव के उपलक्ष में लिखा यह गीत देखिये—

'इसो करतां विवाह आव घरांणे चढ़ाय ऊभो,
दांन लखां देर ऊभो कविदां दीवांण।
भांमी-करां अगंजीत कीरती कहाड़ ऊभो,
माठों मांण गाळ ऊभो विजाई खूंमाण।
आंटीला देसोत छोलां इन्द्र वाळी देर ऊभो,
लाखां मुखां प्रभा लेर ऊभो गुणां लोड।
आकारीठ सोभाग सुजाव माठी वेर ऊभो,
वाढ खेर ऊभो पातां दळद्रो वितोड़।
उजाळा वंसरी रीझां ताकवां समाप ऊभो,
गाल ऊभो अदत्तारों सान गाढ़ेराव।
अनमी ऊमटो-नाथ नीर पखां चाढ ऊभो,
महावीर लाखों दांन दे ऊभो अमाव।
आचार जीतरा खत्री ढोलड़ा वजाय ऊभो,
करै ऊभो अखी वसू ढोलड़ा कंठीर।
अचळेस-हरा रोर रूप मनो तोड़ ऊभो,
हणुतेस झोका-झोका झोका हेळांरा हमीर॥'

नाहर ने दूणी राव लक्ष्मणसिंह (जयपुर) के घोड़े के विषय में निम्न गीत लिखा है—

'महाबाह कछवाह तप अधिक आपै मरद, अश्व अणथाह वपु बळ अरोड़ो ।
सम बड़ाँ भाल रो तिलक जीवे सरो, घणै छक बालरो तिलक घोड़ो ।।
राव क्रामत अघट प्रकट लीधां रती, सोह उळट पळट सुघर साजाँ ।
पुहिमि सबळाँ मुकट पाट दूणीं पती, बणैं असि मुकट घट सिरे बाजा ।।
सपूताचार लखि लहै आणंद सयण, करै बहु छन्द मग गहै कुरगाँ ।
हजारां भडां तुर रो फबै चंदहर, तुरंग तुररा फबै भुयण तुरगां ।।
ढाल ढूंढाड़ पिसणाँ घड़ा ढाहणो, साहणो झंप गज धजाँ साजी ।
राम सिय कृपा जुग कोड़ कायम रहो, तरण कुळ लछो दल रूप ताजी ।।

चिमनदान कृत 'प्राग राव रूपक' में भुज नरेश राम देशलजी के पुत्र प्रागराव का यह वर्णन आकर्षक है—

'गाढ़ा गढ़ काठ बुरज गज गीरिय, कांठळ सोव्रन महल कळा ।
झगमग नग हीर झरोखाँ झंव्रत, पखाळं थंमा प्रयळा ।।
अधकर असमांन कंगोरां ओपम, जांण शृंग गिरमेर जिसो ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसो ।।
जाजम पचरंग रंगबहु जाझिय, सेत चांनणी जेथ सदा ।
राजत जिण सीस दलीचा रेसम, मिसरू तकिया है उमदा ।।
सुरियंद पौसाख सुहै इम सोभा, जांणक आफू खेत जितो ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर आज प्राग महाराव इसो ।।
केसरं छिड़काव अंतर हुय कादव, जांणक भादव मास जळं ।
जातां जुग क्रीत कबू नह जावै, पावै मत पातां प्रघळ प्रघळ ।।
हूकळ रंग राग रंभ नाटक हुय, जांण तखत है इन्द्र जिसो ।
रूपग चित भाव चाव राजेसुर, आज प्राग महाराव इसो ।।'

चिमनदान कृत 'लिछमण-विलास' में राजा लक्ष्मणसिंह दीवान (मारवाड़) का यह प्रभाव अतिरंजनापूर्ण होते हुए भी आकर्षित है—

'पूजत जोधांण उदैपुर पूजत, पूजत धर जेसाँण परा ।
पूजत जयनगर अजैपुर पूजत, नरपत पूजत सोय नरा ।।

पूजत बीकांण जांण बावलपुर, पांण कळा सगती प्रगटै।
लिछमण दीवांण रांण बीलाड़ै, रंग सुजस दुनियांण रटै ।।

सायवदान, इन्दा एवं रिवदान का सर-काव्य दूसरे ढंग का है। इन कवियों ने कविता के माध्यम से अपने लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न किया है। यथा गंभीरसिंह (ईडर) से कोई पुरस्कार न मिलने पर सायवदान की यह उक्ति देखिये—

'मैं जग दातार जांण कवत तीन सै बणाया।
सुण रूपग हेत सूं फेर महाराज फरमाया।।
मैं तूठा तो शीश झूठ इण में मत जाणै।
माजां झड़मांडसां कड़ा मोती केकांणै।।
आपसा एक सासण अवल, दूनी सरब कहसी दियो।
नर अवर कूप जांचूं नहीं, मूप मोहा देवि नेटियो।।'

और भी—

'दिल धरियो विसवास करि सेवा त्रण वरसां।
पारस ने परहरे अवर पाखांण न परसां।।
माळी घड़ा हजार सदा सींचे जिम जाणै।
रुत आया फळ होय सुवा अगलो ऊधाणै।।
ज्यू जाण करि सेवा अठे, मन उपत अजहू न मरी।
तुम दोष नहीं जग देस तणा, नहचै बात नसीब री।'

अपने पूर्वजों के हाथ से वासनी गांव निकल जाने पर इन्दा ने महाराजा मानसिंह को जो कवितावद्ध प्रार्थना-पत्र दिया, उसका नमूना इस प्रकार है—

'वतन आद ईहगां वडी मरजाद वतावे।
लाख एक सांवणू एक सौ रुपिया आवे।।
खून अने खालसै किणी कारण कर दीवी।
समय आप मुत्सद्दियां दाय आयां लिख दीवी।।
येट री हुती सांसण थकां, अवर के पटे उदासणी।
महाराज मान दीजै मने, बिजमल वीजा वासणी।।'

अपने भाइयों के द्वारा सताये जाने पर रिवदान गीत के रूप में एक प्रार्थना-पत्र लेकर मानसिंह की शरण में पहुँचे और उनसे न्याय की याचना की—

'अस अग्रवळ भवस कळपतर आयरा, जीवन गयो समेत जड़ ।
उडिया अनड़ पंख ज्यूं ईहग, विन कंज सेवन किया वड़ ॥
गढ़पत हूं संपात तणीगत, पावां आयो जगत पत ।
हर माहेस तणा कव हंसा, मानसरोवर ढेल मत ॥
पारस राकां गयो पला सूं, केहर हर जस वास कर ।
जगपत अमां न टावै तूं जद, वर पर दूजी किसी घर ॥
चीलां गुण न तजे द्रुम चंदण, माछां गुण ना तजे महण ।
मोटा धणी अवे तो मांना, पर पाळे वड़ा पण ॥
आवां काट गयो पत पीरां, आंपा मन लो ईसवर ।
तू ले ठीक न लेही तारग, पेड़ेचा म्हारी पवर ॥'

ब्रह्मानन्द ने अपने गुरु के प्रति आभार प्रदर्शित किया है। स्वामी सहजानन्द से प्रथम वार भेंट होने पर ब्रह्मानन्द का यह आंतरिक आनन्द, उत्साह एवं उमंग द्रष्टव्य है—

'आज नी घड़ी रे, धन्य आज नी घड़ी, मैं निरख्या सहजानन्द, धन्य आज नी घड़ी ॥टेक॥
काम क्रोध ने लोभ विषे, रस न सके नड़ी, भाव जीती मूर्तीपाटा, हृदय मां खड़ी रे ।
जीवन बुद्धि जाणी न सके मोटी अड़ी सदगुरु नी दृष्टि जोतां वस्तु जड़े रे ।
चोर्यासी चहु खाण मां हुंतो, थाल्यो आपड़ी अन्तर हरि सूं एक तालारे, दुगधा दूर पड़ी रे ।
ज्ञान कुंची गुरु गम थी, गयां ताळां उघड़ी, लाडू सहजानंद-नोहाळतां हरी आखंडी रे ॥'

२. निन्दात्मक काव्य (विसहर)—'सर' विहीन कविता को 'वीसर' कहते हैं। आजकल इसके लिए 'विषहर' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। इस काव्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्गगत, जिसके अन्तर्गत समाज को सम्बोधित करते हुए उसकी बुराइयों का भण्डा-फोड़ किया गया है और दूसरा व्यक्तिगत, जिसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके उसकी धज्जियाँ उड़ाई गई हैं। इससे वर्ग एवं व्यक्ति दोनों को सुधरने का अवसर मिला है किन्तु जहां व्यक्ति-विशेष की निन्दा में स्वार्थभावना आ गई है वहां कविता अपना मूल्य खो बैठी है।

बांकीदास वर्गगत निन्दात्मक काव्य के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी लिखी हुई लगभग एक दर्जन रचनाएं इसी कोटि की हैं जिनमें 'वैसक वार्ता', 'मावडिया

मिजाज', 'कृपण दर्पण,' 'चुगल मुख चपेटिका' एवं 'कृपण-पचीसी' मुख्य हैं। इनमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों को दूर करने की चेष्टा की गई है। ये रचनाएं कवि के ज्ञान एवं अनुभव की द्योतक हैं। उपदेश प्रधान होते हुए भी इनमें ध्वंसात्मक के स्थान पर सृजनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कवि ने दुर्जनों, कायरों, पूँजियों, कुकवियों, चुगलखोरों आदि के स्वभाव-लक्षण स्पष्ट करते हुए उनकी कड़ी भर्त्सना की है किन्तु भावावेश में कहीं-कहीं वह इतना आगे बढ़ गया है कि साहित्यिक शिष्टाचार का उसे ध्यान नहीं रहता। ऐसे स्थल न्यून होने से उसकी रचना में ऊँची रुचि और ऊँचे आदर्श पाठकों का ध्यान बरवस खींच लेते हैं। 'मावड़िया मिजाज' में स्त्रैण एवं जनानखाने में घुसे रहने वालों के लिए कहा गया है—

'मावड़िया अंग मोलियां, नाजुक अंग निराट।
गुपत रहे ऊमर गमै, खाय न निजबल खाट।।
नैणा रा सोगन करै, भै माने सुण भूत।
रामत ढूलांरी रमै, रांडोली रा पूत।।
प्रगटे वांम प्रवीण रो, नर निदाढियो नाम।
नर मावड़िया नाम त्यूँ, बिना पयोधर वाम।।
कर मुख दे लचकाय कर, झमक चलैसुर झीण।
मावड़ियो महिला तणी, मारे रोज मलीण।।'

इसी प्रकार 'कृपण दर्पण' में कृपण को आड़े हाथ लिया गया है—

'कृपण संतोष करै नहीं, लालच आड़े अंक।
सुपण बभीषण सूं मिलै, लिये अजारे लंक।।
कृपण सन्तोष करै नहीं, सौमण जाणै सेर।
कर टांकी ले काट हीं, सुपना मांहि सुमेर।।
कृपण हुवै मर कुंडली, संपत बांटे नांहि।
कहियो चोड़ै कुंडली, मरता भारथ मांहि।।
करतब नह राजी कृपण, राजी रूपैयांह।
कडबो दास कुंटबियां, प्रामणड़ाँ पइयाँह।।'

वांकीदास के सदृश लच्छीराम, कृपाराम एवं किसना भी वर्गगत निन्दा के पक्षपाती है। लच्छीराम ने नाथ-पंथियों को आड़े हाथ लिया है। नाथों

के यह कहने पर कि हम तो जीविका प्रदान करते हैं अतः बुराई करना बंद कर दो, कवि ने यह दोहा सुनाया था—

'जाचे लच्छो जोधपुर, जयपुर जाच न जाय।
चारण और न जंचही, सिंघ घास न खाय।।'

जो लोग शरीर में थोड़ा सा भी दर्द होने पर अपनी दुर्बलता जताकर तरो-ताज़ा पकवान खाने की इच्छा करते हैं, उनके विषय में कृपाराम का कहना है—

'घोंचो लागां घाव, घी गेहूं भावे घणा।
अहड़ा तो अमराव, रोट्यां मूंघा राजिया।।'

किसना ने इन लोगों से दूर रहने की सलाह दी है—

'चाकर चोर कुचीत कुचळ अस राव क्रमंतो।
व्रछ पान फळ बिन्न दान विरणन्न पत अदत्तो।।
पूत कपूत पिटाक ठोठ कविराज ठगा रो।
खोटो दाम कुमंत्र नाद विण अमठ नगारो।।
क्रतघणी सचिव खोड़ो दरक सत्र नेह खग संधिए।
कदेई भूल कसना सुकव ऐता वार न बंधिए।।'

व्यक्तिगत निन्दा करने वाले कवियों में मायाराम, सायबदान, खोड़ीदान एवं रामनाथ के नाम लिये जा सकते हैं। मायाराम ने भाद्रार्जुन के ठाकुर सोमसिंह ऊदावत के विषय में लिखा है—

'शूं माँडू रो भोमियो, हूँ कटार गढनाथ।
थारे म्हारे सो भड़ा, वण जासी भाराथ।।'

जब महाराजा मानसिंह (जोधपुर) ने षडयंत्र रचकर मीरखां नवाब द्वारा पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह को धोखे से मरवा डाला तब सायबदान ने निम्न गीत द्वारा महाराजा की भर्त्सना की थी। इसके फलस्वरूप कवि को निर्वासित कर दिया गया था—

'वजे नौबतां त्रधाई चढि आवतो सतारा वाळो, धुवे तोपाँ कोप गोळाँ लागतो धँ धींग।
जुजरवाँ जम्बूरा फौजाँ हवाई हवद्दाँ जट्ठै, सवाई नूं साजणाँ तो उठै मानसिंह।।
दवायो धरा रे वेध हरोली जिकाँ री दादो, जेनाँ गाढो गाहेड़ को सभुंडा जिहांन।

आडा बोलो भेजवो तो सतारा वा दलां आडो, मारवो न हूतो जाड़ो गुमांन रा मांन ॥
आपरे घरांणे नेम हारवो न कोई आगे तेण दीह धारवो तो हुतो टूक-टूक ।
सवळेस वाळा सु नूं वकारवो तो दलां सामी, सवळेस वाळा में न धारबो तो चूक ॥
तमासो देखालवो तो आपवा न हूतो तंवू, खान नूं निकालबा तो भले चौड़े खाग ।
हरा देवी नूं यू मारवो राण हुंता, बोलवो न हूतो राना पींजरा में बाघ ॥
दाषियो मेवाड़े राणे सेना नूं बधारो देत ढूढाड रे राजा की न कीनी बात धून ।
जोधां छान धकई किता न फिरा राज जीती, खंभ मारवाड़ रो मरायो किसे खून ॥
लेखियो न साम ध्रमो दगा सू चलायो लोह, उस रे ही रेखियो न चौड़े दगां आन ।
सवाई रो हत मारो खांवदे खीचियां सारो, प्रथा सारी पेषियो ज तबू रो प्रमान ॥'

इसी प्रकार खोड़ीदान ने महाराव उदयभाण (सिरोही) को जोधपुर के महाराजा मानसिंह द्वारा धोखे से पकड़ लेने के विषय में उनके सामने कहा था—

'कीनो आपरो जांणीयो कना हरामखोर रे कीहे, जाणीयो जो कियो तो न कीनी वात जोग ।
रायां राव उदेभांण झलांणीयो मान राजा, असी रीत बेसांणीयो करीं ते अजोग ॥
आगे ही सीरोही राव न भागो दलेस आगे, जो आप बोलात आगो पीठ देई न जात ।
दगो करे सोढ हरो रोकीयो अजीत दुजा, वदे सगो आपरो अजोग कीधी वात ॥
रमां घडा ऊथालणो कहीजे आदुओ राजा, केणार ने पालणो थो न देणो थो कान ।
वोलाएर झालणो थो बेरीसाल तणो बेटो, गीनाएत न रोकणो थो सवाइ गुमान ॥
खून गनो जाणवो नां सीरोही आपरे खोले, रावरे नवेई कोट खोले असी रीत ।
दली नाथ जोधांण सु कीध दगो घेर दोले, उमेद राव रे ओले राखीयो अजीत ॥'

रामनाथ ने अलवर के धरने से भयभीत होकर भागने वाले पोलपात जैतसिंह जागावत (अलवर) पर ये दोहे लिखे हैं—

'जागावत जेता जिसा, असती भगा अनेक ।
कळियो गाडो काढबा, आयो थळियो एक ॥
मरस्यां तो मोटे मतै सह जग कहै सपूत ।
जोस्यां तो देस्यां जरू, जेता रै सिर जूत ॥'

बुधजी एवं रिवदान के निन्दात्मक काव्य में राग-द्वेष पाया जाता है अतः उसमें असाहित्यिकता की मात्रा अधिक है। बुधजी ने नाथ-पंथियों को आगे बढ़ते देखकर गीत रचे हैं। किसी राजा अथवा ठाकुर के यहाँ मान-सम्मान तथा पुरस्कार न मिलने का अर्थ यह नहीं है कि चारण कवि उसकी निन्दा करना

आरम्भ कर दे। रिवदान ने जयपुर के महाराजा से कुछ न मिलने पर यह दोहा कहा है–

> 'घावंद कर कर घातरी, पूगा जयपुर पास।
> न तो धन दियो न ना दियो, वृथा दियो विस्वास।'

३. वीर काव्य—जैसे-जैसे युद्ध कम होते गये, वैसे-वैसे वीर काव्य-धारा शिथिल पड़ती गई। यही कारण है कि आलोच्य काल में वीर काव्य की सृष्टि अधिक नहीं हो पाई। ऐसे समय में चारण कवियों का ध्येय बीते गौरव का स्मरण कराकर क्षत्रिय जाति में शूरवीरत्व एवं साहस का संचार करना ही रहा। इस दृष्टि से कृपाराम, वांकीदास, चंडीदान, सालूदान, गिरवरदान, तेजराम, स्वरूपदास, रामलाल, रामलाल आढ़ा एवं चिमनदान की रचनायें उल्लेखनीय हैं। वांकीदास, स्वरूपदास एवं चिमनदान ग्रंथकार हैं, शेष सभी कवि फुटकर।

वांकीदास वीर-काव्य के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने 'भुरजाल भूषण', 'सूर-छतीसी' एवं 'सीह-छतीसी' में वीर रस का अच्छा परिपाक तैयार किया है। 'भुरजाल भूषण' स्फुट रचना होते हुए भी प्रबंध का सा आभास देती है। इसमें चितौड़गढ़ का वर्णन अत्यन्त सजीव, मार्मिक एवं प्रेरणादायक है। यथा–

> 'अई चीतगढ़ ओर सूं, तूं गांजियो न जाय।
> भीतर ज्यां मन भावणो, बाहर जिकां बलाय।।
> अई चीतगढ़ ऊधरा, सकला गढ़ां सिरताज।
> तूं जूनो परणे नवी, असुरां री अफवाज।।'

जैसे यह गढ़ वाँका है वैसे ही इसके वीर रण-वांकुरे हैं। राणा उदयसिंह एवं अकवर का युद्ध होने पर जयमल और पत्ता ने सिर पर सेहरा बाँधकर जीते जी चित्तौड़ को न सौंपने की प्रतिज्ञा की। 'उत्साह' की यह व्यंजना कितनी अनूठी है ?—

> 'के दरवाजा कांगरां, ऊभा भड़ अरडींग।
> भला चीत भुरजाळ रा, आभ लगावा सींग।।
> पण लीधौ जैमल पते, मरसां वांधे मोड़।
> सिर साजे सूंपां नहीं, चकता नूं चीतोड़।।
> पतो मालगढ़ पुरुष रा, वणिया भुज वरियाम।

दांतूसळ गढ़ दुरदरा, नेक उबारण नाम ।।
असकंदर जो आवही, सुलेमान दळ साज ।
तोपी नह सूंपां तुनैं, अकबर काहू आज ।।
खत्रियां रा खट तीस कुळ, त्रदस क्रौड़ तेतीस ।
जिके खड़ा तौ जावते, अकबर किसूं करीस ।।'

युद्ध का वातावरण उपस्थित करने में कवि सफल है। यथा—

'अमलां खोबा वाजियां, मचै भड़ां मनुवार ।
जांगड़िया दूहा दियै, सिधू राग मझार ।।
उठै सोर झाळां अनळ, आभ धुआँ अँधियार ।
ओळां जिम गोळा पडै, मेछां कटक मंझार ।।
भुरजमाळ फण मंडळी, सोर झाळ विष झाळ ।
जाण सेस बैठो जमी मिस चीतोड़ कराळ ।।
के गोळां के गोळियां, के तरवारां धार ।
मरै गड़ै कबरां महीं, बीबा मंसबदार ।।
ढूके नह गढ़ ढूकड़ा, अकबर रा उमराव ।
करै वीर गढ़ रा कवच, दोय ढूक इक घाव ।।
सूनी थाहर सिंघ री, जाय सके नहिं कोय ।
सिंह खड़ां थह सिंह री, क्यों न भंयकर होय ।।'

प्रतिपक्षी की भावनाओं का चित्रण भी है—

'बारा सुखनां खीजियो, अकबर साह जलाल ।
उच्चरियो हूं जीवतां, सिंहां पाडूं खाल ।।
पग मांडो जैमल पता, गढ़ मोसूं नहि दूरं ।
लीधा इसा हजारगढ़, मो दादे तहमूर ।।'

संवादों की सुसम्बद्ध योजना ने इस रचना में नाटकीय चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। यथा—

'आसिफखाँ अकबर कहै, भीतां भुरजां जोय ।
बांको गढ़ भड़ बांकडा, हलो कियां की होय ।।
भीतरला फूटां भड़ां, कै खूटां सामान ।
इण गढ़ में होसी अमल, खंम तूं आसिफखान ।।'

'सूर-छतीसी' एवं 'सीह-छतीसी' में स्वतंत्र रूप से एक आदर्श युद्धवीर का चित्रण किया गया है। कवि ने इन दोहों में शूरवीर के लक्षण बताये हैं—

'सूर न पूछै टीपणौ, सुकन न देखै सूर।
मरणाँ नूँ मंगळ गिणै, समर चढ़ै मुख नूर।।
जाया रजपूतांणियाँ, बीरत दीधो वेह।
प्रांण दियै पांणी पुणग, जावा न दिये जेह।।
भड़ां जिकां हूँ भामणै, केहा करूँ बखांण।
पड़ियै सिर धड़ नह पड़ै, कर वाहै केवांण।।
सूर भरोसै आपरै, आप भरोसै सीह।
भिड़ दहुँ ऐ भाजै नहीं, नहीं मरण रौ बीह।।
छूटा जामण मरण सूँ, भवसागर तिरियाह।
मुँवा जूँझ जे रण मही, वे नर ऊबरियाह।।'

कहीं-कहीं प्रतीक-पद्धति के द्वारा कवि ने उत्कृष्ट कल्पना की है। यथा—

'सूतौ थाहर नींद सुख, सादूळौ बळवंत।
बन कांठै मारग वहै पग-पग हौळ पडंत।।
केहर कुंभ विदारियौ, गज मोती खिरियाह।
जांणे काळा जळद सूं, ओळा ओसरियाह।।'

वीरांगना के मुख से प्रस्फुटित होने वाली गर्वोक्तियां तो और भी चित्ताकर्षक हैं। वह अपनी सहेली के सन्मुख सतर्कता से साहिबों का गुण खोलकर रख देती है—

'सखी अमीणौ साहिबो, वाँकम सूं भरियौह।
रण विकसै रितुराज मै, ज्यूँ तरवर हरियौह।।
सखी अमीणो साहिबो निरभै काळो नाग।
सिर राखै मिण सांमध्रम, रीझै सिंधू राग।।'
सखी अमीणो साहिबो, सूर धीर समरत्थ।
जुध में वामण डंड जिम, हेली वाधै हत्थ।।
सखी अमीणा कंथरी, पूरी एह प्रतीत।
कै जासी सुर ध्रंगड़ै, कै आसी रण जीत।।'

मौलिक होते हुए भी कहीं-कहीं कवि की उक्तियों पर ईसरदास का प्रभाव है। वांकीदास को ईसरदास की कुंडळिया कंठस्थ थीं अतः ऐसा होना स्वाभाविक ही था। यथा—

'अंबर री अग्राज सुं, केहर खीज करंत।
हाक धरा ऊपर हुई, केम सहै बळवंत॥
केहर कुंभ विदारियौ, तोड़ दुहत्था दंत।
रुहिर कळाई रत्तड़ी, मदतर तै महकंत॥
घर आंगण मांहे घणा, त्रासै पडियां ताव।
जुध आंगण सोहै जिकै, बालम ! वास बसाव॥'

महात्मा स्वरूपदास कृत 'पाण्डव यशेन्दु-चन्द्रिका' एक प्रवन्ध काव्य है जिसके षोड़प मयूखों में महाभारत का सार है। यद्यपि मार्मिक स्थलों को पहचानने में वावाजी की नजर कुछ मोटी है तथापि इसमें भाव-सौन्दर्य स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। ओज एवं प्रसाद गुण तो कूट-कूट कर भरे हुए हैं। कवि की दृष्टि में क्लिष्टता काव्य का गुण है अतः यह काव्य सर्व साधारण की समझ से बाहर है। सुन्दर भाव, मनोहर कल्पना एवं गति की त्वरा पाठकों को मुग्ध कर देती है। अर्जुन का युद्ध वर्णन एवं शत्रु संहारक रूप एक प्रचण्ड युद्धवीर के अत्यन्त अनुरूप वन पड़ा है। भीम की गदा भी कम आकर्षक नहीं। इसी प्रकार द्रोणाचार्य की युद्धवीरता अपना पृथक महत्त्व रखती है। निम्न छंद में कवि ने जो रूपक वांधा है, उससे उसकी उत्कट कवित्त्व-शक्ति का परिचय मिलता है। इसमें युद्ध-क्षेत्र को एक यज्ञ-क्षेत्र बनाया गया है और द्रौपदी को अरिणी। युधिष्ठिर यजमान हैं और अर्जुन होम करने वाला है जिनकी प्रत्यंचा की टंकार ही स्वाहा-स्वाहा का शब्द है। भीम के क्रोध घर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई है तथा वीर रस उस यज्ञ का घृत है। ऐसे महायज्ञ की पूर्णाहुति भीमसेन अपने गदाघात द्वारा दुर्योधन को मारकर करते हैं जो बलि पशु है। इस यज्ञ में कौरव वृन्द समिधि है—

'अरुनि द्रुपद जाई, कोप भीम को सुआगि, जजत युधिष्ठिर समाज स्वांग लीने है।
होता है किरीटी श्रवा धनुष ज्या शब्द स्वाहा, साकुल्य है वीर आज वीर रस भीने है।
सुयोधन जग्य पशु करुखेत अग्नि कुण्ड, पूर्णाहुति भीम गदा ने अंग छीने है॥'

चिमनदान कृत 'सोढायण' नामक ग्रंथ वीर रस से ओतप्रोत है। इसमें सोढ़ा जाति के क्षत्रियों एवं सूमरे मुसलमानों के बीच जो घमासान युद्ध हुआ था,

उसका ओजपूर्ण वर्णन है। इसे पढ़कर करणीदान कविया के युद्ध-वर्णन का स्मरण हो आता है। एक स्थान पर युद्ध-स्थल का यह चित्र बड़ा सुन्दर बन पड़ा है—

'सबल फौज सालळै, विडंग हूकळै वळोवळ।
प्रघळ मोरचा पूर, सोर धूंवा रव सालळ॥
होय कळह हूंकार, वडा जोधार विलग्गा।
उरड़ तोप ऊनाळ, लडण साबता जु लग्गा॥
सूमरां सोढ़ आसुर सुरां धुबै सेना लेयण धरा।
वळोवळ राग सिंघू वजै बेहुंवै जोध बरोबरा॥'

और भी—

'सजै फौज सोढ़ा अरां थाट सांमा, इतै सूमरा जोध जंगी अमांमा।
बिहूं सेन जोरां बिहूं नाळ वाजै, लसै नांज फौजां बिहूं व्रह्द लाजै॥
दळां सूमरै अंम्र आयंस दीधो, कसे भार लज्जा अहंकार कीधो।
इते रांण चाचग्ग सेना अकारी, भटां गड्ढ़ भेळो करो जंग भारी॥
बिहूं सेन हल्ला दुनी हाक-बाकं, धसै सूर सर्रा वजै डाक धाकं।
दगै तोप किल्लै लगै आग दूठै, वहै धार खग्गां सरां मेघ वूठै॥
लगै झाळ आभै कड़क्कै जजाळां, ढहै सूर सूरां कटै टोप ढालां।
धमक्कै बरच्छी छछोहा दुधारां, बहै जम्मदड्ढां जरद्दां बघारा॥
पिये रत्त चंडी झलै पत्र पांणां, वरै सूर रभा ठहक्कै विवांणां।
मिळै वीर टोळा खिलै रास मंडै हुवै हाक हल्ला मुसल्ला विहंडै॥'

कृपाराम ने अपने स्फुट गीत में राजा उम्मेदसिंह सिसोदिया (शाहपुरा) की युद्ध-वीरता का उल्लेख किया है जो महाराजा अभयसिंह (जोधपुर) के विरुद्ध महाराजा सवाई जयसिंह (जयपुर) की ओर से लड़े थे। यथा—

'लियां भूप ऊमेद गज गाह लड़ लोहड़ां, लागियाँ डाण गज गाह लटकै।
वेख गजराज गत राणियां वखतसी, खांत तण हिये गज राज खटकै॥
तड़ कमंध गाँजिया लिया भारथ तणै, भांजिआ कटक वनराव भूखै।
सम गयन्द नारियाँ चाल पेखे सुपह, दुआ रड़माल उर गयन्द दूखै॥
पामिया मोड़ सामंत कायल पुरे, मग वणै दंत वग पंय माळा।
कामिणी गवण मैमंत उमंगां करै, कंय चित चुभै मैमंत काळा॥

गजां गत वेख गजराज चूड़ा गरक, सोभ गज मोतियां भार सारा।
जीवड़ै आद गिरि गजां जाणिया, बखतसी राणियाँ न दे वारा।।'

वीर काव्य रचना में चंडीदान सिद्धहस्त हैं। महाराजा बलवन्तसिंह, गोठड़ा (बूँदी) पर लिखे हुए उनके कई गीत मिलते हैं जिनमें अंग्रेजों के विरुद्ध महाराजा की युद्ध-वीरता का वर्णन है। यह युद्ध सन् १८२४ ई० में हुआ था जिसमें महाराजा वीरगति को प्राप्त हुए। कवि ने उनके युद्धानुराग, आतंक एवं शस्त्राघात का वड़ा ही ओजस्वी वर्णन किया है। युद्धारम्भ के पूर्व चरित-नायक का परिचय देते हुए कवि लिखता है—

'बडा बोलतो बोल उदमाद कर तौ बिढण तोल तो खाग भुज बढण ताया।
जुध खळा न देस्यू' पूठ कह तौ जिको, ऊठ चहुवाण मिजमान आया।।
बाज तासा घमक हींस घोड़ा बिखम, चमक तोड़ा अमक भाळ चोवै।
भाखतौ लड्डूं खग भाट मन भावणा, जके दळ पांवणा वाट जोवै।।
जाग चामल गिरद कीध घाटा जपत, लाग आँटा सपत गीध लूभा।
काढतो वचन मुख चाव जुध कारणै, आव भड़ बारणै कटक ऊभा।।'

युद्धारम्भ होने पर रण-भूमि का चित्रोपम वर्णन इस गीत में है—

'भभकै घाव ऊछटै भेजा, तूटै धड़ नेजा तड़क।
बेराहर पाडै दल बारा, धारा तीरथ तणी धक।।
पलटै जठी धकावै पैलां, गैलां खग वाहै गजर।
दल चौकस चहुँ बैबल दावै, आवै आवै कहै अर।।
हलचल नरां हैमराँ हड़बड़ झड़ फड़ पंखण तोप झग।
बहादर सुतन हाक जुध बागाँ, लड़ियौ खागां पहर लग।।
चामल नीर ओण रण चाढे, पड़ियौ दल पाड़े पचरंग।
खल रूढाँ बूढौ झड़ खागां, वल छूटौ तूटा उतबंग।।'

यह देखकर रम्भा, शिव, काली और गिद्धादि पक्षी रुष्ट से होकर पूछते है कि अब यह और कितने वार करेगा तथा कितने धड़ भूमि पर लुढकायेगा—

'रंभा भव काळी दुज रूठे, हाडा बळवंत रतन हरा।
अब कर किता तोड़सी आवध, धड़ केता लोटसी धरा।।
सिर-वर रुधिर दिये पळ सूराँ, विधी पिंडकर पितर विधान।
धड़ भूरां उडियौ खग धाराँ, सजि च्यारां पूरौ सनमान।।'

एक गीत में कवि ने चंबल और रत्नाकर का संलाप कराकर युद्ध की भयंकरता और भी बढ़ा दी है—

'समहर बळवंत वाहतां असमर, छूटा फिरंग दळां रत छोळ ।
रातौ देख अचंभ रतनाकर, चामल किम कीधौ रँग चोळ ।।
रूकां झड़ हाडा अंगरेजाँ, दल पंडव जूटा कुरु द्रोण ।
संभ्रम थयौ पूछवैं सागर, सरिता केम थयौ जळ श्रोण ।।
हिन्दू गुरँड खगा हूँच किया, वहिया वाहण मूझ विचाळ ।
दल सुध देवधुनी इम दाखै रतनाकर वहिया रत खाळ ।।
असमर झटां बहादर वाळै, थट हैंवर नर गरट थया ।
वसे पछै वैकुण्ठ बिचाळै, काळै रंग जळ श्रोण किया ।।'

सालूदान पाबूजी के वीर चरित से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने युद्ध-वर्णन का काल्पनिक चित्र खींचते हुए बड़ी ही मार्मिक अभिव्यंजना की है। यथा—

'जींदो असखड़त अपत पत जायल, पड़त ध्राह अवथाह पणं ।
घेरत वित सगत रुड़त त्रंबक घण, तड़त सेल गत ज्यास तणं ।।
वाहर व्रन वड़त जोध सतवीसों, किलम कड़त भूथांण कियं ।
अरियण दळ झंडत चड़त जुध ऊमंग, लड़त पाल भुज खाग लियं ।।
कटको दुय सबळ कळळ हुय हूकळ, तेग झळळ घण वाढ़ तणं ।
वळवळ हथनाळ अकळ कळ वाजत, भळळ सोर जळ आग भणं ।।
अळवळ असवार वौत मिळ जांभळ, थित वासं चळ विचल थियं ।
अरियण दळ झड़त चड़त जुध ऊमंग, लड़त पाल भुज खाग लियं ।।'

एक अन्य गीत में कवि ने राम-रावण का युद्ध वर्णन किया है—

'गैणाऊ पलचर गणणिया, सुररंभ वाहण सणणिया ।
विडकरण दमगळ रांम अतवळ, विमळ सुरमल वीर ।
केकांण घणथट कळहळै, चहुं फेर वादळ चळचळे ।
चढ़ कोप चळ चळ होय हळवळ, जोध जांमळ फवत सावळ ।
सूर भलहळ वाढ़ वीजळ, खाळ हळपुळ श्रोण खळहळ ।
गहक मिळ-मिळ ग्रीध पळगळ, कळळ हूकळ धुवै धूकळ ।
असुर सुरभिळ अचळ आयो, धांस खळ रणधीर ।।'

युद्ध, योद्धा और युद्ध-भूमि का वर्णन करने में बुधसिंह अपने समकालीन कवियों से पीछे नहीं है। उदाहरण के लिए यह गीत देखिये—

'फौजों वोह डमर चकारा फावै, पारंभ अंग अणभंग प्रवळ।
खड़ही केण दिसा अस खाला, खाग वजासी केण खळ।।
रुड़े त्रमाट हका पड़रांगां, तकै ख्याल रथ रुक तरण।
हाले कठो जोध अचळा-हर, रिमां प्रहारण खेतरण।।
घेंसा हरां लड़डंग देखे घण, प्रसण मरै माथा पटक।
किण रुख चालै आज कराळो, कोमंखी वाळो कटक।।
भुजडंड अणी छड़ालो भळकै, ऊसस डारण क्रोध अंग।
वेढक आज अनम वीरतरत, जुड़सी सुत सोभाग जंग।।
पग-पग फतै करै खग पांणां, जुड़ै अयांणां खेत जद।
राजो क्रोड जुगां रंग-रसियां, हणवंत भूरा वाध हद।।'

गिरवरदान को कोई समस्या क्यों न दी जाय, वे उसकी पूर्ति करते-करते ही युद्ध का सजीव दृश्य उपस्थित कर देते हैं। कविराजा भारतदान द्वारा दी हुई समस्या 'दीठां फौज कन्नोज जैचंद वाळो दोर' की पूर्ति उन्होंने इस प्रकार की—

'फौज अरंद्रा उखेले मौज रावै ज्यांसू आड़ा खडे, तपो मौज सुर से मनोज वाले तोर।
वदे तोज चंद ज्यूं हनोज राजवाड़ा वीजा, दीठां फौज कनौज जैचंद वाळो दोर।।
नभां रजी दाटे अद्र पीठां उडे गजां नेजां, धरा खाटे नवि खाठा रीठां पड़े धाक।
मासे घेक अंगांपि अलहां लाटें जिसो भाग, विभी दीठां अनेका अरंद्रा फाटे वाक।।
फौजां लूर लूटे दादा चंद ज्यूं दान रा फैल, धूजे दिल्ली सवारो पान रा खांगां घाव।
भूप तकवलेस नंद मांनरा आपरा भुजां, राजा हिन्दूथांन रा न चीता गाढ़े राव।।'

तेजराम के इस गीत में महाराणा जवानसिंह (उदयपुर) के हाथियों की प्रचण्डता का वर्णन है—

'मांडा घोरिया विरुता जे हजारां डाक दारां मळे, वेढ़ीगारा फरे नको फेरिया अवोध।
जुडतां लोयणां खारा तूटा गैण तारा जेम, जूटा वे अगड्डां माथै राड़गारा जोध।।
चढ़े कोप रढाळां धखंता धोम झाळां चखां, आटपाटां मदां खाळा वूठता औनाड़।
वळा आड़ा अद्र सा जवांन प्रथीनाथ वाळा, वागा नाग काळा जंगां पटाळा वे छाड़।।
घले जोम हूंतां फील दंता आड़-सल्ला घाव, हल्लां फौजदारां धूवे पोग रां निहाव।
वाज सिंधू मंदा पूर छायो गैण वृंदारकां, गजा राज हूंता चौडे जूटी गाढै राव।।

वे वीरांण पूत चंडी पूत सा कुसत्ती बागा, आट पाटां मदां राह रूत सा अथाय ।
सागे जज दूत सा अभूता चखां झाळां सोर, बिराता अखाडै काळा भूत सा बलाय ।।'

रामलाल ने इन दोहों में राजराणा अजयसिंह झाला (गोगुन्दा) के अनुभावों का क्या ही सुन्दर वर्णन किया है ?—

'जुध देखण अपछर जुड़ी, खड़ी-खड़ी पेखंत ।
अजा मूंछ भ्रूहां अड़ी, कड़ी जरद तड़कंत ।।
आप कुसल चाहौ अधप, अरु धण रौ अहवात ।
हेक अजा गजगाह रै, रहो लूंब दिन-रात ।।'

निम्न गीत में इसी कवि ने राजकुमारियों द्वारा अपने पतियों को अजयसिंह से युद्ध न करने की प्रार्थना कराई है—

'जीवणो चहै धव तते मत झागड़े, चंखासी खागड़े काळ चाळो ।
माण तज भनां पत हलीजे मागड़े, पागड़े लाग अहिवात पाळो ।।
पाण खग अजा रै साम्हने पसैला, तो नसैला पतंग पड़ दीप न्हाळो ।
धणी मृग नैणियां छांह पग धसैला-(तो) वसैला बांह गज दांत वाळो ।।
चुरस जग जीवणै रखो चित चाहरी, (तो) पड़तळां-नाह री आस कीजो ।
त्रिया भड़ सवागण रखो तद ताहरी, (तो) लूंब गजगाह री शरण लीजो ।।
कळह विच सुणे धव तजे बळ कडोला, (तो) लडोला अमर सोभाग लाहे ।
चीत चत भूल नै धकै जो चढोला, (तो) मढोला पीव पाखाण माहे ।।'

रामलाल आढ़ा ने निम्न गीत में राजा मानसिंह झाला (गोगुन्दा) के युद्ध-कौशल का परम्परागत वर्णन किया है—

'जवर पाथ उनमान रा वीर सलहा जड़ै, सगत हर तान रा लियै साथै ।
हुवे सामान रा दळां भारत हचण, मान रा खळां आथांण माथै ।।
कळह फण फेरियां चढ़ै चाके कमण, झड़ै समसेरियां बाढ़ झंका ।
काढ मन गेरियां तुंहिज सूधा करै, वैरियां लियण आसेर बंका ।।
मार गज टलां फौजा भमंग भोयणां, जुध अड़ग ओपणां रूपै जाझा ।
क्रोध भर अतर मखै अगन कोयणां, कँवर घर दोयणां लियण काजा ।।
कलक भेंरू सगत पियण काल रा, दलेसां साल रा ताप देणा ।
अंग उग्रमाल रा नजर आवै इसा, लाल रा सुतन गढ़ खळां लेणा ।।'

४. भक्ति काव्य— आलोच्य काल में चारण भक्त-कवियों के द्वारा वैष्णव भक्ति शाखा का समुचित विकास हुआ। इसमें कृष्ण-भक्ति शाखा के कवि अधिक हैं, राम-भक्ति शाखा के अपेक्षाकृत कम। शेष कवियों ने स्फुट पदों में ईश्वर का माहात्म्य गाया है। शिव एवं शक्ति की उपासना करना भी कतिपय कवियों का ध्येय रहा है। नाथ-सम्प्रदाय से चारण समाज का हृदय न जुड़ सका, एतदर्थ चारण-काव्य पर इसका कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ, एक-दो कवियों पर दादू पंथ की छाप अवश्य देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त नीति एवं उपदेशात्मक काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। संक्षेप में, इस काल का भक्ति-काव्य समृद्धशाली है।

ब्रह्मानन्द, रामनाथ, बखतराम, सोम, हरा, रामप्रताप प्रभृति कवियों ने कृष्ण-भक्ति शाखा को पल्लवित किया है। ब्रह्मानन्द का भक्ति-काव्य धर्म, ज्ञान एवं वैराग्य का संगम है। वे प्रेम लक्षणा भक्ति के उत्कृष्ट कवि हैं। इनमें प्रौढ़ा गोपियों के भावों की प्रधानता है। ये भाव इतने स्वाभाविक हैं कि पाठक प्रेम-विभोर होकर तादात्म्य भाव का अनुभव करने लग जाता है। 'उपदेश चिंतामणि' त्यागी होने के बाद की प्रथम रचना है, जो श्री रंगदास के नाम से लिखी गई है। इसमें वैराग्य, सारासार, विवेक, संत, फकीर, शूरवीर आदि विषयों पर अत्यन्त सरस विवेचन किया गया है। 'उपदेश रत्न दीपक' में पिंड ब्रह्माण्ड पर्यन्त छोटे-बड़े व्यक्तियों के वैभव का वर्णन कर इन सबकी नश्वरता प्रमाणित की गई है। 'सम्प्रदाय प्रदीप' में उद्धव सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा का वर्णन है। 'सुमति प्रकाश' में भगवान सहजानंद स्वामी के संक्षिप्त जीवन के साथ वर्तमान युग का अनुभव दिखाया गया है। 'वर्तमान विवेक' में वर्तमान एवं भागवत धर्म का गूढ़ भाषा में वर्णन किया गया है। 'नीति प्रकाश' विदुर नीति का सरल अनुवाद मात्र है। 'ब्रह्म विलास' सुन्दर विलास की कथा का ग्रंथ है जिसमें गुरुदेव के अंग, गुरुभक्ति एवं सांख्य योग के अंग से आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय मिलता है। 'शिक्षा पत्री' में सहजानंद स्वामी की शिक्षा का सरल अनुवाद है। 'सत्संग पंचक' में सत्संग की कमल, कल्पवृक्ष, सूर्य, चन्द्र एवं समुद्र से तुलना की गई है। 'षट दर्शन' में षट सम्प्रदायों का दिग्दर्शन कराया गया है। 'माया पंचक', 'दसावतार स्तुति', 'राधा कृष्ण स्तुति', 'सिद्धेश्वर शिव स्तुति', 'हरिकृष्णाष्टक', 'रासाष्टक', 'हवलाष्टक', 'घनश्यामाष्टक' एवं 'हरिकृष्ण महिमाष्टक' में स्तोत्र एवं अष्टक भरे पड़े हैं। अंतिम रचना 'धर्मवंश प्रकाश' में सहजानंद स्वामी के जीवन-चरित्र एवं

सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है। स्वामी सहजानंद की अवतार लीला का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

'प्रथम धर रूप अनूप पृथ्वी पर कायम मच्छ स्वछंद कला।
जब लोध करै महा जोधपात जग कारन सोधि लई कमला॥
सिर छेदि संखासुर वेद लिए सब, मेटन खेद विरंची मही।
अति आनंद कंद मुनिंद अराधत, सो सहजा नंद रूप सही॥'

रामनाथ ने 'द्रौपदी-विनय' (करुण-बहत्तरी) में महाभारत के द्रौपदी-चीर-हरण प्रसंग को लेकर अपने ही हृदय की करुण चीत्कार को वाणी प्रदान की है। महाभारतकार ने इस विनय को केवल ५-६ पंक्तियों में रख दिया है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने इस विषय पर 'द्रौपदी दुकूल' नामक कविता लिखी है किन्तु रामनाथ ने इस करुण प्रसंग से प्रभावित होकर अनेक सोरठों की सृष्टि की है। ये सोरठे सती नारी के आक्रोश की अनूठी व्यंजना से भरे पड़े हैं जिनमें दास्य एवं माधुर्य भावों का अच्छा चित्रण हुआ है। यथा—

'गज नैं ग्रहियौ ग्राह, तैं सहाय हुय तारियौ।
वारी मो बैराह, बैठौ व्हे वसुदेव रा॥
लेतां तिरिया लाज, पति बोदौ आडौ पड़ै।
ऐ नर बैठा आज, सिंघ सिटाया स्याळ सा॥
दुसटां रचियौ दाव, द्रौपद नागी देखता।
अब तो बेगो आव, साय करण नै सांवरा॥
हारचौ खैंचणहार, हर देतो हारचौ नहीं।
वध्यो चीर विसतार, बाँवन हाथां वैंत ज्यूं॥
खींचो खींचणहार, मन धोको राखे मती।
समपै सरजणहार, सही बजाजी सांवरो॥
पण राखण आया प्रभू, भल अवळा री भीर।
दस हजार गज वळ घटयौ, घटयौ न दस गज चीर॥'

अतिवृष्टि के कारण नदी में वहती हुई गाय को सुरक्षित वाहर निकलते देखकर वखतराम ने इस गीत में गोपाल की विरुदावली गाई है—

'मदांलाग दरियाव छल मंगर ओटा मंही, लाग दोटा दबे जकण लारी।
धाय गोविंद नज विरद चित धारियौ, तारियौ दयंद जिम गाय तारी॥

डाण सर लाग अंब छौळ पड़तां डमर, उथल पग भमर मझ दबत आषी।
दीनबंध दौड़ सुणतां जगत दाषियौं, राखियौ मतंग जिम धेन राषी॥
वज विषम भरायां सोक नाळौ वहण, उछळ जळ करायां घोक अण पार।
हरी गज जेम जुग घेन बळ हारतां, बार नह तारतां लगी जिण बार॥
दषायौ दीन बंध पणौ नजरां दहूँ, संत जिण भरोसै जौष साजै।
तंबीरण जेम तारण गऊ ताळ रौ, वरद गोपाळ रौ भलां बाजै॥'

सोम कवि निम्न गीत में कृष्ण की लीलाओं का भाव-भरा वर्णन करते हुए उनकी शरण में जाना चाहता है—

'कोटि ब्रहमंड खण मांहि भांजै करै, अगम है निगम ताइ नेति-नेति ऊवचरै।
ध्यान सुकदेव नारद्द जै मन धरै, धाइ गोवाळियां बाँह काँधै धरै॥
कर्या प्राक्रम ताइ सेस न सकै कली, वंछै जै चरणरज सीसि ब्रहमावली।
भाव घण गोपियां कृसन्न प्रीत्यै भली, साद द्यै कदम चढि पीय पी-समली॥
जजै जाइ कोटि जिग वेद मंत्र ब्रहम जण, घृत पुलत हविख द्रव ज्याग होमंत घण।
नाम जै दीनबंध तेणि कजि नारयण, जमेते जसोमति (मात) हत्थी जमण॥
गाह गुण सारदा पार नं लहे गणै भाव करि नांम मंत्रनि तोइ ब्रहमा भणै।
कड़छि कन्ह पीतपट बाँधि पलवट कणै, आवि दूहै सुरभि नंद नै आगणै॥
देखि भ्रू भंग मन काळ आंणंति डर अछै कुण मात्र जगि देव दाणव अवर।
भगत वच्छल बिरद तूझ हरि तेज भर, सरण दै 'सौम' नू कहै राधा-सुवर॥'

कृष्ण ने जैसे दूसरों की लाज रखी है वैसे ही हरा कवि अपनी लाज रखने के लिए प्रार्थना करता है—

'पड़तां खारी वार पंचाळी, विनती सुण सांवरियो वीर।
आखे दूत अनोखी आतुर, चत्रभुज ते पूरी अत चीर॥
ध्रू प्रहलाद तणो घणि आपो, कीदो ज्यूं करतार करै।
सबळे नांम घणी सांमळियो, सबळ ई सबळा काम सरै॥
तू पगले-पगले तीकम, ऊभो भगतां भीर युंही।
आवे भीर करेवा आतुर, जरणी बाळक काज ज्युंही॥
हो ब्रजनाथ भगत रा हेतू, धरणीवर ऊजळाद धणी।
दीनदयाल 'हरो' यूं दाखे, तू लज राखे मूज तणी॥'

इसी प्रकार रामप्रताप की विनती है—

'आरत बानी सुनी गज की खगराय विहाय भग्यो दुख टारन।
त्योंही लखो प्रहलाद को आतुर पाहन में प्रगट्यो खल मारन।।
धारचो है रूप दुकूल सही परमेश्वर पण्डु वधू प्रण पारन।
रामप्रताप की बार इती गिरधार अवार करी किहि कारन।।'

रामभक्ति शाखा के कवियों में रायसिंह, शंकरदान, किसना एवं चिमनदान के नाम उल्लेखनीय हैं। रायसिंह के सोरठों में उसका भक्त-हृदय झलक देता रहता है। 'मोतिया के सोरठों' में जीवन की नश्वरता, माया का खंडन, राम की महिमा. वाह्याचारों की निन्दा आदि सब कुछ देखा जा सकता है। यथा—

'लख बेटा लख भ्रात, हेमतणी लंका हुती।
सुणियो गयौ न सात मरतां रांमण मोतिया।।
माया रहे न मन्न, कर भेला वांटी करां।
कहियो भोज करन्त, मैं पड़ सारै मोतिया।।
रात दिवस हिक राम, पढियै जो आठू पौहर।
तारै कुटंब तमाम, मरै चौरासी मोतिया।।
भटकै कर-कर भेष, घर-घर अलख जगांवतां।
दुनिया रा ठग देख, मलसी पनिया मोतिया।।
करै न चेलो कोय, कर पकड़े चेली करै।
हेत वना गुर होय, मोडा फिर-फिर मोतिया।।'

शंकरदान की शवरी प्रसंग विषयक रचना बड़ी भावपूर्ण है। इसमें अछूतोद्धार की ओर ध्यान आकृष्ट करने के हेतु कवि ने इस प्रसंग का स्वानुभूत चित्रण दिया है। शवरी कहती है—

'ध्यान ग्नुंड भाली करे, सेव करे मुनि संत।
पूरण ब्रह्म पधारिया, आश्रम मूझ अचन्त।।'

यह कहकर शवरी ने भगवान का चरण स्पर्श किया किन्तु अपनी स्थिति का ध्यान आते ही वह चीख उठी—

'त्राहि-त्राहि हूँ अधम हूँ, अधम उबारण राम।
हूँ अतरी आतुर हुई, सुधि न रही शरीर।।'

राम के बुरा न मानने पर तो बुढ़िया फूली न समाई, मानो उसे त्रिभुवन का राज्य मिल गया हो!

'पावन कीधी झूपडी, कौशल राजकुमार।
हूँ अतरी आतुर हुई, जतरी त्रिभुवन राज॥'

भक्ति की दृष्टि से किसना कृत 'रघुवर जस प्रकास' एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें भक्ति-भावना प्रमुख है, छंद-लक्षण गौण। कवि का चरम लक्ष्य भगवान राम का गुणगान करना ही प्रतीत होता है। छंद-रचना के लक्षणों के साथ-साथ अपने आराध्य देव का वर्णन करके तो कवि ने सोने में सुगन्ध का काम किया है। इसमें कवि ने राम का माहात्म्य मुक्तक रूप से गाया है। उदाहरण के गीतों में राम कथा का ही आश्रय लिया गया है, किन्तु क्रम का अभाव है। शेष लक्षण प्रवन्ध काव्य से मिलते-जुलते हैं। आरम्भ में गणेश वन्दना इस प्रकार है—

'श्री लंबोदर परम संत बुद्धवंत परम सिद्धिवर।
आच फरस ओपंत, विघन-बन हंत ऊवंवर॥
मद कपोल महकंत, मधुप भ्रामंत गंधमद।
नंद महेसुर जन निमंत, हित दयावंत हद॥
उचरंत 'किसन' कवि यम अरज, तन अनंत भगति जुगत।
जांनकी-कंत अवखण सुजस, एक दंत दीजे उगत॥'

ग्रंथ के तृतीय प्रकरण में कवि की भावना प्रवल हो उठी है और प्रवन्ध की सी शृंखला भी आ गई है—

'गोह सरीखा पांमर गाऊं, व्याध कवंधा ग्रीध वताऊं।
नै सट पापी गौतम नारी, ते रज पावां भेटत तारी॥
देव सदा दीनां दुख दाघौ, रे भज प्रांणी भूपत राघौ॥'

वीच-वीच में कवि ने परब्रह्म पर भी विचार किया है—

'न रूप रेख लेख भेख तेख तौ निरंजणं।
न रंग अंग लंग भंग संग ढंग संजणं॥
न मात तात भ्रात जात न्यात गात जासकं।
प्रचंड वाहु डंड रांम खंड नौ प्रकासकं॥'

चिमनदान कृत 'हरीजस मोक्षरथी' भक्ति-काव्य का उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसमें आत्मा के मोक्ष की विधि वड़े सुन्दर ढंग से चित्रित की गई है। इसके २४ विश्रामों में क्रमश: दीर्घावतार, दताभी अवतार, काराज्यावतार, मनुइन्द्रअवतार,

भक्ति अवतार, चराचर अवतार, वैराग कठणता, वर्णाश्रम धर्म विचार, अक्रिया भोग निरूपण, सुक्रिया भोग, प्रतिमादि पूजन, वैरागी मत, षटमत ज्ञान उदीप, जोगाभ्यास अष्टांग, इष्टोध्यान, प्रगट समाधि निरूपण, सिद्धि त्याग समाधि, निरभै समाधि, जोगाभ्यास, जगअत समाप्ति निरूपण, अदेष्टो खंड वरनन, सगुणनिर्गुण नमस्कार, नित्यादीसत नाम एवं सुणत फल प्राप्ति का वर्णन किया गया है। इनके अन्तर्गत आये हुए भाव मर्मस्पर्शी हैं। 'चराचर अवतार' का एक नमूना यहाँ दिया जाता है—

'लगनीवत संत अनंत लखै, दुनियांन चराचर वृन्द दखै।
धर अम्बर व्यापक एक धणी, तिह माय कळा सब रांम तणी ।।
ससि सूर उडग्गन व्रच्छ सबै, अतुळी बळ भ्यासत एक अबै।
तर देवत डूंगर रूप तिता, जळवाय उतो परकत जिता ।।
रिखजिक्ख सिन्यासिय देह नरं, करतार अपार पैदास करं।
पसु पंख असंख निसंक पणै, गुनवांन सबै व्रम हेक गिणै ।।
जळचार थळाचर जीव जिदं, पद एक उभै र अनेक पदं।
अहि प्रेत अचेत सुचेत अभा, यह लोक अलोक सुलोक प्रभा ।।'

चाहे राम हो अथवा कृष्ण, हैं दोनों ही ईश्वरीय रूप। ऐसा मानकर कतिपय कवियों ने अपने स्फुट पदों में इन दोनों का सम्मिश्रण कर दिया है। इनमें जहां कहीं भी ये नाम आये हैं, वे परब्रह्म के द्योतक हैं, अवतारी महापुरुषों के नहीं। यही कारण है कि ओपा, रूपा, हमीर, कनीराम, सूर्यमल, जासा, भगवानदान, बुद्धा प्रभृति कवियों के गीतों में एक ही ईश्वर की व्यंजना होती रहती है। इनका काव्य अनुभूति की सच्चाई लिए हुए है। इसे किसी वाद के भीतर नहीं बाँधा जा सकता। अभिव्यक्ति स्पष्ट एवं प्रकृत है। उसमें किसी प्रकार का रहस्य नहीं दिखाई देता।

साहित्य में राम, कृष्ण, शिव आदि को लेकर तो अनेक भक्तिपरक रचनायें समय-समय पर लिखी गई किन्तु देवी के चरित को लेकर किसी ने स्वतंत्र ग्रंथ की सृष्टि नहीं की। इस दृष्टि से बुधसिंह कृत 'देवी चरित' एक अद्वितीय कृति है और प्रथम महाकाव्य भी। इसका मूलाधार देवी भागवत पुराण है किन्तु कवि ने कथा-प्रवाह बनाये रखने हेतु यत्र-तत्र परिवर्तन कर मौलिकता का परिचय दिया है। महाकाव्य का मंगलाचरण गणपति, सरस्वती तथा करणी देवी की

स्तुति से किया गया है। सृष्टि अनन्त रूपात्मक है। इसके मूल में एक ही प्रकृति है जिसे माया, देवी, जगदम्बा आदि की संज्ञा दी गई है। इसमें कवि ने साकार एवं निराकार दोनों साधनाओं का विवरण दिया है। इसमें देवी द्वारा महिषासुरादि शत्रुओं के विनाश का वर्णन किया है जिसमें उसे सफलता मिली है। साथ ही दार्शनिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखा गया है। भाषा ब्रज है।

कवि ने जो भक्तिपरक स्फुट रचनायें लिखी हैं वे राजस्थानी में हैं। चौदह वर्ष की अवस्था में लिखा हुआ बुधसिंह के भक्ति-गीत का यह अंश द्रष्टव्य है—

'थूं मत जांण कुटंब औ थारौ, पाळ मली इतरौ चित-प्रेम।
चलतां साथे न को चालसी, जासी जीव वटाऊ जेम॥
पिता मात बंधव सुत प्रनुदा, लोभी गरज तणा सहलेक।
सांप्रत अंत-वगत रो साथी, अनंत विचार हिया में एक॥
जांमण-मरण पाप मिट जावै, तारै जीव हुंत इक तोल।
रटतां नाम मुखां राघव रो, मूरख दाम न लागे मोल॥
राजी हुआं थकां नारायण, देवे मुकत-दान दातार।
साचो कर जांणे परमेसर, सपना ज्यूं जांणे संसार॥
सकव बुधो आखे कत साची, दिल में धारे दीनदयाळ।
प्रभू भजन कर रे नित प्रांणी, जाय विलाय पापरा जाळ॥'

हरि-सुमिरन के लिए कवि का यह गीत कितना प्रेरणास्पद है?—

'पड़ी भीड़ जळ डूबतां धीर नह धरी पळ,
ररी करुणा ग्रहण ग्राह रीधी।
अहिअरी तजे आयो वडी आतुरी,
करी री स्याह जद हरी कीधी॥
हरणकस्यप दनुज कोपियो पुत्र हणण,
फाड़ पाहण असह पाड़ फीको।
राखीयो बाळ प्रहलाद तारण तरण,
नरहरी चरण रो सरण नीको॥
वीर पांचू वचन हारतां सभा-विच,
हुई तकरीर पांणप हटायो॥

द्रोपदी चीर गह खांचतां दुसासण,
अरज सुणतां समो भीड़ आयो ।।
भरोसो राख दिल तेण भगवंत रो,
जबर बळवंत खळ जेण जीता ।।
विमळ जस गाव गुण ग्रंथ निस-दिन बुधा,
संत-जन सहायक कंथ सीता ।।'

फुटकर कवियों में ओपा ने सबसे अधिक लिखा है। उसकी दृष्टि में सब-कुछ ईश्वराधीन है। वह पूर्वजन्म के संस्कार एवं प्रारब्ध के अनुसार ही चलता है—

'मन जाणै चढ़ूं हाथियां माथै, सुर धासंतां जनम खुवै।
नर री चींती बात न होवे, हर री चींती बात हुवै ।।
मन जाणै पदमण हूं माणूं, गो बंद बांधै पथरे गळै।
मांडणहारे लेख मांडिया, मेटण वाळौ कूंण मळै ।।
यूं जाणै पकवान अरोगूं, धापर मिळै न लूकौ धान।
हचियौ खाय काय हीं चोळा, भोळा रे रचियौ भगवान ।।
दिल में जाणै पांव दबाऊं, औरां रा पग दाबै आप।
कळपै कसूं-कसूं मन कोपै, प्राणी लेख तणो प्रताप ।।
चित्त में जाणै हुकम चलाऊं, हुकम तणै वस नार न होय।
सांचा लेख लिख्या उण सांई, काचा करण न दीसै कोय ।।
धापै मन बैठां धोळाहर, तापै सूनो ढूंढ तठै।
आदू रीत असी है 'ओपा', कुटी लिखी सो महल कठै ।।'

यही कारण है कि कवि ने सब प्रकार के मायावी प्रपंचों से दूर रहकर हरि-सुमिरन करने का आदेश दिया है—

'क्यूं पड़पंच करै नर कूड़ा, बिलकुल दिल में धार विवेक।
दाता जो वाधी लिख दीनी, आधी लिखणहार नहिं एक ।।
पर आसा तज रे तज प्राणी, परमेसर भजरे भरपूर।
सुख लिखियौ दुख नांह सांपजै, दुख लिखियौ सुख होसी दूर ।।
काला जीव लोभ रै कारण, खाली मती जमारौ खोय।
करता जो लिखिया कूंकूरा, काजळ तणा करै नहं कोय ।।

भजरे तरण तारण ने विषया ! दूजां री काजी मत देख ।
क्रोड प्रकार टळै नहँ किण सूं, लिखिया जिके विधाता लेख ।।'

नेहरु रोग से मुक्त होने के लिए कवि रूपा की यह पुकार स्वाभाविक है—

'ग्रहियो गजराज तंत जळ गहरे, वे आंगुळ सुण्डाडँड वार ।
करणा-करण नांम छळ केसव, पाळा सुण दोड़ियो पुकार ।।
हर हुवे वाराह मार हरणायख, मँहै काढी पाताळ मँझार ।
दूजोई हरणाकुस दळियो, पेहेलाद क सांवळे पुकार ।।
करे वसवा अंतरे केसव, वधियो द्रोपद चीर वसेख ।
मो मुख गण्यां न जावें माहव, असा प्रवाड़ां कोध अनेक ।।
दीनदयाल संता सुखदायक, कारण-करण सिध काज ।
वाळा पंड हुँवा सीतावर, मेटीजे रुगपति महाराज ।।'

हमीर ने नाम स्मरण पर विशेष बल दिया है—

'जिण नाम लियां दुख दाळिद्र जाये, घणो हुवे सुख लाभ घणो ।
चावे मांनवि रांम वीछड़े, तिसो नांम श्री रांम तणो ।।
बुरो विधन वेद नहं विआपे, मिटी अघ पावन हुअे मन ।
जिहड़े भजन संसार जौपिजे, भगवत रो इहड़ो भजन ।।
भूत प्रेत डाकणि डर भाजे, दुरदिन आवे नहीं दिसो ।
अकरम टळे चड़े निति ऊजम, अम्रितपांन हरिनाम इसौ ।।
सावती संपती सुमति सांपजे, दूर रहे दुरमती दुयण ।
थिये हमीर भीर जिम था ी, गिरधारी रा गांइ गुण ।।'

कनीराम ने जीवन की नश्वरता के विषय में यह गीत लिखा है—

'थारी नह देह प्रवार न थारो, वित्त थित्त घर थारो नह वेक ।
सुत पित मात वड़ाणें सारे, हटवाड़ा रो मेळो हेक ।।
काचो पिंड कुटुम धन काचो, सौह काचो संसार संपेख ।
भाई वंध काचा रें माया, सपना री दौलत सविसेक ।।
काया माया सुत कलत्र कारमो. खलक कारमो वाजीगर खेल ।
दीसण तणो चळाचळ दीसे, ओ सारो पांणी ऊभेळ ।।
ओहला तिर-तिर वह आया, करमां वस वन-वन रो कार ।
करम कमाई मुगत कानिया, वहणों उठ आया जिण वार ।।'

सादड़ी (मेवाड़) निवासी रायसिंह के पास एक नौकर था जिसने विश्वास-घात कर अपने स्वामी के पुत्र जवानसिंह को लालच में आकर मार दिया और जमीन में गाड़ दिया। भगवान ने भक्ति के वश में होकर उस गड़े हुए बच्चे को निकाला तथा जीवनदान देकर उसके माता-पिता के पास पहुँचा दिया। कवि सूर्यमल ने इस अलौकिक घटना से प्रभावित होकर भगवान का जो माहात्म्य गाया है, वह इस प्रकार है—

'गज तणी अरज सुण उबारे लियो गज, अधक उण हूंत यां बिना कीधां अरज।
त्रीपहर निसयी तिण सिसु देह तज, राम लछमण किया जीवता खोद रज॥
श्री सु कर परस सोहो अंग किया साबता, जळ त्रखा पूछ पावे किया जावता।
वद कळप अनेका दीन वद छावता, फेर कीथा जगां भाइया फावता॥
बांह दिहुं ठाबियां गांम मझ बाळका, पधारे साथ जग करण प्रतपाळ का।
करधणी पणो खेरे रदन काळ का, मेल घर कुसळ सिसु धरण बनमाळ का॥
दुसट कृत कियो जिण नूं सज्या दराई, काट नासा ऊभे कूंप चख कराई।
सत वरत देख सोहौड़ां गरज सराई, हेक छन मांझ चंता सरब हराई॥
आच ग्रह गरीबनवाज बिप अधारे, व्रद तणी कीत भुवलौक विच वधारे।
सुरां कज जेम मुभ कज नरां सुधारे, पछे निज धांम त्रयलोक पत पधारे॥'

कवि जासा ने भगवान के नाम स्मरण को लक्ष्य करके यह गीत लिखा है—

'अखर तोल रै उभै मत डोल रै औरठै, पाप गंठ खोल रै समझ प्रांणी।
बाजतां ढोल रै कहूं बीसूं बसा, बोल रै राम रामेत वाणी॥
रटी सव सेस प्रहलाद नारद रिखाँ, धू रटी मटी जम त्रास धाखाँ।
जीवड़ा चटपटी राख रसणा जिका, भाख झटपटी हर नाम भाखा॥
गज पढी-पढी गनका पढी गोपियाँ, भरतरी पढी गोरख सभाळी।
अभी रस छाक जीहाँ न क्यूं उचारे, वाक हर-हरी हर-हरी वाली॥
सरण असरण उभै करण सेवागराँ, धरणधर सरीखा चरण धावै।
जोन संघट हरण वरण विहूँवै 'जसा', गिरा तारण-तरण क्यूं न गावै॥'

भगवानदान ने भी ईश्वर के नाम को संजीवनी बूटी कहकर उसका रस-पान करने का आदेश दिया है जिससे जीवात्मा आवागमन रूपी रोग से मुक्त हो जाय—

'माहा रोग जानण मरण सदा सेवे मिनख, हुवा करमा वसीभूत हाले ।
वडो अवचंब जुड़ियो परख वीसरे, मूढ तज हरी (हरि) क्यून भ्राले ।।
वेद संतां समजपाय सोवी विगत, ग्यान गुर प्रमोवी जुगत गत सूं ।
ओपवी प्रकासक जाणवारो ऊवर, चाह जाहर करी विमाल चित सूं ।।
सेस ब्रह्माद माहेस सनकादिकां ध्रूव प्रहलादिकां अगंम विखणा ।
कुसल नर नाग खग दनुज मुनिजन कितां, लही सा वत कही सहित लखणा ।।
वेद सासत्र अवर पुराणा विचालां, भेद रामायणा समर भाखी ।
वाग पद छंद संता सबद विचारो, सरस जग दीयै सोई परस साखी ।।'

इसी प्रकार बुधा कवि ने भगवान पर दृढ़ विश्वास रखने तथा उसका निर्मल यशोगान करने को सफल जीवन की कुंजी मानी है—

'पड़ी भीड़ जल डुबतां वरी पळ, ररी करणां ग्रहण ग्राह रीवी ।
अही अरी तजे आयो वडी आतुरी, करी री स्याहि जद हरी कीवी ।।
हरण कस्यप दनुज कोपियो पुत्र हरण, फाड़ पाहण असह पाड़ फीको ।
राखियो बाल प्रहळाद तारण तरण, नरहरी चरण री सरण नीको ।।
चीर पांचू बचन हारतां सभा बिच, हुई तकरीर पांपण हटायो ।
द्रोपदी चीर ग्रह खेंचता दुसासण, अरज सुणतां समो भीर आयो ।।
भरोसो राख दिल तेण भगवंत रो, नवर बळवंत खल जेण जीता ।
वीमळ जस गाव गुण ग्रंथ निस दिन 'बुधा', संत जन सिहायक कंथ सीता ।।'

चारण कवियों ने शिव एवं शक्ति की वंदना भी बड़े भक्ति भाव से की है। हरिसिंह कवि के इस गीत में शिव की वंदना है—

'आसण गजछाल वाघंबर ओडण भूपण पिनंग अरोगण भंग ।
भळहळ भाल सुधाकर भळके गुमट जटा मभ्द खळके गंग ।।
भेली नाद भूळका सींगी, सांडअरोह भूत गण साथ ।
माळा मूंड फबे गळ मांहि, नमो दिसंबर भोळानाथ ।।
उमियां संग मूळ वर आसय, कर प्यालो नर लीव कपाळ ।
बारम्बार अरोगण बूंटी, मदन-अरी मातो मतवाळ ।।
शंकर-देव निवाजण संतां, मसमी अंग डिगम्बर भेख ।
सुर तेतीस कोट कह सारा, आडम्बर थारा आदेस ।।'

चारण कवियों ने माँ भगवती के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का शक्ति-पूजन काव्य में बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। इस उपास्य देवी का रूप ब्रह्म के सर्वव्यापी स्वरूप से तादात्म्य प्राप्त करता है। आवड़दान, चंडीदान मिश्रण, भोपालदान, सालूजी, हरुदान, रामनाथ एवं स्योदान के स्फुट गीत इस कथन की पुष्टि करते हैं। आवड़दान कृत शैणी देवी का यह गीत देखिये—

भांजण केवियां तिरसूळ लिया, भुज दुख मेटण सुख दैणी।
वीसहथी सिरताज विराजै, सांप्रत जुड़िये सैणी॥
विदा-लधू सुपाता बाहर, पूज चढै विण पारां।
वाकर नवनेव श्रीफळ वर, परचा कीय विण पारां॥
धरम पाज जुढ़िया पत धिन, दिन-दिन रिजक हिरावो।
साँसण लाख पसाव जसारंग, कविता इधक करावो॥
वंस बधार सपूत पूत बड़ां, नयर नीर धन नांणो।
आवड़दान कदम रे ओळे, मात कृपा सुख मांणो॥'

इसी प्रकार चंडीदान देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं—

'पूजत चिरायु चट्ट चन्द्र गोल वाहिन के, धर्म अभिलाषन के सिर पर कर है।
रूप रण रणक समान व्रख भाखापुरी, पत के प्रमाणदान धरि भूमिधर है॥
पातक दरद धुपे दरसन ही तें पद, परसत उच्च फळ बाहू बल वर है।
करम धुज वंस छत्रधारी जसवन्त चित्त हरिपद कमल कुमारी की लहर है॥'

जोधपुर नरेश तख्तसिंहजी के क्रोधित होने तथा घोर संकट से घिर जाने पर भोपालदान ने इन शब्दों में अपनी इष्टदेवी को याद किया था—

कळेमर समुद्र लोपे न ऊगे संस्कर घू चले प्रले हुय जाय धरनी।
सिमरिया जेजे किम थाय छै सुन्दरी, जाय छै विरद कर साथ जननी॥
बचाया पांडवां महाभारत विखे, कठठा दळ चूरणी द्रोण कृपरा।
वेग पधार संकट हरण वीसहथ तार संत सरण साधार त्रपरा॥
जाकड़ा देत कुळ भसम कर जोगणी, छिळे जळ नाकड़ा साद छेलो।
हरामी ताकड़ा लगा मो पिण्ड हमें, हाकड़ा सोकणी सुण हेलो॥
भोपाळा तणों कर उग्रहण भवानी, सगत, इसर दला माल सेवि।
मदोरे राय महमांय तो भरोसे दाय, आवे ज्यूंही करो देवि॥'

सालूजी ने अपने गाँव की आराध्य देवी श्री मालण देवी की महिमा का वर्णन इस गीत में किया है—

गिरवर अधरा तरभोर गहदकै, हूवै हरियाळ हवाई।
ज्यां विच थांन जळाहळ जोपे, देवकळा दुलाई॥
विरछ अनूप वणै थळ वंका, सैंजळ कूंप सवाई।
आलण वंस दियं उजियागर मालण दे महमाई॥
व्रदपत छाजै तखत विराई, वसुधा पोखत वडाळी।
आय ववीस प्रवाड़ा ऊमंग, वीसहथी विगताळी॥
इन्नत खाळ वहै मढ़ आगळ खांण पळाकण खंडी।
अैं नर अमर जात री आवैं, चमर ढुळाडै चंडी॥'

हरदान ने इस गीत में करणी माता का आह्वान किया है—

किता वारिया सन्त उवारिया साँकडे, मारिया दैत संग्राम माडाँ।
अनाया नाथरी रीति अँग अधारो, चारणी पधारो वेग चाडाँ॥
जेज न लावज्यो धरणीधर जंगळी संगळी लियाँ निज नाण साता।
ताखड़ा खडो मोटो विरद ताहरो, माहरो करण उपकार माता॥
आपणी वार संसार थायो अरी रह्यो नहीं अवर आधार धरणी।
विखम वेळा थई ताहरा वाळकाँ, कीजिये पाळ घंटाळ करणी॥
वार मत न लावो वरनरा वाहरू, पलाणो सिंह जलदी पधारो।
सकवि भुज वीस 'हरदान' रा सीस पर, थान रा धणी अवलम्ब थारो॥'

माँ के प्रचण्ड स्वरूप का रामनाथ ने बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया है। सिंह पर आरूढ़ माता जब कुपित होती है तो वराह की दाढें तिरक जाती हैं और कमठ की पीठ कड़कने लगती है। यथा—

'वड़कै डाढ़ वराह, कड़कै पठि कमट्ठ री।
धड़के नागवराह, वाघ चढ़ै जद वीश हत्थ॥
करनळ किनियाणीह, धणियाणीह जंगलधरा।
आलश मत आणीह, वीश हथी लाजै विड़द॥
विषमी आई वार, नैं ऊभर करद्यो नहीं।
शरणाई आधार, कुण जग कहशो करनळा॥

झुणियां साद शतेज, आई आगळ आवता।
जगदंब इव क्यूं जेज, करी इती तैं करनळा॥
देवी देशाणेंह, धर वीकाणैं तूं धणी।
जोगण जोधाणेंह, मानीजे मेहाशद्व ॥'

और स्योदान के इस गीत में भी देवी के भव्य स्वरूप की सुन्दर व्यंजना हुई है—

'चवा विराजै मामती ज्योति चारणा सहाय चंडी, आशतीक साजै वाण वेदरी अखण्ड।
छाजै कीत उजळी यों प्रथमादि शीस छती, चकारा दिवाण राजै शकती चामुण्ड॥
साद सुणे पातां वाळो आसुरां प्रजाळी सदा, करि मुखां कराळी रटै छै भाखा सुभाय।
सोंवा धाणी वाळी पंगी माजवी जहान सोर, रेगवा वडाळी मां दिये सुराराय॥
वदिगारो भंजे रोर मादो घटा जेम वूठे, पावे किसू त्रिळोकी असंख्या गुणा पार।
वागां हाका वाहवाळा वसु तणो सीस वछा, धजा वंध मोटा धणी, ईहगा आधार॥
सोहें देव राजरी में सभा सुरा वीच सोभा, एला पाळ हाजरी में हुकम में अठेल।
वसु कलू सांजरी म करी जसु काजवाई, आई वार आजरी में सेवा री उवेल॥'

इस काल में मंगलदास ही एक ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने 'सुन्दरोदय' रचना में दादू पंथ का अच्छा चित्रण किया है। उदाहरण के लिए नागा जमात का यह वर्णन इस प्रकार है—

'जै जै जै जगतार, निरंजन निज निरकारा।
सदा झिलमिळे जोति, पुंजि कहुँ वार न पारा॥
नूर तेज भरपूर, सूर सावंत हजूरा।
गुग विकार करि छार, लह्यौ निज आतम मूरा॥
सुद्धि सरूप अनूप पद, संद सभा निहचल मुदा।
मंगल जग निस्तार कूं, प्रगट रहै पलक न जुदा॥'

भक्ति के अन्तर्गत शांत रस से सने हुए नीति एवं उपदेशात्मक वचन अपना पृथक सौन्दर्य रखते हैं। इस दृष्टि से वांकीदास, कृपाराम, रायसिंह, सालूजी एवं चिमनदान के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वांकीदास सुधारवादी कवि थे अतः उन्होंने 'नीतिमंजरी', मोह-मर्दन' एवं 'धवल पचीसी' नामक रचनाओं में मानव-समाज को नाना प्रकार की शिक्षा दी है। 'नीतिमंजरी' के अध्ययन से पता चलता है कि मनुष्य के संघर्षमय जीवन में वैरी का कितना महत्त्व है? 'मोह-

मर्दन' में वह विकारों से दूर रहने का उपदेश देता है। 'धवल पचीसी' का निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को धवल के सदृश मन, वचन एवं कर्म से अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। जीभ को वश में रखने के लिए कवि का यह गीत कितना सुन्दर है ?—

'बस रा तो जीभ कहै इम बाँको, कड़वा बोल्यां प्रभत किसी।
लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जिसी।।
भारी अगै उगैरा भारत, हेकरण जीभ प्रताप हुवा।
मन मिळियोड़ा तिकाँ माढ़वाँ, जीभ करै खिरण माँह जुवा।।
मैला मिनख वचन रै माथै, बात बणाय करै विस्तार।
बैठ सभा बिच मूंडा बारै, वचन काढ़णो बहुत विचार।।
मन में फेर धणी री माळा, पकड़ै नँह जमदूत पलो।
मिळै नहीं बकणाँ सूँ माया, भाया कम बोलणो भलो।।'

कृपाराम का भक्त-हृदय न जाने कितनी अनूठी उक्तियों से भरा हुआ है ? राजिया को सम्बोधित किये हुए ये उपदेशात्मक सोरठे महत्त्वपूर्ण हैं—

'कारज सरै न कोय, बळ प्राक्रम हीमत बिना।
हल कारयाँ की होय, रंग्या स्याळाँ राजिया।।
काळी भोत कुरूप कस्तूरी कांटै तुलै।
साकर बड़ी सरूप रोडाँ तू लै राजिया।।
गुण-औगुण जिण गाँव, सुणै न कोई साँभळै।
मच्छ-गळागळ माँय, रहणो मुसकल राजिया।।
पाटा पीड़ उपाव, तन लागाँ तरवारियां।
बहै जीभ रा घाव, रती न ओखद राजिया।।
मुख ऊपर मीठास, घट मांही खोटा घड़ै।
इसड़ा सूँ इखळास, राखीजै नहं राजियां।।
लावा तीतर लार हर कोई हाका करै।
सिंधाँ तणौ सिकार रमणौ मुसकल राजिया।।'

इसी प्रकार रायसिंह रचित मोतिया के सोरठों में मानव-जीवन के सिद्धान्तों का अच्छा निरूपण हुआ है—

सूबा रै घर सोय, हेम तणौ भाषर हुवै।
काज न ग्रावै कोय मिनखां बीजा मोतिया ।।
कृपण करै धन कोय, कौड़ी-कौड़ी का पुरस ।
जावै वाधौ जोय, माषीमद ज्यूं मोतिया ।।
जिहां न वोले भूठ, श्रवणा भूठ न सांभले ।
वाजै कुण वैंकूठ माधव दरगै मोतिया ।।
पावां चलै न पांण, रात दिवस पड़ियो रहै ।
ग्रजगर रै भष ग्रांण, मेळै मुष में मोतिया ।।'

सालूजी की यह उपदेशात्मक नीसाणी देखिये, जिसमें उन्होंने अनेक जीवन-उपयोगी बातें वताई हैं। यथा—

'ग्राय खनैं घर एक लौ, मत वाट वहाए।
मन मैला चख मंजरा, जिण घर मत जाए ।।
कृतघुण हन्दी चाकरी, चटकै छिटकाए।
संप निवांणी सींचता, चित ख्यात लगाए ।।
ग्रोछी संगत ग्रांण के, मत स्यांन गमाए।
वैठ सभा विच बोलणो, सब हूंत सुहाए ।।
भूठा भगड़ा भालके, दरवार न जाए।
ग्राप थकां धन और को, मत मूल भलाए ।।
पसू गरीवी पंछिया दिल नांय दुखाए।
सवल हुवै कोई सांमठा मत वैर वसाए ।।'

चिमनदान ने दयावृत्ति की ग्रोर संकेत करते हुए कहा है—

करै धरम पोखै सकव, सांमी पिडत साध।
अभ्यागत दत ऊधमै उनका मता अगाध ।।'

५ शृंगारिक काव्य— ग्रालोच्य काल में केवल वांकीदास एवं मानजी ही ऐसे कवि हुए हैं जिनमें शृंगार की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस दृष्टि से वांकीदास कृत 'भमाल राधिका सिख नख वर्णन' एवं 'हेमरोट छत्तीसी' नामक रचनायें उल्लेखनीय हैं। नायक-नायिका के नख-शिख वर्णन करने की पद्धति पुरातन काल से ही चली ग्रा रही है किन्तु इसे स्वतन्त्र विषय वनाने का श्रेय वांकीदास को ही है। कवि ने यत्र-तत्र ग्रलौकिकता का पुट ग्रवश्य दिया है किन्तु चित्र लौकिक ही

हैं। पूज्य भावना के अभाव में राधा तो सामान्य नायिका के स्तर पर उतर आई है। उपमान रूढ़िगत भी है और नवीन भी! कवि ने कहीं पर भी सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। राधा के रूप-वर्णन में आँख, कपोल, केश आदि का वर्णन अलंकृत है। आँख का यह वर्णन कितना आकर्षक है?—

काळी भमरावळि कळी भूँहाँ वाँकड़ियाँह।
कमळ प्रभात विकासिया, इसड़ी आँखड़ियाँह॥
इसड़ी आँखड़ियाँह किया म्रग वारणैं।
सर मनमथ गा हारिक अंजण सारणैं॥
खूबी न रही काय खतंगाँ खंजनाँ।
नेही ह्वै मुनिराज विसारि निरंजनाँ॥'

'नेही ह्वै मुनिराज विसारि निरंजनाँ' इस खटकने वाली उक्ति को छोड़कर यह सौंदर्य-वर्णन परम्परा युक्त होते हुए भी वड़ा मोहक बन पड़ा है। केश-राशि का वर्णन भी इन विशेषताओं से विभूषित है। यथा—

'सित कुसुमाँ गूंथी सुखद वेणी सहियाँ व्रंद।
नागणि जणैं नींसरी, सांपडि खीर समंद॥
सांपड़ि खीर समंद, दुरंग सवाँरिया।
धारा फेण कलिंद, तनूंजा धारिया॥
भाषण उपमाँ और मनोरथ भेळिया।
मझ आटी मखतूल, कमोती मेलिया॥'

इसी प्रकार कानों का यह वर्णन कितना आकर्षक है—

काँन जडाऊ कामरा, कुंडल धारण कीन्ह।
झळहळ तारा झूमका दुहुँ पाखां ससि दीन्ह॥
दुहुँ पाखां ससि दीन्ह अंधार निकंदवा।
तेजोमय रथ तास, निपात पही नवा॥
माँग फूल सिर फूल जड़ाऊ मंडिया।
खिण-खिण निरखै नाह, हिए दुख खंडिया॥'

कविराजा ने वलखाती हुई पनिहारियों की विभिन्न मुद्राओं का भी वड़ा हृदयहारी वर्णन किया है। एक ओर तो चलने की गति से उमड़ते हुए हृदयस्थित

हेम-कलशों की शोभा तथा दूसरी ओर सिर पर धारण किये हुए जल-कुम्भों की छवि कवि को अभिभूत कर देती है—

'हेम कलश कुच जुग हिए, नीर कलश सिर लेई।
पग धर हुंता बाहडै कलश दहू कर देई॥
नख सूं लै चोटी लगै तन छवि मोह करंत।
लुल मिल केहर लंकियां लावे निर भरंत॥
लावे सर पाणी भरे गोरी गात अनूप।
ज्यो आगे पाणी भरे रंभ अलौकिक रूप॥'

मानजी ने गणगौर के मेले का वर्णन करते समय स्त्रियों की सामूहिक क्रीडा का वर्णन किया है—

'आय गज अलवेलियां, घुमड़े बीरह थाठ।
लग थगती लाज कलियां, नाजुक अंग निराट॥
नाजुक अंग निराट सुचंगी नारियां।
पांणी घड़ा झलोल भर पणिहारियां॥
अलबेली रंगवेली, अजेन गालियां।
लांमां लूहर गाय हंसे दे तालियां॥'

और भी—

'गीत झकोळे गोरियां, सुणतां लगै सुप्यार।
हींडै डोलर हींडता तीज गलै तिणवार॥
तीज गळै तिणवार ठठा लग ढोळकी।
झुक-झुक गोडी लार झणक रम झोळकी॥
पटा छूट कसवोह भमर मणके परा।
पायल ठमके पाय घमंके घूंघरा॥'

६. **राष्ट्रीय काव्य**— अँग्रेज अपनी सैन्य-शक्ति एवं राजनीति के बल पर राजस्थानी नरेशों को एक-एक करके अपने वश में कर रहे थे। यह देखकर कतिपय स्वतंत्रता प्रेमी नरेशों का हृदय क्षुब्ध हो उठा। अतः उन्होंने उनका विरोध किया। अंग्रेजों के साथ संधि हो जाने पर भी भरतपुर नरेश रणजीतसिंह ने जसवंतराव होल्कर को अपने यहां शरण दी और लाख प्रयत्न करने पर भी उसे नहीं सौंपा। विषम परिस्थितियों में उलझे रहने पर भी जोधपुर नरेश मान-

सिंह ने जीवन भर अंग्रेजों को तबाह किया, होल्कर के साथ संधि की और अप्पाजी भोंसले को अपने यहां शरण दी। राज्य-गद्दी की कठिनता, सरदारों की चालबाज़ी एवं नाथों के उपद्रव ने उन्हें चैन की नींद न लेने दी फिर भी उन्होंने अंग्रेज़ों को खूब छकाया और उनकी आज्ञाओं को टालते रहे। महाराजकुमार चैनसिंह (नृसिंहगढ़), महारावल जसवंतसिंह (डूंगरपुर), हाडा बलवंतसिंह गोठड़ा (बूंदी) एवं रावत केसरीसिंह (सलूंबर) से तो युद्ध भी हुए किन्तु इन वीरों ने दासता स्वीकार नहीं की। इससे सरदारों में भी जोश आ गया और उन्होंने अँग्रेज़ों को तंग करना आरम्भ किया। शेखावाटी प्रदेश के बठोठ गांव वासी डूंगरसिंह एवं जवाहरसिंह अँग्रेजों की डाक तथा खजाने लूटने लगे और चांपावत अभैसिंह एवं चिमनसिंह (बलूओत) नामक दो भाइयों ने भी ऐसा कर उनका साथ दिया। यदि अन्य नरेश पारस्परिक वैर-वैमनस्य एवं प्रलोभन को तिलाजंलि देकर इन राष्ट्र-वीरों के साथ विश्वासघात न करते तो शायद स्थिति कुछ और ही होती। कहना न होगा कि चारण कवि इन घटनाओं से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने इन क्रांतिकारियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है।

इस दृष्टि से बांकीदास, नाथूराम, नवलदान, बुधजी, जवानजी, चिमनजी, गोपालदान, चैनजी, गोपालदान (भदोरा), गिरवरदान, जादूराम, चंडीदान, मोहबतसिंह, दुर्गादत्त, बुधसिंह, दलजी, लक्ष्मीदान, चंडीदान महियारिया, गंगादान, जीवराज एवं भारतदान की रचनायें उल्लेखनीय हैं। इनमें राष्ट्रीय क्रियाशीलता के प्रमुख केन्द्र—भरतपुर, जोधपुर, जयपुर, बूंदी एवं डूंगरपुर की विविध हलचलों का यथार्थ चित्रण हुआ है। अस्तु,

राजा-महाराजाओं के पारस्परिक वैर-वैमनस्य एवं उनकी ऐश्वर्य प्रियता के कारण धरती माता शनैः-शनैः पराई होती जा रही थी। यह देखकर स्वदेश-प्रेम विह्वल कविराजा बांकीदास का हृदय जलने लगा। बिना युद्ध के अंग्रेजों के आगे नतमस्तक होना उन्हें बहुत बुरा लगा। अतः उन्होंने ओज भरी वाणी में इन बाहुबलियों की भर्त्सना की और उन्हें स्वाभिमान एवं कर्त्तव्य के लिए ललकारा। यह लक्ष्य करने की बात है कि भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र से भी पूर्व कविराजा ने स्वाधीनता के लिए शंखनाद किया था और इस ओर सबका ध्यान आकर्षित किया कि अँग्रेज नाम का शैतान हमारे देश पर चढ़ आया है जिसने देश के जिस्म की सारी चेतना को अपने खूनी अधरों से सोख लिया है। 'गीत चेतावणी रो' में कवि की राष्ट्रीय भावना कितने सुन्दर रूप से मुखरित हुई है?—

'आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आहंस लीधा खेंचि उरा ।
धणियां मरै न दीधी धरती, धणियां ऊभां गई धरा ।।
फौजां देख न कीधी फौजां, दोयण किया न खळा-ढळा ।
खवां-खांच चूड़ै खावंद रै, उणहिज चूड़ै गई यळा ।।
छत्रपतियां लागी नह छांणत, गढ़पतियां घर परी गुमी ।
वळ नह कियो बापड़ां वोतां, जोतां-जोतां गई जमी ।।
दुय चत्रमास वादियो दिखणी, भोम गई सो लिखत भवेस ।
पूगो नहीं, चाकरी पकड़ी, दीधो नहीं मरैठां देस ।।
वजियो भलो भरतपुर वाळो, गाजे गजर धजर नभ गोम ।
पहिलां सिर साहब रो पड़ियो, भड़ ऊभां नह दीधी भोम ।।
महि जातां चींचातां महिलां, अै दुय मरण तणा अवसांण ।
राखो रै किहिक रजपूती, मरद हिन्दू की मुसलमांन ।।
पुर जोधांण, उदैपुर, जैपुर, पह थांरा खूटा परियांण ।
आंकै गई आवसी आंकै, वांके आसल किया वखांण ।।'

स्वतंत्रता को लक्ष्य करके बांकीदास ने और भी कई गीत लिखे हैं जिनमें 'गीत भरतपुर रो', 'गीत नींबावतां रै महंत रो' एवं 'गीत मानसिंहजी रो' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीय दृष्टि से ये गीत बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। 'गीत भरतपुर रो' में कवि ने अँग्रेजों के विरुद्ध राजा रणजीतसिंह की अतुल युद्धवीरता का ओजस्वी वर्णन किया है। यथा—

'अण खरब कळह तर कहै दुज अेकठा, गरब वां कितावां तणा गळियां ।
थया बलहीण लसकर फिरंगयांन रा, चीण इनांन रा इलम चलिया ।।
मेर मरजाद रणजीत आखाड़ मल, खेर दीधा डसण जवर खेटै ।
पुखत गुरगम मिळी सेन पण पांकियो, भरतपुर फेर नह उसर भेटै ।।'

'गीत नींबावतां रै महंत रो' में लम्बे टीके वाले पाखंडी एवं विश्वासघाती साधुओं के कारण जाटों की पराजय का उल्लेख है। यथा—

'हुवो कपाटां रो खोल वोहतै फिरंगी थाटां राहलो, मंत्र खोटा घाटां रो उपायो पाप भाग ।
मायां मड़ां फाटां रो हरीफां हाथे दीनो भेद, ऊभा टीका वाळां कीनो जाटां रो अभाग ।।
माल खायो ज्यांरो त्यांरो रत्ती हीये, नायो मोह, कुवदी सूं छायो भायो नहीं रमाकंत ।
वेसासघात सूं कांम कमायो बुराई वाळो, माजनो गमायो नींबावतां रै महंत ।।'

'गीत मानसिंहजी रो' में अँग्रेजों के सामने न टिकने वाले राजाओं की शिव रूप महाराज मानसिंह की शरण में आने का चित्रण है। यथा—

'देख गरुड़ अंगरेज दळ, बणिया अप अन व्याळ।
जठै मांन जोधाहरो, भूप हुवो चंद्र भाळ।।'

कवि नाथूराम ने अँग्रेजों के विरुद्ध महाराजा मानसिंह के विषय में अनूठी कल्पना की है। जिस प्रकार सूर्य का रथ काशी से दूर ही निकलता है उसी प्रकार अँग्रेजों की फौजें उनके पास नहीं फटकती—

'महाराज मांन मुरधार माथै, चमू फिरंगी नांह चढ़ै।
रै ! जाणै सूरजवाळो रथ, कासी सूं आंतरे कढ़ै।।
मारवाड़ ऊपर फिरंगी मिळ, पर दळ थोड़ा खड़ै न पास।
सिवपुर हूंता दुरसा हेतो, सूर बगल काढ़ै सपतास।।
कासी सथर घणी नव कोटी, समंद अथाग कंपनी साथ।
बेड़ा पार उतारण बाबो, नेड़ा भीड़ जलंधर नाथ।।'

अँग्रेजों के फरमानों की कब परवाह करने वाला था मानसिंह ! वह डंके की चोट उनका सामना करने को तत्पर है। उसने क्रोध में बावला होकर अँग्रेजों की असंख्य सेना को तहस-नहस कर दिया और इस प्रकार दासता को स्वीकार नहीं की। नवलदान का यह गीत इसका उदाहरण है—

'फिरी वागां जठी ने चलाई पातसाही फौजां,
भुजां लाज भळाई सदाई आई भाय।
रूठियां धूंधळी नाथ कळाई ऊजळी रूकां,
मारवाडां दिल्ली ने मिळाई धूड़ मांय।
भांजै चोक हरोलां अणि रा उतोळियां भालां,
धकै तणो मेलियां जणी री रीस धूत।
रही आंट कणीरी जींवार सिद्धारांज राखी,
साजी बाजी नवां कोटां धणी री सबूत।
संग्रामां संभावै वीज जुळां कसां आय सामै,
रेण अेक थोड़ा नांमै थावै असी रीत।
न मावे फिरंगी हिंदूथांन कीधौ पाय नांमैं,
आप नांमैं नाज खाधौ विजाई अजीत।।'

अँग्रेजों को तंग करने में खोंखरी (मारवाड़) के अभैसिंह तथा चिमनसिंह नामक दो भाइयों ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी। उन्होंने कितनी ही बार उनकी डाक लूटी और उनकी पलटनों का सामना किया। कई बार वे डूंगजी-जवारजी की सहायता भी कर चुके थे और उनके साथ अँग्रेजों के खजाने लूट चुके थे। जोधपुर नरेश द्वारा जागीर छीन लेने पर अन्ततः उन्होंने अरावली पहाड़ में 'भाखर ढांणा' नामक स्थान पर रहना आरम्भ किया जो अँग्रेजों ने घेर लिया। बुधजी रचित निम्न गीत से इसकी पुष्टि होती है—

'चांपौ एक हुवौ जग चावौ, नरपुर ज्यूं दूजौ करनौत।
तीजौ वळै वरण खट तारग, दस देसां चावौ देसौत॥
मुरधर रूप सिरै रिड़मालां, गज ढालां ढाहण हमगीर।
आपण बलू दुरंग जिम आथां, हाथां चिमनो हेल हमीर॥'

बुधजी ने डूंगजी-जवारजी पर भी गीत लिखा है—

'घरा रो लोभ नह रिदा में धारियौ, अंग रो ताकियो नहीं ओळौ।
कंपनी कैद सूं भ्रात ने काढ़ियौ, रात आधी समै करै रोळौ॥
आगरै तखत सूं डूंगरो आंणतां, वळो वळ लिखाणा जगत वाका।
जुहारी सींध का टाळिया जगत में, डाकुवां रूप रा सुजस डाका॥
सारका कोट नर जुहारे सारखा, गिणै तन पारका कुंभ गैली।
कैद सूं डूंगरो लावतां कीरती, फिरंग हिंदवांण तुरकांत फैली॥'

जवानजी के इस गीत में महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के अँग्रेजों को 'कर' न देने की प्रशंसा की गई है—

'मांण हीण सुपह भरै थत मामलत, पांण कुण करै महारांण पाजा।
मोसरां तांण महाराज मरदां मरद, रचै घमसांण जमराज राजा॥
नाथ परताप नह धरै धड़क नरपति, चमू सत्रहरां चकरै धकै चाळ।
डांखियो सेर साजी अणि हाकरे, पेस कस भरै किम बियो बिजपाळ॥'

कवि चिमनजी के गीत का विषय भी यही है—

अरक आकरो मांन भूपत तपै आजरो थटै दळ कळह समांन थातां।
पेसकस भरै सुन मांन औवड़ पगां, यरां मत करो अभमांन आतां॥
रेस जवरां दियण नित वरसै रसा, गुसो मन जिकां गाड मगभावै।
दोयणां च्यार दिन चहो जीवण दसा, तज कसा रहो महाराज तावै॥'

गोपालदान ने भी अँग्रेजों के विरुद्ध मानसिंह की वीरता का प्रकाशन किया है—

'फिरै फिरंगी के हकां काज सुधारै हकारै फौजां,
धूंकळी उबारै रंकां मारै बंका धींग।
संवादी भैभीत होय नगारा घुरावै सारै,
माझी थारे भरोसे नचीता मानसींग।
खावै मारू राव माल उडावै न मावै खांपां,
जावै जठै पावै फतै वखांणै जिहांन।
बीजा राव राजा रांणा जोड़रा घुरावै बंबी,
थारे पांण चमरां करावै राजस्थांन॥'

चैनजी ने लिखा है कि राजस्थान की मर्यादा मानसिंह की भुजाओं पर निर्भर है—

'मेळै सुभट्टां कंपनी वाळा आया हिंदवांण मांहै, जठै सारी प्रथी-राजा पाय लागा जाय।
गुमनेस नंद तठै अंगजी जोधांण गादी, इंद नरां न कीधी सरद्दो सांभां आय॥
तिलंगां हाजरी लेतां वजातां अगंजी तोपां, भेचकै साराही दसूं दिसां तणा भूप।
हुआ मदां उतार गंयद जेम सारा हटै, राजा जठै खीज राया कंठीर चै रूप॥
दानां री उभेल बीक भोज ओळै जाय दुरै, वसू सिंध कानां री कीरती हुई वाद।
भूमंडलां वीच त्रपां आंन री जोवतां यत्री, मार्नसिंह भुजां राजथांन री म्रजाद॥'

गोपालदान (भदोरा) ने 'गीत सेखावाटी रै सरदारां रो' में अँग्रेजों का साथ देने वालों की निंदा की है—

'नहीं उदेपुर भीम जगतेस नहीं जैनगर, बीकपुर नहीं सुरतेस इण वेर।
दिखाता हाथ असुरां दळ सदाही, अधपत दिखाता नहीं आसेर॥
कहो तो सुणां अरज किण सों करां, चौतरफ कौण बाधै चाळो।
चिगायर अंजसता जिका भड़ गया कपूतां लगायो गढां काळो॥
आज रजपूत तणों पंथ चूकिया अधपती, जुगां लग जकी नह वात जासी।
हमर के ढहाया किला दे पर हथां, अधिपति घणां दिन याद आसी॥'

गिरवरदान ने डूंगजी-जवारजी के लिए यह दोहा कहा है—

'सेखावत जळहर समर, फिर चळवळ फिरंगांण।
प्रथी संग कळहळ पड़ै, झळहळ ऊगां भांण॥'

जादूराम ने 'गीत चांपावत अभैसिंह चिमनसिंह रो' में दो राष्ट्रवीरों की वहादुरी का सच्चा चित्र खींचा है—

'गाजे अनड़ धीब पड़ गौळा त्रजड़ां झड़ वाजे रण-ताल।
भड़ अभमल चिमनौ किम भाजै ? गिर भाजै लाजै गोपाळ॥
पाड़ै फिरंग नीठ रिण पड़ियां कमधां साको प्रबळ कियौ।
दीधौ मरण वलू दह वारी, सार कोट रै मरण दियौ॥
दिल सुध बचन गजन नै दीधौ समर खगांवळ कह्यो सचै।
तूटां सिर ढांणांगर तूटा, पालटियो घर कोट पछै॥'

महाराजा वलवंतसिंह गोठड़ा (बूंदी) ने अँग्रेजों का सामना किया था। अँग्रेजों एवं महाराजा के संलाप में ओज की प्रधानता है। बलवन्तसिंह के इस उत्तर में सर्वत्र 'उत्साह' की अपूर्व छटा है—

'भोळा अँगरेज अळीकइ भाखै, इम आखै बळवंत अभंग।
उतवँग लार लगाया आवध, आवध री लारां उतवंग॥
बहादर सुनत एम मुख बोलै, बळ तोलै कासूं चख वोह।
लोहां कमळ तणी लज लागी, लीजै कमळ तूटियां लोह॥
खग धारां गोरा सिर खांडूं बैरी दळ पाडू भर बाथ।
सिरचै साथ ससत्र सम्हाया, सिर मो हुवौ ससत्रां साथ॥
कहतौ बचन जिसा हट कीधा, पिसणां रत पीधा अणपार।
सिर तूटां लीधा पर साथां, हाथां नहँ दीधा हथियार॥'

जब आउवा के ठाकुर कुशालसिंह के यहां जोधपुर का पॉलिटिकल एजेन्ट कैप्टिन मेशन सिपली ठा० सगतसिंह के हाथ से मारा गया तब मोहबतसिंह ने लिखा था—

'हिन्दू इस्लामी नार रा रुप सझिया जहांन हाको,
समुद्रां बार रा भड़ां पाविया सौभाग।
म्हारांणी मल्लिका रे हुकम्मां धार रा मांझी,
छटक्के सार रा वळां जांणे हिन्द छाग।
गाढे मनां जाडे थण्डां झोकणा विड़ंगी गजां,
आडे अश्रु रुदन्नां अलाप छाडे आंन।
हुक्का घोम ज्पांरी संक न काढे नरेन्द्र हेको,
(जठे) आउवो तोपां रा धूंवां चाढे आसमांन।

अटक्के नपल्ले भूप भारती निरास एला,
महियां कटक्के छल्ले चल्ले गौरमेन्ट।
भटक्के रोसंगी भूरा वीर भोम भल्ले-भल्ले,
आउवा रे हल्ले कल्ले लटक्के एजेंन्ट।
कराळ काळ रा वीर समोवड़ी महाक्रान्त,
ताळ रा न कीधा नाद वैठा ओळो ताक।
थाळ रा नीर ज्यूं भूप थरक्के अथाग थाटां,
(जठे) गोपाळ रा पोता धिनो धूजाया गैणाक ॥'

दुर्गादत्त ने अँग्रेजों के विरुद्ध बलवंतसिंह हाड़ा की वीरता का वर्णन किया है—

'जुड़ै सेन थंडां जाडावाळी धोम जाळा री साबात जागी,
खंडां आडावाळा री लागी हाला री खुलास।
जोम गाडावाळी प्रलय काळा री उनागी जठै,
वागी हाडावाली नराताळी री बणास ॥
छायो धूंग्रे अयास धमंका सोर भंकां छूट,
घोर तोपां अमंखां चरेल पंखां घांण।
कसीस अढार टंकां ऊघड़ी परीर कंकां,
भड़ी वीर वंकां सीस असंकां भूसांण ॥'

अँग्रेजों के साथ भारतीय शक्तियों की जो मुठभेड़ हुई उसमें नरसिंहगढ़-नरेश सौभाग्यसिंहजी के महाराजकुमार चैनसिंहजी के साथ होने वाला युद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस युद्ध में अँग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध चैनसिंहजी ने वीर-गति प्राप्त की (१८२४ ई०) इस प्रसंग से अनुप्राणित होकर बुधसिंह ने वीर रस की जो अभिनव रचना की है, उससे युद्ध-वर्णन एवं भारतीय जन-मानस का स्वातन्त्र्य-प्रेम प्रकट होता है। अँग्रेज अफसर उस राष्ट्रीय वीर के शौर्य-पराक्रम को देखकर आश्चर्य चकित हो गये थे। कवि के इस गीत से उसके स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीयता एवं निर्भीकता की पुष्टि होती है—

'चले आवतां फिरंगी फौजां ऊससे क्रोधार चैनों,
चोळ चखी सारधारां ढाहणा चंचाळ।
ऊवकै आरावा आग हूवकै जोधारे अंगां,
(जठै) ताता जंगां पमंगां मेलिया निराताळ ॥

वगे वीर हाक जगे ज्वाळ तोपां जेग वार,
ससत्रां संभाळ ठाळ करे महासूर ।
कोमंडी कराळ जंगां मिले घड़ी प्रळे-काळ,
किरमाळों निराताळ वाजिया करूर ।।
उभै ओड़ा घाव वहै हकै चमू उभै ओड़ा,
घमोडां सावळां घोड़ां भड़ां दाव घाव ।
झटक्का हजारों वहै सरीरों वटक्का झड़ै,
रटक्का कटक्कां रिमां करै गाढेराव ।।
ईखे भांण आरांण तमासो तुरीतांण ऊभो,
वारंगा विमांणां मिले मगां व्योम ।
फीलो झंडा फरक्कै भनक्कै घाव तनां फावै,
घघक्कै लोयणां क्रोध जुड़ै रूपीघोम ।।
कटै गजां ग्रसुंडां प्रचंडां झड़ै तुंडा केही,
उभै फौजां थंडा वीर घुमंडा आपांण ।
लेवे मुंडा माहेस जोगणी झुंडा छाक लेवे,
जुड़ै आडाखंडा जोम छाकीया जोधार ।।'

और भी—

'वरै वरण जुंझार वडाळा, खळहळ रुघिर इळा पर खाळा ।
क्रोध चखां नटकै कळ चाळा, कंवर तणा भड़ लड़ै कराळा ।।
लाखों फिरंग तोड़ घण लाडो, गुमर धार रुपियो गुण गाढो ।
जुध सीहोर खेत कर जाडो, अणखीलो पडियो नर आडो ।।
फौजां लख पाछो नह फिरियो, गजबी वीर जंगां गेहरियो ।
विमळ उछाह अपछरां वरियो, इळ विच नाम अमर ऊबरियो ।।'

दलजी ने 'डूंगरपुर रा सोरठा, दूहा एवं गीत' में देश के लिए फिरंगियों से लड़ने वाले जसवंतसिंह को धोखा देने वाले सरदारों को प्रताड़ित किया है। यथा—

'मूंघा हालरा उगेर, वया पालणै हिंडाया मात,
पोखै केण कारणै, जिवाया थांनै पीव ।
लोकां लाज धारणै, फिरंगी हूंत झाट लेता,
सैर खाय घणी रै, वारणै देता जीव ।

आघा जाता मूंडौ लेर, पाछाई न आवणो छौ पीव,
करै सारा भेळा, क्यूं गमावणौ छौ कूंत।
आबरू थावतां वठै, पीवणो सही छौ आक,
जीवणो नहीं छौ, धणी जावतां जसूंत ।।'

लक्ष्मीदान ने डूंगजी-जवारजी के आगरा के युद्ध का वर्णन किया है—

'भिड़ियो इम ज्वार लियां भड़ संग, इसो फिर ईस सुण्यो नह जंग।
दीधी खग झाट पराक्रम आंण, घणां गढ़ छोड़ भगा फिरंगांण ।।
मुड्या नह केक तज्यो नह मांण, रह्या वे पूरबिया रढ़रांण।
तठै भड़ ज्वार तणा पैंतीस रया जंग जूट धिखंतां रीस ।।
सेखावतां रांण खळां भंज खेल पाछी सब दीध पलट्टण ठेल।
सबै नर आखत झोक अभंग, रिपु बहु ज्वार हण्या बिच जंग ।।
करै जुध जंग' र ताळा काट, जठै सब भेद लगायो जाट।
इण विध भेळयो आगरो, सधर किलो जिम सेज।
संक कछवाहां सूं सुणौ, गयो भाग अंगरेज ।।'

राजस्थान में शेखावत डूंगजी-जवारजी (काका-भतीज) के नाम प्रसिद्ध हैं। ये अंग्रेजों के इलाकों में धावा मारते थे और धनाढ्यों को लूटकर निर्धनों में धन बांट देते थे। एक बार अंग्रेजों ने डूंगजी को गिरफ्तार कर आगरा के किले में कैद कर दिया था। इसकी खबर जब जवारजी को मिली तब अपने वीरों को साथ लेकर आगरा पहुँचे और रात्रि के समय आक्रमण कर डूंगजी को छुड़ा लाये। चंडीदान महियारिया ने निम्न गीत में इन दोनों वीरों का वर्णन किया है—

'खावै आतंकां आगरो खांपां न मावै भमावे खळां, धावै थावै अजाण लगावै चौड़े धेस।
उगां भाण नाग वंसां माथै खगां राज आवे, दावै लागौ पंजावै फरंगी वाळा देस ।।
कंपू मार तेगां तीजी ताळी सो कुरंगी कीधी, जका बाघनूं रंगी प्रजाळी भुजां जोम।
मांनूं जाणै तारखी विहंगी काळी घड़ा माथै भूप ऊंगौ बंधू से फरंगी वाळा भोम ।।
पड़ै धोखा दल्ली वंसां कुरंभां चाढ़वा पाणी, आप मत्तो शेष घू गाडवा जाम आठ।
काकोदरां माथै खगांधीस जूं काढ़वा केवा, लागो केडै बाढ़वा हजारां जंगी लाठ ।।
तूटो व्योम वाट नरा ताळका विछूटो तारो, केता छूटौ प्राण आळक्का ताके कोप कूंप।
कहूं रूद्र माळक्का बिहंगां नाथ भूठो कना, रूठा गोरां माथै प्रळै कालक्का सा रूप ।।
भल्लों भाई सेखा राळे विखेरे सारकी भीच, सोरां सटै मार छावणी सोज सोजं।

मल्ले थाट हबोळा तारखी कांळी नाग माथै, फेरे दोळी भारकी भूरियाँ वाळी फौज ।।
लोही खाळ पूर पट्टां हजारां वैणने लागा, थट्टे रंभा गैण ने हजारां लागा थाट ।
रूकां झाट हजारां वैणने लागा काळ रूपी, लागा टूक व्हेण ने हजारां जंगी लाट ।।
रैण डंडा-अडंडां गवाने भीच वाग राका, खाग राका भूर डंडां अरिन्दां खाणास ।
पड़ै धाका खंड खंडां फैण नाग राका पीधां, बाही आगरा का झंडां ऊपरै बाणास ।।'

इसी प्रकार गंगादान, जीवराज, भारतदान एव गिरवरदान ने भी इस विषय पर यह गीत लिखा है। एक उदाहरण देखिये—

'खाग रा जोर धू खळां घूपटै खजाना खासा,
जठै दिल्ली आगरा सत्रासा आठूं जांम ।
खैगां खूर कीधां बंका सेखाणी ऊबांणै खांडै,
ठांणै कंपू गाहटै उठांणै ठांम-ठांम ।
ईखै सिवाहरो गोरा जिहांन रा सोच आंणै,
तांणै मूछां छत्री हिंदूथांन रा तमांम ।।'

७. रीति काव्य— चारण साहित्य में विषय-विस्तार के साथ-साथ काव्य-शास्त्र का प्रणयन हुआ जिसके फलस्वरूप विभिन्न काव्य-शैलियों की उत्पत्ति एवं विकास होने लगा। काव्य-शास्त्र सम्बंधी ग्रंथों के अन्तर्गत रस, छंद, अलंकार एवं नायिका भेद का विस्तृत एवं सम्यक विवेचन हुआ है। इस दृष्टि से वांकीदास, किसनाजी, स्वरूपदास, दुर्गादत्त एवं चिमनजी के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण का अनुमान है कि कविराजा वांकीदास ने रस तथा अलंकार का ग्रंथ लिखा था और उस ग्रंथ की बानगी के रूप में ३७ पद (गीत) 'वांकीदास ग्रंथावली' के तीसरे भाग में उद्धृत किये गये हैं। पुरोहितजी ने उनके एक अन्य ग्रंथ 'वृत्त रत्नाकर भाषा व व्याख्या' का भी अनुमान किया है जिसके उद्धरण भी उक्त ग्रंथावली में दिये हुए हैं। स्वतन्त्र रूप से इन ग्रंथों का पता नहीं चलता।

राजस्थानी के चारण साहित्य में 'रघुवर जस प्रकास' छंद-रचना का एक अद्वितीय लक्षण ग्रंथ है। इसमें ग्रंथकर्त्ता ने राजस्थानी काव्यों में प्रयुक्त विभिन्न छंदों के लक्षण प्रस्तुत करते हुए स्वरचित उदाहरणों के रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचंद्र का यशोगान किया है। साथ ही संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी के छंदों का अभिनव शैली में पूर्ण विवेचन किया गया है। कवि ने मुख्य

विषय छंद-रचना के लक्षणों एवं नियमों का बड़ी सरल एवं प्रसाद गुण पूर्ण भाषा में वर्णन किया है। रीति के अनुसार ग्रंथ पांच भागों में विभक्त है। छंद-लक्षण जैसे दुरूह एवं अप्रिय विषय को सरल एवं सुबोध बनाने की महत्त्वाकांक्षा से राम की लोकप्रिय कथा को उदाहरण के गीतों में खूब ही गूथा गया है।

प्रथम प्रकरण में मंगलाचरण, गणागण, गणागणदेव, गणागण का फलाफल, गण मित्र शत्रु, दोषादोष, आठ प्रकार के दग्धाक्षर, गुरु, लघु, लघु गुरु की विधि, मात्रिक गण, मात्रिक गणों के भेदोपभेद एवं उनके तथा छंद-शास्त्र के आठ प्रत्ययों—प्रस्तार, सूची, उद्दिष्ट, नष्ट, मेरु, खंडमेरु, पताका और मरकटी का संक्षिप्त वर्णन व विवेचन है। द्वितीय प्रकरण में मात्रिक छंद का वर्णन किया गया है। इसमें कवि ने कुल २२४ मात्रिक छंदों के लक्षण देकर उनके उदाहरण दिये हैं। लक्षण कहीं-कहीं पर प्रथम दोहों में या चौपाई में दिये गये हैं। फिर छंदों के उदाहरण हैं। कहीं-कहीं लक्षण एवं छंद सम्मिलित ही दे दिये गये हैं। इस प्रकरण में राजस्थानी की साहित्यिक गद्य-रचना के नियम भी समझाये गये हैं। उनके भेदोपभेद— दवावैत, वचनिका और वार्ता का भी संक्षिप्त विवेचन है। इस प्रकरण में चित्र-काव्य के भी उदाहरण कमलबंध, छत्रबंध आदि समझाये गये हैं। तृतीय प्रकरण में छंदों के दूसरे भेद, वर्णवृत्तों के लक्षण व उदाहरण दिये हैं। प्रारम्भ में कवि ने एक अक्षर के छब्बीस अक्षर के छदों के नाम छप्पय कवित्त में गिनाये हैं। ये समस्त छंद संस्कृत के हैं जिनका स्वतंत्र उदाहरण राजस्थानी में नहीं मिलता। तत्पश्चात् क्रमशः ११७ वर्णवृत्तों के लक्षण व उदाहरण दिये हैं। चौथे प्रकरण में राजस्थानी 'गीत' का विस्तारपूर्वक विशद वर्णन है जो इस ग्रंथ का मुख्य विषय है। ग्रंथकार ने गीतों के वर्णन में गीतों के अधिकारी, गीतों के लक्षण, गीतों की भाषा, गीतों में वयण सगाई, वयण सगाई के नियम, वयण सगाई और अखरोट, अखरोट और वयण सगाई में भेद, गीतों में नौ उक्तियां, गीतों में प्रयुक्त होने वाली जथायें, गीत-रचना के ग्यारह दोष एवं विभिन्न गीतों की रचना, नियम आदि का पूर्ण एवं सरल भाषा में विशद वर्णन किया है। राजस्थानी में प्राप्त छंद-रचना के लक्षण-ग्रंथों में इतना विस्तारपूर्ण एवं इतने गीतों का वर्णन किसी भी ग्रंथ में प्राप्त नहीं होता। इसमें ९१ प्रकार के गीतों के लक्षण आदि का विस्तृत वर्णन है। केवल गीतों का ही नहीं, उनके विभिन्न अंगों का वर्णन भी बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। गीतों के ११ प्रकार के दोष तथा वयण सगाई के प्रयोग का महत्त्व भी दर्शाया गया है। गीतों में वयण सगाई के

प्रयोग के उदाहरण कवि की काव्य-प्रतिभा के द्योतक हैं। छंद-शास्त्र में चित्र काव्य का अपना विशिष्ट स्थान है। साहित्यकारों ने इसे एक स्वतंत्र शब्दालंकार का भेद माना है। संस्कृत एवं व्रजभाषा में यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है किन्तु राजस्थानी काव्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इस ग्रंथ में 'जाळीवंध वेलियो सांणोर' गीत का चित्र-काव्य के रूप में उदाहरण मिलता है। पंचम प्रकरण में ग्रंथाकार ने एक राजस्थानी छंद विशेष निसांणी का वर्णन किया है। प्रकरण के आरंभ में प्रथम निसांणी के लक्षणों को देकर फिर उदाहरण दिये गये हैं।

गीत का अधिकारी कवि कौन है, इसका वर्णन करते हुए एक स्थान पर कवि कहता है—

'अधिकारी गीतां अवस, चारण सुकवि प्रचंड।
कोड़ प्रकारां गीत की, भुरधर भाखा मंड॥'

यहां 'जाळीवंध वेलियो सांणोर' का यह लक्षण दिया जाता है—

'आद अठारै पनर फिर, सोळ पनर क्रम जेण।
अंत लघु सांणोर कहि, तवै वेलियौ तेण॥
नव कोठां मझ अेक तुक, लखजै चित्त लगाय।
उरध अधविचलौ आखर, दौवड़ वंच दिखाय॥
लखियां दीसै नव अखिर, ऊचरियां अगीयार।
जाळीवंध जिण गीत रौ, नांम सुकव निरधार॥'

और भी—

'साखी रे भांण नसापत सारै, कीध महाजुध कीत सकांम।
साच तकौ कज साधां सारत, राच महीप सु रांमण रांम॥
दासरयी सुखदाई सुन्दर, नमै पगां सुर नर आनूप।
नरकां मिट जन तारै नकौ, भाख पयोध प्रभाकर भूप॥
पती-सीत भूतप परकासी, वासी सिव उर वास विसेस।
आपी तसां लंक आसत अत, नरा सत्र हण नमौ नरेस॥
कळ नावै नेड़ौ कह 'किसन', आव थरु सुख आसत आय।
दख नांके जैरै दन अदना, नाय थयां समना रघुनाय॥'

महात्मा स्वरुपदास रचित 'पांडव-यशेन्दु-चंद्रिका के आरम्भ में रस,

अलंकार, छंद आदि काव्यांगों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। दुर्गादत्त ने नायिका भेद के जिस ग्रंथ का निर्माण किया है उसका पता नहीं चलता।

रीति काव्य की दृष्टि से चिमनजी कृत 'जसवंत-पिंगल' एवं 'भाखा-प्रस्तार' दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। 'जसवंत-पिंगल' में ग्रंथकर्त्ता ने छन्दों के नियम छन्दबद्ध रूप में वताये हैं जिनमें अनेक नवीन प्रणाली के हैं। सैकड़ों छन्दों का यह ग्रंथ अभाग्यवश नष्ट हो चुका है केवल कुछ अंश ही प्राप्त हुआ है। उदाहरण के लिए छंद मल्हार एवं केवळ यहां दिये जाते हैं—

(छंद मल्हार)

'ध्रुबँ क्रोध वड जोध पर बोध रणधीर।
आगमण प्रसंण धरण पंचायण गहीर।
सूरहर समर कर निडर अर साल।
मछर धर जोध गिर उजागर माल॥'

(छंद केवळ)

'भूपाळ वडा पण भाखोजी।
दाताख सूरज दाखोजी।
पांगी प्रथंमाद प्रमांणँजी।
मारूपत मौजसु मांणँजी॥'

'भाखा-प्रस्तार' में साहित्य विषयक तथा काव्य के आवश्यक एवं उत्तम लक्षण तथा गणादि का सुन्दर चित्रण है। दुर्भाग्यवश यह ग्रंथ तो बिल्कुल ही नष्ट हो चुका है। कोई मामूली अंश उपलब्ध होता है। ग्रंथ के अंतिम पृष्ठ पर कवि का पता लिखा हुआ है। गणों का रूप, फल, देश, लक्षण, जाति आदि का वर्णन अवशिष्ट अंश में देखने को मिलता है। यह ग्रंथ भी जोधपुर-नरेश को सम्बोधित किया गया है। उदाहरण के लिए नगण भेद दिया जाता है—

'नगण तीन लघु नेम, पनंग जिण देव प्रमांणँ।
व्रछी रास वाखांण, नखत पण हस्त निपांणँ।
चंद्र दछा पैचांण, जात कुळ रूद्र जपीजै।
असत्री दे आक वे, देवगण जेण दखीजै।
आरवळ वधँ दौलत अखां, सेस वचन निरवांण सत।
कव चिमन कहै पिंगल कयो, परख जांण जोधांण पत॥'

८ **शोक-काव्य (मरसिया)**— दानवीर क्षत्रिय नरेशों एवं जागीरदारों की दिवंगत आत्माओं के प्रति शोक प्रकट करना चारण काव्य की मुख्य प्रवृत्ति है। इसके अन्तर्गत कवियों ने गहरी संवेदनाओं का प्रकाशन किया है। इसके अतिरिक्त लोक-विश्रुत सन्त-महापुरुषों पर भी उन्होंने मरसिये कहे हैं। इस दृष्टि से ब्रह्मानंद, नवलदान, बुधजी, बुधसिंह, चंडीदान, अनजी नारजी, चतरजी, स्वरूपदास एवं लक्ष्मीदान के स्फुट छंद अवलोकनीय हैं।

ब्रह्मानंद ने अपने गुरु स्वामी सहजानंद के बिछुड़ जाने पर उनके पुनर्मिलन की मधुर कल्पना की है—

> 'मेरे मन विरह के बान, गये हैं लगाय के;
> जीयत ब्रह्मानंद मिलेंगे आय के।'

जब एक बिल्ली ने सांईदीन के मुर्गे को मार दिया तब उनके कहने से नवलदान ने यह मरसिया बनाया था—

> 'कायर कूंकड़ा कह कीजै कांसू काल बडो वे काजा।
> जो तोने जांणु जावतड़ो जतन करावत जाझा॥
> आधी रात मेह पण आयो, झार पवन दे झोळा।
> दगो कियो मिनड़ी पुळ देखे, बाहड़ मीठा बोला॥
> बोळ सुणातो ऊंचो वैसे, हरिये रूष स हेतो।
> तीजा पहर तणे सुर तीखे, दोय टहूका देतो॥
> फूले फळे आंबली फूले, एकर सूं बळ आवे।
> गहरा वचन दोय चोगाळा, सैण ने समलावे॥'

बुधजी ने महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के देवलोक होने पर यह छप्पय कहा है—

> 'आज कलू आवियो आज मरजादा उट्ठी।
> आज हुवो अन्याय आज ध्रम पाजा फूट्टी॥
> आज सोच उपन्नो आज भागी धन आसा।
> मान आज महाराज कियो वैकूंठो वासा॥
> आज रो दीह ऊगो अरक, भूंडे रंग भयान रो।
> आज री दीह षोटो अरक, मरण सुनायो मान रो॥'

कवि बुधसिंह ने महाराज महतावसिंहजी (नरसिंहगढ़) के देवलोक होने

पर अनेक सोरठे लिखे जिनसे उनकी शोक-संवेदना प्रकट होती है—

'मरण तूझ महताब, असह अचांणक आवियो।
खांवंद कियो खराब, मोनू बूढापे महीं ॥
हियो फटै दुख हेर, कटै विपत रा दिवस किम।
वीसरगो इण वेर, माळवपत महताबसी ॥
हरि घर नांहि हिसाब, जाहर मन में जांणियो।
माळवपत महताब, जोखमिये की जांणेन ॥
दीन दया द्विज देव, पूजा संकर में निपुण।
अहियो अलक अभेव, ग्रिगहियो महताब नृप ॥
औ नरसिहगढ़ आज, दिरंगो दीसे तो विना।
रोर मिटावण राज, घणी आब मेहताब धर ॥'

चंडादान ने हाड़ा बलवन्तसिंह (बूंदी) के वीरगति प्राप्त करने पर निम्न दोहे-सोरठों में बड़ा ही हृदयद्रावक चित्र खींचा है—

'वित पातां, डर बैरियां, पळ ग्रीधां परवार।
बळवँत हाड़ा तो बिना, देसी कुण दातार ॥
हेड़ाऊ कुल हैमरां, मुंहड़ै दीसै मोळ।
बळवँत हाडा बाहिरा, तुरियां घटिया तोल ॥
हट नभियौ हिंदवाण, दुरजोधन रावण जिसौ।
चावौ भड़ चहुवाण, बढियौ आज बळंतसी ॥
दुसहां तोड़ण दंत, मोड़ण रण घड़ मैंगळां।
बूंदी धर बळवंत, एकरसां फिर आयजे ॥
शूरा चामल सीस, विढ़तां पिंड कीधा सुबप।
आखै पितर असीस, बसजे सुरग बळ तसी ॥'

महाराव शिवसिंह (सिरोही) के कैलाशवासी होने पर अनजी नारजी ने यह मरसिया कहा था—

'कर तपसा करुर तखत पर गादी तपीयो,
जगता हर गुण जांण जगत पत नांम पण जपियो।
कर देही कल्याण वले अल नाम वध्यारो,
क्षत्री धरम सो धार पछे वैकुंठ पध्यारो।

दरसण षट पालण दनी देणकर मत दागणां,
शिवपरी फेर प्रिछत सवो मले-न पाछो मांगणां।
जण तपसा रे जोर करुर तप राजस कीनो,
जण तपसा रे जोर दान केई विप्रां दिनो।
जण तपसा रे जोर भाखर कै वंका भलीया,
जण तपसा रे जोर गढपत कै शत्रु गलीया।
वेरी साल सुतन ताला बिलंद वड़े हत कीत वधावियो,
सो ताप सेहत सूरज सवो सारणेश्वर सधावियो।
पछम धर मेद पाट मही कांठो मालागर,
धर वागड ढुंढाड धुंधकार हुम्रो ऐती धर।
ध्रम मुरत छत्र धार बड़ो दातार बखाणे,
सुतवेरा सरीयंद जश समदां तट जांणे।
वड हय दलो मंडल वचे रव करण जश रमियो,
सरताण हरो सूरज सवो आवुधर आथमियो ॥'

चतरजी ने महाराणा जवानसिंह (उदयपुर) के स्वर्गवास होने पर यह शौक-गीत लिखा है—

'भूलै नह सहर मुलक नह भूलै, पँडित न भूलै पाणा।
भड़ कव पासवान किम भूलै, रूंष न भूलै राणा ॥
उदियापुर गोषां अनदाता, निरव्रत पणो न धारो।
करवा सहल भ्रूप हेकर सां, पाछा महल पधारो ॥
भाला हथां जोध भीमाणी, वाल्हा सुरपुर वासी।
पांत विराज विलाला पातां, प्याला मद कुण पासी ॥
सत आचार अयग रा सहजां, षग रा षलां षवाना।
मन मोहण थिर चर षग मृग रा, जगरा मुकुट जवाना ॥
दीवाळी होळी दसरावै, गौरिल हूर गवाड़ा।
असवारी थारी कद आसी, मिणधारी मेवाड़ा ॥
षेलण फाग पास षिलवतियां, सूरां रमण सिकारां।
अेक वार पडवै कर आजो, तीजां तणा तिवाँरां ॥'

स्वरूपदास महाराजा बलवंतसिंह (रतलाम) को भावुकतावश पुनः पृथ्वी पर आने के लिए कहते हैं—

'वसू पाछा आवौ कहै हाडौती माढ रा बासी ।
दाखै ढूंढाड़ रा बासी भुरै दाम-दाम ।।
कमंधेस बासी मारवाड़ रा चितारै केही ।
त्यूंही मेवाड़ रा बासी चींतारै तमाम ।।
सेल ढाबौ छत्रधारी दहल्लां मनावौ सत्रां ।
करौ बाग त्यारी गोठां हल्लां कहीप ।।
भड़ां वाळा फाटै हिया सहल्लां करेवा भूरा ।
महल्लां अनेक मौज चितावौ महीप ।।
छूटौ नीर चखां सन्तराम ऊँचरंता छेला ।
सरूपदास री छाती उभेला समंद ।।
जामी आज म्हांनै छोड़ अकेला कठीनै जावौ ।
कोयलां बारंगां हेला दे रही कमंध ।।
कासूं जोर चालै ठेट हरी रै अगाड़ी कूंतो ।
दूसरौ न पूंतौ उठै अक्रमां दळूंत ।।
तजे मोह माया हुवौ बासी सैंजोत रौ तूं तो ।
बामीबंध हूं तो तोनै हूंतो न भूलूं बळूंत ।।'

लक्ष्मीदान ने जयपुर राज्यान्तर्गत गीजगढ़ के ठाकुर चांपावत राठौड़ कानसिंह के लिए कहा है—

'अन धन बगसण ईहगां, दुजौं समापण दांन ।
एक रसौं फिर आवजो, कळ वृछ चंपा कांन ।।'

६. सती-माहात्म्य— आलोच्य काल में चमनजी ने महाराणा जवानसिंह (उदयपुर) की मृत्यु होने पर उनकी दो रानियों एवं छः उप-पत्नियों के सती होने का सांगोपांग वर्णन किया है। यथा—

'करे असनान जळ गंगबळ कुल कमळ, साज तन भलळ भूषण सुहातै ।
वमल मन सजी करतार उचरै वयण, सहण झळ अनळ भरतार साथै ।।
वत दुजां दांन धारां कनक बूठती, प्रभत मुख हजारां संध पाठां ।
तेज तन प्रकासे भाण बारा तरह, कंथ लारा हली चढण काठां ।।
उभै चव पासवानां उमंग आणियो, चता सुब जाणिया उसेज चाहे ।
कीध भटियाणियां रीत सूरज कुंवर, राणियां रीत बाघेल राहे ।।

पेंड असमेद जग परठ परमाण रौ, वचन निरबाण रौ सांच बीदो।
निभायो पतबरत नेह नर बाण रौ, कर हरक रांण रौ साथ कीदो॥
त्रँबालां ढोल बज ऐक तालां तठै, छजे नभ प्रजाळा धौम छायौ।
तज महल सुढाळा लार खामँद तणै, तती झाळां सैहल सुवप तायौ॥
अळा कीरत रही पखां उजवाळतां, गाळतां अगन झळ तन गुलाली।
भीमतण साथ अह नर सुरां भाळतां, चमर सर ढाळतां लेर चाली॥'

इस विषय को लेकर कवि ने दोहे-सोरठे भी लिखे हैं। यथा—

'साजां जरतारां सजै, तन जवहारां तेज।
हींदू-पत लारां हलौं, सहण अंगारां सेज॥
ढोलां सद खारा ढमक, अक बक जग अवरेख।
सुर मंडळ थायौ सुरख, सतियां आठ सुपेख॥
माथे धारण मौड़, भटियाणी कीदौ भलां।
चाड़े जळ चीत्तौड़, सतपुर पूगी रांण सथ॥
बाघेली रजवट बडम, छेली वार संभाळ।
सेजां रँगरेली समी, झेली पावक भाळ॥'

१०. **प्रकृति-प्रेम**— चारण कवियों का प्रकृति के साथ नैसर्गिक प्रेम नहीं दिखाई देता। यही कारण है कि इस काल में भी ऐसे कवियों का अभाव है जिन्होंने अपने काव्य में इसके विविध रूपों को चित्रित किया हो। अधिक से अधिक एक-दो कवियों में ही इसका सामान्य चित्रण पाया जाता है। केवल महादान एवं मानजी ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में रुचि प्रकट की है। महादान के ऋतु-वर्णन पर कतिपय गीत लिखे बताये जाते हैं किन्तु वे उपलब्ध होते नहीं।

मानजी का प्राकृतिक वर्णन प्रासंगिक है। उदयपुर में गणगौर के मेले का वर्णन करते समय कोयल, पपीहा आदि का स्वर सुनाई देता है, चारों ओर जल का सुन्दर दृश्य मोहित कर देता है, यहां तक कि उन्हें कैलाश का स्मरण हो आता है—

'कोयल दिये टहूकड़ा, पपिहो करं पुकार।
पांणी अण छोळां पडै, घर अंबर इक धार॥
घर अम्बर इक धार, कइंद्र अछेह के।
साचो झगड़ो माचो नेह सनेह के॥

करै ध्यांन महेस पती कयलास को।
मिलै उदैपुर वास हवा चत्रमास को।।'

११. ऐतिहासिक काव्य— आलोच्य काल के अधिकांश चारण कवियों में कोई न कोई ऐतिहासिक प्रसंग उपलब्ध हो ही जाता है किन्तु विशुद्ध रूप से वांकीदास, किसना, दयालदास एवं चिमनदान के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से वांकीदास एवं दयालदास की रचनायें ऐतिहासिक गद्य-साहित्य के और किसना एवं चिमनदान की रचनायें ऐतिहासिक पद्य-साहित्य के अन्तर्गत आती हैं।

वांकीदास की इतिहास में वड़ी रुचि थी। वे इतिहास सम्वंधी विषयों का निरन्तर संग्रह अपनी डायरी में किया करते थे। 'वांकीदास-री ख्यात' उनके इसी इतिहास-प्रेम का फल है। यह एक अमूल्य ग्रंथ है। डॉ० गौरीशंकर हीराचंद के शब्दों में— 'पुस्तक वड़े महत्त्व की है।.... ग्रंथ क्या है. इतिहास का खजाना है। राजपूताना के तमाम राज्यों के इतिहास-सम्वंधी अनेक रत्न उसमें भरे पड़े है।.... उसमें राजपूताना के वहुधा प्रत्येक राज्य के राजाओं, सरदारों, मुत्सद्दियों आदि के सम्वंध की अनेक ऐसी वातें लिखी हैं जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है। उसमें मुसलमानों, जैनों आदि के सम्वंध की भी वहुत सी वाते हैं। अनेक राज्यों और सरदारों के ठिकानों की वंशावलियां, सरदारों के वीरता के काम, राजाओं के ननिहाल, कुंवरों के ननिहाल आदि का वहुत कुछ परिचय हैं। कौन-कौन से राजा कहाँ-कहाँ काम आये, यह भी विस्तार से लिखा है। अनेक राजाओं के जन्म और मृत्यु के संवत्, मास, पक्ष, तिथि आदि दिये हैं।'

'वांकीदास-री ख्यात' में लगभग दो हजार वातों का संग्रह है। ये वातें छोटे-छोटे फुटकर नोटों के रूप में हैं। अधिकांश वातें २-३ अथवा ४ पंक्तियों की है।' २-३ पृष्टों तक चलने वाली थोड़ी ही हैं। प्रामाणिकता की दृष्टि से राजस्थान की अन्य सभी ख्यातों की अपेक्षा यह अधिक विश्वसनीय है। ये वातें राजपूतों के इतिहास से सम्वंधित है जिनमें राठौड़ों की वातें संख्या में सवसे अधिक हैं। इसके पश्चात् राजपूतों की विविध शाखाओं के राज्यों को १-१ करके लिखा गया है। सर्व प्रथम जोधपुर राज्य के राठौड़ों को लिया गया है फिर ठिकानों को और फिर उनके अन्यान्य राज्यों तथा ठिकानों को। इसके पश्चात् गहलोतों, यादवों, कछवाहों, चौहाणों आदि शाखाओं को लिया गया है। राजपूतों के पश्चात् मराठों, सिखों, मुसलमानों और अंग्रेजों की वातों को स्थान दिया गया है। इसके

पश्चात् ब्राह्मण तथा ओसवाल आदि जातियों और जैनों के गच्छों की बातें दी गई हैं। आगे धार्मिक, भौगोलिक तथा प्रसिद्ध व्यक्ति और वस्तुओं की बातें देकर अंत में फुटकर बातों के अन्तर्गत नीति विषयक बातें, दूहा-गीत आदि कवितायें तथा अस्पष्ट और अधूरी बातों को रखा गया है। इस संग्रह में कोई क्रम नहीं है अत: श्रृंखलाबद्ध वृत्तान्त नहीं पाया जाता। एक ही व्यक्ति के सम्बंध की बातें अनेक भिन्न-भिन्न स्थानों पर आई हैं। डॉ० ओझा ने इन्हें क्रमबद्ध रूप देना चाहा था पर यह कार्य हो नहीं पाया। अब प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने यह कार्य पूरा कर दिया है और उनके कुशल सम्पादन में ग्रंथ राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मंदिर, जयपुर से प्रकाशित भी हो चुका है।

ऐतिहासिक काव्य रचयिताओं में दयालदास का विशिष्ट स्थान है। 'बीकानेर रे राठौड़ों री ख्यात', 'आर्य आख्यान कल्प द्रुम', 'देश दर्पण' एवं 'बीकानेर रे राठौड़ों 'रा गीत' नामक रचनाओं में महत्त्वपूर्ण प्रसंग मिलते हैं। इन्होंने बीकाजी और करनीजी, भाटियों पर विजय, बीकानेर स्थापना, बीकाजी की जाटों पर विजय, अन्य विजय, द्रोणपुर पर विजय, कांधलजी का मारा जाना, सारंगखां पर आक्रमण, जोधपुर पर चढ़ाई, रिड़मल और हिंदाल पर आक्रमण, लूणकरण का विवाह करने चित्तौड़ जाना, जैसलमेर पर चढ़ाई आदि घटनाओं का ब्यौरा दिया है। साथ ही रावश्री नरौजी, राव श्री लूणकरणजी, राव श्री जैतसीजी, राव श्री कल्याणसिंघजी, राजा श्री रायसिंघजी, राजा श्री दलपतसिंघ-जी, सूरसिंघजी, करणसिंघजी एवं अनूपसिंघजी का भी वर्णन है। राजाओं एवं मुसलमान शासकों की जन्म-पत्रिकायें भी हैं। जान पड़ता है, दयालदास अपने समय का एक प्रभावशाली व्यक्ति था। उसका स्थान मूता नैणसी से कुछ ही नीचा है।

किसना भी इतिहास-प्रेमी था। ऐतिहासिक सामग्री का चयन करने हेतु जब कर्नल टाड ने मेवाड़ का भ्रमण किया तब ये उनके साथ थे। चारणों के यहां पड़ी हुई बहुत सी सामग्री इन्हीं के परिश्रम से उन्हें प्राप्त हुई थी। इन्होंने महाराणा भीमसिंह (उदयपुर) की आज्ञा से 'भीम विलास' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें महाराणा का जीवन-वृत्तान्त है। इसमें उनके शासन-काल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। इतिहास के विद्यार्थियों के लिए इसका अनुशीलन उपयोगी है।

ऐतिहासिक दृष्टि से चिमनदान कृत 'सोढ़ायण' ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। इसमें ऊमरकोट के सोढ़ा राजपूतों का पूरा इतिहास दिया हुआ है। सोढ़ा राजपूतों एवं सूमरे मुसलमानों के बीच युद्ध-वर्णन में कहीं-कहीं अतिशयोक्ति से काम अवश्य लिया गया है फिर भी ग्रंथ में आई हुई घटनायें सच्ची हैं।

१२. भाषा, छन्द एवं अलंकार— राजस्थानी भाषा को समृद्ध बनाने में इस काल के कवियों का योगदान स्तुत्य है। इस दृष्टि से वीर काव्य के रचयिताओं ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। वस्तुतः ऐसे कवियों से ही डिंगल को नये-नये शब्द मिले हैं और वह पृथक भाषा होने का दावा करती है। कृपाराम, बांकीदास, चंडीदान, मोहबतसिंह, सादूदान, गिरवरदान, तेजराम, रामलाल, रामलाल आढ़ा, चिमनदान, चंडीदान महियारिया की भाषा विशुद्ध राजस्थानी का उदाहरण है बांकीदास की भाषा अत्यंत प्रौढ़, परिमार्जित एवं विषयानुकूल है। उनकी वर्णन-शैली संयत और स्वाभाविक है। प्रसाद गुण उसकी एक ऐसी विशेषता है जो डिंगल में बहुत कम पाई जाती है। अन्य कवियों की भाषा भी प्रौढ़ है। रामदान, महादान, नवलदान, नाथूराम, लच्छीराम, कृपाराम, मायाराम, आवड़दान, मान, सायबदान, इन्दा. खोड़ीदान, गोपालदान, किसना, भोमा, शिवदान, दुर्गादत्त, मोड़-दान, कनीराम, स्योदान, लक्ष्मीदान प्रभृति कवियों ने अपनी रचनाओं में भाषा की शुद्धता का ध्यान रखा है। इनमें गोपालदान, किसना एवं स्योदान की भाषा विशेष परिष्कृत है और उनकी रचनाओं में ऊंचे पांडित्य का परिचय मिलता है। कतिपय कवियों ने व्रजभाषा को भी अपनाया है। एतदर्थ उनकी रचनाओं में राजस्थानी एवं व्रज दोनों के शब्द आ गये हैं। ब्रह्मदास, राधावल्लभ, गंगादीन, कोजूराम, जसराम, बदनजी, महात्मा स्वरूपदास, चतुरदान, दुलेराम, मंगलदास आदि कवि इसी श्रेणी में आते हैं। ब्रह्मदास की भाषा में राजस्थानी, व्रज, गुजराती और कच्छी का मेल है। उनमें एक महान संत कवि के योग्य भाषा-शैली का चमत्कार देखने को मिलता है। इनके अतिरिक्त संस्कृत का प्रभाव भी है। प्रौढ़ावस्था में लिखे गये पदों की भाषा प्रायः शुद्ध है। उन्होंने भिन्न-भिन्न भाषाओं का ज्ञान होने पर भी रसोत्पत्ति में कोई बाधा नहीं आने दी। महात्मा स्वरूपदास की भाषा पर व्रज का प्रभाव होने पर भी वह सरल एवं परिमार्जित है और हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव तथा विषयगत लालित्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह उल्लेखनीय है कि चंडीदान ने डिंगल को पिंगल के प्रभाव से बचाया है, यद्यपि उन्होंने इन दोनों में काव्य-रचना की है। राजस्थानी के नियमों की रक्षा करते

हुए भी जिन कवियों ने भाषा को सरल बनाने का प्रयत्न किया है, उनमें ओपा, रायसिंह एवं रामनाथ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ओपा में सरसता एवं कोमलता देखते ही बनती है। रायसिंह की भाषा जन-साधारण के अच्छी तरह समझ में आने वाली है। रामनाथ की भाषा सरल होते हुए भी प्रवाहमयी एवं हृदय पर चोट करने वाली है। डिंगल पर श्रुतिकटुत्व होने का आरोप है पर रूपा, वखतराम, हरिसिंह, हमीर, सूर्यमल, सोम, हरा, जासा, भगवानदान, बुद्धा आदि कवियों ने भक्ति के क्षेत्र में भी उसका सफल प्रयोग कर दिखाया है।

आलोच्य काल में छन्दों की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं दिखाई देती। कतिपय ग्रंथ-प्रणेताओं ने विभिन्न छंद अवश्य अपनाये हैं जिनमें ब्रह्मदास, सालूदान एवं चिमनदान के नाम उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मदास ने अमृतध्वनि, रेंणकी, भुजंगी, मोतीदाम, नाराच, छप्पय, चंदावला आदि छंदों में रचनायें लिखी हैं। सालूदान के अधिकांश गीत या तो जांगडो हैं अथवा त्रकूट बंध। इसके अतिरिक्त उन्होंने दोहा, छप्पय, नीसाणी, रेंणकी छंदों का प्रयोग किया है। चिमनदान ने दोहा, छप्पय त्रोटक, भुजंगी, पद्धरी, मधुर, नीसाणी, रेंणकी, मोतीदाम एवं रोमकंद छंदों में काव्य-रचना की है। फुटकर कवियों ने अधिकांश में दोहा, गीत एवं छप्पय ही लिखे हैं। दोहा लिखने में रामदान, वांकीदास, नवलदान, महादान, मायाराम, रायसिंह एवं रिवदान सिद्धहस्त हैं। गीत रचयिता तो बहुतेरे हैं जिनमें ओपा, नाथूराम, इन्दा, कोजूराम, खोड़ीदान, चंडीदान, गिरवरदान, चतरजी, दुर्गादत्त, कनीराम, मोड़दान स्योदान, भारतदान आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मुख्यतः गीत बड़ा साणौर, छोटा साणौर एवं सुपंखरो का प्रयोग किया है। चंडीदान ने छंदों की गति का विधिवत् ध्यान रखा है। छप्पय लिखने वालों में सायबदान, किसना एवं भोमा ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनके अतिरिक्त गोपालदान के पद एवं सवैये लोकप्रिय हुए हैं। नवलदान ने कुंडलिया भी लिखी हैं।

चारण कवियों का अलंकारों के प्रति कोई आग्रह नहीं दिखाई देता फिर भी चार-पांच कवियों में इनका अच्छा निर्वाह हुआ है। इस दृष्टि से वांकीदास का स्थान अद्वितीय है। अलंकारों पर उनकी दृष्टि कुछ विशेष थी, मुख्यतः अर्थालंकारों पर। वैसे तो उनकी रचनाओं में प्रायः सभी अलंकार मिल जायेंगे किन्तु जिन-जिन अलंकारों में उनकी विशेष रुचि थी, उनके नाम इस प्रकार हैं— अप्रस्तुत

प्रशंसा, हेतु, उदात्त और समुच्चय। इनमें भी अप्रस्तुत प्रशंसा की ओर उनका झुकाव अधिक था। उन्होंने ये अलंकार संस्कृत-हिन्दी से ही लिये हैं। 'धवल-पचीसी' एवं 'नीति मंजरी' में कुल १४ प्रकार के अलंकार आये हैं– हेतु, विचित्र, सम, आक्षेप, अप्रस्तुत प्रशंसा, समुच्चय, विधि, उदात्त, अधिक. अनन्वय, संभव, निरुक्ति, विषाद और विनोक्ति। 'नीति-मंजरी' में १२ प्रकार के अर्थालंकार हैं– समुच्चय, विचित्र, उदाहरण, दृष्टान्त, सम, हेतु, अप्रस्तुत प्रशंसा, उदात्त, परिणाम, उपमा; क्रम और व्याघात। ओपा में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा जैसे सामान्य अलंकारों का ही स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। चंडीदान में वयण सगाई का प्रयोग द्रष्टव्य है। इसी प्रकार सालूदान एवं चिमनदान ने उपमेय के लिए उपमान का उपयुक्त विधान किया है। शेष कवियों में साधारण अलंकार ही प्रयुक्त हुए हैं।

(ग) गद्य साहित्य :— इस काल में 'ख्यात' एवं 'वात' संज्ञक रचनायें उपलब्ध होती हैं। इतिहास का ही दूसरा नाम ख्यात है। वात में किसी व्यक्ति, जाति, घटना अथवा प्रसंग का संक्षिप्त इतिहास होता है। आकार में ख्यात बड़ी होती है और वात छोटी। ख्यात को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक, जिसमें क्रमबद्ध इतिहास मिलता है और दो, जिसमें क्रम न होकर पृथक-पृथक वातों का संग्रह होता है। इनके अतिरिक्त गद्य की अन्य रचनायें भी जिनमें दवावैत, वचनिका आदि के नाम लिये जा सकते हैं, इस काल में लिखी गयीं। रीति-ग्रंथों की व्याख्याओं एवं काव्य-ग्रंथों के बीच-बीच में भी गद्य के उदाहरण पाये जाते हैं। इस प्रकार पद्य के साथ-साथ गद्य का विकास भी उत्तरोत्तर होता गया।

आलोच्यकाल में वांकीदास, रामदान, बुधजी, किसना, दुरगादत्त, दयालदास, एवं खुमाण नामक लेखकों ने गद्य की विभिन्न शाखाओं को पुष्पित करने में अपना योगदान दिया है। इन सब में वांकीदास की सेवायें सराहनीय हैं। इन्होंने स्वतंत्र रूप से एक 'ख्यात' का निर्माण किया है जिसका महत्त्व ऐतिहासिक ही नहीं, साहित्यिक भी है। यह गद्य की एक अत्यन्त प्रौढ़ एवं उत्कृष्ट रचना है जिसके अन्तर्गत अक्रमबद्ध रूप से भिन्न-भिन्न बातें हैं। इनमें रोचकता का अभाव नहीं है। अनेक बातों में पढ़ते समय कहानी का सा आनन्द आता है। उदाहरण के लिए फिरंगी विषयक यह वार्ता दी जाती है—

'अंगरेज कहै सीपसूं मोती प्रगट हुवै, सीपनूं चीर मोती लोक लियै तैरी ऊपर काड्या पवन ऊपर है, इणनूं पायदार मत जाणो, मांस खाणो ईसे किताब में कह्यो है नहीं नै थें सरब जंतुआं रो मांस खावो सो क्यों ? ओ प्रश्न कियो, अंगरेज उत्तर दियो— कासमीरिया रै धरम री कितावां में त्रियां रै माथे पाग बांधणी न कही है। पिण कासमीर में सरदी बहोत, इण कारण सूं प्रथम अेक औरत पाग बांधी, पछै देखा-देखी सूं सारी कासमीरणियां पाग बांधी, हमै देसांतर में रहै जिकेही कासमीरणियां पाग बांधै है, परंपरा ठैरायी, यूं फिरंग में सरदी बहोत जिण सूं हकीमां मांस खाणो अंगीकार कियो, अब देसांतर में ही फिरंगी मांस खावे है ।।'

रामदान कृत 'भीम प्रकाश' के बीच-बीच में गद्य मिलता है जिसकी भाषा बड़ी ही उन्नत है। निम्न उदाहरण में लेखक ने गणगोर के मेले का वर्णन किया है—

'यण रीति उदियापुर सहर गणगोर रा हगाम मंडिया। सागर री तीर पागड़ा छांडिया। ऊंचै ढाळ तषत निवास कियो। सो जाण जैक सत-सुक्रत रो सिंघासण प्रगट थियो। तिकण रै सीस श्री दीवाण आप विराजिया। भाई सगा सोळा ही उमराव आप-आप री बैठक हाजरि थिया ।।'

बुधजी ने मायाराम दरजी की बात लिखी है जिसका राजस्थान में काफी प्रचार है। इसमें दयाराम एवं जसां के विवाह का वर्णन किया गया है। भाषा-शैली रोचक है और मनोरंजक भी। इसमें नाटकीय संकेत भी मिलते हैं। पात्रों की भावनाओं के साथ प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। यथा—

'वधाइदार नै पांच सै मोहरां वधाई मे दीधी नै मालकीनै कह्यौ— थूं सांमी जाय। भादरवा की घटा पण आयनै लूंबी छै। मुधरी-मुधरी बूंदां पडै छै। राव बषतावर सिंग असवारी कीघी छै। सो पैतीस हजार नरुपोता सोनैरी साकतां गजगाहां मै गरक कीया थका वाजार में घोडा उछकावै छै। महोलां-महोलां हजारां सहेलीया ऊभी गावै छै। जकण वषत मै जांनरी कैतूल कीधा सरीषा घोडा, सिरदार लीधा, मयारामजी पण आया छै। रंग-राग उमेदवाराम (मैं) छाया छै। सो जसां कहै— मालकी ! थूं सांमी जा। जद मालकी कहै— आ तो मेह अंधारी रात छै नै जण मै रावरी असवारी रो लोक गलीयां में नहीं छै। मयारामजी की कसी षवर पडै ? जद जसां कहै— सूरज वादलां मै ढकीयो कदी रहे ? अण ऐह ळांणा मयारामजी नै ओलष लीजै ।।'

बुधजी ने दवावैत की भी रचना की है जो तुकान्त है। एक उदाहरण निरर्थक न होगा—

'बरसायत श्रावण की बारी छै, आपके जावण की त्यारी छै। जमी नीला सिणगार धारसी, जलां सिणगार उतारसी। मोरीया महकसी, डेडरा डहकसी, व्रिलीगन भणकसी, भमरा भणकसी। सीतल पवन बाजसी, मुधरो मेह गाजसी। भाखरे री छीयां लागसी, ग्रीषम रित भागसी। बीजलीयां भलकसी, भाषरां सूं बाला पलकसी, पावस की पोटां पड़सी, इंद्र की असवारी चड़सी। हरीयालीयां चूंटसी, नदीयां का बंध फूटसी, जण रतमें आप कमरां बांधो (बो) छो, आपके कोइ भागू पला मन की बांधी छो॥'

किसना ने 'रघुवर जस प्रकास' में विभिन्न छंदों, गीतों, अलंकारों एवं दोषों के लक्षण तथा उदाहरण देते समय उनकी गद्य में व्याख्या की है। यह गद्य बड़ा ही शक्तिशाली है। 'निरंग' दोष को समझाते हुए लेखक लिखता है—

'बिना ठिकांणै विरुध वरणण होय सो निरंग दोख तथा भग्न दोख। पैली कहवारी बात पछै वरणै, पछै वरणवारी बात पैहली वरणै सो विरुध वरणण बाजै ज्यूं अठै रत नद तिरत कवंध सार इम चली। पैहली तरवार चालै जद लोही आवै, जद नदी वहै, अठै पैहलो लोही री नदी वरणी, फिर कवंध वरण्या, जठा पछै तरवार चली कही, ठिकांणा चूक वरणण छै, जींसूं निरंग दोख हुवो॥'

यह लक्ष्य करने की बात है कि इस रीति-ग्रंथ में लेखक ने गद्य के प्रमुख अंगों की विवेचना उनके ढंग पर ही की है। यथा—दवावैत, वचनिका एवं वारता को समझाते के लिए उसने उन्हें नियमानुसार लिख भी दिया है। राजस्थानी गद्य होते हुए भी यह हिंदी से प्रभावित है। तीनों के क्रमशः उदाहरण यहां दिये जाते हैं—

(अथ दवावैत)

१. 'महाराजा दसरथ के घर रांमचंद्र जनम लिया। जिस दिन सैं आसुर नैं कदेंग देवूं नैं हरख किया। विसवामित्र मख-रख्या के काज अवधेस तैं जाच लिये। महाराजा दसरथ उसी वखत तईनाथ किये। सात रोज निराहार एकासण सनद्ध रहे। रिखराज का जिग की रछ्या काज रजवाट का विरद मुजबंद्रं गहे। सुबाहू कूं बांण से छेद जमराज के भेट पूहुंचाया। मारीच के तांई बाय बांण से मार उडाया। रज पाय से तारी गौतम की घरणी। खंडपरस का कोदंड खंडकर जांनुकी परणी। अवध कूं आते दुजराज कूं सुद्ध साध किया।

जननी से सलांम कर सपूती का बिरद लिया। ऐसा स्त्री रांमचंद्र सपूतूंका सिर मोड़। अरोड़ का रोड़। गौ बिप्रूंका पाळ। अरेसूं का काळ। सरणायूं-साधार। हाथ का उदार, दिल का दरियाव। रजवाट की नात्र। भूपूंका भूप साजोत का रूप। काछवाह्का सबूत। माहाराज दसरथ का सपूत। भरथ लक्षमण सत्रुघण का बंधु। करुणा का सिंधु ॥'

(वचनका)

२. 'हांजी ऐसा माहाराजा रांमचंद्र असरण-सरण। अनाथ नाथ बिरदकूं धारै। सौ ग्राहकूं मार न्याय ही गजराज कूं तारै। औ भी नरसिंघ होय प्रवाड़ा जग जाहर किया। हरणाकुस कूं मार प्रहलाद कूं उबार लिया। प्रळैका दिन जांण संत देस उबारण कूं मच्छ देह धारी। सतव्रत की भगती जगजाहर करी। ऐसा स्त्री रांमचंद्र करणानिध। असरण-सरण न्याय ही वाजै। जिसके तांई जेता बिरद दीजै जेता ही छाजै ॥'

(वारता)

३. 'रांमचंद्र जिसा सिध रजपूत कोई वेळापुळ होवै छै। ज्यांके प्रताप देव नर नाग खटम्रन सुख नींद सोवै छै। राजनीत का निधांन सींह बकरी एक घाटै नीर पावै छै। पंछी की पर बागां बाज दहसत खावै छै। तप के प्रभाव पांणी पर सिला तरै छै। अगुपत सा त्रबंक ज्यांका बळ काढ़ सणंक सुधा करै छै। बाळ दहकंध सा अरोड़ानूं रोड़ जमींदोज कीजै छै। सुग्रीव भमीखण जिसा निरपखांनूं केकंधा लंक दीजै छै। जांका भाग धन्य जे रांमगुण गावै छै। जांमण मरण भय मेट अभै पद पावै छै ॥'

गद्य की दृष्टि से बुधसिंह रचित 'महाराजकुमार श्री चैनसिंहजी री वार्त्ता' एक उल्लेख्य कृति है। इसे एक राष्ट्रीय वीर की कहानी ही समझिये जिसमें लेखक ने अनेक महत्त्वपूर्ण विवरण दिये हैं। भाषा परिमार्जित है। सांस्कृतिक दृष्टि से इसका मूल्य अधिक है। एक उदाहरण देखिये—

'अतरे सोनखेड़ा वाळा ऊमट कोकजी बड़ी अंगरखी पेटी लाय हाजर करी, जद हुकम फरमायो के बड़ी अंगरखी तो मेल दो, छोटी अंगरखी लाव। आज अपणै, अंगरेजां के भटकामार होगी, जद छोटी अंगरखी दोवड़तां लाय हाजर करी सो पहरी। ऊपर सादो कमंरवंदो वांध्यो तरवार वांधी, ऊपर चंदेरी को जरदोजी दुमट्टो वांध्यो और ढाल कत्ती हथवांसे धारण कियां डेरा में आय विराज्या और केसराजी ऊमट सोनखेड़ा वाळा सूं हुकम फरमायो के सव साथ वाळा सूं कह दो, आप-आपकी जागा जम्या रहै। अमल की चवटां दे दो सो आप आपस में मनवार कर आछी तरह अमल ले लेवें। केसराजी सारा साथ

वाळाहै अमल की बटियां वांट दीवी हुकम सुणाय दियो सभी साथ में आछी तरह अमल की मनुहारां ऊई ।।'

दुरगादत्त की लिखी हुई एक दवावैत उपलब्ध होती है जिसकी चार-पाँच प्रतियां विद्यमान हैं। इसका लेखक इसरदा ठिकाने में आशा लेकर गया था, वहाँ उचित पुरस्कार न मिलने पर उसने खीझकर यह निन्दात्मक दवावैत बनाई थी। इसकी वर्णन-शैली गद्य की प्रौढ़ता की ओर संकेत करती है। इसमें वयणसगाई अलंकार की छटा दृष्टव्य है। साथ ही अंत्यानुप्रास, मध्यानुप्रास या किसी अन्य प्रकार के अनुप्रास व यमक आदि का रंग भी खूब जमा है। यथा—

'पूर्व की तरफ राजावटी देस। रोझूं का रैवात भांडू का भेश। जिस देश में ईसरदा नाम का गांव। बेवकूफों का वास। धूरतों का धाम। मंगतूं का-मोहल्ला, कंगालूं का कोट। हीजडूं का स्हर, जारूं का जोट, चुगलूं का चबूतरा, सगलू का रंवास। कुकरमूं का कोठार, अघूमूं का ऐवास। भूक का भांडा, मालजादूं का मुकाम। अनीत का अखाड़ा, अदूतों का आराम। हराम का हटवाडा। हरामजादूं की हाट, खोटूं का खजाना। परेतूं का पाट। विपत का बगीचा। बुराई का वास। काल का कुंडाला। मरी का मेवास ठगूं का ठिकाणा, सौदूं की सराय। पाप का पुवाड़ा। वस्ती का बलाय भूतां का भंडार। सीकोरियो का सहायक। डाकणियां का दरबार रोग का रजवाड़ा। सोग की सिरकार। कायरूं की कुटी। चोरूं का आधार।।'

दयालदास ने भी अपने इतिहास-ग्रंथ में एक अपूर्ण दवावैत लिखी है जिसमें बीकानेर, नरेश रतनसिंह का वर्णन है। गद्य परिमार्जित है किन्तु उस पर हिन्दी का प्रभाव देखने को मिलता है—

'गणपति दीजै बुध उक्त का ज्ञान। मैं गाऊं बीकानेर पति मघवान। पारथ से वरणा वली भारत भीम। परीछत परमारथ के सुदाता के सीम। वचनों के दरवासा सील के गंगेल। तपस्या के मृत्यजंय रावन अभिमेल.... । जिस छगा में महाराज के कविराव। विधा के आगर जश रस के विभाव। कश्यप सै उत्पति आरष्टे मात। दिनकर पुराणव्यास, वरण विख्यात। शील के सदन जुत धर्म की मरजाद। षटभाषा जाणगर अमरु कुल आद।।'

दयालदास के गद्य में स्फूर्ति है और लचक भी। उनका ध्यान सर्वत्र इतिहास की ओर ही अधिक है। यथा—

'अरु सं० १७२६ आसाढ़ सुद ४ औरंगाबाद मै करणसिंघजी धाम पधारिया। इतरी लारै सती हुई— भटियाणी धनराजोत अजबदे, जैसलमेरी सिणगारदे, विकुंपुररी

कोडमदे, मलणवासी मनसुखदे सरूपसिंघ केसो दासोतरी, साउवाणी। इतरी खवास सती हुई– मोदकळी, रामौती, किसनाई, मेघमाळा, गुणमाळा, चंपावती, रूपकळी, पेमा, कुंजकळी, अदंगराय, सहेली अनारकली सती वीस हुई। इतना कंवर हुवा– अनूपसिंघजी, केसरीसिंघजी, पदमसिंघजी, मूरणसिंघजी, देवीसिंघजी, अमरसिंघजी, अजवसिंघजी, खुवास रौ वनमालीदास ॥'

लेखक वचनिका लिखने में भी पीछे नहीं। राजा श्री रायसिंघजी की वचनका का नमूना यहां दिया जाता है –

'पीछै महाराज रौ पधारणौ गुजरात री तरफ हुवौ। तठै राव सुलताण भाण रौ आय मिलियौ। तद रायसिंघजी सुलताण नै सीरोही आधी रौ मालक कियौ। अरू आधी जमी पावसाहजी रै खालसै राखी। पातसाहजी रौ फुरमाण अरजी मेल सुलताण रै नामै मंगाय दीनौ। जिण दिनां सीरोही खालसा छी सू सुरताण कदमां आयौ। तद विजौ देवड़ौ हरराजरौ पण महाराज रै कदमां आयौ। तथा लालच पण दिखायौ तौई माराज इण री अरज मानी नहीं। सुरताण री तरफ रया। सू आ वात इण तरै छै।'

इनके अतिरिक्त खुमाण कृत 'ग्रंथ दवावैत रायजी श्री भगवानदासजी रो' की भी सूचना मिलती है किन्तु इसका उदाहरण नहीं मिलता। सरस्वती भंडार, उदयपुर में अज्ञात कवियों की महाराणा संग्रामसिंह एवं उदयसिंह पर लिखी हुई दवावैतें भी मिलती हैं। इनसे गद्य के इन विविध रूपों की लोकप्रियता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है।

चारण साहित्य का इतिहास

भाग २

सातवाँ अध्याय

आधुनिक काल (द्वितीय उत्थान) [सन् १८५०–१९५० ई०]

आधुनिक काल (द्वितीय उत्थान)

सन् १८५०–१९५० ई०

(१) **काल विभाजनः**—आधुनिक चारण साहित्य का द्वितीय उत्थान १९वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से आरम्भ होकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक प्रवहमान होता है। विदेशी संस्कृति के सम्पर्क में आकर राजस्थान ने जितना खोया उतना पाया नहीं। देशव्यापी प्रतिक्रिया होने से यहाँ भी अनेक अभूतपूर्व आंदोलन हुए जिनको दृष्टि-पथ पर रखते हुए आलोच्य काल को 'क्रांति-युग' की संज्ञा दी जा सकती है। राष्ट्रीयता एवं समाजवाद की भावनाओं का विकास होने लगा। राजनीतिक हलचलों एवं सामाजिक क्रांतियों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। कवियों का ध्यान राज-मार्ग से हट कर ग्राम-कुटीर की ओर जाने लगा जिससे प्राचीन आलम्बन बदल गये। सन् १८५७ की राज्य-क्रांति के अनन्तर सत्य और अहिंसा ने पथ-प्रदर्शन किया। साहित्य में नवीन भावों का चित्रण हुआ। कविता व्यक्ति से ऊपर उठकर समाज का स्पर्श करने लगी। गांधी का सत्याग्रह बालू के कणों में भी चमकने लगा। राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में फैली हुई कुरीतियों की होली मनाई जाने लगी। इस युग का कवि एक नवीन राग अलापने लगा। भाव के सदृश भाषा में भी परिवर्तन हुए। हिन्दी भाषा एवं साहित्य की उन्नति से राजस्थानी के मार्ग में एक व्यवधान उपस्थित हुआ। फलतः यहां के निवासियों का अपनी मातृभाषा के प्रति सहज अनुराग शनैः-शनैः कम होता गया। अतः चारण कवि राजस्थानी एवं ब्रजभाषा के साथ हिन्दी में भी काव्य-रचना करने लगे। यद्यपि ब्रजभाषा में पुराने ढर्रे के लोग अब भो काव्य-रचना करते थे किन्तु ऐसे कवियों की सँख्या अत्यन्त कम है। डिंगल अपना प्रकृत स्वरूप खोने लगी और उसका रूप सरल होने लगा।

(२) **राजनैतिक अवस्थाः**—(क) राजस्थान एवं केन्द्रीय सत्ता—इस काल के प्रथम पन्द्रह वर्षों का समय एक विषम सँक्रांति काल था। अंग्रेजों ने राजस्थान में आधुनिकता का प्रसार अवश्य किया किन्तु उनकी कुटिल नीति एवं शासन-योजना को देखकर सर्व साधारण का हृदय क्षुब्ध हो उठा। क्षत्रिय जाति भी मन ही मन अप्रसन्न थी। अंग्रेज हिन्दू-मुसलमानों के वीच फूट डालकर अपना उल्लू सीधा करते रहते थे। वे भारतीय नरेशों का अस्तित्व मिटा देने

की चर्चा करने लगे। लार्ड डलहौजी की राज्य लोप नीति से कई राज्य ज़ब्त हो गये (१८४८ ई०) बम्बई के आइनेम कमीशन तथा अन्य योजनाओं के अनुसार सामन्त-वर्ग की निर्धनता ने उग्र रूप धारण किया। जब साधारण सी बात पर रेजीडेण्ट भारतीय शासकों को डांटने-डपटने लग गये तब उनकी कुल-मर्यादा को ठेस लगी। सती प्रथा बंद कर देने वाले नियम ने वीरांगनाओं को रुष्ट कर दिया (१८३३ ई०)। सैनिकों की धार्मिक भावना को कुचलकर उन्हें विदेशों में लड़ने भेजना, दण्ड स्वरूप समुद्र पार जाने के लिए बाध्य करना तथा वर्ण-व्यवस्था को अवज्ञा से भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहाग्नि भभक उठी। राज्य-क्रांति के समय राजस्थान अज्ञान की मोह-निद्रा में सोया पड़ा था। उसे जगाने के लिए जब भारतीय सेना ने ताँतिया टोपे के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया तब प्रांतीय राजनीति के पाप-पङ्क में धँसे हुए नरेशों एवं उनके सरदारों नें 'यूनियन जेक' की शरण ली और स्वातंत्र्य-संग्राम में मर-मिटने वाले भारतीय सैनिकों का साथ देना तो दूर रहा उल्टा उन्हें कुचलने में अंग्रेजों को सहायता पहुँचाई। संचित शक्ति, संगठन एवं वैज्ञानिक साधनों के अभाव में यह आंदोलन असफल रहा। अंग्रेज सरकार को विश्वास हो गया कि साम्राज्यवाद के लिए इन नरेशों के अस्तित्व को बनाये रखना नितांत आवश्यक है। अत: देशी राज्यों का संरक्षण अंग्रेज सरकार की नीति का एक अविभाज्य अंग बन गया। विद्रोह का दमन कर अंग्रेजों ने राजा-महाराजाओं एवं बड़े-बड़े जागीरदारों को उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में नाना प्रकार की उपाधियों से अलंकृत किया।

राज्य-क्रांति के पश्चात् अंग्रेजों ने अपने शासन को लगभग ५० वर्षों तक संगठित किया। इस समय उन्होंने चतुराई के साथ राजस्थान के अर्द्ध-स्वतन्त्र राज्यों को पूर्णरूपेण अपने अधीन रखा। लार्ड लिटन ने जब दिल्ली में शाही दरबार का आयोजन किया (१८७७ ई०) तब गोद लेने तथा मुख्य मंत्री की नियुक्ति के विषय में अंग्रेज सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक हो गया। विभिन्न राज्यों के शासन-प्रबंध में हस्तक्षेप करने की नीति का अब कसकर पालन किया जाने लगा। टोंक, जोधपुर एवं अलवर में ऐसा ही हुआ। लार्ड कर्जन के समय तक अंग्रेजों का प्रभुत्व चूडान्त स्वरूप को प्राप्त हो गया। अब उनका विरोध करना जरा टेढ़ी खीर था। झालावाड़ के शासक ज़ालिमसिंह (द्वितीय) ने यह दुष्साहस किया था फलतः सन् १८९६ ई० में राज-गद्दी से च्युत कर दिया गया। लार्ड कर्जन ने घोषणा करते हुए कहा भी था– 'राजमुकुट का प्रभुत्व

सर्वत्र नतमस्तक होकर स्वीकार किया जा रहा है। हमारी नीति के फलस्वरूप अब देशी नरेश साम्राज्य के शाही संगठन के एक अखण्डात्मक अंग बन गये हैं।'

राजनैतिक प्रभुत्व के साथ सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा से लार्ड मेयो ने अजमेर में 'मेयो कॉलेज' की स्थापना की (१८७५ ई०) जहाँ राजस्थान के भावी नरेशों एवं जागीरदारों को नवीन शिक्षा के साँचे में ढालकर अंग्रेज बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया। इसमें उच्चवर्गीय सामन्त समाज पराधीनता का पाठ पढ़कर राष्ट्रीय भावनाओं से शून्य होता गया। किशनसिंह (भरतपुर), भवानीसिंह (झालावाड़), विजयसिंह व लक्ष्मणसिंह (डूंगरपुर), पृथ्वीसिंह (बांसवाड़ा), रामसिंह (प्रतापगढ़), उम्मेदसिंह (शाहपुरा), शालीवाहन व जवाहरसिंह (जैसलमेर) प्रभृति राजकुमार यही ज्ञान-गुटिका लेकर अपने-अपने राज्यों में सिंहासनारूढ़ हुए थे। चतुर गंगासिंह (बीकानेर) इस प्रभाव से दूर रहे। इस प्रकार संस्कृति एवं शिक्षा की ओट में क्षत्रिय नरेशों एवं बड़े-बड़े जागीरदारों को दासत्व की शृंखलाओं में कस दिया गया।

अंग्रेजों ने राजनैतिक सम्बन्ध की दृढ़ता के लिए और भी क़दम उठाये जिनमें केन्द्रीय दरबार की योजना उल्लेखनीय है। प्राय: समस्त राजा-महाराजा इन दरबारों में उपस्थित होकर अंग्रेजों को सहयोग देने के लिए प्रतिश्रुत होते रहते थे। इंग्लैंड के सम्राट पंचम जार्ज के सिंहासनारूढ़ होने के अवसर पर जब दिल्ली में दरबार हुआ तब प्राय: सभी राज्यों ने उपस्थित होकर आत्म-समर्पण कर दिया। इसके लिए उन्हें पद, पदक, प्रशंसा-पत्र एवं तोप-सलामियाँ दी गई, जिन्हें पाकर वे अपनी राजनैतिक श्रेष्ठता एवं गौरव का झूठा स्वांग रचने लगे। अंग्रेजों पर वाह्य संकट आने पर इन्हीं नरेशों को आगे किया जाता था। जब रूस वालों ने अफ़गानिस्तान की ओर पैर बढ़ाया तब राजस्थान की सम्मिलित सेना ने ही उनकी रक्षा की। इसी प्रकार महायुद्धों में भी इन्होंने विदेशी युद्ध-भूमि में पहुँच कर अपने प्राणों की बाजी लगाई थी। इतना होते हुए भी उदयपुर के राणाओं ने सिसोदिया वंश की कुल-मर्यादा का सफलतापूर्वक निर्वाह किया।

(ख) प्रांतीय शासक एवं शासन-व्यवस्था—अंग्रेजी साम्राज्य के संरक्षण में राजस्थान के विभिन्न अर्द्ध स्वतंत्र राज्यों का शासन-प्रबन्ध प्राचीन जमींदारी पद्धति पर चलता रहा। यद्यपि वाह्य आक्रमणकारियों का अब कोई भय नहीं रह गया था तथापि आंतरिक शांति के दिन दूर थे। जयपुर राज्य के अतिरिक्त

प्राय: सारे राज्यों की शासन-व्यवस्था शोचनीय थी। वहाँ सरदारों, भीलों एवं डाकुओं के नित नये उपद्रवों से शांति बनाये रखना कठिन हो गया था। महाराणा सरूपसिंह व सज्जनसिंह (उदयपुर), जसवंतसिंह द्वितीय, (जोधपुर), रतनसिंह, सरदारसिंह एवं डूंगरसिंह (बीकानेर), रामसिंह (भरतपुर), जालिमसिंह द्वितीय (झालावाड़), लक्ष्मणसिंह (बांसवाड़ा), जगतसिंह (शाहपुरा) प्रभृति नरेशों के समय में जो उपद्रव हुए, उनसे राजनैतिक स्थिति डांवाडोल होने के साथ-साथ आर्थिक स्थिति भी बिगड़ गई। पुलिस की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। राज्यों में न तो कानून का ही पालन किया जाता था और न अदालतों का ही कोई क्रमबद्ध संगठन था। दीवानी एवं फौजदारी मुकदमों में राजाओं का प्रमुख हाथ होने से उनकी इच्छानुसार ही न्याय होता था। जेल-व्यवस्था और भी असंतोषजनक थी। जोधपुर राज्य में तो क़ैदी को खुराक खर्च भी अपनी जेब से देना पड़ता था (१८८४ ई० तक) राज्यों का माली प्रबन्ध भी अत्यन्त अव्यवस्थित था। इतना होते हुए भी कतिपय नरेशों ने प्राचीन एवं अर्वाचीन पद्धतियों का सामंजस्य कर सुधार करने की भी चेष्टा की। इनमें महाराणा शंभूसिंह, फतहसिंह व भूपालसिंह (मेवाड़), रामसिंह, माधोसिंह द्वितीय व मानसिंह द्वितीय (जयपुर), सरदारसिंह, सुमेरसिंह व उम्मेदसिंह (जोधपुर), गंगासिंह (बीकानेर), लक्ष्मणसिंह (डूंगरपुर), नाहरसिंह व उम्मेदसिंह (शाहपुरा) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। राजस्थान में आधुनिकता लाने का श्रेय इनको ही है। 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना से (१८८५ ई०) राजस्थान की शासन-पद्धति का विरोध हुआ और शांतिमय क्रांति के द्वारा शीघ्र ही प्रजातंत्र की मांग की गई। इसके फलस्वरूप प्रतिनिधि सभाओं की स्थापना हुई जिनमें जनता ने भी प्रवेश किया। अंग्रेजों के संकेतों पर राजाओं ने कांग्रेस तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं पर कम अत्याचार नहीं किया किन्तु अन्तत: महात्मा गाँधी का स्वप्न साकार हुआ और सदियों पुरानी शासन-प्रणाली सहसा बदल गई।

(३) **सामाजिक अवस्था:**— इस काल के आरम्भ में सर्वत्र अज्ञान की आँधियां चल रही थीं। अंग्रेजों की अनीति को कार्यान्वित करते रहने से जनता के हृदय में नरेशों के प्रति भक्ति-भाव नहीं रह गया था। सन् १८५८ ई० तक नरेशों के बढ़ते हुए अत्याचारों एवं सरदारों के सतत् विद्रोहों ने प्रजा के लिए अनेक उलझनें उत्पन्न कर दीं। जनता को अपना कोई ऐसा नेता नहीं दिखाई दिया जो दुख दूर करने में सहायक होता। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर निश्चेष्ट

सोई पड़ी थी ' उसका जीवन निराशामय होता जा रहा था। शनैः शनैः वह राजनीति से उपेक्षित होने लगी। राज-गद्दी को लेकर उठने वाली समस्याओं के प्रति उसकी कोई रुचि नहीं रह गई। राज्य-क्रांति के पश्चात् जन-जीवन में और भी स्तब्धता छा गई। अंग्रेजी काल की पराधीनता ने प्रजा की विचार-धाराओं को संकीर्ण वना दिया। उनकी दृष्टि अपने-अपने राज्य तक ही सीमित रही। पड़ोसी राज्यों की गतिविधियों का ध्यान कतिपय शिक्षित व्यक्ति ही रखने लगे। सामाजिक जीवन में कहीं चेतना नहीं दिखाई दे रही थी। लोग जाति, प्रान्त अथवा देश के हित में वहुत कम सोचने लगे। समाज-सुधार की महत्त्वाकांक्षा से स्वामी दयानंद सरस्वती ने राजस्थान को ज्योतिर्मान किया जिसके परिणाम-स्वरूप मेवाड़, मारवाड़, डूंगरपुर आदि राज्यों में महत्त्वपूर्ण सामाजिक सुधार होने लगे। महात्मा गांधी के विचारों से भी वल मिला। अव लोगों का ध्यान वाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, स्त्री-शिक्षा, पर्दा-प्रथा, निरक्षरता आदि की ओर गया।

(४) **धार्मिक अवस्थाः—** राज्य-क्रांति के पश्चात् लोगों का ध्यान धर्म-रक्षा की ओर गया। दार्शनिकों एवं संत-पुरुषों ने अपने प्रवचनों के द्वारा उनको भक्ति की ओर लगाये रखा। अनेक आंदोलन हुए जिससे हिन्दू धर्म की समुचित व्याख्या हुई। अनेक देवी-देवताओं के स्थान पर एक ईश्वर की उपासना पर जोर दिया गया जिससे एकता आने लगी। सार्वजनिक समानाधिकार की भावना ने सभी धर्मों के प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न की। इससे धार्मिक सहिष्णुता भी आई और पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि विकारों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। प्रायः सभी उपदेशकों ने धर्म की कुरीतियों एवं अंध-विश्वासों को दूरकर उसके निर्मल एवं पवित्र रूप को जन-समाज में प्रतिष्ठित किया। इस दृष्टि से स्वामी दयानन्द सरस्वती के सदुपदेशों से राजस्थान लाभान्वित हुआ। वेदाध्ययन करना, सत्य का पालन करना, सदाचार का अनुसरण करना, ज्ञान का संचय करना एवं समाज-सेवा में सर्वस्व न्यौछावर कर देना इनके मूल मंत्र हैं। वाह्याडम्वर का खण्डन कर ईश्वर को मानव के रूप में चित्रित करना इस समय की प्रधान विशेषता है। साथ ही अध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन को विशेष महत्त्व दिया गया। वर्ण-व्यवस्था एवं जाति-पांति के भेद-भाव नवीन विचारों के आगे स्थिर नहीं रह सके। इस प्रकार देश-काल के अनुरूप एक नवीन धर्म की प्रतिष्ठा हुई। इस कार्य में विभिन्न धार्मिक संस्थाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

(५) **चारण साहित्यः**— इस काल का चारण साहित्य बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध होता है। इसे मध्य एवं आधुनिक युग का मनोहर केन्द्र-बिन्दु कहा जा सकता है क्योंकि इसमें जहां अतीत का स्वर है वहां वर्तमान का नव-गान भी। अखिल भारतीय चारण सम्मेलन की योजना एवं उसके अन्तर्गत पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से अनेक कवि आगे आये, जिन्होंने समसामयिक गतिविधियों से प्रभावित होकर रचनायें लिखीं। युद्ध-वर्णन में सूर्यमल्ल मिश्रण ने विश्वविख्यात होमर को भी मात कर दिया। इनके संरक्षण में अनेक कवि साहित्य-साधना करने लगे। इनकी अद्वितीय काव्य-प्रतिभा के विषय में विश्व कवि टैगोर का यह कथन द्रष्टव्य है— मैं स्वयं कवि हूँ। मैंने उच्चकोटि की कवितायें देखी और सुनी हैं पर सूर्यमल्ल की कविता बड़ी ही आह्लादकारी एवं अनूठी है।' राष्ट्रीय काव्य की रचना करने में भी कवि पीछे नहीं रहे। उन्होंने एक ओर जहाँ अंग्रेजों की भर्त्सना की वहां दूसरी ओर भारतीय राजनैतिक नेताओं की प्रशंसा की। विभिन्न आन्दोलनों के फलस्वरूप कतिपय कवियों ने सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों का भण्डाफोड़ किया जिससे जनता को सही मार्ग मिला। साथ ही पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों का भी अभूतपूर्व विकास हुआ जिससे चारण-साहित्य पूर्णरूप से समृद्ध हो गया।

(६) कवि एवं उनकी कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन–(जीवनी-खण्ड)

१. **सूर्यमल्ल**—ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८१५ ई०) और बूंदी के निवासी थे। इनके माता-पिता का नाम क्रमशः भवानबाई एवं चण्डीदान था। चारण दम्पति ने इनका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से किया था। इससे शिक्षा में बाधा आती देख इनके पिता मारपीट भी किया करते थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में किंवदंती है कि ५ वर्ष की अवस्था में जब ये पाठशाला गये तब पहले ही दिन लिखना-पढ़ना सीख लिया और तीन दिन में अमरकोष के तीनों ही काण्ड कण्ठस्थ कर सटीक सुना दिये। गुरुजी से इस बात का पता चलने पर माता-पिता के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे इनका अधिक ध्यान रखने लगे। इन्हें नित्य डिंगल के दो गीत बनाने पड़ते थे। इनकी ९ वर्ष की आयु का गीत बंगाल-हिन्दी मण्डल के संग्रहालय में विद्यमान है। जब ये ७ वर्ष के थे तब दरबार के पास जाते समय इनके पिता ने एक गीत बना रखने को कहा किन्तु खेल-कूद में मग्न होने से ये भूल गये और उनके लौटने पर कह दिया, हाँ बना

सूर्यमल्ल मिश्रण [सन् १८१५-१८६८ ई०]

लिया और जब सुनाने की नौबत आई तब सुना भी दिया। १२ वर्ष की अवस्था में ये काव्य-शास्त्र में प्रवीण हो गये। घर से बाहर जिन महानुभावों ने शिक्षा दी, उनमें प्रसिद्ध दादू पंथी साधु श्री स्वरूपदासजो महाराज का नाम उल्लेखनीय है। उनका इन पर जितना स्नेह था, इनकी उन पर उतनी ही श्रद्धा थी। मौलाना मुहम्मद साहब से इन्होंने फारसो का अध्ययन किया। एक अन्य बहादुर मुसलमान से संगीत विद्या सीखी। इन सब गुरुओं के प्रति कवि ने आभार प्रकट किया है।

सूर्यमल्ल का जीवन अलौकिक प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। राजस्थान के किसी भी चारण कवि में इनके जैसी बहुज्ञता नहीं पाई जाती। चारण-कुल परम्परा एवं अनुकूल वातावरण के अनुसार इसका शनैः शनैः विकास होता गया। षटभाषा ज्ञान ने इसे प्रकाशित किया तथा इसमें चमक-दमक उत्पन्न की। इस असाधारण पांडित्य से अपने को धन्य समझकर तत्कालीन बूंदी-नरेश रामसिंह ने इन्हें राज्याश्रय प्रदान किया (१८३६ ई० के आसपास) लगभग २५ वर्ष की अवस्था में आशु कवि के रूप में इनकी कीर्ति-कौमुदी का विस्तार होने लगा। स्फुट पद्यमय बातें करके ये दूसरे के हृदय पर अपनी छाप छोड़ने लगे। जन-समाज में भी लोकप्रियता बढ़ने लगी। राजकवि होने से इनकी यश-पताका अन्य राज्य-दरबारों में भी फहराने लगी। शीघ्र ही अनेक ठिकानों से इनका सार्धम्य स्थापित हो गया, जिनमें भिणाय (अजमेर), जोधपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, प्रतापगढ़ (मालवा), सीतामऊ, रतलाम, मसूदा, जैतगढ़, आउवा एवं पीपल्या के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

चारण-काव्य के दरबारी कवियों में सूर्यमल्ल का व्यक्तित्व सर्वोच्च है। इनके स्मरण मात्र से आंखों के आगे एक रुद्र रूप खड़ा हो जाता है, जिसका बाह्य रूप भयावह है, आभ्यंतरिक स्वरूप मृदुल। चारण रक्त एवं रजपूती मज्जा से विनिर्मित इनके अंग-प्रत्यंग में स्फूर्ति रह-रह कर उछलती रहती थी। राजा ने इन्हें कविराजा कहा तो रंक ने ठाकुर। इन्होंने अपनी जन्मजात प्रतिभा से राजा और प्रजा दोनों पर जादू का सा प्रभाव डाल दिया। राज्य से दुखी होकर लोग इनके पास आते और राजा-महाराजा मित्रता के लिए हाथ बढ़ाते थे। और तो और ब्रिटिश सरकार के एजेण्ट भी आवश्यकतानुसार विचार-विमर्श करते रहते थे। संत-महात्माओं के सदृश इनमें भक्ति का निरूपण, दर्शन की मीमांसा एवं

उपदेश का आग्रह नहीं किन्तु क्षत्रियत्व को प्रशस्त करने की तीव्र भावना है और है उसके आदर्शों को अक्षुण्ण बनाये रखने की महत्त्वकांक्षा। यह लक्ष्य करने की बात है कि ये वीर-काव्य के अद्वितीय प्रणेता ही नहीं प्रत्युत क्षत्रियत्व के खरे समालोचक भी हैं। एक राज्याश्रित कवि की यह विद्वत्ता, गुणग्राहकता एवं निष्पक्षता उसकी महानता का प्रतीक है। इनकी दृष्टि में कवि का आदर्श ऊंचा था। परिस्थिति से दबकर वाणी का क्रय-विक्रय तथा झूठी प्रशंसा करना ये कवि का कर्म नहीं मानते। ये कवि ही नहीं अपितु पंडित, गुणी, रसिक एवं संगीतज्ञ भी थे। अक्खड़ता में ये कबीर से बातें करते हैं किन्तु उनके जैसी फक्कड़ता नहीं। इनका जीवन रईसों का जीवन था, अनेक सईसों की कतार द्वार पर खड़ी रहती थी। अपने समकालीन आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेंदु के समान इनमें विलास एवं मस्ती की पर्याप्त मात्रा थी। राज्य-भक्ति के साथ राष्ट्रीय भावनाओं से भी ओत-प्रोत थे। इनका स्वभाव एवं प्रकृति अनेक प्रकार की विचित्रताओं से परिपूर्ण है। ऊपर से तेज मिज़ाज एवं रूखे दिखाई देते थे और छोटी-छोटी बातों पर बिगड़ने में देर नहीं करते थे। जब तीसरा नेत्र खुलता तब बड़ी कठिनता से बंद होता था। इनके मानस में स्पष्टवादिता, खरापन एवं स्वच्छंदता का तरंगें कभी-कभी मान-मर्यादा के कूलों का उल्लंघन भी कर देती थीं। सत्य की राह पर तो ये सीधा कह देते यहां तक कि अपने आश्रयदाता को भी डांट देते थे। इन्होंने कभी किसी की चिन्ता नहीं की और सदैव अपने राग-रंग में डूबे रहे। इन विचित्रताओं के रहते हुए भी इनकी हृदयस्थली में कोमलता, सहृदयता एवं उदारता के अंकुर विद्यमान थे।

बूंदी-नरेश महाराव रामसिंह साहित्य के प्रेमी थे। एक दिन अपने पंडित आशानंद ब्राह्मण से महाभारत की कथा सुनते-सुनते उन्होंने इच्छा प्रकट की कि देववाणी के सदृश लोकभाषा में भी एक ऐसा विशाल ग्रंथ होना चाहिए जिसमें चौहान वंश की खोजपूर्ण विस्तृत व्याख्या हो। इस कार्य के लिए उन्हें सूर्यमल्ल से बढ़कर और कोई योग्य व्यक्ति नहीं दिखाई दिया अतः इन्हें बुलाकर इस कार्य को पूरा करने के लिए कहा गया (१८४० ई० के आस-पास) इन्होंने महाराव को स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया— 'मैं आपकी आज्ञा से बनाऊंगा तो सही, परन्तु जो सच बात होगी वही लिखूंगा। आप बुरा न मानें।' महाराव ने यह बात स्वीकार कर ली और ये ग्रंथ-निर्माण के लिए साधन-सामग्री जुटाने में लग गये। इससे इनके जीवन में एक नवीन अध्याय का सूत्रपात हुआ जो जीवन-पर्यन्त कभी बंद

नहीं हुआ। कार्य भी ऐसा जटिल था, जिसमें पीढियां खप सकती थीं। यत्र-तत्र विखरी हुई वहियों एवं ख्यातों को कठोर परिश्रम से एकत्रित किया गया और ग्रंथ का श्री गणेश हुआ। इसके रचना-काल की दैनिक जीवनचर्या अत्यंत रोचक एवं दिलचस्प है। ये रात-दिन काव्य-साधना में लीन रहते। प्रातः से सायं तक चार लिपिकारों को इनके पास रहना पड़ता था जिनमें अंवालाल दाहिमा, नंदराम गूजर गौड़, हुंडा दाहिमा एवं मुकुन्द गूजर गौड़ के नाम लिए जाते हैं। इनमें अंवालाल इनके विशेष कृपा-पात्र थे। कविता वनाने का कोई समय निश्चित नहीं था। सव कुछ मन-तरंग पर निर्भर था। शराव की चुस्ती के साथ काव्य-सृजन चलता रहता। जैसे ही अग्नि-रेखा घट में प्रवेश करती वैसे ही एक हूक उठती और अचानक स्फूर्ति आते ही कहते 'हूँ'। इस शब्द को सुनकर लिपिकार सावधान होकर अपने-अपने आसन पर वैठ जाते। ये धारा प्रवाह वोलना आरंभ करते और वे कलम उठाकर लिखने लगते थे। इस भीषण विचक्षण आशु कवि से जो कोई जितना चाहे और जिस विषय, भाषा एवं छंद में चाहे, लिखा ले।

सूर्यमल्ल स्वजाति के हितैषी एवं राजपूत जाति के जागरूक पहरेदार थे। इनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि चारण जाति पढ़-लिखकर ज्ञानी वने और क्षत्रिय जाति का पथ-प्रदर्शन करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये सतत् प्रयत्नशील रहते और विकारों की भर्त्सना किया करते थे। मानवीय क्षुद्रताओं एवं अनुचित व्यवहारों को देखकर इनकी आत्मा तिलमिला जाती। ३६ वर्ष की अवस्था में जव लसाड्या (अजमेर), मूंदाली (किशनगढ़) एवं कचोल्या (जयपुर) के कुछ चारणों ने अपने पारिवारिक सदस्यों पर अत्याचार करना आरम्भ किया तव इन्हें वाध्य होकर अपनी हवेली में अनेक राज्यों के चारण-मुखियों को आमंत्रित कर अन्यायियों का वहिष्कार कराना पड़ा। इस प्रकार त्याग को लेकर इन्होंने चंपा-लाल वोहरा (वांसवाड़ा) से लड़ाई की थी। यह उल्लेखनीय है कि इनके संरक्षण में रहकर अनेक मेधावी चारण कलाकारों ने विद्याध्ययन किया जिनमें गणेशपुरी का नाम उल्लेखनीय है। अन्य शिष्यों में वल्लभ, सीताराम, हरदान, विजयनाथ, मोतीराम, वख्शीराम, धूंकल एवं मुरारिदान के नाम सगर्व लिये जा सकते हैं। राजपूतों को मान-मर्यादा की रक्षा करने हेतु ये सदैव शिक्षा दिया करते थे। जव एक वार ये भिणाय (अजमेर) गये हुए थे तव रानी कमला वाई ने इनके पास कुछ मूल्यवान चूंनड़ियां पसंद व कीमत करने के लिए भेजी क्योंकि वे इनकी पत्नी को उपहार स्वरूप भेजना चाहती थीं। कविराजा ने उन चूनड़ियों को यह

कहकर लौटा दिया— 'इनकी कीमत तो मैं तब करूंगा, जब तुम राजाजी (बलवंतसिंह) के मरने पर इनको पहनकर सती होगी।' कहते हैं, समय आने पर रानी ने चूनड़ी पहनी और चितारोहण के समय आदमी भेजकर इन्हें सूचना दी। कवि के हाथों में पड़कर यह घटना काव्य का अमर छंद बन गई। ब्रह्ममुहूर्त्त में अपने स्वामी के लिए नित्य की यह प्रार्थना कैसी ? 'हे भगवान् भास्कर, एक दिन ऐसा भी उगे कि जब मेरे स्वामी का मुण्ड घोड़ों की टापों में लुढ़कता मिले।' पतिव्रता एवं नवविवाहिता रानी नगोदणी को यह बुरा लगा। उसने इनको कहलवाया भी जिससे ये और चिढ़ गये। उत्तर दिया— 'मैं यही कामना करता हूं कि मेरा स्वामी दीर्घायु हो क्या अमर हो जाय। यदि मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई और तुमने भी कर्त्तव्य का पालन कर सहगमन किया तो तुम्हारे पति के साथ तुम्हें भी अमर कर दूंगा। कहते हैं, जब महारानी ने यह बात अपने पति के कानों में डाली तब उन्होंने यही कहा कि एक राजपूत के लिए इससे अधिक शाभा की बात और क्या हो सकती है ?

सूर्यमल्ल का जीवन-चरित चारण एवं राजपूत जाति की घनिष्टता का सुनहरा प्रतीक है। प्राय: चारण कवि राजाओं का कीर्ति-गान करते पाये जाते हैं किन्तु यहां बात ही दूसरी है। अनेक सारग्राही नर-नरेश इन्हें अपने यहां आमंत्रित करने के लिए तरसते और जाने पर भाव-भरा आदर-सत्कार करते थे। उदाहरणार्थ, देवगढ़ (मेवाड़) के रावतजी ने इन्हें अपने यहां बुलाते समय दूर तक अंगवानी ही नहीं की प्रत्युत बड़े सम्मान से तख़्त पर बैठाकर स्वयं अपने हाथों से हुक्का भर कर पिलाया था। इसी प्रकार रतलाम नरेश बलवंतसिंह ने ढाई कोस तक अगवानी करके पालकी में कंधा भी दिया था। इस प्रीति-भाव के कारण इन्हें अनेक रजवाडों की यात्रा करनी पड़ी यहां तक कि आगरा एवं काशी भी जाना पड़ा था। सबकी यही इच्छा रहती, ये उनके विषय में कुछ न कुछ लिख दें। जोधपुर नरेश जसवंतसिंहजी ने इन्हें ६०-७० हजार की जागीर देकर कुछ समय के लिए अपने यहां बुलाना चाहा किन्तु उन्होंने प्रस्ताव ठुकरा दिया। इसी प्रकार रतलाम नरेश बलवंतसिंह ने इन्हें २५ हजार की जागीर देनी चाही किन्तु इन्होंने यही कहा— 'क्या करूं ? रामसिंह के विना मेरा दिल नहीं लगता है।'

महान विभूतियों, विशेषत: कवियों की दैनिक चर्या बड़ी ही विचित्र होती है और सूर्यमल्ल भी इसका अपवाद नहीं। इनके चरित में कन्चन, कादम्व एवं

कामिनी का सुयोग देखते ही बनता है। कंचन इनके लिए साधन मात्र था, साध्य नहीं। यदि इन्हें बूंदी राज्य-कोष की कुंजी कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। कहते हैं, इन्हें प्रतिदिन दरबार को बिना पूछे पाँच हजार तक व्यय करने की आज्ञा थी। उपहार तो न जाने कितने मिला करते थे? कादम्ब इनके जीवन का सर्वस्व था। आठों पहर इसका सेवन करते। नशा इनके लिए काव्य था या काव्य नशा— इसका निर्णय करना कठिन है। संदेह नहीं कि इसका सेवन सांसारिकता को भुलाने एवं काव्य-शक्ति को जगाने के लिए किया जाता था। यह देखकर राव एवं उमराव अपने यहाँ तैयार किया हुआ बढ़िया से बढ़िया आसव इनके पास भेजा करते थे। शराव के नशे में कभी-कभी ये संतुलन खो देते थे। प्रवाद है कि जव एक दिन ये नशे में चूर होकर बैठे थे तब हरलिया नाम के चाकर ने ६ मास की गुड़िया सी कन्या को लाकर इनकी गोद में रखा और इन्होंने उसे प्यार से इतना हिलाया-डुलाया कि उसकी साँस ही निकल गई। इसी प्रकार थूणपुर (कोटा) वाली ठकुराणी महियारिणी की दाह-क्रिया के समय श्मशान घाट पर शराव पीकर परिक्रमा लगाना, रतलाम-नरेश के स्वर्गवास पर तालाब के किनारे कविता की जलांजलि देना तथा बहादुर कलावंत से तम्बूरा छीनकर 'लाडीजी घूंघटड़ो खोलो म्हांने चाव छै' नामक शोक-गीत प्रसिद्ध हैं। जहां तक नारी का सम्बंध है, वह इनके जीवन में स्फूर्तिदायक प्रेरणा बनकर आई थी। इनके ६ स्त्रियां थीं– दोला, सुरजा, विजयका, जसारु, पुष्पा एवं गोविन्दा। संभव है, संतान न होने से इतने विवाह करने की आवश्यकता हुई हो! ये गणिका-गायन के विशेष प्रेमी थे। जब झज्झर ग्राम की गणिका पर मुग्ध होकर काव्य-रचना शिथिल पड़ गई तब बूंदी-नरेश ने उसे इनाम देकर चुपके से भगा दिया। जब इन्हें इस बात का पता चला तब कपड़े जला दिये, भस्म रमा ली और सन्यास लेने पर उतारू हो गये। निदान अपनी वंश-कीर्त्ति में व्यवधान आते देख चतुर नरेश ने इनके पास नित्य ही मनोरंजनार्थ एक नहीं अनेक वेश्याओं को भेजने की आज्ञा दे दी। इसी प्रकार एक गायन पर न्यौछावर होकर इन्होंने गणिका को पाँच सौ रूपये इनाम देने के लिए खजानची के नाम पत्र भेजा किन्तु उसने अधिक समझकर इनकी बात टाल दी। जब गणिका ने लौटकर इस बात की शिकायत की तब इन्होंने उसमें पाँच सौ और जोड़ दिये। उधर खजानची दरबार के पास पहुँचा होगा कि इधर गणिका ने दौड़कर पाँच सौ और बढ़वा दिये। अंत में रामसिंह जी ने निर्णय किया कि पहले लिखी हुई रकम पाँच सौ की पूर्ति खजाना करे और वाकी एक हजार खजानची भरे।

सूर्यमल्ल का जीवन-वृत्त अनेक मनोरंजक घटनाओं का अद्भुत जाल है। ये बूंदी के पाँच रत्नों में से एक थे। राजमहल में इनका एक विशेष स्थान नियुक्त था किन्तु अपना अधिकांश समय महाराजा जगन्नाथसिंहजी की हवेली में व्यतीत करते थे। इन्हें गुलेल चलाने का शौक था। इससे पड़ोसी बंदरों के आतंक से निश्चिंत रहते थे। इनके कनिष्ठ भ्राता जयलाल जो अपने समय के प्रसिद्ध वैयाकरण थे, आवश्यकतानुसार इनकी शंकाओं का समाधान करते रहते थे। जब ऊब जाते तब सितार लेकर हवेली में इमली के पेड़ पर बनाये हुए मचान पर जा बैठते और गाने लगते— 'मीसण थारो मनड़ो कहूं न दीसै'.... अपने स्वजनों पर विपत्ति आई देख जो कह देते, वह करके दिखाते थे। कहते हैं कि पाटन के एक बनिये की दुकान पर जब दरबार की आज्ञा से ताला लग गया तब इन्होंने खुलवा दिया था। इसी प्रकार अपने विश्वास-पात्र अंबालाल दाहिमा के यहाँ कन्या-जन्म के समय तंगी देखकर इन्होंने राजकीय प्रबंध करा दिया था। यही दाहिमा जब 'गंगालहरी' का पाठ करते समय महाराव की मिथ्या प्रशंसा का कोप-भाजन बना तब इन्होंने बूंदो-नरेश को लिखा— 'आज ज्ञात हुआ कि प्रशंसा करने से आप हमारे लेखकों के दरोगा चौबे अंबालालजी से नाराज हो गये। यह नई बात मालूम हुई और खयाल आया कि मैंने तो आपकी बहुत प्रशंसा की है और आगे भी करने की इच्छा है— सो इस तरह आप कभी मुझ पर भी नाराज हो सकते हैं। आपको वास्तविकता से इतना प्रेम हो तो ऐसी खरी-खरी सुनाई जाय कि फिर न मुँह दिखाओगे और न हमारा मुँह देखना पसन्द करोगे।' यह पत्र आगे आने वाली घटना का पूर्वाभ्यास था।

सूर्यमल्ल एवं रामसिंह की अनन्यता को देखते हुए क्या कोई इनके भिन्नत्व की कल्पना कर सकता है? इस वस्तु जगत में अभिन्न मित्रता कहाँ पड़ी है? प्राय: बड़े से बड़ा संसर्ग लोभ एवं स्वार्थ के छोटे प्रसंग से टूट जाता है और फिर उसका ताल-मेल बैठाना कठिन हो जाता है। ऐसे समय में निन्दक भी कान भर दिया करते हैं जिससे चित्त विक्षिप्त होकर विपथ-गामी बन जाता है। यही बात हम राजा और कविराजा के सम्बंध में पाते हैं। लगभग १० वर्ष की कठोर तपश्चर्या के पश्चात् इन दोनों में विरोध आरम्भ हुआ जो किसी छोटे से प्रसंग के विस्फोटित होने की प्रतीक्षा करने लगा (१८५२ ई० के आस-पास) कोई आश्चर्य नहीं, अर्थभाव से अथवा अधिक व्यय से मनमुटाव हुआ हो। कहते हैं, इस बीच जब कोई दरबार के यहाँ से इनके पास कार्य की प्रगति के विषय में

पूछने आता तब ये उसके पीछे पत्थर लेकर मारने दौड़ते और वह बेचारा बड़ी कठिनता से अपने प्राण बचाता था। एक दिन यही दशा मुकुन्द गूजर गौड़ की हुई। चारण विद्वानों का कथन है कि जब बूंदी-नरेशों का क्रमिक गुणावगुण लिखते-लिखते रामसिंह का नाम आया और इन्होंने खरा-खरा लिखना आरम्भ किया तब महाराव से इनकी अनबन हो गई (१८५५ ई०) जान पड़ता है, रामसिंह ने कवि को कुछ ऐसी बात लिखने के लिए अवश्य कह दिया था जिसके लिए इनका हृदय साक्षी नहीं देता था। मुंशी देवीप्रसाद के मतानुसार एक बार इन दोनों में झड़प भी हुई थी। महाराव ने खीझकर कहा— 'आपने मेरे बाप-दादा वग़ैरह के जो दोष लिखे हैं, उनको पढ़कर तो मैंने जैसे-तैसे सबर किया परन्तु अपने दोषों के लिए नहीं कर सकता।' इन्होंने अक्खड़ता से उत्तर दिया— 'जब सबके दोष लिखे गये हैं तो आपके भी लिखे जायेंगे।' यह हौसला देखकर रामसिंह बोल उठे— 'ऐसे लिखने से तो नहीं लिखना अच्छा है।' अपने वर्षों के श्रम, साधना, सेवा एवं काव्य पर सहसा पानी फिरते देख कवि को जो मर्मान्तिक पीड़ा हुई होगी, उसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती है।

सूर्यमल्ल का समस्त जीवन एक असाधारणत्व लिए हुए था। निःसंतान होने के कारण इन्होंने मुरारिदान को गोद ले लिया जिन्होंने रामसिंह की आज्ञा से 'वंशभास्कर' के अपूर्ण अंश को पूर्ण किया। राज्य-सेवा से विमुख होकर कवि १३ वर्ष तक और जीवित रहा और ५३ वर्ष की अवस्था में शरीर त्याग दिया (१८६८ ई०)

सूर्यमल्ल ने कुल ८ रचनायें लिखीं जिनमें 'वंशभास्कर' (४ भाग, प्रकाशित) विशेष प्रसिद्ध है। इसे राजस्थानी का महाभारत कहा जाता है जिसकी सटीक पृष्ठ संख्या ४३६८ है। मूल ग्रंथ २५०० पृष्ठों का है। यह ग्रंथ १५ वर्ष की साधना का सुफल है (१८४०-५५ ई०) इसके पश्चात् ऐसा विशाल ग्रंथ कोई नहीं लिखा गया। वीर काव्य की दृष्टि से 'वीर सतसई' (प्रकाशित) का घना मूल्य है (१८५७ ई०) इसके प्रामाणिक दोहों की संख्या २८८ है। पिता की लिखी हुई 'पल विग्रह' नामक रचना इनके द्वारा पूरी हुई थी। १० वर्ष की अवस्था में 'रामरंजाट' नामक ग्रंथ बनाया जिसमें अपने आश्रयदाता के आखेट का वर्णन है। 'सती रासो' की रचना भिणाय (अजमेर) की रानी के सती होने पर की गई थी। 'छंदोमयूख' छंद-शास्त्र विषयक ग्रंथ है। 'बळवाद्विलास एवं बलवंतविलास' में भिणाय एवं रतलाम के राजाओं का चरित वर्णित है। 'धातु-

रूपावली' का पता नहीं लगता। इनके अतिरिक्त फुटकर कवित्त-सवैये आदि भी बहुत उपलब्ध होते हैं।

२. चंडीदान— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और कोटा के निवासी थे। इन्हें महाराव राजा रामसिंहजी का आश्रय प्राप्त था जिन्होंने इन्हें कविराजा की उपाधि से अलंकृत किया था। इन्हें संस्कृत, हिन्दी, डिंगल एवं पिंगल भाषाओं का ज्ञान प्राप्त था। इनका रचना-काल सन् १८४३ ई० माना जाता है। सूर्यमल्ल मिश्रण से इनकी प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती थी। देवी की स्तुति में एक-आध कवित्त बनाना इनका नित्य नियम था। इनका निधन सन् १८८० ई० में हुआ था।

३. गोपालदान— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८१५ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत सीकर जिले के उदयपुरा (चोरवा का बास) नामक ग्राम के निवासी थे। ये प्रसिद्ध अल्लू भक्त की वंश परम्परा में से थे। इनके पिता-पितामह का नाम क्रमश: खुमान एवं ज्ञान था। डिंगल-पिंगल रचयिता बाला-बख्श इनके मामा थे। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने काका रामनाथ कविया से प्राप्त की थी। आगे विद्याध्ययन के लिए तिजारा (अलवर) के श्री बलवंतसिंह रईस के यहां चले गये जहां इन्होंने फुटकर कविता लिखना आरम्भ किया। ये महाकवि सूर्यमल्ल के समवयस्क एवं समकालीन थे। इन्होंने अपने काका के साथ सूर्यमल्ल से बूंदी में भेंट की थी और वंशभास्कर का अध्ययन किया था जिसका प्रभाव इनकी कला-कृतियों पर पड़ा। इनकी कवित्व-शक्ति पर प्रसन्न होकर सीकर के रावराजा माधोसिंह ने राज्याश्रय प्रदान किया था। इनके तीन भाई और एक बहिन थी। इनके दो विवाह हुए और पाँच पुत्र एवं दो पुत्रियां हुई। इनका स्वर्गवास ७० वर्ष की अवस्था में हुआ था (१८८५ ई०)

गोपालदान ने पद्य के साथ-साथ गद्य-साहित्य की भी सेवा की है। यह गद्य इनकी कृतियों के बीच-बीच में देखने को मिलता है। इनके लिखे हुए ग्रंथों में 'शिखार-वंशोत्पत्ति पीढ़ी वार्त्तिक' (सीकर का इतिहास) १८६९ ई० एवं 'कूर्मवंश-यश प्रकाश' (लावारासा) प्रकाशित भी हो चुके हैं (१८७३ ई० के आस-पास) इन दो ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने राज्याज्ञा से 'कृष्णविलास' एवं स्फुट गीत भी लिखे हैं। कहते हैं कि इन्होंने 'काव्य प्रकाश भाषा' एवं 'सभा प्रकाश भाषा' नामक दो अन्य ग्रंथों की सृष्टि की थी जो अभी तक अप्रकाशित हैं।

४. **गणेशपुरी**— ये पातावत शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८२६ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत परवतसर परगने के चारणवास ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम पद्मसिंह था। आरम्भ में इनका नाम गुलाबदान था किन्तु कालांतर में सन्यास लेने के कारण इन्हें महात्मा एवं गोस्वामी कहकर सम्बोधित किया जाने लगा। 'पूत के पांव पालने में ही दीख जाते हैं' इसके अनुसार इनके होनहार होने की आशा बचपन से ही की जाती थी। एक बार जब ये भैंसों को चराकर सायंकाल अपने घर लौट रहे थे तब बालसुलभ चपलतावश एक भैंस पर सवार हो गये। एक परिचित सन्यासी ने इन्हें इस प्रकार देखकर कहा— 'वाह गुलाबदान! हमने तो सोचा था कि पद्मजी का बेटा सपूत होगा और लाखपसाव प्राप्त कर हाथी पर चढ़ेगा किन्तु आज हमारी धारणा निर्मूल सिद्ध हुई।' ये शब्द इनके हृदय में शूल की तरह चुभ गये और ऐसे लज्जित हुए कि इन्हें अपना काला अक्षर भैंस बराबर दिखाई दिया।

सन्यासी के वचनों से प्रेरित होकर गणेशपुरी का ध्यान शिक्षा की ओर उन्मुख हुआ। घर में उपयुक्त वातावरण न होने से ये रिवदान महडू (बोरून्दा) के संरक्षण में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने लगे। वहाँ रहकर इन्होंने अलंकार, छंद, नायिका भेद एवं पिंगल का ज्ञान प्राप्त किया और स्फुट कविता भी लिखने लगे किंतु पर्याप्त अध्ययन के अभाव में इन्हें संतोष नहीं हुआ। आगे के लिए इन्हें सूर्यमल्ल मिश्रण (बूँदी) दिखाई दिये किन्तु उनके पास जाने में सबसे बड़ी बाधा यह थी कि वे पातावत बारहठ को नहीं पढ़ाते थे। इसका कारण यह बताया जाता है कि इस शाखा के लोगों ने किसी मिश्रण चारण की भूमि पर अधिकार कर लिया था। विद्या-प्रेमी गणेशपुरी को यह जातिगत राग-द्वेष अधिक दिनों तक नहीं रोक पाया। सम्भव है, इस विषय को लेकर इन दोनों में बातचीत हुई हो किन्तु डॉ० मेनारिया ने गुलाबदान को गुप्तजी बनाकर जिस किंवदंती का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है, वह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती। उसका खण्डन करते हुए चारण-समाज विशेषतः कवि के भतीज श्री चंडीदान का दावा है कि गणेशपुरी अपढ़ अवस्था में सूर्यमल्ल के पास नहीं गये थे।

गुलाबदान डिंगल-पिंगल के ज्ञाता थे और इन दोनों भाषाओं में काव्य-रचना करते थे। चारण विद्वानों का कथन है कि एक बार नायिका भेद के प्रसंग को लेकर इनका कविराजा मुरारिदान (जोधपुर) से वाद-विवाद हो गया,

जिसमें यह विजयी हुए किन्तु कुछ लोगों के पक्षपात से प्रौढ़ कविराजा विजयी घोषित कर दिये गये। इस घटना से इनके मानस-पटल पर विषाद की रेखायें खिच आईं और ये आगे संसार के प्रति उदासीन हो गये। कोई-कोई यह छेड़-छाड़ मेवाड़ में किसी अन्य चारण से होना बताते हैं किन्तु इनके भतीज इसका विरोध करते हैं। जो हो, इस प्रकार की घटनाओं से इनके अन्तस्तल में वैराग्य के अंकुर प्रकट होने लगे। इधर बढ़ती हुई अवस्था को देखकर बड़े भाई इनका विवाह करने वाले थे कि रात्रि के समय ये सहसा अपनी जन्मभूमि को त्याग कर ज्ञान की खोज में निकल पड़े और अजमेर में एक प्रसिद्ध गुसाइयों के स्थान पर जाकर सन्यास ले लिया। यहीं इन्होंने अपना नाम बदलकर गणेशपुरी रखा।

गणेशपुरी की मेधा शक्ति अत्यंत तीव्र थी। सत्य की सतत शोध ने इन्हें सदैव क्रियाशील बनाये रखा। श्री चंडीदान के मतानुसार अजमेर में साधुओं के पास भी इन्हें शांति नहीं मिली तब इन्होंने सूर्यमल्ल के पास जाने का निश्चय किया। अतः ये वहाँ से बूंदी की ओर चल पड़े। ग्रीष्म ऋतु में तृषा से व्याकुल होकर इन्हें अपनी वैराग्य-भावना बड़ी कष्टदायक प्रतीत हुई। घर लौट जाने के संकल्प-विकल्प में ठाकुर कवि के सवैयों ने इन्हें मार्ग-दर्शन प्रदान किया। कहते हैं बूंदी पहुँच कर इन्होंने अपने विद्या-बल से सूर्यमल्ल को प्रसन्न किया और उनके पास अपना ज्ञान बड़ाया। सूर्यमल्ल ने एक दिन प्रसन्न होकर कहा—'गोसाईं! तू बड़ा विलक्षण बुद्धि का व्यक्ति है अतः काशी विद्या पीठ चला जा और कुछ समय तक वहां संस्कृत का अध्ययन कर। मेरे पास इतना समय नहीं कि तुझे वह पढ़ा दूं।' इस आदेश को पाकर फिर ये काशी चले गये। वहाँ ये एक तपस्वी के समान वल्कल धारण कर पत्ते पर भोजन करते और नियमित रूप से संस्कृत का अध्ययन करते रहते थे। इसके लिए इन्हें 'मुग्ध बोध' व्याकरण बहुत प्यारा लगा। ५ वर्ष तक ये काशी में रहे फिर वहां से बूंदी लौट आये। सबसे पहले महाराव रामसिंहजी से मिले, जिन्होंने इनका बहुत आदर-सत्कार किया। बूंदी में यह नियम था जो कोई दरबार से मिलता उसे पहले सूर्यमल्ल से मिलकर विद्वत्ता का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक था किन्तु ये सीधे ही मिले। महाराजा से वार्ता करते समय सूर्यमल्ल भी वहां आ पहुँचे। इन्होंने चरण-स्पर्श कर अपने शिष्यत्व का परिचय दिया। नाम ज्ञात होने पर सूर्यमल्ल अत्यंत प्रसन्न हुए और इन्हें अपने हृदय से लगा लिया। तत्पश्चात् सूर्यमल्ल ने इन्हें अपने पास ५ वर्ष तक और विद्या पढ़ाई। इस प्रकार

स्वामी गणेशपुरी [जन्म सन् १८२६ ई०]

कठोर साधना करते-करते ये पूर्ण विद्वान हो गये। सूर्यमल्ल ने इन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—'यदि गुरू कहने से किसी का भला हो तो मेरी तुझे आशीष है कि भगवान तेरा भला करे और मेरे सब शिष्यों में तू प्रधान गिना जाय।'

गणेशपुरी अपनी परिपक्व अवस्था में राजस्थान के राज्यों में इधर-उधर घूमते रहते। मारवाड़ एवं मेवाड़ में इनका विशेष आदर हुआ। इन्होंने अपने जीवन-काल में कई शिष्यों को ज्ञान-दान दिया। रोहड़िया शाखा के बारहठ किशोरदान इनके प्रिय शिष्य थे। गुणग्राही महाराणा सज्जनसिंह के आग्रह से इन्होंने कुछ समय के लिए मेवाड़ में निवास किया। इनके सम्पर्क में आकर महाराणा भी कविता करने लगे। यह उल्लेखनीय है कि इनका डिंगल, पिंगल एवं संस्कृत का उच्चारण अत्यंत स्पष्ट एवं शुद्ध होता था। साथ ही कविता पढ़ने का ढंग ऐसा प्रभावशाली था कि सुनने वाले आनंद-भाव में मग्न हो जाते थे। साधारण रचना भी इनके मुंह से निकलकर असाधारण हो जाती थी। इस प्रकार संयमित जीवन व्यतीत करते हुए एक दिन कोटा में इनका स्वर्गवास हो गया।

गणेशपुरी की लिखी हुई अनेक रचनायें बताई जाती हैं जिनमें से चार के नाम प्राप्त होते हैं— मारू महराण, वीर विनोद, भरतृहरिशतक एवं जीवनमूल। 'वीर विनोद' (कर्णपर्व) एक प्रकाशित ग्रंथ है, जो राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त फुटकर कवित्त-सवैये भी बहुत उपलब्ध होते हैं।

५. कमजी— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और उदयपुर के निवासी थे। 'वीर विनोद' के रचयिता महा महोपाध्याय कविराजा श्यामलदास इनके पुत्र थे। इनकी गणना प्रतिष्ठित नागरिकों में की जाती थी। इनके लिखे हुए फुटकर गीत मिलते हैं।

६. भवानीदान— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और कोटा के निवासी थे। इन्हें कोटा-नरेश ने कविराजा के पद से विभूषित किया था। इनकी स्फुट कवितायें मिलती हैं।

७. बख्शीराम—ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के ढाढरवाड़ा गाँव के निवासी थे। इनकी फुटकर कविता उपलब्ध होती है।

८. नवलदान—ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८२३ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत गांव छीडिया के निवासी थे। आप बड़े देश-भक्त थे। इनका स्वर्गवास सन् १८९३ ई० में हुआ। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें मिलती हैं।

९. शंकरदान—ये सामौर शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८२४ ई०) और बीकानेर राज्यान्तर्गत सुजानगढ़ तहसील के गांव बोबासर के निवासी थे। ये अपने पिता शेरदानजी के इकलौते पुत्र थे अतः बाल्यकाल सुख-वभव में ही व्यतीत हुआ। सन् १८४७ ई० में इनके पिता का देहान्त होगया और सन् १८५० ई० में पत्नी भी चल बसी। अतः इनके मन को गहरी चोट पहुँची।

बाल्यकाल से ही शंकरदान की रुचि साहित्य की ओर थी। ये अपने चचेरे भाई पृथ्वीसिंह से दुरसाजी के दोहे, आशाजी बारहठ के उमादे के कवित्त तथा ईसरदासजी के हाला झाला री कुण्डलिया के छंद बड़े चाव से सुनते थे। काव्योचित संस्कारों के निर्माण का श्रेय इसी पृथ्वीसिंह को है। संस्कृत का सामान्य एवं राजस्थानी का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर इन्होंने काव्य-रचना करना आरंभ किया। इन्हें भगवती दुर्गा के शक्ति स्वरूप का इष्ट था।

शंकरदान ने साहित्य के साथ तत्कालीन राजनीति में भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया, साथ ही कई सामाजिक कुरीतियों में सुधार किया। इनका जीवन संघर्ष-मय अधिक था अतः आप बड़े निर्भीक थे। आत्म-गौरव की भावना प्रबल होने से इन्होंने राज्याश्रय में रहना पसन्द नहीं किया और न किसी प्रकार की जागीर ही स्वीकार की। सीकर-नरेश ने पिपरालो गांव और बीकानेर-नरेश ने तीन गाँवों का पट्टा दिया किन्तु इन्होंने नहीं लिया। स्वाभिमानी इतने थे कि रोडू गांव से निष्काषित एक भोमिया राजपूत सरदार को अपनी जागीर में से ११०० बीघा भूमि प्रदान कर दी। तभी से आप बीकांण बली कहलाने लगे।

शंकरदान के लिखे हुए पाँच ग्रंथ मुख्य हैं—शक्ति सुजस, साकेत शतक, भैरूंजी रा गीत, वगत वायरो एवं देस दरपण। इनके अतिरिक्त फुटकर गीत, दोहे, छप्पय आदि भी बहुत लिखे हैं। इनका देहान्त सन् १८७८ ई० में हुआ था। इनके गीतों के विषय में आज भी प्रसिद्ध है—

'शंकरये सामौर रा, गोळी जेहड़ा गीत।
मिन्तर सांचा मुलक रा, रिपुवां उलटी रीत॥'

शंकरदान सामौर [सन् १८२४-१८७८ ई०]

१०. मुरारिदान— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८३२ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम भांडियावास के निवासी थे। इनके पिता का नाम कविराजा भारतदान था। पितामह् वांकीदास डिंगल के प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं जिनका परिचय गत अध्याय में विस्तार से दिया जा चुका है।

मुरारिदानजी प्रखर बुद्धि के व्यक्ति थे और अपनी हाजिरजवाबी से दूसरे को मुग्ध कर देते थे। इन्होंने आजीवन मारवाड़ राज्य के अनेक महत्त्वपूर्ण विभागों में उच्चपद पर कुशलता से कार्य किया। दीवानी और फौजदारी अदालतों के न्यायाधीश के रूप में इनकी सेवायें सराहनीय रहीं। यहाँ रहकर आपने जिस सच्चाई, ईमानदारी एवं निष्पक्षता का परिचय दिया उससे प्रसिद्ध हो गये। यह लक्ष्य करने की बात है कि उन दिनों ऋषि दयानन्द के आदेशानुसार सर प्रताप ने अदालतों की भाषा मारवाड़ी कर दी थी और ये अपने सारे निर्णय मारवाड़ी में ही दिया करते थे। इससे इनका मातृभाषा-अनुराग प्रकट होता है। ये अपने समय के मारवाड़ी के सर्वोच्च अधिकारी विद्वान माने जाते थे। तवारीख का विभाग भी इनके अधीन रहा। इसके अतिरिक्त राज्य-परिषद (State Council) के भी सदस्य रहे। उल्लेखनीय है कि राजस्थान के समस्त रईस यहाँ तक कि अंग्रेज सरकार व बड़े-बड़े अफसर भी राज्य सम्बन्धी कार्य इनकी सम्मति से किया करते थे।

मुरारिदानजी ने कविता लिखना देर से आरम्भ किया। इनका रचना-काल सन् १८८३ ई० से आरम्भ होता है। ये डिंगल के साथ-साथ पिंगल के भी मर्मज्ञ थे। संदेह नहीं कि ये अपने गुणों के कारण उन्नति करते रहे और व्यक्तित्व निखरता गया। इन्हें जोधपुर-नरेश महाराजा जसवंतसिंह (द्वितीय) के कविराजा होने का यश प्राप्त है।

मुरारिदानजी ने 'जसवंत जसोभूषण' नामक एक वृहद् ग्रंथ बनाया जो ८५२ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इसका लघु रूप 'जसवंत भूषण है' जो ३५१ पृष्ठों का है। ये दोनों ग्रंथ राजकीय मुद्रणालय, जोधपुर से प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी साहित्य-सेवा पर प्रसन्न होकर महाराजा ने लाखपसाव का पुरस्कार दिया तथा अँग्रेज सरकार से 'महामहोपाध्याय' की पदवी दिलाई। इन्हें चार गाँव जागीर में भी मिले, जिनके नाम ये हैं— मथाणियाँ का वास, कोटडा, किरमरिया कलाँ और किरमरिया खुरद। इनका देहान्त सन् १९१३ में हुआ था।

११. हरीदान— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८३३ ई०) और बीकानेर राज्यान्तर्गत ग्राम दासोड़ी के निवासी थे। इनके पिता का नाम रिवदानजी था। इनका स्वर्गवास सन् १९१८ ई० में हुआ। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

१२. सम्मान बाई— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुई थी (१८३३ ई० के आस-पास) और अलवर राज्यान्तर्गत तिजारा तहसील में सिहाली नामक ग्राम की रहने वाली थी। डिंगल के प्रसिद्ध भक्त कवि कविया रामनाथ इनके पिता थे। इनका विद्याध्ययन आरम्भ से लेकर अन्त तक अपने पिता के संरक्षण में हुआ। एतदर्थ, बाल्यावस्था से ही इनके हृदय में ईश्वरीय भक्ति के संस्कार बद्धमूल हो गये जो जीवन पर्यन्त बने रहे।

कालांतर में जब सम्मान बाई बड़ी हुई तब पिता ने इनका विवाह माहद (अलवर) के ठाकुर रामदयालजी पाल्हावत बारहठ के साथ कर दिया। प्रथम मिलन में इन्होंने अपने पति से प्रार्थना की— 'मेरा विचार इस नश्वर शरीर से भगवद्भजन करने का है, श्रीमान् की क्या इच्छा है ?' रामदयाल जी ने जो स्वयं हरिभक्ति में लीन रहते थे, उत्तर दिया— 'इस विषय में जिस प्रकार की आपको अड़चन हो, वह मुझे कह दें। मैं हर तरह से आपके हरि-भजन के मध्य में पड़ने वाली बाधाओं को मिटा दूंगा। मैं अपना जीवन कृत-कृत्य समझूंगा कि श्रीमती जैसी भक्त रत्न महिला के साथ मेरा पाणिग्रहण हुआ।' सम्मान बाई ने सब प्रकार के सांसारिक सुखों के होते हुए वैराग्य धारण कर लिया। कहते हैं, जब इन्होंने एक बार अपने पति से ब्रज-यात्रा एवं श्री रंगनाथजी के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की तब रामदयालजी स्वयं तीर्थयात्रा के लिए इनके साथ गये। तीर्थयात्रा करने के पश्चात् जब ये श्री रंगनाथजी के मंदिर में दर्शनार्थ पहुँची तब दर्शकों एवं पुजारियों को बाहर निकालकर अकेली प्रतिमा के सामने दो घंटे तक बैठकर उस अलौकिक रूप को देखती रही। मंदिर से बाहर आने पर आँखों पर एक कपड़े की पट्टी बांधकर जगदीश्वर से प्रार्थना करने लगी— 'हे प्रभो ! आपका स्वरूप मेरी आंखों में बस चुका है, इसलिए अब वह दृष्टि से ओट न हो और कोई सांसारिक नश्वर पदार्थ का रूप मेरी आंखों के समक्ष न आवे। यह पट्टी जीवन भर बँधी रही और जब तक जीवित रहीं तब तक गंगा-जल का ही सेवन किया।

सम्मान बाई की आँखों पर पट्टी बंधी रहने से आर्ष-ग्रंथों का अध्ययन बंद

हो गया। यह देखकर रामदयालजी इनकी इच्छानुसार रामायण, भागवत, गीता आदि धार्मिक ग्रंथों को पढ़कर सुनाया करते थे और ये सूर, तुलसी एवं मीरां के सदृश सदैव ईश्वर विषयक ८-१० पद, कवित्त, सवैया आदि रचकर उन्हें सुनाया करती थी। घर में कीर्तन होते रहने से रामदयालजी राज्य-दरबार में भी जाना भूल जाते। अपनी पत्नी को थोड़ा भी अस्वस्थ होते देख वे इनकी विशेष देख-भाल रखते थे। कहते हैं, एक बार जब इनके पति रुग्ण हो गये और उनके बचने की आशा न देखकर रामनाथजी व्याकुल हो गये। यह देखकर इन्होंने कहा—'घबड़ाइये नहीं, आपकी पुत्री सम्मान को ईश्वर कभी वैधव्य-कष्ट से पीड़ित नहीं करेंगे।' हुआ भी यही। सम्मान ने तत्काल दो नवीन पद रचकर अखिलेश्वर की पुकार की जिससे उनकी अवस्था सुधरने लगी। इस प्रकार सांसारिक विषय-वासना-हीन वैराग्यमय जीवन व्यतीत करती हुई सम्मान बाई का स्वर्गवास सन् १८८५ ई० में हो गया। रामदयाल के पुत्र नहीं हुआ, गोद ले लिया पर दूसरा विवाह नहीं किया।

राजस्थान में मीरां जैसी यदि कोई चारण कवयित्री प्रादुर्भूत हुई है तो वह सम्मान बाई है। इनके ४ ग्रंथ उपलब्ध होते हैं— पतिशतक, कृष्ण बाललीला, सोळे (वैवाहिक गीत) एवं भक्त-चरित्र। इनके अतिरिक्त स्फुट पद भी बहुत मिलते हैं।

१३. राघोदास— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८३४ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के गांव मृगेश्वर के निवासी थे। इनके पिता का नाम भैरूदान था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पिता की देख-रेख में हुई। ये कट्टर शाक्त मत के अनुयायी थे। इन पर महाराजा तख्तसिंह की विशेष कृपा थी। इनका पाल ठिकाने में आना-जाना रहता था और जोधपुर आने पर पाल-हवेली में ही ठहरते थे। ये डिंगल के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने बाघजी राव को लक्ष्य करके निन्दात्मक काव्य की सृष्टि की है। ये छप्पय रचना में पटु थे। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

१४. मुरारिदान मिश्रण— ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८३८ ई०) और बूंदी के निवासी थे। ये प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल के दत्तक पुत्र थे। उनके संरक्षण में शिक्षा ग्रहण करने से ये षट्भाषा के ज्ञाता हो गये। ये एक प्रतिभा सम्पन्न कवि भी थे। 'वंश-भास्कर' लिखते समय जब गतिरोध उत्पन्न हो गया तब उसके

अपूर्ण अंश को इन्होंने पूरा किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने दो ग्रंथ और बनाये— डिंगल कोष तथा वंश-समुच्चय। ये पिंगल में भी काव्य रचना करते थे। इनका देहान्त सन् १९०७ ई० में हुआ।

१५. शिवबख़्श— ये पाल्हावत शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८४२ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत हणूंतिया ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम रामसुख था। जब इनकी आयु ८ वर्ष की थी तब इनके पिता का देहान्त हो गया अतः ये अपने ननिहाल में प्रसिद्ध रामनाथ कविया की देख-रेख में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने लगे। यहां इन्होंने काव्य-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। फिर इन्होंने थाणा के ठाकुर साहब हनुमन्तसिंहजी (अलवर) के पास विद्याध्ययन किया जो इनकी १२ वर्ष की आयु में चल बसे। उनकी स्त्री के सती होने पर इन्होंने छप्पय सुनाये थे। इन्हें पुरस्कार भी दिया गया किन्तु लेने से मना कर दिया। ठाकुर साहब के लड़के मंगलसिंहजी इनके परम मित्र थे। जब अलवर-नरेश शिवदानसिंहजी ने मंगलसिंह को गोद लिया और वे अलवर की राज-गद्दी पर बैठे तब शिवबख़्श भी अलवर चले आये। यहाँ इन्हें भूमि मिली। अलवर में रहकर इन्होंनें फुटकर कवितां लिखना आरम्भ किया (१८६५ ई०) कालान्तर में महाराजा के अप्रसन्न होने पर ये वृंदावन की ओर चले गये जहां से ये उनकी जीवित अवस्था में नहीं लौट पाये। ये कुछ दिनों तक कश्मीर में रहे जहाँ के महाराजा ने इन्हें भव्य विदाई दी। इसके अतिरिक्त ये रतलाम में भी रहे थे। मंगलसिंह का रतलाम में जो विवाह हुआ उसमें इनका मुख्य हाथ था।

शिवबख़्श के तीन पुत्र हुए और एक लड़की। पुत्रों में चंडीदान एवं ईश्वरीदान कवि थे किन्तु दुर्भाग्य से चंडीदान युवावस्था में ही परलोकवासी हो गये। शिवबख्श का देहान्त 'थाणा' में ठाकुर साहब की अलवर वाली हवेली में हुआ (१८९९ ई०) इनका दाह-संस्कार चैनपुरा के ठाकुर गंगासिंह ने पांच सौ रुपये देकर किया था। इनके वर्तमान वंशधर तेजदान एवं भैरोंबख्श हैं।

शिवबख्श के लिखे चार ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—वृन्दावन शतक, जिसमें १११ कवित्त एवं सवैये हैं। २. तवारीष अलवर, जिसके पुरस्कार स्वरूप इन्हें पचीस रुपये मासिक मिलना स्वीकृत हुआ था। ३. झमाल जूनिया एवं ४. झमाल अलवर षड्ऋतु वर्णन, जिसमें १३० झमाल देखने को मिलते हैं। इनमें से नं० १, २ व ४ राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता के संग्रहालय में हैं, बाकी नं० ३

का कोई पता नहीं लगता। इनके अतिरिक्त फुटकर कविता भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है।

१६. **रघुनाथदान**— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के गाँव ऊजला के निवासी थे। इनके पिता का नाम शेरदानजी था। इनका निधन १८९७ ई० में हुआ। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१७. **गंगाबिसन**— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८४३ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के गाँव ऊजला के निवासी थे। ये राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि नाथूरामजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इन्हें संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त था। इनका निधन सन् १९१८ ई० में हुआ। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१८. **जेठूदान**— ये उज्वल सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के गाँव ऊजला के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१९. **हेतुराम**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य में पोकरन के पास बारहठों के गाँव में रहते थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२०. **लक्ष्मीदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सोजत परगने के ग्राम आंगदोष के निवासी थे। चारण-समाज में ये आशु कवि के रूप में प्रतिष्ठित थे। इन्हें चमत्कारवादी कवि कहा जा सकता है।

२१. **भारतदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के ग्राम ईटदडा के निवासी थे। ये भक्ति की रचनायें लिखने में प्रवीण थे। इन्होंने भगवद्गीता का दोहों में उल्था किया है।

२२. **नाथूदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के ग्राम मृगेश्वर के निवासी थे। इनके पिता का नाम शिवदानजी था। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२३. **रिडमलदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के ग्राम मृगेश्वर के निवासी थे। इनके पिता का नाम

हीरदानजी था। ये डिंगल-पिंगल के ज्ञाता थे और संस्कृत भी जानते थे। इन्होंने 'आदिया' को सम्बोधित करते हुए दोहे लिखे हैं। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

२४. **जवाहरदान**— ये बारहठ लषावत शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सोजत परगने के गाँव रेंदडी के निवासी थे। राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि स्वामी गणेशपुरीजी के ये शिष्य थे। इन्हें डिंगल-गीतों को पढ़ने की अपूर्व शक्ति मिली हुई थी।

२५ **आईदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सोजत परगने के गाँव रेंदडी के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२६. **किशोरदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के गाँव मोरटहूका के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२७. **शक्तिदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जैतारण परगने के गाँव खीनावड़ी के निवासी थे। इनके पिता का नाम जयकरणजी था। इन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

२८ **जोरदान**— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जैतारन परगने के गाँव सोबडावास के निवासी थे। इनके समय में महाराजा तख्तसिंह सिंहासनारूढ़ थे। ये उच्च श्रेणी के कवि थे। इनकी लिखी हुई अनेक कवितायें उपलब्ध होती हैं।

२९. **चतरदान**— ये पाल्हावत शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत ग्राम हणूंतिया के निवासी थे। ये बालाबक्स के काका थे और गोपालदान इनके वेवाई (समधी) थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

३०. **हरसूर**— ये बारहठ शाखा के चारण थे और जैसलमेर राज्यान्तर्गत ग्राम भीमाड़ के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १९०० ई० के आस-पास कहा जाता है। इन्होंने अनेक फुटकर गीत लिखे हैं।

कृष्णसिंह सौदा बारहठ [सन् १८४९-१९०७ ई०]

३१. **कृष्णसिंह**— ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८४९ ई०) और शाहपुरा राज्यान्तर्गत देवपुरा ग्राम के निवासी थे। इस गाँव की जागीर इनके पूर्वजों को युद्ध में काम आने से मिली थी। आप शाहपुरा के पोलपात थे। कविराजा श्यामलदास (उदयपुर) इनके मामा थे। महाराणा सज्जनसिंह (उदयपुर) की इन पर बड़ी कृपा थी किन्तु कालान्तर में महाराणा फतहसिंह ने किसी कारण से इन्हें दरबारी के पद से हटा दिया। अतः ये जोधपुर आ गये जहाँ महाराजा जसवन्तसिंह ने इनको तीन-सौ रुपया मासिक देना आरम्भ किया। फिर ये शेष जीवन में जोधपुर ही रहे। इन्होंने कविराजा मुरारिदान के आदेशानुसार पं० रामकर्ण आसोपा की सहायता से 'वंश-भास्कर' की कुछ टीका लिखी थी। इनके विक्टोरिया रानी पर लिखे हुए कवित्तों का प्रकाशन जोधपुर राजकीय मुद्रणालय से हो चुका है। 'कृष्णोपदेश' इनकी अप्रकाशित पुस्तक है। इसके अतिरिक्त फुटकर काव्य भी लिखा है जिसमें उमादे के छप्पय विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनका स्वर्गवास सन् १९०७ ई० में जोधपुर में हुआ था।

३२. **मोतीराम**—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत मिलते हैं।

३३. **भीखदान**—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम बिडलिया के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८७० ई० के आसपास बताया जाता है। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

३४. **हरदान**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८३४ ई०) और मारवाड़ राज्यानान्तर्गत जोधपुर परगने के मोगड़ा गाँव के निवासी थे। इनके बाल्यकाल में माता-पिता का देहान्त हो गया था। इसलिए इन्हें अपनी प्रारम्भिक शिक्षा हेतु गाँव गोंदियाना (किशनगढ़) अपने सम्बंधी बारहठ वल्लभजी के पास जाना पड़ा। ये गणित विद्या में पारंगत थे। इनकी रुचि छंद-शास्त्र की ओर विशेष थी इसलिए आगे चलकर इसके श्रेष्ठ जानकार हो गये। संदेह नहीं कि अपनी सूझ-बूझ से नये-नये छंदों की सृष्टि कर देते। कहते हैं, छंद-विद्या में इन्होंने सूर्यमल्ल मिश्रण को भी पराजित कर दिया था किन्तु इस प्रसंग को टाल दिया गया है। डिंगल के साथ साथ इन्होंने पिंगल शास्त्र का भी अध्ययन किया था। अतः यह दोनों भाषाओं में काव्य-रचना करते थे। इन्होंने 'छंद महोदधि' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया

जिसकी कई लोगों ने प्रशंसा की किन्तु यह अप्राप्य है। इसकी एक प्रति मसूदा ठिकाने के सँग्रहालय में बताई जाती है। इनका स्वर्गवास सन् १६०२ ई० में हुआ।

३५. श्यामलदास— ये दधवाड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८३६ ई०) और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ढोकलिया गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम कमजी (कायमसिंह) था और दादा का रामदीन। ये चार भाई थे-ओनाड़सिंह श्यामलदास, ब्रजलाल और गोपालसिंह। इन्होंने १० वर्ष की आयु में व्याकरण का सारस्वत ग्रंथ पढ़ना आरम्भ किया और उसके बाद वृत्त-रत्नाकर, साहित्य दर्पण, रसमंजरी, कुवलयानंद इत्यादि ग्रंथों का अध्ययन किया जिससे संस्कृत काव्य के प्राय: सभी अंगों का इन्हें अच्छा ज्ञान हो गया। सन् १८५५ ई० तक विद्याभ्यास चलता रहा। इस समय में इन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू-फारसी तथा डिंगल में भी दक्षता प्राप्त कर ली। इन्होंने एक-दो ग्रंथ ज्योतिष तथा वैद्यक के भी पढ़े थे।

श्यामलदास ने दो विवाह किये किन्तु कोई पुत्र जीवित न रहने से इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र जसकरण को गोद ले लिया। इनका देहान्त सन् १८६४ ई० में हुआ था।

श्यामलदास एक सभा-चतुर, नीति-निपुण एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे। महाराणा सज्जनसिंह की इन पर विशेष कृपा थी। यह देखकर लोग इनसे मन ही मन ईर्ष्या करते थे। इन्हें ठकुर सुहाती कहना नहीं आता था यहां तक कि बड़े से बड़े व्यक्ति को भी खरी-खोटी सुना देते थे। ये राज्य-सभा के सदस्य थे और इतिहास कार्यालय, पुस्तकालय, म्यूज़ियम आदि की देख-रेख भी करते थे। इसके अतिरिक्त राज-काज सम्बन्धी प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर इनकी सम्मति ली जाती थी। मेवाड़ राज्य के प्रति की हुई सेवाओं के उपलक्ष में महाराणा ने इन्हें कविराजा का उपटंक, जुहार, ताजीम, छड़ी, बांहपसाव, चरणशरण की मुहर, पैरों में सब प्रकार के स्वर्ण-आभूषण और पगड़ी में मांझा देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। अंग्रेज सरकार ने भी योग्यता की प्रशंसा कर इन्हें महामहोपाध्याय की पदवी दी। मेवाड़ के राजदूत (Resident) कर्नल इम्पी ने अपनी कोठी पर दरबार कर इन्हें "कैसरे हिन्द" का तग़मा दिया था।

३६. चाँदजी – ये किनिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्या-अन्तर्गत फलोदी परगने के गाँव सुइयाप के निवासी थे। ये अपने समकालीन

श्यामलदास दधवाड़िया [सन् १८३६-१८९४ ई०]

श्यामलदास कवि एवं इतिहासकार दोनों थे किन्तु राजस्थान में इनकी कीर्ति का आधार इनकी कवितायें नहीं वरन् इनका लिखा हुआ 'वीर विनोद' नामक इतिहास ग्रंथ है। यह वृहद् इतिहास दो भागों में विभक्त है एवं २२५६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। महाराणा शम्भूसिंह की आज्ञा एवं कर्नल इम्पी के आग्रह से सन् १८७१ ई० में इसका लिखना आरम्भ हुआ और महाराणा फतहसिंह के राज्य-काल में इसकी समाप्ति हुई (१८९२ ई०) इसके लिए सामग्री जुटाने में मेवाड़ राज्य का एक लाख रुपया व्यय हुआ था। ग्रंथ छप तो गया किन्तु महाराणा फतहसिंह ने कुछ विशेष कारणों से इसका प्रचार होना रोक दिया। कई वर्षों तक यह बंद कोठरी में पड़ा रहा। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'सज्जन यश वर्णन' नामक पुस्तक भी लिखी है।

३६. **चाँदजी**— ये किनिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के गाँव सुइयाप के निवासी थे। ये अपने समकालीन नरेश जसवंतसिंह द्वितीय (जोधपुर) के कृपा-पात्र थे और उनके पास आया-जाया करते थे। इनकी कवित्व-शक्ति पर प्रसन्न होकर महाराजा ने इन्हें पोपावस ग्राम देकर पुरस्कृत किया। इन्हें ताजीम भी दी गई। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें उपलब्ध होती हैं।

३७. **गिरवरदान**—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम हिलोडी के निवासी थे। इनके समय में महाराजा तख्तसिंह सिंहासनारूढ़ थे। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

३८. **चैनदान**— ये वरणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पारलाऊ गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम भैरूदान था जो अपने समय के उच्चकोटि के साहित्यकार थे। महाराजा तख्तसिंह (जोधपुर) इनके समकालीन थे। इनकी स्मरण-शक्ति अपने पिता के सदृश तीव्र थी। ये दरबारी ठाट-बाट एवं शान-शौकत से रहते थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत मिलते हैं।

३९. **ईसरदास**— ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सिवाना परगने के सरवडी गाँव के रहने वाले थे। इनकी लिखी हुई ईश्वर भक्ति विषयक रचनायें उपलब्ध होती हैं।

४०. **जादूराम**— ये वरणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और और मारवाड़

राज्यान्तर्गत पारलाऊ गाँव के निवासी थे। इन्हें स्वर्ण ताजीम प्राप्त थी अतः लोग इन्हें ठाकुर कहते थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत मिलते है।

४१. **महादान**—ये वरणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पारलाऊ गाँव के निवासी थे। ये अपने गाँव के पाटवी थे और ठाकुर कहकर सम्बोधित किये जाते थे। इनकी लिखो हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

४२. **विजयदान**— ये वरणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पारलाऊ गाँव के निवासी थे। पारलाऊ के पाटवी होने से लोग इन्हें ठाकुर कहते थे। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

४३. **महेशदान**— ये वरणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पारलाऊ गाँव के निवासी थे। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

४४. **गंगाराम**— ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सिवाना परगने के सरवडी गाँव के रहने वाले थे। ये महाराजा तख्तसिंह के समकालीन थे। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

४५. **पदमजी**— ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सिवाना परगने के सरवडी गाँव के रहने वाले थे। इनकी लिखी हुई ईश्वर भक्ति की रचनायें उपलब्ध होती हैं।

४६. **शिवदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के भांडू गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम खूमदान था। महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय (जोधपुर) इनके समकालीन थे। ये अत्यन्त सहृदय, उदार एवं लोकप्रिय कवि थे। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

४७. **बादरदान**—ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पाली परगने के ग्राम बसी के निवासी थे। ये अपने समकालीन नरेश सरदारसिंहजी (जोधपुर) के कृपा-पात्र थे और उनके पास आया-जाया करते थे। इनका परम्परागत वात कहने का ढंग अनूठा था। इनके फुटकर छन्द उपलब्ध होते हैं।

४८. **नाथूदान**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के गाँव भांडू के निवासी थे। इनके पिता का नाम शिवदान

था। ये डिंगल-पिंगल दोनों का उद्भट विद्वान, इतिहास के ज्ञाता एवं सहिष्णु प्रकृति के व्यक्ति थे। इनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी और लगभग ६३ ग्रंथ कंठस्थ याद थे। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

४६. **करणीदान**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के गाँव भांडू के निवासी थे। इन्हें प्राचीन कवि आल्हा के वंशज होने का गौरव प्राप्त है। ये साहसी, दानी एवं ओजस्वी वाणी के व्यक्ति थे। ये डिंगल-कविता का पाठ करने में बेजोड़ थे। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५०. **बक्सीराम**—ये वणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के पारलाऊ गाँव के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

५१. **बाँकीदान**— ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सिवाना परगने के सरवडी गाँव के रहने वाले थे। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५२. **मयाराम**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और जैसलमेर राज्य के ग्राम सिरवा के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५३. **सायबदान** – ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और जैसलमेर राज्य के ग्राम सिरवा के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५४. **गणेशदान**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पाली परगने के बसी गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम बादरदान था। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५५. **रामलाल**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और जैसलमेर राज्यान्तर्गत बारहठ रो गाँव के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५६. **गिरधारीदान**— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के थूंभली गाँव के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५७. शिवजी रामजी— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ओढाडिया गाँव के निवासी थे। ये जैसलमेर के कविराजा थे और इन्हें ग्राम भू (जैसलमेर) मिला था। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५८. हेमदान— ये वीठू बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शिव परगने के भिणकली गाँव के निवासी थे। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

५९. वूधरदान— ये उज्वल सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत पुनावा गाँव के निवासी थे। इनको लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६०. उदयदान— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के बाळाउ गाँव के निवासी थे। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६१. प्रतापदान— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पाली परगने के एन्दलास गाँव के निवासी थे। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६२. शिवकरण— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत देसूरी परगने के रायपुरिया गाँव के निवासी थे। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६३. पद्मदान— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पांचेटिया गाँव के निवासी थे। इनके समय में जोधपुर की राज्य-गद्दी पर महाराजा जसवंतसिंह विराजमान थे। उल्लेखनीय है कि बीजलियावास गाँव के अमरदान लालस ने मरते समय इन्हें जोरजी चांपावत की झमाल वनाने के लिए कहा और इन्होंने इस कार्य को पूरा किया। यह एक मौलिक रचना है।

६४. महताबदान—ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के गाँव छींडिया के निवासी थे। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६५. **कालूराम**— ये उज्वल सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के निवासी थे। महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय (जोधपुर) इनके समकालीन थे। इनमें काव्य-पाठ की अद्भुत शक्ति थी। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

६६. **मेजळदान**— ये उज्वल सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के निवासी थे। ये प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे अतः अनपढ़ होने पर भी काव्य-रचना किया करते थे।

६७. **बाँकीदान उज्वल**— ये उज्वल सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

६८. **गणेशदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के भांडू गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम नाथूदान था। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

६९. **उदयदान**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के तोलेसर गाँव के निवासी थे। इनकी फुटकर कविता उपलब्ध होती है।

७०. **शिवकरण**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और जोधपुर के पास मथानिया गाँव के निवासी थे। महाराजा तख्तसिंह इनके समकालीन थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

७१. **सायबदान सांदू**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के डीडिया गाँव के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

७२. **फतहदान**— ये वणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पारलाऊ गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम भैरूदान था और ये उनके छोटे पुत्र थे। इनके लिखे हुए फुटकर छंद मिलते हैं।

७३. **मोडसिंह**— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम टींटोड़ा के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८७३ ई० माना जाता है। इन्होंने 'वीर सतसई' के नाम से एक ग्रंथ लिखा जो अप्रकाशित है। इसके अतिरिक्त फुटकर रचनायें भी उपलब्ध होती हैं।

७४. **राजूदान**—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बोरून्दा गांव के निवासी थे। इनके पिता का नाम रविदान था। अपने पिता की वृद्धावस्था में ये जोधपुर-नरेश तख्तसिंहजी और उनके महाराजकुमार जसवंतसिंहजी के पास रहते थे। ये बड़े दृढ़ निश्चयी एवं सत्यवक्ता थे। एक बार जब तख्तसिंहजी अंतःपुर में मद्यपान कर रहे थे तब उन्होंने इनके लिए मद्य की मनुहार भेजी। ये मद्य-मांस का सेवन नहीं करते थे अतः उसे सादर लौटा दी। यह देखकर महाराजा स्वयं बाहर ड्योढी पर आये और आग्रह करने लगे। राजूदान ने नम्रता से निवेदन किया—'जब आप इतना आग्रह करते हैं तब मैं उपेक्षा नहीं करना चाहता। मद्य पी भले ही लूंगा परन्तु अब यह शरीर कृष्णार्पण है।' इन्होंने प्याला उठाया किन्तु जोधपुर-नरेश ने हाथ पकड़ते हुए कहा कि तुम्हारा साहस प्रशंसनीय है। तुम मनुहार लेने से भी कई गुना अधिक प्रशंसा के भागी हो गये हो। इनके लिखे हुए स्फुट छंद उपलब्ध होते हैं।

७५. **ऊमरदान**—ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८५२ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के ग्राम ढाढरवाड़ा के निवासी थे। इनके पिता का नाम बख्शीराम एवं दादा का मेघराज था। ये तीन भाई थे- बड़े का भाई का नाम नवलदान और छोटे का शोभदान था। ये मॅझले थे। दुर्भाग्य से इनके माता-पिता का देहान्त बाल्यावस्था में ही हो गया अतः ये वात्सल्य सुख से वंचित रह गये। अपने भाइयों की अवहेलना से इन्हें पारिवारिक स्नेह भी नहीं मिल पाया। एक ऐसी अवस्था में जब मनुष्य के संस्कार बनते एवं दृढ़ होते हैं, नियंत्रण न होने से ये दिन-दिन उदण्ड होते गये। घर में अन्य भाई भू-सम्पत्ति को लेकर झगड़ा करने लगे। यह देखकर ये खेडापे के रामस्नेही साधुओं को मण्डली में जा मिले तथा उनके कंठीबंद शिष्य हो गये। कहते हैं, मौजीराम नामक एक साधु के चक्कर में आकर इन्होंने रामस्नेही पंथ को अंगीकृत कर लिया। लगभग १९ वर्ष की अवस्था तक ये इधर-उधर बैरागी के समान घूमते रहे। वहीं रामसनेही साधुओं के संरक्षण में इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। डिंगल-पिंगल के साथ इन्होंने अंग्रेजी का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। इसके लिए ये जोधपुर हाई स्कूल में भरती हुए और बड़े परिश्रम से चौथी-पांचवीं कक्षा तक अंग्रेजी सीखी। इसके पश्चात् अभ्यास द्वारा इन्होंने अपना ज्ञान और बढ़ा लिया। विद्या के अध्ययन से इनकी आँखें खुलीं और अपने कर्त्तव्य का बोध हुआ। रामस्नेहियों का स्नेह इन्हें अधिक दिनों तक पथ-

भ्रष्ट नहीं कर पाया। बुराइयों की ओर दृष्टि पड़ते ही ये उनका साथ छोड़कर पुनः अपने घर लौट आये और गृहस्थी बनकर जीवन व्यतीत करने लगे। (१८७९ ई०) इसी समय के आसपास इन्होंने अपनी कुल-परम्परा के अनुसार काव्य-रचना करना आरम्भ किया और इसके लिए सबसे पहले इन्होंने -राम के ढोंगी प्रेमियों को आड़े हाथ लिया।

संदेह नहीं कि ऊमरदान एक जन्मसिद्ध आशुकवि थे। जन-साधारण की समस्याओं को स्पर्श करते रहने से इनकी लोकप्रियता शनैः शनैः बढ़ने लगी। अपनी प्रतिभा के बल पर ये तत्कालीन नरेश महाराजा जसवंतसिंह (द्वितीय) के कृपा-पात्र बन गये। यही कारण है कि जब ऋषि दयानंद सरस्वती को महाराजा ने अपने यहां आने का निमंत्रण दिया तब उन्हें उदयपुर से लाने के लिए इन्हें भेजा गया था (१८८३ ई०) ये प्रगतिशील विचारों के पक्षपाती थे अतः हंस के सदृश विविध पंथों से विचार-मोतियों को चुगते रहते थे। इनके व्यक्तित्व पर आर्यसमाज के विचारों की अमिट छाप है। सुधारवादी प्रवृत्ति होने के कारण इनकी काव्य-कौमुदी का विस्तार अन्य राज्यों में भी हुआ और वहां की जनता भी इन्हें आदर-सम्मान की दृष्टि से देखने लगी। इस प्रकार घास-फूस की झोपड़ी से लेकर राज-प्रासाद तक इनका यश छा गया।

ऊमरदान एक अत्यन्त सरल प्रकृति के व्यक्ति थे और वेश-भूषा में सच्चे चारण के प्रतीक थे। जो लोग इनके सम्पर्क में आये हैं, उनकी आंखों के सामने आज भी इनका चित्र उपस्थित हो जाता है। यदि इन्हें कोई पूछता कि तुम्हारा मकान कहाँ है तो ये उत्तर देते—

'दुकान है दुकान मां, मकान ना मकान मां।
उठाय लट्ठ अट्ठ जाम, मैं फिरां घमां-घमां॥'

जीवन में नाना प्रकार के अभाव होते हुए भी ऊमरदान संतोषी थे। इससे इनके मुंह पर सदैव प्रसन्नता झलकती रहती थी। ये दूसरों से सदैव हँसकर मिलते-जुलते थे। जब प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० ओझा ने विक्टोरिया हाल, उदयपुर की प्रथम भेंट में इन्हें अपना शुभ नाम पूछा तब इन्होंने सस्मित उत्तर दिया—'सदा आनन्दी उम्मरदान' इससे इस आनन्दी जीव के हास्य-विनोद का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। स्वभाव एवं सिद्धांत की दृष्टि से इनके व्यक्तित्व की तुलना मस्त मौजी संत कबीर से की जा सकती है। अंतर केवल इतना ही है कि कबीर की वाणी अटपटी थी और इनकी साफ-सुथरी।

ऊमरदान मन के दृढ़ थे। इन्होंने सत्य के लिए सतत संघर्ष किया और अंतिम श्वास तक काव्य के माध्यम से समाज का कल्याण किया। गृहस्थी के रूप में इन्हें दो पुत्र-रत्न उपलब्ध हुए—अग्रदान एवं मोठालाल। अग्रदान तो इनके सामने ही १८ वर्ष की आयु में चल बसा (१९०० ई०) अतः दूसरा पुत्र मीठालाल ही इनका एकमात्र अवलम्ब था। इस घटना के तीन वर्ष पश्चात् ये ५१ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हो गये (१९०३ ई०) इनके निधन ने काव्य-प्रेमियों का हृदय बेध दिया। वे 'कवि ऊमर री ओळू' में आठ-आठ आँसू बहाने लगे—

'हमें निपट अळगो हुवो, लालस नेह लगाय।
कागा बिच डेरा किया, जागा अबकी जाय।।
विद्या कविता वीरता, ऊमर तो उपदेश।
एकण हां फिर आवज्यो, देखै मरुधर देस।।'

ऊमरदान का जीवन-चरित उसकी साहित्य-सेवा का साक्षी है। तत्कालीन गतिविधियों से प्रभावित होकर इन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व का एक ऐसा मनोहर सामंजस्य उपस्थित किया, जो अन्यत्र अप्राप्य है। यह उल्लेखनीय है कि डिंगल के साथ-साथ ये पिंगल में भी काव्य-रचना करते थे। छंद-रचना के साथ इनको इतिहास एवं प्राचीन काव्य-ग्रंथों की खोज करने में भी रुचि थी। दुरसा आढा कृत 'विरुद छहत्तरी' की हस्तलिखित प्रति खोज निकालने का श्रेय इनको है। इनकी दो रचनायें 'जसवन्त जस जळद' (१८९५ ई०) एवं 'डफोलाष्टक डूंडी' (१९०० ई०) इनके जीवन-काल में ही प्रकाशित हो चुकी थी। शेष रचनाओं का संग्रह 'ऊमर काव्य' के नाम से जब प्रथम बार प्रकाशित हुआ तब जनता ने उसका हार्दिक अभिनन्दन किया (१९०६ ई०) यह जन-जीवन में इतना प्रिय हुआ कि आगे चलकर दो संस्करण और निकालने पड़े (१९१२ ई० व १९३० ई०)।

७६. बालाबख्श— ये पाल्हावत शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८५५ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत हणूंतिया ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम नृसिंहदास था। पितामह जसराज जी थे। शिवबख्श इनके बड़े भाई थे। इनके परिवार में सब के सब कवि थे अतः प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। फिर दादू पंथी खेमदास से धर्मग्रंथ एवं रीति ग्रंथ पढ़े तथा छंद-अलंकार आदि काव्यांगों

दायें— वालावक्स पाल्हावत [सन् १८५५-१९१२ ई०]
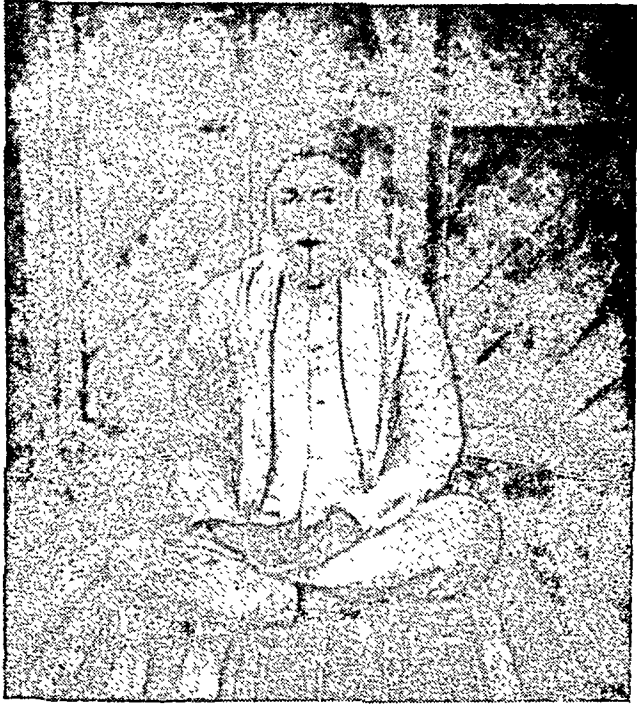
जुगतीदान देथा [सन् १८५५-१९३६ ई०]

फतहकरण उज्वल [सन् १८५२-१९२१ ई०]

कुछ पूर्व से लेकर समूची आयु उदयपुर महाराणा की सेवा में व्यतीत की थी। इनका स्वर्गवास सन् १९२१ ई० में हुआ। इनके पुत्र के नाम विजयकरण एवं शुभकरण हैं।

फतहकरण एक चमत्कारवादी चारण थे और यही बात ऋषि दयानंद ने अपने उदयपुर के प्रवास में इनसे वार्तालाप करते हुए कही थी। इसी प्रकार जब पंडित मदन मोहन मालवीय दरभंगा-नरेश को साथ लेकर हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी के लिए चंदा लेने उदयपुर आये (१९१२ ई०) तब इन्होंने मेवाड़ की ओर से युक्ति-युक्त भाषण दिया था। महाराणा साहब ने दो-ढाई लाख का चंदा दिया। मालवीयजी इन पर प्रसन्न हुए और इनकी हवेली पर भी गये थे। उल्लेखनीय है कि इन्हें अँग्रेजी राज्य की रीति-नीति पसन्द नहीं थी और कभी-कभी तो प्रत्यक्ष रूप से इसका विरोध भी प्रकट कर देते। दिल्ली दरबार के अवसर पर ये भी महाराणा फतहसिंहजी के साथ थे (१९०७ ई०) लार्ड कर्जन के दिल्ली छोड़कर चले जाने के आदेश से ये क्षुब्ध हुए। इन्होंने महायुद्ध के समय महाराणा के कोर्ट में अँग्रेजों की आलोचना की थी (१९१४ ई०) जो उस समय की एक बड़ी बात थी।

फतहकरण डिंगल-पिंगल के सफल कवि हैं। इनके प्रकाशित ग्रंथों में 'वंश-प्रदीप' एवं 'पत्र-प्रभाकर' के नाम उल्लेखनीय हैं। अप्रकाशित ग्रंथ में 'वंश भास्कर' की टीका को लिया जा सकता है जिसमें अशुद्धियों को शुद्ध किया गया है। इनके अतिरिक्त फुटकर लोक-गीत भी उपलब्ध होते हैं।

८०. **रामनाथ**—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८६० ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत शेखावाटी में चन्दपुरा ग्राम के निवासी थे। १० वर्ष तक जयपुर में ये मुख्याध्यापक के पद पर रहे। ये इतिहास के अच्छे जानकर थे। 'इतिहास राजस्थान' पुस्तक की रचना से इस कथन की पुष्टि होती है। आप विलायत भी हो आये थे। ये जोधपुर महाराजा के शिक्षक, ईडर रियासत के मंत्री तथा किशनगढ़ रियासत की कौंसिल के सदस्य भी रहे थे। सन् १९१९ ई० में आपका स्वर्गवास हुआ। आप में जाति तथा स्वदेश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी थी। आप निस्पृह तथा दूरदर्शी थे। आपकी न्यायप्रियता तथा निडरता की अनेक कथायें राजस्थान में प्रसिद्ध हैं।

८१. **सुजानसिंह**— ये सामौर शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८६१ ई०) और

बीकानेर राज्यान्तर्गत सुजानगढ़ तहसील के गांव बोबासर के निवासी थे। इनके पिता-पितामह का नाम जवानसिंह एवं ईसरदानजी था। इनका परिवार सुसम्पन्न था। इन्हें शंकरदान साभौर के साथ रहने का सुअवसर मिला था। पंडित गणेशरामजी जोशी से इन्होंने संस्कृत एव राजस्थानी का अध्ययन किया। इनकी भागवत में विशेष रुचि थी। ये संत प्रकृति के थे। इनके छोटे भाई का नाम अन्नेसिंह था। इनका विवाह सन् १८८३ ई० में हुआ और सन् १८८७ ई० में इनके एक पुत्र हुआ जो चतरदान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये डिंगल एवं इतिहास के माने हुए ज्ञाता थे। कविता के नाम से लिखा अत्यन्त कम है किन्तु जो लिखा है वह उच्चकोटि का है। इनके नीति के दोहे 'सुजान शतक' के नाम से विख्यात है। इनके अतिरिक्त भजन भी लिखे हैं। इनका देहान्त सन् १९३९ ई० में हुआ।

८२. श्योबक्श— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८६२ ई०) और जयपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम हरदानजी था। ये अष्टविधान करते थे अर्थात् आठ कार्य एक साथ कर सकते थे, जैसे समस्या पूर्ति करना, शतरंज खेलना, कहानी कहना आदि-आदि। इन्हें अलवर में भी अच्छा सम्मान प्राप्त था। इनका स्वर्गवास सन् १९२६ ई० में हुआ था। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

८३. हिंगलाजदान— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८६७ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुरा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम रामप्रतापजी था। इनके वंश में सागरदानजी एक प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। ये पांच वर्ष की अवस्था में ही कविता करने लग गये थे। कहते हैं, इनके पिता ने इन्हें सरस्वती का मंत्र दिया था। इनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। इनका निधन सन् १९५० ई० में हुआ। इनके लिखे हुए चार ग्रंथ उपलब्ध होते हैं— मेहाई महिमा, मृगया मृगेन्द्र, प्रत्यय पयोधर एवं लालग्रह शतक, जिनमें से प्रथम ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है, शेप सभी अप्रकाशित हैं।

८४. माधवदान— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८६८ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के ग्राम ऊजला के निवासी थे। इनके पिता का नाम गंगाबिशनजी था। ये डिंगल-पिंगल एवं संस्कृत के ज्ञाता थे। इनकी लिखी हुई महात्मा श्री रामदेवजी की जीवनी का कुछ भाग उपलब्ध है जो गद्य

केसरीसिंह सौदा वारहठ, मेवाड़ [सन् १८७०-१९५७ ई०]

का उत्कृष्ट उदाहरण है। पद्य के क्षेत्र में रामदेवजी रा कवित्त, कीर्ति-प्रकाश एवं सवाईसिंहजी री निसाणी उल्लेखनीय रचनायें हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर कविता भी मिलती है। इनका स्वर्गवास सन् १९३० ई० में हुआ था।

८५. केसरीसिंह (मेवाड़)— ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८७० ई०) और मेवाड़ राज्यान्तर्गत राजनगर परगने के ग्राम सौन्याणा के निवासी थे। इनके पिता का नाम खेमराज था। इनके अन्य तीन भाइयों के नाम हैं— जान, चतुर्भुज और लक्ष्मण। इनमें से चतुर्भुज गोद गये थे। इन्हें डिंगल-पिंगल के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन के लिए एक उचित वातावरण मिला। इनकी वंश-परम्परा में एक-एक से बढ़कर योद्धा एवं कवि हुए हैं। इन गुणों के अतिरिक्त धर्म-परायणता एवं उदारता भी कम नहीं रही है। जसूजी ने मेवाड़ में १२ शिखरबंद मंदिर बनवाये जो आज तक विद्यमान हैं। जसूजी के भ्राता दौलतसिंह ने हाड़ोती में थोनपुर के महियारिया लक्ष्मीदास के यहां शादी के उपलक्ष में अपने याचक वृंद को एक लक्ष मुद्रा का दान दिया। इसीसे आपके वंशज 'लाखवरीश' की उपाधि से सम्बोधित किये जाते हैं।

बाल्यावस्था से ही केसरीसिंह की रुचि इतिहास की ओर थी। इनका स्वभाव सरल, रहन-सहन साधारण एवं व्यवहार बड़ा ही प्रेममय था। ये अपने परिवार में युवकों को डिंगल-पिंगल एवं उनके व्याकरण का ज्ञान देते रहते थे। अपने कुल की मर्यादा का पालन करना ये अपना कर्त्तव्य मानते थे। चारण शिक्षालयों को उन्नति के लिए ये सदैव प्रयत्नशील रहते थे। ये धर्म-परायण एवं उदार प्रकृति के थे। समय ने इन्हें अनुभवी एवं व्यवहार कुशल बना दिया था। निर्भीकता, स्पष्टवादिता एवं विद्वत्ता ने इनके व्यक्तित्व को ऊँचा उठाया। सीधी-सादी भाषा में मन के तत्व को प्रकट करना इन्हें खूब आता था। इनका स्वर्गवास हो जाने से काव्य-प्रेमियों को काफी धक्का लगा है (१९५७ ई०)

केसरीसिंह जन्म-जात कवि थे अतः खड़े-खड़े ही कठिन से कठिन समस्या की पूर्ति कर देते थे। इनका छंदों पर पूर्ण अधिकार था। इनके लिखे हुए ५ ग्रंथ उपलब्ध होते हैं— प्रताप-चरित्र, राजसिंह-चरित्र, दुर्गादास-चरित्र, जसवंतसिंह-चरित्र एवं रूठी राणी। ये समस्त ग्रंथ इनकी स्थायी कीर्ति के दीप-स्तम्भ हैं।

८६. पाबूदान— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८७१ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम भांडियावास के निवासी थे।

इनके पिता का नाम मोडदानजी था। ये लोगों पर संदेह अधिक करते थे। इनका प्रारिम्भक जीवन लाड-प्यार में बीता। ये तीन भाई थे जो डिंगल, पिंगल एवं संस्कृत के ज्ञाता थे और साथ ही इतिहासकार भी। इनका विवाह ग्राम ऊजला के मेकदानजी सिंढायच की सुपुत्री मिरगां बाई से हुआ था। इनकी लिखी हुई लगभग पन्द्रह रचनायें उपलब्ध होती हैं जिनमें 'करनल सुयश प्रकास', 'जोरजी री झमाळ', 'प्रतापसिंह री झमाळ', 'रामदेव रूपक' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर कवितायें भी मिलती हैं।

८७. केसरीसिंह (शाहपुरा)— ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८७२ ई०) और शाहपुरा राज्यान्तर्गत देवपुरा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता कृष्णसिंह डिंगल-साहित्य के विद्वान थे। उन्होंने इनकी शिक्षा ५ वर्ष की अवस्था में शाहपुरा में आरम्भ की। दो वर्ष पश्चात् जब वे उदयपुर चले गये तब वहां दक्षिणी ब्राह्मण पंडित गोपीनाथ के संरक्षण में इन्हें संस्कृत की शिक्षा दी गई। यहां इन्होंने अंग्रेजी का प्रारम्भिक ज्ञान भी प्राप्त किया किन्तु आगे चलकर इसका अध्ययन बंद कर दिया (१८८६ ई०) इनका विवाह कविराजा देवीदान की सहोदरा माणक कंवरि के साथ हुआ (१८९० ई०) इनका शाहपुरा, उदयपुर एवं जोधपुर के राज-घरानों से सम्पर्क था।

केसरीसिंह राष्ट्रीय विचारों के सहृदय व्यक्ति थे। इन्होंने भारत धर्म मंडल का प्रतिनिधित्व किया और अपने अथक परिश्रम से इस संस्था को रजिस्टर्ड कराया (१९०१ ई०) इस कार्य को देखकर इन्हें कवि-रत्न की उपाधि से अलंकृत किया गया और प्रमाण-पत्र भी दिया गया। कोटा में रहकर इन्होंने नगर-पालिका एवं सार्वजनिक पुस्तकालय में अनेक सुधार किये (१८९९-१९१३ ई०) यहां इन्हें अध्ययन के लिए पर्याप्त अवकाश मिला अत: गुजराती, मराठी एवं बंगला का अध्ययन किया। साथ ही प्राकृत एवं गुरुमुखी से भी जानकारी प्राप्त की। यहीं भारतीय राजनीति के प्रति प्रेम बढ़ा और लोक सभा की गतिविधियों को बड़ी तत्परता से देखने लगे।

केसरीसिंह राजस्थान के सर्व प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने बंगाल के क्रांति आन्दोलन में भाग लिया। इन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह तथा कनिष्ठ भ्राता जोरावरसिंह को भी इस आन्दोलन से सम्बद्ध कर दिया। ये लोग पैसा लेकर बम बनाते और बंगालियों को बेचकर क्रांतिकारियों की सहायता करते। ये बम

केसरीसिंह सौदा बारहठ, शाहपुरा [सन् १८७२-१९४१ ई०]

मारवाड़ के पाँचेटिया गाँव में चंडीदानजी के मकान में वनते जहाँ गरोशदान आढा, गोपालदान आढा, भूरसिंह वारहठ, नारायणसिंह जोधा एवं चारण छात्रावास के निरीक्षक लहरी इनके सक्रिय सहायक थे। क्रांति के लिये धन की आवश्यकता थी और इसके लिए प्यारेराम साद (कोटा) की हत्या हुई। इन्होंने सर प्रताप से मिलकर मारवाड़ के राजपूतों को अनिवार्य शिक्षा देने हेतु एक अपील प्रकाशित कराई। जागीरदारों की एक सभा का आयोजन होने वाला था किन्तु इसके पूर्व ही अँग्रेज सरकार को पता लग गया कि केसरीसिंह कोटा हत्या काण्ड में अपराधी है अतः शाहपुराधीश की प्रवंचना से इन्हें वंदी वना दिया गया (१९१४ ई०), स्थायी एवं अस्थायी सम्पत्ति जब्त कर दी गई और इनके पास अपना कुछ भी नहीं रहा यहाँ तक कि स्त्रियों को भी वंद मकान में रहना पड़ा। कहना अनावश्यक न होगा चारण छात्रावास, जोधपुर की भी तलाशी हुई और कागज पकड़े गये।

राजनीति का क्षेत्र अत्यंत विकट होता है और क्रांतिकारी को अनेक कठोर परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ता है। यही वात हम केसरीसिंह के जीवन-चरित में पाते हैं। कोटा हत्याकाण्ड के अतिरिक्त इन पर दिल्ली, वनारस, लाहौर तथा आरा (अयोध्या) के षडयंत्र काण्डों का अभियोग लगा। इस प्रकार भारत के पाँच प्रसिद्ध मुकदमों में इनका हाथ था। अतः आजीवन कारावास में कलकत्ता भेज दिये गये। पाँच वर्ष पश्चात् कोटा-नरेश के कहने से इन्हें क्षमादान दिया गया। आरा (अयोध्या) के हत्याकाण्ड में जोरावरसिंह आजीवन फरार रहा। लाट साहव पर वम फेंकने के आरोप में लहरी को वीस वर्ष की क़ैद हुई जिससे छुटकारा स्वराज्य के वाद मिला। वस्तुतः वम जोरावरसिंह ने फेंका था। उल्लेखनीय है कि इनके दल के कार्यकर्त्ता वेश वदलकर स्त्रियों की पँक्ति में जा वैठते और अवसर ताककर अँग्रेजों से टकराते थे। प्रतापसिंह वनारस में वंद रहा। नारायणसिंह जोधा का अजमेर कारावास में देहान्त हो गया। इन मुकदमों में पं० रामकर्ण आसोपा राज्य की ओर से मुखविर वने थे।

इस प्रकार देश-सेवा में केसरीसिंह तथा उनके परिवार की अपार हानि हुई। क्रांति के पीछे जीवन भर शांति नहीं मिली और ये इधर-उधर अनेक प्रकार की यातनायें सहते रहे। अन्ततः ये कोटा के माणिक भवन में रहकर अपना अधिकांश समय हरि-भजन में व्यतीत करने लगे। इनका लिखा हुआ स्फुट काव्य

प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इनकी 'चेतावणी रा चूंगट्या' नामक ऐतिहासिक रचना प्रसिद्ध है जिसमें १३ दोहे-सोरठे हैं।

८८. **अमरदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८७३ ई०) और अलवर राज्यान्तर्गत ग्राम सटावट के निवासी थे। इन्होंने अपने पिता से छंद प्रबन्ध, अमरकोष, रसमंजरी, रसराज, रसरत्न आदि काव्योपयोगी ग्रंथों का अध्ययन किया। इनके पितामह रामनाथ पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इनका रचना-काल सन् १८९५ ई० के आस-पास से आरम्भ होता है।

८९. **राधवदान**—ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत झांखर गाँव के निवासी थे। कवि के रूप में इनका नाम प्रख्यात था। ये दुरसा के वंशज थे और सिरोही महाराव केशरीसिंह के दरबारी कवि थे। इन्हें राज्य की ओर से कविराजा की उपाधि मिली थी। इनका रचना-काल सन् १८९५ ई० के आस-पास माना जाता है। इनके लिखे हुए बहुत से फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं। इन्होंने महाराव की आज्ञानुसार प्राचीन कवित्तों का संग्रह करके 'चत्रभुज इच्छा प्रकाश' नामक ग्रंथ लिखा है।

९०. **विजयनाथ**— ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर के निवासी थे। इनके समय में महाराजा श्री सवाई रामसिंहजी द्वितीय एवं श्री सवाई माधवसिंहजी द्वितीय राज-गद्दी पर विराजमान थे। वृद्धावस्था में इन्होंने कवित्त रूप में महाराजा के पास एक आवेदन-पत्र भेजा जिससे प्रसन्न होकर इन्हें रामसिंहजी ने उदक में ग्राम दिया था। इनका रचना-काल सन् १९०० ई० से आरम्भ होता है।

९१. **प्रभुदान**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम भांडियावास के निवासी थे। इनका निधन सन् १९५० ई० में हुआ। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

९२. **जसवंतसिंह**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के ग्राम भांडियावास के निवासी थे। ये पाबूदान के भाई थे। इन्होंने विवाह नहीं किया और आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया। ये एक भक्त कवि थे और भगवान राम की उपासना करते थे। इन्होंने 'रघुवर जस प्रकास' नामक ग्रंथ की रचना की है जो अभी तक अप्रकाशित है।

किशोरसिंह बार्हस्पत्य [सन् १८७६-१६३७ ई०]

भाइयों सहित उदयपुर ले गए (१८९६ ई०) किन्तु जी न लगने से दो-ढाई वर्ष तक वहाँ रहकर पोकरण लौट आए, जहाँ इन्होंने मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् शिक्षा के प्रति रुचि मन्द पड़ गई किन्तु एक मित्र के उपालम्भ ने इन्हें ज्ञान-मार्ग पर अग्रसर किया। इस बार ताऊजी ने गीजगढ़ के ठाकुर कान्ह सिंह की हवेली (जयपुर) में इनके रहने एवं पढ़ने की व्यवस्था की। यहाँ इन्होंने जमकर अध्ययन किया और इन्टर परीक्षा उत्तीर्ण की (१९०८ ई०)। किन्तु जब बी० ए० की परीक्षा के दिन निकट आए तब छमाही में अनुत्तीर्ण होने से प्रिन्सि-पल ने इन्हें विश्वविद्यालय की परीक्षा में बैठने से रोक दिया (१९१० ई०)। इससे क्रम टूट गया और जब ये ग्रीष्मावकाश में घर आए तब परिस्थितिवश जयपुर लौटने में विवश हो गए। उल्लेखनीय है कि ये मारवाड़ के प्रथम चारण विद्यार्थी थे जिन्होंने बी० ए० तक की आधुनिक शिक्षा प्राप्त की। नि:संदेह उस समय के लिए यह गौरव की बात थी। इसके लिए ये महाराजा कॉलेज के तत्कालीन प्रोफेसर श्री वीरेश्वर शास्त्री द्रविड़ के प्रति आभार प्रदर्शित करते रहते थे।

उज्वलजी का अधिकांश जीवन राज्य-सेवा में व्यतीत हुआ। कुँवर चैन-सिंहजी (पोकरण) ने जो जयपुर कॉलेज के साथी थे, इन्हें कोर्ट सरदारान विभाग में एक साधारण सरकारी पद पर नियुक्त करा दिया। १९११ ई० में इन्होंने रुचि लेकर सर्वश्री चण्डीदानजी दधवाडिया, जोरावरसिंहजी सौदा, भोपालसिंहजी आढा तथा मोतीलालजी किनिया के सहयोग से प्रस्ताव पारित कराया कि जोधपुर में चारण छात्रावास की स्थापना होनी चाहिए। जहाँ चाह वहाँ राह। फलत: भवन बनकर तैयार हुआ, जहाँ आज भी इस प्रदेश के छात्र विद्याध्ययन करते हैं। अपनी योग्यता से ये शनै: शनै: उन्नति करते गए। आगे चलकर जब हाकिम बनने का अवसर आया तब अकस्मात् इनका भावी उत्कर्ष अवरुद्ध हो गया (१९१५ ई०)। राजस्थान के राष्ट्रीय कवि बारहठ केसरीसिंह (कोटा) पर जब राजद्रोह का अपराध लगाया गया तब वे इनके पास आया-जाया करते थे और प्राय: छात्रावास में ही ठहरते थे। जब वे बन्दी हुए (१९१३ ई०) तब इस छात्रावास की तलाशी हुई जिसके परिणाम स्वरूप अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कालान्तर में ये शहर के नायब कोतवाल नियुक्त हुए जहां १० वर्षों तक अपने दायित्व का सफलता पूर्वक निर्वाह किया (१९२०-'३० ई०)। इस बीच राजस्व-विभाग में सहायक हाकिम बनने का सौभाग्य मिला। फिर ये

उदयराज उज्वल [सन् १८८५-१९६७ ई०]

जन-निर्माण विभाग के विकास-कार्यालय में पट्टा अधिकारी रहे जहाँ अँग्रेज अभियंता एडगर ने प्रसन्न होकर इनका वेतन दुगना कर दिया। इनकी कार्य-कुशलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अवकाश-काल आ जाने पर भी राज्य-सरकार ने इनकी सेवाएँ ३ वर्ष तक और बढ़ा दीं। इस प्रकार ३४ वर्ष तक अपनी विनयशीलता, ईमानदारी एवं कर्त्तव्य-परायणता का परिचय देकर इन्होंने सन् १९४५ ई० में अवकाश ग्रहण किया।

आधुनिक युग के भारतीय साहित्य पर राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी की विचार-धारा का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। उदयराजजी भी प्रारम्भ से ही कांग्रेस के सिद्धान्तों से प्रभावित रहे। यहाँ तक कि क्षत्रिय सभाओं तथा साहित्यिक समारोहों में उपस्थित होकर ये सदैव देश-सेवा की प्रेरणा देते रहे। अपनी गुण-ग्राहकता, विद्वत्ता एवं निष्पक्षता के कारण ही ये राजपूत हितकारिणी सभा, जोधपुर के सदस्य मनोनीत किए गए (१९४४ ई०)। जब २६ जनवरी सन् १९५४ ई० में जयपुर में अखिल भारतीय राजस्थानी साहित्य सम्मेलन हुआ तब राजस्थान के विद्वानों ने इन्हें सभापति चुना किन्तु देवयोग से अपने भतीजे जैत-दानजी के देहावसान से ये वहाँ उपस्थित नहीं हो पाए। १८ अक्टूबर, सन् १९५६ ई० में जब जयपुर में राजस्थानी साहित्यकार सम्मेलन हुआ तब उन्हीं विद्वानों ने इन्हें सभापति के पद पर पुनः प्रतिष्ठित किया था।

उदयराजजी 'सादा जीवन, उच्च विचार' के प्रतीक थे। ये एड़ी से चोटी तक खरे राजस्थानी थे— वेशभूषा, बोल-चाल, रहन-सहन आदि सभी दृष्टियों से। साहित्य के प्रति इनकी रुचि बाल्यकाल से ही थी किन्तु इसका परिष्कार सरकारी नौकरी के साथ हुआ। अतः यही इनका रचना-काल माना जा सकता है (१९११ ई०)। एक राज्य-कर्मचारी का साहित्यानुराग एवं शिक्षण-संस्थाओं के प्रति जागरुकता उसकी राष्ट्रीयता का प्रमाण है। ये स्थानीय, प्रान्तीय, एवं भारतीय चारण-सम्मेलन के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। इनके जीवन का मूल मन्त्र यही है— 'दूर करै दुख देसरो, के साहित के सूर।' जोधपुर में ये स्वनामधन्य 'ऊजलां री हवेली' (त्रिपोलिया) में निवास करते थे। अवकाश-काल के शान्त क्षणों में आँखों की ज्योति को क्षीण करता हुआ यह वयोवृद्ध मुक्त भावयोगी सतत साहित्य-साधना करता रहा, यह हमारे लिए अनुकरणीय है।

उज्वलजी की साहित्य-सेवा का मूल्यांकन करना सहज नहीं। इनके लिखे

हुए छोटे-बड़े सौ से अधिक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, जिनमें लगभग ६०-७० तो प्रकाशित हो चुके हैं, शेष अप्रकाशित हैं। प्रकाशित ग्रन्थों में 'धूडसार' (धूड़ री बेड़ी), 'मारवाड़ रा वीर', 'दूध प्रकाश', 'मातृभाषा दोहावली', 'भानिए रा दूहां', 'स्वराज शतक', 'उज्वल शतक', 'तेज शतक', 'सर्वोदय शतक', 'श्रम शतक', 'सती शतक', 'जागीरदारों के अवगुण', 'गाँधीजी रा दूहा', 'अंग्रेजों रे गुणां रा दूहा', 'विग्यान रा दूहा', 'भाषा शतक', 'सांवरा शतक', 'उदय दोहावली', 'डिंगल शतक', 'कुशल शतक' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उज्वलजी एवं सीतारामजी लालस ने मिलकर डिंगल-कोष का भी कार्य किया है जो अनेक वर्षो की साधना का सुफल है। ब्रह्मदास कृत 'भक्तमाल' का सम्पादन पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर से प्रकाशित हो चुका है। ठाकुर हमीर-सिंह कृत 'हंस-प्रबोध' का अनुवाद भी इन्होंने किया है। ये हिन्दी एवं अंग्रेजी में भी सुन्दर रचनाएँ लिखते थे। 'वीर-पूजा' इनकी अंग्रेजी भाषा की कृति है। फुटकर दोहे, सोरठे, गीत, कवित्त, सवैये आदि तो बहुतेरे हैं। विस्तार-भय से यहाँ इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि ये चारण काव्य के प्रतिनिधि कवि एवं लेखक हैं। इनके अतिरिक्त चारण साहित्य के संरक्षण में इनकी सेवाएँ सर्वथा स्तुत्य हैं। राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के पुनरुत्थान की समस्याओं को सुलझाने, हस्त लिखित ग्रन्थों को सँजोने एवं साहित्य तथा इतिहास के लेखकों की सहायता करने में ये सदैव तत्पर रहते। डॉ० एल० पी० टैसीटोरी (इटली) एवं डॉ० डब्लु० एस० एलन (इँगलैंड) जैसे विदेशी विद्वानों ने इसके लिए आभार प्रकट किया है।

आधुनिक चारण साहित्य के निर्माताओं में उज्वलजी का नाम सदैव गौरव के साथ लिया जाएगा। वे राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के अमूल्य भंडार थे। अनेक ज्ञात-अज्ञात कवि एवं लेखक उनकी वाणी में निवास करते थे। न जाने कितने शोध-कर्त्ताओं का इन्होंने पथ-प्रदर्शन किया है। यदि इन्हें एक चलते-फिरते पुस्तकालय की संज्ञा दी जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। जो चाहे और जब चाहे, उनसे 'प्रेम के ढाई अक्षर' सीख सकता था। वे राजस्थानी भापा के प्रवल समर्थक थे— शव्द और अर्थ तक ही सीमित रहने वाले नहीं प्रत्युत भाषा एवं साहित्य की सर्वव्यापकता पर अधिक वल देते थे। अपने जीवन-काल में इन्होंने राजस्थानी को मान्यता दिलाने हेतु अथक परिश्रम किया। ये चाहते थे कि स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में इसकी पढ़ाई-लिखाई हो। जो कठि-नाइयाँ सामने आई, उनका डटकर सामना किया। एक वार अपने भतीजे (जो
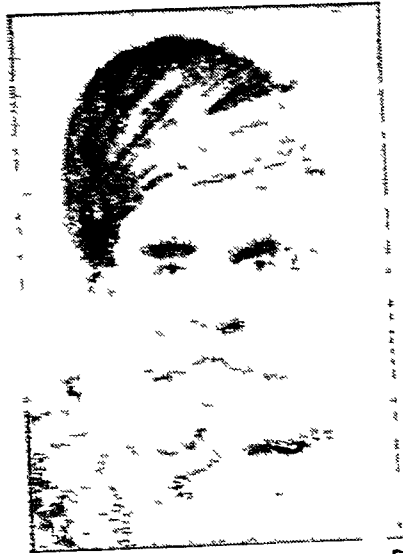
चतरदान तालौर [सन् १८८७-१९६८ ई०]

भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी रह चुके हैं) के यह कहने पर कि 'क्या राजस्थानी भी कोई भाषा है ?'– इन्होंने मुँह तोड़ उत्तर देते हुए कहा था- 'तुम जैसे कपूतों से और क्या आशा की जा सकती है ?' भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के सदृश मातृभाषा के लिए इनका यह संदेश सदैव कानों में गूँजता रहेगा—

'सत ऊजल संदेश, उदैराज ऊजल अखै ।
दीपै वांरौ देस, जारां साहित जगमगै ॥'

राजस्थानी का यह महान भक्त सन् १९६७ ई० में सदैव के लिए अस्त हो गया।

९७. चतरदान सामौर— ये सामौर शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८८७ ई०) और बीकानेर राज्यान्तर्गत सुजानगढ़ तहसील के गाँव बोबासर के निवासी थे। इनके पिता का नाम सुजानसिंह था। नि:स्वार्थ समाज-सेवा के कारण ये अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। इन्हें दिखावा (ढौंग) बिल्कुल पसन्द नहीं था। राजनीति से सदैव दूर रहते। इन्हें ऊँट रखने का बहुत शौक था और उन पर दोहों की रचना भी करते थे। इन्हें ऊँटों के डाक्टर की संज्ञा दी जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इनका स्वर्गवास सन् १९६८ ई० में हुआ था। खुंडिया (सरदारशहर) ग्रामवासी बारहठ महेशदानजी ने इन पर मरसिये लिखे हैं जो इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रतीक हैं। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है। गद्य के क्षेत्र में इनकी कृति 'घर बीती परबीती' एक अत्यन्त सुन्दर रचना है।

९८. बद्रीदान बारहठ— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८८७ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के गाँव इन्दोकली के निवासी थे। ये डिंगल के उच्च कोटि के विद्वान थे और साथ ही अच्छे ज्योतिषी भी। राजनीति में भी समान रूप से रुचि रखते थे। इनकी लिखी हुई कई रचनायें उपलब्ध होती हैं। इनका निधन सन् १९२८ ई० में हुआ था।

९९. जवानसिंह— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम मेंगटिया के निवासी थे। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

१००. किशनदान— ये सिढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और डूंगरपुर के महारावळ उदयसिंह के आश्रित थे। इनका जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं होता पर रचना-काल सन् १९०८ ई० माना गया है। इन्होंने महारावळ की आज्ञा से 'उदयप्रकाश' नामक एक ग्रंथ बनाया जो प्रकाशित हो चुका है।

१०१. गुलाबसिंह—ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और प्रतापगढ़ राज्यान्तर्गत ग्राम संचेई के निवासी थे। इन्होंने कई फुटकर गीत लिखे हैं।

१०२. नाथूसिंह—ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८८१ ई०) और उदयपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम केसरीसिंहजी था। इनके जन्म का नाम विजयसिंह था, बाद में पिता ने इनका नाम नाथूसिंह रखा। मेवाड़ राज्य में 'सिंह' नाम पर प्रतिबन्ध होने से ये नाथूदान भी कहलाने लगे। इनकी माता का नाम रामकुंवर बाई था जो दुरसा आढा के वंश में उत्पन्न हुई थीं। बाल्यावस्था में इनके पिता ने तीसरी कक्षा तक पढ़ा-लिखाकर प्रारम्भिक कविता का बोध कराया। फलत: ये ७ वर्ष की अवस्था में कविता करने लग गये। जब ये ६ वर्ष के थे तब पिता चल बसे और १३ वर्ष कीं अवस्था में माता भी चल बसी अत: आगे अध्ययन नहीं कर पाये।

नाथूसिंह शिकार के बड़े शौकीन थे। यह शौक इतना बढ़ गया कि रात-दिन जंगलों में कई प्रकार के जानवरों का शिकार करते रहते थे। एक बार आहत सुअर ने आक्रमण कर इनके पैर की हड्डी तोड़ डाली। इसी प्रकार दूसरी बार घोड़े से गिर जाने के कारण इनका बायाँ पैर टूट गया।

नाथूसिंह ने दो विवाह किये। पहला विवाह जीतावास (तहसील चित्तौड़) के ठाकुर दलेलसिंह आसिया की सुपुत्री फूलकुंवर बाई के साथ हुआ (१६०० ई०) इनके एक पुत्री एवं तीन पुत्र— मोहनसिंह, प्रतापसिंह एवं महताबसिंह हुए। दूसरा विवाह कड़ियां के ठाकुर रामलाल की सुपुत्री दाखकुंवर बाई के साथ हुआ जिनका थोड़े समय के बाद ही देहान्त हो गया। फूलकुंवर बाई के साथ कवि का जीवन बड़े आनन्द से बीता।

नाथूसिंह वीर एवं साहसी व्यक्ति थे। सन् १६०६ ई० में गांव कालीवास (तहसील गिरवां) के डाकुओं ने इनके गांव बान्दरवाड़ा पर डाका डाला तथा गाँव के मवेशियों को घेरकर भगा ले गये। इन्होंने कुछ आदमियों के साथ उनका पीछा किया, मुठभेड़ हुई और दोनों ओर के काफी व्यक्ति हताहत हुए। ये डाकू दल के तीन प्रमुख व्यक्तियों को मारकर अपने घायल साथियों एवं अपहृत पशुओं सहित अपने स्थान पर लौट आये। इन पर मुकदमा भी चला किन्तु आत्म-सुरक्षा की धारा के अन्तर्गत अपराध से मुक्त कर दिये गये। दो वर्ष हुए इनका देहान्त हो चुका है।
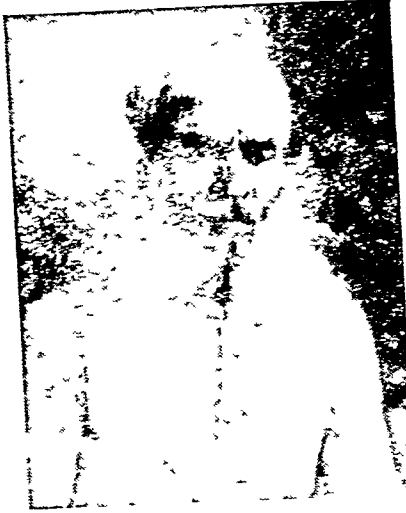
नाथूसिंह महियारिया [सन् १८९१-१९७५ ई०]

नाथूसिंह ने कभी शास्त्राभ्यास नहीं किया था। स्फुट रचना का अभ्यास अवश्य चलता रहा। इन पर अपने समय की विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता रहा। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन से ये विशेष रूप से प्रेरित हुए (१६३३ ई०) इससे ये राष्ट्रीयता की ओर झुके। इसी समय इन्होंने 'वीर सतसई' की रचना आरम्भ की किन्तु घरेलू परिस्थितियों के कारण लगभग पांच वर्ष तक उसे पूर्ण नहीं कर पाये। सन् १६३६ ई० में यह कार्य फिर उठाया और पूर्ण किया। श्री यदुनाथ सरकार ने उदयपुर आने पर कहा था– 'मुझे उदयपुर में सिर्फ दो वस्तुओं ने खींचा है जिसमें एक तो हल्दीघाटी और दूसरी श्री महियारिया जी की काव्य-प्रतिभा।' भारत के प्रथम राष्ट्रपति स्व० डॉ० राजेन्द्र प्रसाद इनकी कविताओं से विशेष प्रभावित हुए थे। इन्होंने फूलकुंवर बाई की स्मृति में 'हाडी शतक' रचना लिखी। इसके अतिरिक्त 'गांधी शतक', 'चूंडा शतक', 'झाला मान शतक' एवं 'वीर शतक' नामक रचनायें भी उल्लेखनीय हैं। 'वीर सतसई' के अतिरिक्त शेष सभी रचनायें अप्रकाशित हैं।

१०३. **सूर्यमल आसिया**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और उदयपुर जिले के कडियां गाँव के निवासी थे। ये इस काल के आरम्भ से ही काव्य-रचना करने लग गये थे और डिंगल गीत-रचना में पारंगत थे। इनकी लिखी हुई सादड़ी के सारंगदेवोत रायसिंह के पुनर्जीवन से सम्बंधित रचना प्रसिद्ध है। साथ ही फुटकर कविता भी मिलती है।

१०४. **पाबूदान रतनू**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पोकरन परगने के बारहट रो गाँव के निवासी थे। उल्लेखनीय है कि पढ़े- लिखे न होने पर भी ये आशु कवि थे और चलते-फिरते कविता बना लेते थे। इनके स्फुट छंद मिलते हैं।

१०५. **मगनीराम**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के गाँव बिराई के निवासी थे। इनकी गणना डिंगल के श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। इनकी लिखी हुई फुटकर कविता उपलब्ध होती है।

१०६. **बाँकीदास वीठू**— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के गाँव वीठुओं की बासनी के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१०७ **जुगतीदान सांदू**—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के ग्राम भदोरा के निवासी थे। ये डिंगल-पिंगल दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे और भक्ति की रचनायें लिखते थे। इनमें 'नाम माला' (अपूर्ण), 'करुणा पचीसी' एवं 'हर जस संग्रह' के नाम उल्लेखनीय हैं। साथ ही फुटकर छन्द भी लिखे हैं। इनका निधन सन् १६१८ ई० के आस-पास हुआ था।

१०८. **गोकुलदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के गाँव बिराई के निवासी थे। ये एक सरस एवं लोकप्रिय कवि थे। इन्होंने स्तुतिपरक कवितायें लिखी हैं। निन्दात्मक काव्य (विसहर) में विशेष सफलता मिली है। इसके अतिरिक्त हास्य-व्यंग्य के फुटकर छंद भी मिलते हैं।

१०९. **अलसीदान**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पोकरन परगने के बारहट रो गाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम पाबूदान था। ये इतने परोपकारी थे कि खेत में हल चलाते हुए भी उसे छोड़कर गरीबों की सहायता करने जा पहुँचते। किसी के यहाँ पशु-धन की चोरी अथवा डकैती की सूचना पाकर ये नि:स्वार्थ भाव से उसकी सेवा करते। ये इतने लोकप्रिय थे कि इनका कोई विरोधी अथवा शत्रु नहीं था। ये उदार प्रकृति के थे और अपना कार्य ईमानदारी से करते थे। इनके असामयिक स्वर्गवास पर उस क्षेत्र को जनता में शोक की लहर छा गई। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें उपलब्ध होती हैं जो उच्च कोटि की हैं।

११०-११२. **रणजीतदान, अन्नदान एवं गंगादान**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शेरगढ़ परगने के चांचळवा गाँव के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

११३. **शेरजी**— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के गांव ऊजलां के निवासी थे। इनकी लिखो हुए स्फुट रचनायें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

११४. **शेरादान**—ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव एकलगढ़ (सीतामऊ) के निवासी थे। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

११५. मुरारिदान बारहठ— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सोजत परगने के गाँव आंगदोष के निवासी थे। इन्हें काश्मीर-नरेश का राज्याश्रय प्राप्त था। उन्होंने इन्हें कविराजा की उपाधि प्रदान की थी। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

११६. नवलदान— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत खांण गाँव के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें मिलती हैं।

११७. मानदान— ये कविया (अलूदासोत) शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८६४ ई०) और ग्राम दीपपुरा (सीकर) के निवासी थे। इनकी लिखी हुई कृतियों में 'मेंगल कुल सुयश प्रकाश', 'मृगेन्द्र आखेट' एवं 'इन्द्र सुयश' के नाम उल्लेखनीय हैं। साथ ही फुटकर कविता भी मिलती है। इनका स्वर्गवास सन् १९५५ ई० में हुआ था।

११८. औनाड़सिंह— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम मेंगटिया के निवासी थे। इन्होंने कई गीत लिखे हैं।

११९. दुर्गादान— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और कोटा के निवासी थे। ये अत्यन्त गम्भीर, दृढ़ एवं मधुर भाषी थे। इन्हें कविराजा का पद मिला हुआ था। इनका देहावसान सन् १९५५ ई० में हुआ था। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१२०. मुकनदान— ये पाल्हावत शाखा में उत्पन्न हुए थे (१९०० ई०) और ग्राम बिरमी (चुरू) के निवासी थे। इन्होंने स्फुट रचनायें तथा स्तुतियाँ लिखी हैं। इनका स्वर्गवास सन् १९७१ ई० में हुआ था।

१२१. तेजदान— ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे (१९०० ई०) और अलवर राज्यान्तर्गत गजुकी ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम ईश्वरीदान था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पंडित छाजूरामजी के पास अलवर नोबल स्कूल में ७ वीं कक्षा तक हुई। उनके पास इन्होंने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने डिंगल-पिंगल दोनों में स्फुट काव्य-रचना की है। इन पर अलवर-नरेश की विशेष कृपा थी। इनकी लिखी हुई 'ब्रज बहत्तरी' नामक रचना उपलब्ध होती है।

१२२. कल्याणदान— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१६०१ ई०) और ग्राम दीपपुरा (सीकर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम वद्रीदान था। इन्होंने 'सिंह का शिकार', 'निन्दक बत्तीसी' एवं 'बलदेव प्रकाश' नामक कृतियाँ लिखी हैं। साथ ही फुटकर स्तुतियाँ भी मिलती हैं। इनका स्वर्गवास सन् १६७२ ई० में हुआ था।

१२३. बलवंतसिंह— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और अलवर राज्यान्तर्गत माहुंद गाँव के निवासी थे। इन्होंने महाराणा प्रताप के घोड़े 'चेतक' पर रचना की है।

१२४. रामकरण— ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत जहाजपुर तहसील के ग्राम सरसिया के निवासी थे। ये अकबर के दरबारी कवि जाडा के वंशज थे। ये अँग्रेज और अँग्रेजियत के विरोधी थे। इनमें देशभक्ति की भावना प्रबल थी। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

१२५. वखतराम— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और खांण ग्राम (सिरोही) के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१२६. पाबूदान बारहठ— ये रोहड़िया बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और गोड़ास ग्राम (सरदारशहर) के निवासी थे। इनके पिता हरनाथ भी अच्छे कवि थे। ये प्रसिद्ध कवि शंकरदान सामौर के सम-सामयिक एवं उनके मामा के लड़के थे। इनकी कतिपय फुटकर रचनायें उपलब्ध होती है। इनके लिखे हुए मरसिये भी प्रसिद्ध हैं।

१२७. भोपालदान ये सामौर शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव हरासर (सुजानगढ़) के निवासी थे। इनके लिखे हुए स्फुट कवित्त उपलब्ध होते हैं।

१२८. पनजी— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव भादासर (सरदारशहर) के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत उपलब्ध होते हैं।

१२६. महताब कंवर— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुई थीं और गाँव भादासर (सरदारशहर) इनका निवास-स्थान था। इनके पिता का नाम भैरुंदान था। इनका विवाह वडावर के हरजी सामौर के साथ हुआ था। ये एक अच्छी कवयित्री थीं। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

१३०. **सादूळदान**— ये महड़ू शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव दाँ (सुजानगढ़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम राजसिंह था। इनका विवाह बोबासर के गिरवरदान सानौर की पुत्री दीपकँवर के साथ हुआ था। इनकी गणना उत्तम कोटि के कवियों में की जाती है। इनकी लिखी हुई 'भगतमाळ' नामक रचना उपलब्ध होती है। साथ ही फुटकर कवितायें तथा मरसिये भी मिलते हैं।

१३१. **गणपतदान**—ये बीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव राजासर (सरदारशहर) के निवासी थे। इनकी 'गणपत विनोद' नामक कृति उपलब्ध होती है।

१३२-१३४. **भोमसिंह, फूसा एवं भैरुंदान**— ये मोखा शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव कंकराली (तारानगर) के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१३५-१३८. **डूंगरसिंह, शिवनाथ, रावतदान एवं महेशदान**— ये चाहड़ोत शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम लुंडिया (सरदारशहर) के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१३९. **शिवनाथसिंह**— इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु ये ग्राम चारणवासी (चूरू) के निवासी थे। इनकी गणना अच्छे कवियों में की जाती है। इन्हें राजगढ़ क्षेत्र में कई जगह जमीन प्राप्त हुई थी। इनकी फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

१४०. **हमीरदान**— ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम गोगासिया (तारानगर) के निवासी थे। इनकी एक रचना 'करणी-कृपा' चतुरसिंह अनुवाना ने प्रकाशित की थी। साथ ही इनके फुटकर छन्द भी मिलते हैं।

१४१-१४२. **हुकमदान एवं आसूदान**— ये मीसण शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव बिलासी (सुजानगढ़) के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१४३. **महताबसिंह**— ये बीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव भेजासर (सरदारशहर) के निवासी थे। इनकी फुटकर कविता मिलती है।

१४४. **खुस्यालसिंह**— ये बीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम आसपालसर लालेरां (सरदारशहर) के निवासी थे। इनकी फुटकर कविता मिलती है।

१४५. **खींवपाल हरपाल**— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बूचावास (सरदारशहर) के निवासी थे। इनकी फुटकर कविता मिलती है।

१४६. **रामलाल बरसडा**— ये बरसडा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के ग्राम पीथासणी के निवासी थे। ये इतिहास-वेत्ता थे। इन्होंने 'शनिश्चरजी री कथा' लिखी है। इसके साथ स्फुट छन्द भी उपलब्ध होते हैं।

१४७. **कानदान**— ये देवल शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जैतारण परगने के ग्राम बळूंदा के निवासी थे। इनका देहान्त सन् १९७१ ई० में हुआ। इनकी लिखी हुई फुटकर कविता मिलती है।

१४८. **जवाहरदान सांदू**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के ग्राम भदोरा के निवासी थे। इनके पिता भोपालदान प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। ये एक वीर एवं साहसी व्यक्ति थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१४९. **मूलदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के सूरपुरा ग्राम के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१५०. **पूसाराम**— ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के भुंवाळ ग्राम के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की हैं।

१५१. **अर्जुनसिंह**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के लोळावास ग्राम के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कविता मिलती है।

१५२. **जवाहरदान आढा**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के पाँचेटिया गाँव के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कविता मिलती है।

१५३. **मोतीसिंह**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के मोरटहूका गाँव के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कविता मिलती है।

१५४. नाथूदान बारहठ— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत गुड़ा नगर के पास स्थित गाँव डाबड़ के निवासी थे। इनके लिखे हुए 'सांवरिया के दोहे' उपलब्ध होते हैं। साथ ही फुटकर कविता भी मिलती है। कुछ वर्ष हुए इनका देहान्त हो चुका है।

१५५ मुंकनदान खिडिया— ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के ग्राम भुंवाळ के निवासी थे। इनके पिता का नाम पूसारामजी था जो डिंगल के अच्छे कवि थे। इनका डिंगल-पिंगल दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। इनकी लिखी हुई 'वीर सतसई' (क्षत्रिय चेतावणी), 'शंकर ईश' नायिका सँग्रह, 'संगीत निर्णय' ग्रंथ, 'विनय बत्तीसी' आदि रचनायें उल्लेखनीय हैं।

१५६. रामदान— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बिलाड़ा परगने के ग्राम कूंपड़ावास के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य लिखा है।

१५७. विसनदान— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पाली परगने के गाँव रामासणी के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१५८. जसकरण— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१९०९ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के चौपासनी गाँव के निवासी थे। इनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। इन्होंने अपनी कविताओं का सँग्रह 'खीर प्याला' के नाम से प्रकाशित कराया है। साथ ही फुटकर रचनायें भी उपलब्ध होती हैं।

१५९. बुधा— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्य के निवासी थे। सम्भव है, राजनगर के समीप मंडा गाँव इनका मूल स्थान रहा हो। ये स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति थे और डिंगल के अच्छे कवि थे। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

१६०. फतहकरण—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्य के निवासी थे। सम्भवत: बीजोलियां गाँव के निवासी हों क्योंकि इन्होंने वहाँ के सत्याग्रह में भाग लिया था। इनके कई राजनैतिक साथी थे। ये निर्भय प्रकृति के थे। जब कोई उच्चाधिकारी अत्याचार करता तो उसकी खुलकर निन्दा करते थे। आज भी कई लोगों को इनकी रचनायें याद हैं जो स्फुट हैं।

१६१. **चांपा**— ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के निवासी थे। इन्होंने 'गुण चंद्रायणा रामचंद्र गोपालदासोत' नामक ऐतिहासिक कृति लिखी है।

१६२. **गोरधन**— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए थे और बीकानेर राज्य के निवासी थे। इनके पिता का नाम लिखमीदासजी था। इनकी लिखी हुई दो कृतियां उपलब्ध होती हैं— एक, 'करमसेण हिम्मतसिंहोत री झमाळ' और दूसरी 'कुंडळिया महाराजा पद्मसिंह रा।'

१६३. **खीमराज**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के निवासी थे। इन्होंने 'गोपालदास चांपावत रा कवित्त' नामक रचना की सृष्टि की है।

१६४ **पेमाजी**— ये सिढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम मोगड़ा (मारवाड़) के निवासी थे। इन्होंने 'झूलणा चांपावत रा' नामक रचना लिखी है।

१६५ **कृष्णराम**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्य के निवासी थे। इनका लिखा हुआ 'रासा विलास' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ उपलब्ध होता है।

१६६. **फतहराम**— ये सिढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और बीकानेर राज्य के निवासी थे। इन्होंने 'रूपक महाराजा गजसिंह रो' नामक रचना का सृजन किया है।

१६७. **नरसिंहदास**— ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम खराड़ी (मारवाड़) के निवासी थे। ये 'महाराज कुमार वजरंगसिंहजी रो रूपक' नामक कृति के रचयिता हैं।

१६८. **मुरारिदान कविया**—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१८६१ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुरा ग्राम के निवासी हैं। ये हिंगुलाजदान के छोटे भाई हैं। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई।' ये जयपुर प्रांतीय चारण सम्मेलन, सीकर के सभापति रह चुके हैं। इनकी दानशीलता प्रसिद्ध है। ये वालावक्स चारण राजपूत पुस्तक माला ट्रस्ट के सदस्य रह चुके हैं। इन्होंने

'वांकीदास ग्रंथावली' का सम्पादन भी किया है। इनका कोई ग्रंथ तो नहीं मिलता किन्तु स्फुट रचनायें अवश्य उपलब्ध होती हैं।

१६९. **गुलाबबाई**—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुई हैं और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुरा ग्राम इनका निवास-स्थान है। ये मुरारिदान कविया की छोटी बहिन हैं। इनके पिता का नाम मानसिंह कविया था। इनका विवाह रामरतनजी (कोटा) के साथ हुआ था किन्तु दुर्भाग्य से थोड़े समय बाद ही इनके पति का स्वर्गवास हो गया। इससे इनका मन ईश्वर-भक्ति की ओर उन्मुख हुआ और तब से लेकर आज तक हरि-सुमिरन में ही लीन रहती हैं। इनकी फुटकर कविता मिलती है।

१७०. **विजयदान (प्रज्ञाचक्षु)**—ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सिवाना परगने के सरवडी गाँव के निवासी हैं। इनकी स्मरण-शक्ति गजब की है। ये डिंगल-पिंगल दोनों भाषाओं के विद्वान हैं। ये कवि होने के साथ इतिहास-वेत्ता भी हैं। इनका काव्य-पाठ करने का ढंग निराला है। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१७१ **जुँझारदान**—ये देथा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम खारची (बाड़मेर) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

१७२. **भँवरदान**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम झिणकली (शिव) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम हेमजी है। अनोपदानजी इनके बड़े भाई हैं। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१७३. **रूपदान**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के ग्राम मोरटहूकाँ के निवासी हैं। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१७४. **लालदान**—ये बोगसा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत सिवाना परगने के गाँव सरवडी के निवासी हैं। इनकी स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

१७५ **जसकरण**—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत शिव परगने के समूलियाइत गाँव के निवासी हैं। इन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें उपलब्ध होती हैं।

१७६. **आसुदान**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जैसलमेर राज्यान्तर्गत माड़वा गाँव के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें उपलब्ध होती हैं।

१७७. **प्रेमदान**— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलोदी परगने के गाँव ऊजलां के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१७८. **नरसिंहदान**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पचपदरा परगने के बाळाउ गाँव के निवासी हैं। इनकी फुटकर कविता मिलती है।

१७९. **चालकदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के ग्राम मृगेश्वर के निवासी हैं। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की हैं।

१८०. **डालूराम**— ये देवल शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जयपुर राज्यान्तर्गत नेतड़ार गाँव (शेखावाटी) के निवासी हैं। इन्होंने कई गीत लिखे हैं।

१८१. **बलदेवदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जयपुर के निवासी हैं। ये हिंगलाजदानजी के बड़े पुत्र हैं। इन्होंने अलवर-नरेश के यहाँ रसोड़ा-खास के मुंतजिम पद पर भी काम किया है। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

१८२. **सादूळदान सांदू**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९०० ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के ग्राम भदोरा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम गोपालदान था। इन्होंने आसोप ठिकाने के कामदार पद पर कार्य किया है। ये ठाकुर फतहसिंह के विशेष कृपा-पात्र रह चुके हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

१८३. **ईश्वरदान**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम मेंगटिया के निवासी हैं। ये केसरीसिंह सौदा (शाहपुरा) के दामाद हैं और राष्ट्रीय आन्दोलन में भी सक्रिय भाग ले चुके हैं। इन्होंने मेवाड़ में चारण जाति के उत्थान के लिए यथेष्ट योगदान दिया है। इनके फुटकर गीत मिलते हैं।

१८४. जवाहरदान— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और अलवर के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है और अपनी रचनायें समय-समय पर राज-सभा में भी सुनाई हैं।

१८५. जोगीदान— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६०४ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुरा ग्राम के निवासी हैं। इनके पिता का नाम मुरारिदानजी है। इन्होंने १६२४ ई० में शिक्षा समाप्त कर जयपुर शिक्षा-विभाग में नौकरी कर ली। ये डिंगल, पिंगल एवं हिन्दी तीनों भाषाओं के ज्ञाता हैं। इनकी लिखी हुई अनेक रचनायें देखने को मिलती हैं जिनमें 'राम-केवट संवाद,' 'भरत मिलाप,' 'मोरध्वज महिमा,' 'तवर वंश का संक्षिप्त इतिहास' एवं 'हठी हमीर' हिन्दी के ग्रंथ हैं। 'प्रह्लाद नाटक' एवं 'लवकुश संवाद' इनकी अप्रकाशित रचनायें हैं। इन्होंने श्री गणेशपुरी का एक पद्यमय जीवन-चरित भी बनाया है। डिंगल में इनके पाँच शतक मिलते हैं—वीर शतक, श्रृंगार शतक, वैराग्य शतक, सती शतक एवं अन्योक्ति शतक। साथ ही फुटकर कविता भी मिलती है।

१८६. हेमदान— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६०४ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के ग्राम भदोरा के निवासी हैं। ये डिंगल काव्य-पाठ करने में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनकी प्रशंसात्मक एवं भक्ति की स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

१८७. साँवलदान— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६०४ ई०) और मेवाड़ राज्यान्तर्गत गोगुन्दा तहसील के कडिया गाँव के निवासी हैं। ये डिंगल गीतों का उच्चारण करने में दक्ष हैं। इन गीतों का इनके पास विपुल भण्डार है। कतिपय सँग्रह साहित्य संस्थान विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित हो चुके हैं। आकाशवाणी जयपुर से भी इनकी रचनायें प्रसारित होती रहती हैं। इन्होंने डिंगल गीतों के लक्षण ग्रंथ रूप में 'महाभारत रूपक' की सृष्टि की है। फुटकर गीत भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। आजकल अपने गाँव में रहकर साहित्य-साधन कर रहे हैं।

१८८. यसकरण— ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६०४ ई०) और भीलवाड़ा जिले की आसीन्द तहसील के जेतपुरा ग्राम के निवासी हैं। इनके पिता का नाम शक्तिदान था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्रतापगढ़ एवं उदयपुर

में हुई। समाज-सुधार में इनकी विशेष रुचि है। इनकी लिखी हुई 'शिवस्तव', 'सवैयावली', 'विविध छंदावली' एवं 'हृदयोद्गार' नामक अप्रकाशित रचनायें उपलब्ध होती हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

१८९. **गणेशदान**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९०४ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के ग्राम भूंभळिया के निवासी हैं। ये एक सशक्त एवं बेजोड़ कवि हैं। इन्होंने 'शिव तांडव स्तोत्र' नामक रचना लिखी है। इसके अतिरिक्त प्रशंसात्मक एवं भक्ति की फुटकर रचनायें भी उपलब्ध होती हैं।

१९० **पाबूदान कविया**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जयपुर राज्यान्तर्गत सेवापुरा ग्राम के निवासी हैं। इनके पिता का नाम मुरारिदानजी है। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

१९१. **शम्भूदान**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम मेंगटिया के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें मिलती हैं।

१९२. **बिसनदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए है और मारवाड़ राज्यान्तर्गत वाड़मेर परगने के ग्राम भाद्रेस के निवासी हैं। ये कविता-पाठ करने में सानी नहीं रखते। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

१९३. **रामदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्य के गाँव बांगुडी (सिवाना) के निवासी हैं। ये चारण छात्रावास, जोधपुर के निरीक्षक रह चुके हैं। इन्होंने अपना अधिकांश समय अध्यापन में व्यतीत किया है। अब अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। इनकी ईश्वर-भक्ति एवं देश-प्रेम की कवितायें मिलती हैं।

१९४. **सगतीदान**— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मेवाड़ राज्य के झालरा गाँव (भीलवाड़ा) के निवासी हैं किन्तु आजकल ढोकलिया गाँव में रहते हैं। कविराजा श्यामलदास के उत्तराधिकारी होने के कारण महाराणा भोपालसिंहजी ने इन्हें कविराजा की उपाधि प्रदान की एवं स्वर्ण से अलंकृत किया। इनकी स्फुट रचनायें मिलती हैं।

१९५. सौभाग्यवती (प्रभा बाई)— ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुई हैं और मेवाड़ राज्यान्तर्गत जेतपुरा गाँव इनका निवास-स्थान है। काव्य-जगत में ये प्रभा नाम से विख्यात हैं। इन्होंने काव्य-पाठ की शिक्षा अपने बड़े भाई यसकरण से ग्रहण की। इनका विवाह उदयपुर के कविराजा सगतीदानजी के साथ हुआ है। इन्हें उदयपुर की महारानी ने पैर में स्वर्ण प्रदान कर विशेष प्रतिष्ठा दी। ये सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि रखती हैं। ईश्वर में इनकी अटूट आस्था है। इनकी लिखी हुई देवी की स्तुतियां (चिरजा) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अन्य रचनाओं में 'प्रभा सतसई,' 'प्रबोध पच्चीसी' एवं 'करणी करुणा-कुंज' के नाम लिये जा सकते हैं। साथ ही स्फुट कवितायें भी लिखती रहती हैं।

१९६. मुरारिदान आसिया— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्य के नोखड़ा गाँव के निवासी हैं। ये अपने क्षेत्र के पंच हैं और जनता की सेवा में संलग्न हैं। इनकी भक्ति विषयक रचनायें प्राप्त होती हैं।

१९७. भैंरूदान बारहठ — ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्य के छीला गाँव (नागौर) के निवासी हैं। इन्हें अनेक कवितायें कंठस्थ याद हैं तथा बात कहने का ढंग अनोखा है। इनकी लिखी हुई 'रतोड रासो' नामक हास्य-रचना उपलब्ध होती हैं। साथ ही फुटकर भक्ति विषयक रचनायें भी मिलती हैं।

१९८. हरदान— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९०५ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम थूंवली के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई दो रचनायें उपलब्ध होती हैं—'अरज बहोत्तरी' एवं 'सांगरिया छंद।' इसके अतिरिक्त फुटकर कविता भी लिखते रहते हैं।

१९९. अम्बादान— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए (१९०६ ई०) और अलवर के निवासी हैं। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२००. बलवंतसिंह— ये रोहड़िया बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए है (१९०६ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत ग्राम हणूंतिया के निवासी हैं। बाल्यावस्था में ये महाकवि सूर्यमल्ल की रचनाओं से विशेष प्रभावित हुए अतः उन्हें पढ़ते-सुनते १२ वर्ष की अवस्था से ही कविता करने लग गये। इन्होंने 'पुष्पोहार,' 'श्री

जयसिंह श्रद्धांजली', 'चंद्रचूर चमत्कार', 'श्री भुवपाल सुयश' एवं 'हल्दीघाटी की हुँकार' नामक रचनायें लिखी हैं जिनका प्रकाशन हो चुका है। इनके अतिरिक्त अप्रकाशित फुटकर रचनायें भी बहुत हैं।

२०१. **धनेसिंह**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६०६ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के ग्राम भदोरा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम चालकदान है। इन्होंने काव्य-पाठ अपने गुरू एवं कवि शंकरदानजी बारहठ से ग्रहण किया। इनकी लिखी हुई ईश्वर सम्बन्धी स्तुतियाँ, भजन एवं देवी विषयक गीत अधिक मिलते हैं। आजकल आप कृषि में रत हैं।

२०२. **रूपसिंह**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम वरबाड़ा के निवासी हैं। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२०३ **लालसिंह**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं। निवास-स्थान अज्ञात है। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

२०४. **आईदान**— इनकी शाखा का पता नहीं चलता किन्तु निवास-स्थान जयपुर है। इनके पूर्वज प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई। इन्होंने डिंगल-पिंगल दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है। कविता करते समय ये 'आदिल,' 'आदल' और 'आदू' उपनाम रखते हैं। इन्होंने स्फुट रचनायें लिखी हैं।

२०५. **फूसाराम**— ये किसनावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम साँखला का बास (जयपुर) के निवासो हैं। इनके फुटकर दोहे एवं छप्पय मिलते हैं।

२०६. **श्रीदानसिंह**— ये पाल्हावत शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६०८ ई०) और ग्राम कल्याणपुरा (जयपुर) के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

२०७. **रामदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६११ ई०) और ग्राम बागूंडी (सिवाना) के निवासो हैं। इनके पिता का नाम भैंरुंदानजी था। इन्होंने राज्य-सेवा की है और अब अवकाश ग्रहण कर लिया है। इन्होंने भक्ति विषयक स्फुट काव्य की रचना की है।

२०८. **धनदान**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६१५ ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत चांचळवा गाँव के निवासी हैं। इनके पिता का नाम

हेतुदान था। ये समाज-सुधारक हैं और स्पष्ट वक्ता भी। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

२०९. **नरसिंहदान बारहठ**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम बछवास (मारवाड़) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम हरिसिंह था। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२१०. **ब्रजलाल**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२० ई०) और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई कई स्फुट कवितायें उपलब्ध होती हैं।

२११. **बद्रीदान गाडण**— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२३ ई०) और जयपुर राज्यान्तर्गत हरमाड़ा गाँव के निवासी हैं। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने चाचा जवाहरदानजी से ग्रहण की। जब ये मैट्रिक में पढ़ते थे तब इनके गाँव में मातमी का केस चालू था। इस सिलसिले में हरमाड़ा जब्त कर दिया गया। इससे दुखी होकर इन्होंने अपनी इष्टदेवी श्री करणीजी की प्रार्थनायें तथा दोहे बनाये। यहीं से इनकी साहित्य-सेवा आरम्भ होती है। इनकी स्फुट रचनायें 'क्षात्रधर्म' नामक पत्र में प्रकाशित हुई हैं।

२१२. **नाथूसिंह महड़ू**— ये महड़ू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मेवाड़ राज्यान्तर्गत भीलवाड़ा जिले के ग्राम बाड़ी के निवासी हैं। इनकी राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं।

२१३. **अजयदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और सिरोही राज्यान्तर्गत रेवदर तहसील के गाँव मलावा के निवासी हैं। वर्षों से अध्यापक के रूप में शिक्षा-विभाग की सेवा कर रहे हैं। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

२१४. **विजयसिंह**— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मेवाड़ राज्य के निवासी हैं। ये प्रगतिशील कवि हैं। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

२१५. **किशोरसिंह**— ये भादा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जयपुर राज्यान्तर्गत कचोलिया ग्राम के निवासी हैं। आजकल ये चारण छात्रावास, जयपुर की कार्यकारिणी समिति के प्रमुख सदस्य हैं। इन्हें समाज-सुधार का विशेष ध्यान है तथा साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में भी दिलचस्पी रखते हैं। ये गद्य

कुशल वक्ता हैं और अपने क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्ति हैं। इनकी लिखी हुई भक्ति विषयक स्फुट रचनायें उपलब्ध होतीं हैं।

२१६. **चंडीदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत नागौर परगने के हिलोड़ी गाँव के निवासी हैं। इन्होंने 'मरु-भारती' (त्रैमासिक शोध-पत्रिका, पिलानी) के प्रकाशन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही सादूळ रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर से प्रकाशित 'डिंगल गीत' का भी सम्पादन किया है। इनकी गणना डिंगल के उच्च श्रेणी के कवियों में की जाती है। आजकल आप पटवारी के रूप में राज्य-सेवा कर रहे हैं।

२१७. **शुभकरण**— ये देवल शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम कूंपड़ावास के निवासी हैं। इन्होंने बी० कॉम० की उपाधि जोधपुर विश्वविद्यालय से प्राप्त की है। इस समय ये भारतीय बीमा निगम में सेवा-रत हैं। इन्होंने भक्ति, नीति एवं शृंगार विषयक कई कवितायें लिखी हैं।

परिशिष्ट

२१८. **जयलाल**— ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए थे और बूंदी के निवासी थे। ये महाकवि सूर्यमल्ल के अनुज एवं अच्छे वैयाकरण थे। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

२१९. **बल्लभजी**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और गोध्याणा गाँव (किशनगढ़) के निवासी थे। ये महाकवि सूर्यमल्ल के साले एवं शिष्य थे। इन्होंने चारण जाति पर सबसे पहले इतिहास लिखा है। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

२२० **सीताराम**— ये पाल्हावत शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत किशनपुरा गाँव के निवासी थे। इन्हें महाकवि सूर्यमल्ल का शिष्यत्व प्राप्त था। इन पर जयपुर-नरेश रामसिंहजी की बड़ी कृपा थी। उन्होंने इन्हें कान्याळो गाँव प्रदान किया था। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२२१. **हरदान बारहठ**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और श्यामपुरा के निवासी थे। इन्हें भी महाकवि सूर्यमल्ल का शिष्यत्व प्राप्त था। इनकी स्फुट रचनायें बताई जाती हैं।

२२२. **विजयनाथ खिडिया**—ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए थे और

गंगावर्ती के निवासी थे। ये भी महाकवि सूर्यमल्ल के शिष्य थे। इनकी स्फुट रचनायें बताई जाती हैं।

२२३. **मोतीराम रतनू**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और धानणवां ग्राम (मारवाड़) के निवासी थे। ये भी महाकवि सूर्यमल्ल के शिष्य थे। इनके स्फुट गीत कहे जाते हैं।

२२४. **बख़्शीराम**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और बड़े धानणवां ग्राम (मारवाड़) के निवासी थे। ये भी महाकवि सूर्यमल्ल के शिष्य थे। इनकी फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२२५. **धूंकळजी**— ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए थे और लीलेड़ा ग्राम (बूंदी) के निवासी थे। ये भी महाकवि सूर्यमल्ल के शिष्य थे। इन्होंने फुटकर रचना की हैं।

२२६ **हरदान किसनावत**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और डांस-णोली का बास के निवासी थे। ये भी महाकवि सूर्यमल्ल के शिष्य थे। इनके स्फुट गीत कहे जाते हैं।

२२७. **अनजी**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम नेतजी था। इनका निधन १८८८ ई० में हुआ था। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२२८. **हेतुदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और गाँव सियावधा (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम मेहरदान था। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

२२९. **नाथूराम**— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत फलौदी परगने के गाँव ऊजलां के निवासी थे। ये अपने समय के एक कुशल प्रशासक, राजनीतिज्ञ एवं समाज-सेवी थे और अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध थे। मोतीसरों तथा रावलों द्वारा इनकी प्रशंसा में कहे हुए दोहे इसके प्रमाण हैं। इनके फुटकर छंद कहे जाते हैं। इनका स्वर्गवास सन् १८९९ ई० में हुआ था।

२३०. **रामवल्लभ**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८४३ ई०) और

सिउ ग्राम (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम लादूरामजी था। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२३१. **पृथ्वीसिंह**— ये सामौर शाखा में उत्पन्न हुए थे और बीकानेर राज्यान्तर्गत सुजानगढ़ तहसील के गाँव बोबासर के निवासी थे। ये संस्कृत और राजस्थानी के विद्वान थे। साथ ही स्वाभिमानी एवं निर्भीक भी थे। इनके कोई संतान नहीं थी। बोबासर में इनका बनाया हुआ एक ठाकुरजी का मंदिर है। इन्होंने अनेक सामन्तों की समय-समय पर सहायता की है। इनके फुटकर गीत बताये जाते हैं।

२३२. **जेठूदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम चैनदान था। इनका निधन १८९३ ई० के आसपास हुआ था। इनकी फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२३३. **मूलजी**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। ये फुटकर कविता करते थे। इनका स्वर्गवास सन् १८९४ ई० में हुआ था।

२३४. **आवड़दान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। वे स्फुट रचनाकार हैं।

२३५. **जसवंतदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम जगजी था। इनका निधन १९१८ ई० में हुआ था। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२३६. **केसरीसिंह महियारिया**— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और मेवाड़ राज्यान्तर्गत ग्राम बांदरवाड़ा के निवासी थे। इनके पिता का नाम जउकरणजी था। इनका स्वर्गवास सन् १९०० ई० में हुआ था। इनका फुटकर काव्य बताया जाता है।

२३७. **मेदराम**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और अलवर के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२३८. **नाथूदान**— ये आढ़ा शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत ग्राम पेसुआ के निवासी थे। महाराव उम्मेदसिंह इनके समकालीन थे।

उन्होंने इन्हें प्रसन्न होकर धनारी गाँव में 'नवा' अरट पुरस्कार में दिया था। इनके गीत कहे जाते हैं।

२३९. **सुखदान**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और दुलचास की कलमी गाँव (शेखावाटी) के निवासी थे। इनकी फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२४०. **चतुर्भुज**— ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम सौन्याणा (मेवाड़) के निवासी थे। केसरीसिंह इनके भाई हैं। इन्हें दुलहसिंह ने गोद लिया था अतः गाँव पानेर में रहे। महाराणा सज्जनसिंह की इन पर विशेप कृपा थी। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२४१. **गंगादान कविया**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८४६ ई०) और अलवर के निवासी थे। इनके पिता का नाम रामनाथजी था। इनका रचना-काल सन् १८८३ ई० से आरम्भ होता है। ये डिंगल भाषा के गुरू हैं। इनकी बनाई हुई 'छनेद प्रबंध' नामक पुस्तक एवं कतिपय गीत कहे जाते हैं। इनका निधन सन् १८९९ ई० में हुआ था।

२४२. **शिवदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८५० ई०) और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के ग्राम मृगेश्वर के निवासी थे। इनके पिता का नाम मोहकमसिंह था। इन्होंने 'जोरजी चांपावत री झमाळ' नामक सुन्दर रचना लिखी है। साथ ही स्फुट कविता भी मिलती है।

२४३. **भोपालदान**— ये रोहड़िया बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के मथाणिया गाँव के निवासी थे। इनके फुटकर गीत बताये जाते हैं।

२४४. **ईश्वरीदान**— ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और अलवर राज्यान्तर्गत गजुकी ग्राम के निवासी थे। इन्होंने अपनी शिक्षा पंडित देवी प्रसाद से प्राप्त की थी। ये उर्दू एवं फारसी भाषाओं को भी जानते थे। ये तीन भाई थे और तीनों ही कवि थे तथा मिलकर काव्य-रचना करते थे। इनका अवसान सन् १९१४ ई० में हुआ था। इनका लिखा हुआ 'तवारीख हिन्द खुश बयान' नामक ग्रंथ बताया जाता है।

२४५. **जान**— ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम सौन्याणा (मेवाड़) के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

२४६. **डालजी**— ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्यान्तर्गत हणूंतिया ग्राम के निवासी थे। बालाबख्शजी इनके भाई थे। इन्होंने फुटकर कविता लिखी है।

२४७. **समर्थदान**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम नेठवा (सीकर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम मंगलजी था। युवावस्था में दयानंद सरस्वती की संगति से ये आर्य समाजी हो गये। इन्होंने स्वामीजी के साथ अनेक स्थानों का भ्रमण किया। इससे इन्हें अच्छा साहित्यिक ज्ञान प्राप्त हो गया। इन्होंने अजमेर में 'समर्थ यंत्रालय' के नाम से एक छापाखाना खोला और 'राजस्थान समाचार' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इनका अनेक राजा-महाराजा आदर करते थे। काश्मीर-नरेश ने इन्हें ताजीम एवं कविराजा की उपाधि से अलंकृत किया था किन्तु बाद में ये वहाँ से चले आये। इनका अंतिम समय बहुत कष्टमय बीता। इन्होंने गणेशपुरी कृत 'कर्ण पर्व' का सम्पादन किया है। इसी प्रकार मतिराम कृत 'रसराज' के सम्पादन का श्रेय भी इनको है।

२४८. **किसनदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम हठजी था। इनका निधन १९२२ ई० में हुआ था। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२४९. **जगतदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत ग्राम मलावा के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२५०. **रामलाल**— इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु निवास-स्थान गोलावास है। इनका रचना-काल सन् १८९३ ई० से आरम्भ होता है। ये स्फुट रचनाकार कहे जाते हैं।

२५१. **प्रभुदान**— ये देथा शाखा में उत्पन्न हुए थे और दौलतगढ़ के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८९३ ई० है। इनकी फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२५२. **रामसिंह**— ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम सौन्थाणा (मेवाड़) के निवासी थे। इन्हें महाराणा ने अपना पोलपात नियुक्त किया था। इनका रचना-काल सन् १८९४ ई० है। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२५३. **हीरदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत वाली परगने के ग्राम मृगेश्वर के निवासी थे। ये शिवदानजी के भाई थे। इनकी फुटकर कविता उपलब्ध होती है।

२५४. **वेळुदान**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८४३ ई०) और ग्राम चांचळवा (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम हेमराज था। इनका निधन १९१८ ई० में हुआ। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२५५. **बिहारीदान**— ये देथा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८९५ ई० से आरम्भ होता है। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

२५६. **शम्भुदान (नागौर)**— इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु निवास-स्थान नागौर है। इनका रचना-काल सन् १८९५ ई० से आरम्भ होता है। ये फुटकर रचनाकार हैं।

२५७. **भैरोदान**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत देसूरी परगने के ग्राम अटाटिया के निवासी थे। इनका रचना-काल सन् १८९५ ई० से आरम्भ होता है। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२५८. **भोपालदान रतनू**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम धानणी (मारवाड़) के निवासी थे। इनका रचना-काल १८९५ ई० है। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

२५९. **किशोरदान**— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और शाहपुरा के निवासी थे। इनका रचना-काल १८९५ ई० है। इनकी फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२६०. **चालकदान आसिया**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम मंदार (मेवाड़) के निवासी थे। इनका रचना-काल १८९५ ई० है। इनकी फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२६१. **चतरसिंह**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम कर्णवास (मेवाड़) के निवासी थे। इनका रचना-काल १८९५ ई० है। इनके फुटकर गीत बताये जाते हैं।

२६२. **हमीरदान**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम तोलेसर (मारवाड़) के निवासी थे। इनका रचना-काल १८९५ ई० है। इनकी फुटकर रचनायें बताई जाती हैं।

२६३. **सूरजदान**— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम कूपड़ास (मारवाड़) के निवासी थे। इनका रचना-काल १८९५ ई० है। इनके लिखे हुए स्फुट गीत बताये जाते हैं।

२६४. **सिरेदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाली परगने के ग्राम मृगेश्वर के निवासी थे। ये आशु कवि थे और हास्य-व्यंग्य की कविता करने में निपुण थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

२६५. **देवीदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम आवड़दान था। इनका निधन १९५३ ई० में हुआ था। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२६६. **वख्तावरदान**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८६८ ई०) और गजुकी ग्राम (अलवर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम रामबख्शजी था। इन्हें अलवर राज-सभा में स्थान प्राप्त था। इनकी फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२६७. **गंगादान रतनू**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम ओढाणिया (मारवाड़) के निवासी थे। इनका रचना-काल १९०० ई० है। इनकी फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२६८. **चंडीदान बारहठ**— ये रोहडिया बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और गोध्याणा गाँव (किशनगढ़) के निवासी थे। इनकी फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२६९. **सालजी**— ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और जयपुर राज्य के हणूंतिया गाँव के निवासी थे। इनकी फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२७०. **जादूराम**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के गाँव मोगड़ा के निवासी थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है जिसमें आखेट सम्बंधी गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

२७१. **दौलतदान**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम खांण (सिरोही) के निवासी थे। इनकी फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

२७२. **लक्ष्मण**— ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम सौन्याणा (मेवाड़) के निवासी थे। केसरीसिंह इनके छोटे भाई थे। इनकी स्फुट रचनायें बताई जाती हैं।

२७३. **खेतसिंह**— ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए थे और ब्राह्मणवाड़ा गाँव (सिरोही) के निवासी थे। इनका देहांत १९३८ ई० में हुआ। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२७४. **खेतदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम विराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम मगनीराम था। इनकी स्फुट काव्य-रचना बताई जाती है।

२७५. **भैरवदान**— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और बीकानेर राज्यान्तर्गत सीथल गाँव के निवासी थे। इन्हें कविराजा का उपटंक मिला था। इन्होंने 'चारणोत्पत्ति मीमांसा मार्तण्ड' नामक ग्रंथ लिखा है।

२७६. **तेजराम**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और सिरोही राज्यान्तर्गत झाँखर गाँव के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत बताये जाते हैं।

२७७ **मोडजी**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनका निवास स्थान अज्ञात है। इनके लिखे हुए स्फुट गीत बताये जाते हैं।

२७८. **महकरण**— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए थे। इनका स्थान अज्ञात है। इनके लिखे हुए स्फुट गीत बताये जाते हैं।

२७९ **करणीदान**— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम खेमपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम चमनसिंह था। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२८०. **करणीदान सिढायच**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम नोगावां (डूंगरपुर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम लालदान था। इन्हें कविराजा का उपटंक मिला था। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२८१. **रायभाण**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे (१८८७ ई०) और

मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के गाँव मोगड़ा के निवासी थे। ये डिंगल के आचार्य थे और अनेक विद्याओं में पारंगत थे। ये पचांग भी बना लेते थे और वैद्यक के विद्वान थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है। इनका स्वर्गवास सन् १९६७ ई० में हुआ था।

२८२. **भूरसिंह**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम खारी (मारवाड़) के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२८३. **शंकरदान आढा**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम पांचेटिया (मारवाड़) के निवासी थे। ये आरंभ से सोनानवीस थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२८४. **इन्द्रबाई**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुई थीं और वेसरोली स्टेशन (मारवाड़) के पास दो मील पर स्थित गाँव खुरद इनका निवास स्थान था। इनके पिता का नाम सागरदानजी था। भक्त-समाज ने इन्हें देवी का अवतार माना है। इनके चमत्कार की अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। इनके स्फुट भक्ति विषयक पद बताये जाते हैं।

२८५. **शीशदान**— ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम किशनपुरा (जयपुर) के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२८६. **फतहकरण (जयपुर)**— इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु जन्म १८८१ ई० में जयपुर में हुआ था। इन्हें एक गाँव जागीर में मिला। इनकी कवितायें 'सुकवि' (कानपुर) नामक पत्र में प्रकाशित हुई हैं। इनका देहान्त सन् १९४४ में हुआ था।

२८७. **प्रभुदान बारहठ**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जोधपुर परगने के ग्राम मथाणिया के निवासी थे। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

२८८. **सुमेरदान**— ये वणसूर शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत बाड़मेर परगने के पारलाऊ गाँव के निवासी थे। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

इन्द्रबाई रतनू [सन् १६०७-१६५६ ई०]

२८६. **पीरदान सिढायच**— ये सिढायच शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम मोगड़ा (मारवाड़) के निवासी थे। ये बुधसिंह के पाटवी पुत्र थे और नृसिंहगढ़ के प्रथम श्रेणी के ताजीमी सरदारों में थे। दरबार की इन पर पूर्ण कृपा थी। ये सज्जन व्यक्ति और अच्छे विद्वान थे। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

२६०. **विसनदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ता परगने के शिव गाँव के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत कहे जाते हैं।

२६१. **फतहकरण झीबा**— ये झीबा शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम झीबा (झालावाड़) के निवासी थे। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

२६२. **जसजी**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम घडोई (मारवाड़) के निवासी थे। ये पोरबंदर के राजकवि रह चुके हैं। साथ ही कच्छ-भुज पाठशाला के अध्यक्ष थे। ये डिंगल के विद्वान थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत बताये जाते हैं।

२६३. **हरलाल**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे और वासनी गाँव (मारवाड़) के निवासी थे। ये उच्च कोटि के विद्वान थे और डिंगल-पिंगल के पूर्ण ज्ञाता थे। इन्हें यदि 'जीवित पुस्तकालय' की संज्ञा दी जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२६४. **शम्भूदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए (१६०६ ई०) थे और ग्राम विराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनका देहान्त सन् १६६६ ई० में हुआ। ये फुटकर कविता करते थे।

२६५. **रिडमलदान वीठू**— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम सीथल (वीकानेर) के निवासी थे। ये बीकानेर-नरेश गंगासिंहजो के साथ विदेश-यात्रा भी कर चुके थे। ये चारण-छात्रावास, बीकानेर के अध्यक्ष थे। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

२६६. **चंडीदान दधवाडिया**— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम कूंपडास (मारवाड़) के निवासी थे। ये मारवाड़ में चारण छात्रावास,

चारण सभा एवं सम्मेलन में स्व० उदयराजजी उज्वल के साथ सक्रिय कार्यकर्ता थे। ये स्फुट रचनाकार हैं।

२६७. **हमीरदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए थे (१६११ ई०) और ग्राम बिराई (मारवाड़) के निवासी थे। इनके पिता का नाम खेतदानजी था। इनकी फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

२६८. **भोपालसिंह आढा**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम पांचेटिया (मारवाड़) के निवासी थे। ये चारण छात्रावास, जोधपुर की स्थापना में उपस्थित थे। इनके लिखे हुए स्फुट गीत कहे जाते हैं।

२६६. **गुलजी**— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए थे और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पांचेटिया गाँव के निवासी थे। इनके लिखे हुए फुटकर गीत बताये जाते हैं।

३००. **बख्तावरदान बारहठ**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम भीखोड़ाई (मारवाड़) के निवासी थे। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

३०१. **सूरजमल**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम जुडिया (मारवाड़) के निवासी थे। इनके फुटकर गीत प्रसिद्ध हैं।

३०२. **प्रभुदान लालस**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए थे और ग्राम जुडिया (मारवाड़) के निवासी थे। इन्होंने फुटकर गीत-रचना की है।

३०३. **कालूदान**— ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए हैं और बूंदी के निवासी हैं। इनके पिता-पितामह का नाम क्रमशः मुरारिदान एवं सूर्यमल्ल है। ये फुटकर रचनाकार हैं।

३०४. **रामप्रताप** – ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम सौन्याणा (मेवाड़) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम चतुर्भुज है। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

३०५. **फतहसिंह** – ये सौदा बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम आँतरी (मेवाड़) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम चतुर्भुज है। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

३०६. **हेमदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और वासनी गाँव (मारवाड़) के निवासी हैं। ये स्फुट रचनाकार हैं।

३०७. दुलहसिंह— ये भादा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और लसाड़िया गाँव (अजमेर) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

३०८. रामचन्द्र— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और गाँव कड़िया (मेवाड़) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

३०९. जसदान— ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जैतारन परगने के गाँव खराड़ी के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

३१०. परवतसिंह— ये लपावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१८९३ ई०) और ग्राम करंडिया (प्रतापगढ़) के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

३११ भीखजी— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत विराणिया गाँव के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

३१२. हरीसिंह— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम खारी (मारवाड़) के निवासी हैं। इन्होंने 'मगनी भैंकेस' नामक शृंगारिक बात लिखी है। इनकी फुटकर रचनाओं में विपहर काव्य उल्लेखनीय है।

३१३. जसवंतसिंह— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम भांडियावास (मारवाड़) के निवासी हैं। ये आजीवन ब्रह्मचारी भक्त हैं और डिंगल-पिंगल के अच्छे विद्वान हैं। इन्होंने 'रामचरित' नामक ग्रंथ बनाया है। साथ ही स्फुट काव्य-रचना भी की है।

३१४. हीरदान— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और बीकानेर राज्यान्तर्गत पूंगल के पास भाटीयाळी गाँव के निवासी हैं। इनके फुटकर पद कहे जाते हैं।

३१५. गोरखदान— ये देवल शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम कूंपड़ास (मारवाड़) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

३१६ गणेशदान किनियां— ये किनियां शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२३ ई० के आसपास) और ग्राम मनरूपजी का वास (सीकर) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई शक्ति-स्तुतियां (चिरजायें) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

३१७. सुभकरण— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम छींडिया (मारवाड़) के निवासी हैं। ये स्फुट रचनाकार हैं।

३१८. शिवनारायण— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम खेण (मारवाड़) के निवासी हैं। ये स्फुट रचनाकार हैं।

३१९. नरसिंहदान— इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु निवास-स्थान गाँव पातूंगरी (सिरोही) है। ये स्फुट रचनाकार हैं।

३२०-३२१. कृपाराम एवं पदमसिंह— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम सीउ (मारवाड़) के निवासी हैं। इनके फुटकर गीत बताये जाते हैं।

३२२. देवीदान— ये भादा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम गारावास (मारवाड़) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए स्फुट गीत बताये जाते हैं।

३२३. देवीदान रतनू— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम दासोडी (मारवाड़) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए स्फुट गीत बताये जाते हैं।

३२४. मूलदान— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम वीठुओं की वासनी (मारवाड़) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

३२५. मदनसिंह— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम विसनपुरा (सवाई माधोपुर) के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

३२६. लालदान— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम ऊड (सिरोही) के निवासी हैं। इन्होने स्फुट काव्य-रचना की है।

३२७. किशनसिंह— ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम नाऊ (जयपुर) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

३२८. सुखदान— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम सीथल (बीकानेर) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम भैरूदानजी है। इन्हें कविराजा का उपटंक मिला है। इनके लिखे हुए स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३२९-३३०. छोगजी एवं केसूदान— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम देशणोक (बीकानेर) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३३१. **हनुमद्दान**- ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम गेरसर (बीकानेर) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३३२. **कृष्णसिंह महडू**- ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम नाऊ (जयपुर) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३३३. **चालकदान महडू**— ये महडू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम संचेई (प्रतापगढ़) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

३३४. **मुरारिदान (करणपुर)**— इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु निवास स्थान ग्राम करणपुर (डूंगरपुर-बांसवाड़ा) है। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

३३५. **कृपाराम**— ये वणसूर शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम पारलाऊ (मारवाड़) है। इन्होंने 'सगुना शत्रुसाल री वात' नामक शृंगारिक कृति लिखी है। साथ ही फुटकर कवितायें भी बताई जाती हैं।

३३६. **लक्ष्मीदान**— ये अपावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम मोरटहूका (मारवाड़) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

३३७. **बालाबख्श बारहठ**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम उदयपुर (किशनगढ़) के निवासी हैं। ये स्फुट रचनाकार हैं।

३३८. **कल्याणसिंह**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम कोटड़ी (अजमेर) के निवासी हैं। इनकी स्फुट रचनायें कही जाती हैं।

३३९. **सहस्रकिरण**— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम अतरालिया (कोटा) के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

३४०. **वेणीदान**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम ओढाणिया (जैसलमेर) के निवासी हैं। इन्हें कविराजा का उपटंक मिला है। ये स्फुट रचनाकार हैं।

३४१. **मुकुन्ददान**— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम डांडूसर (बीकानेर) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें कही जाती हैं।

३४२. भवानीसिंह— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम भांखर (सिरोही) के निवासी हैं। इनके स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३४३. चामुंडसिंह— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम जावली (अलवर) के निवासी हैं। इनके स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३४४. विहारीदान (नगरी)— इनकी शाखा अज्ञात है किन्तु निवास-स्थान नगरी (जयपुर) है। इनकी लिखी हुई फुटकर कवितायें बताई जाती हैं।

३४५. जसजी (मेवाड़)— ये महियारिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम टीटोडा (मेवाड़) के निवासी हैं। इनकी फुटकर काव्य-रचना कही जाती है।

३४६. बद्रीदास— ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम जैतपुरा (मेवाड़) के निवासी हैं। इनकी फुटकर काव्य-रचना कही जाती है।

३४७. हरणूदान— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम गुमानपुरा (मारवाड़) के निवासी हैं। इनकी फुटकर काव्य-रचना कही जाती है।

३४८. पीरदान (पेसुआ)— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम पेसुआ (सिरोही) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई स्फुट कवितायें कही जाती हैं।

३४९-३५० जैतदान एवं उदयभाण— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम मथाणिया (मारवाड़) के निवासी हैं। ये डिंगल-पिंगल दोनों भाषाओं के ज्ञाता हैं। इनकी लिखी हुई स्फुट कवितायें कही जाती हैं।

३५१. किशोरदान बारहठ— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम लोलावास (मारवाड़) के निवासी हैं। पहले ये तवारीख महकमे में नौकर रहे फिर पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ के कहने से डॉ० टैसीटोरी ने इनको अपने पास सौ रुपये मासिक पर रखा। ये टैसटोरी के गुरू रहे। ये डिंगल के धुरंधर विद्वान हैं और गणेशपुरी के शिष्य हैं। टैसीटोरी को सफलता इनके कारण ही मिली थी। ये स्फुट रचनाकार हैं।

३५२. भगवानदान— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत पोकरण ठिकाने के पास लालपुर गाँव के निवासी हैं। इन्होंने कच्छ-भुज की पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की है। ये फुटकर रचनाकार हैं।

३५३. श्यामदान— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और मारवाड़ राज्यान्तर्गत जैतारन के पास देवलिया गाँव के निवासी हैं। इनके फुटकर गीत कहे जाते हैं।

३५४. रामलाल खिड़िया— ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम वडवेली (कोटा) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

३५५. रामकरण मिश्रण— ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम मोलकी (कोटा) के निवासी हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें कही जाती हैं।

३५६. राजूराम— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम झांखर (सिरोही) के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

३५७. वनजी— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम पेसुआ (सिरोही) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३५८. ईश्वरदान महड़ू— ये महड़ू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम ठीकरया (बूँदी) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए स्फुट गीत कहे जाते हैं।

३५९. शंकरदान (अपावत)— ये अपावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम मोरटहूका (मारवाड़) के निवासी हैं। इनके लिखे हुए फुटकर गीत कहे जाते हैं।

३६०. सुकदेव— ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं और ग्राम पांचेटिया (मारवाड़) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम जवाहरदानजी है। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है।

(ख) आलोचना खण्ड : पद्य साहित्य:—

१. प्रशंसात्मक काव्य (सर)— क्षत्रिय जाति के उज्ज्वल नक्षत्रों का गुण-गान करना चारण कवियों की वंश परम्परागत विशेषता है और इस काल के अधिकांश कवियों में यही प्रवृत्ति पाई जाती है। कहीं वीरता की प्रशंसा है तो कहीं दानशीलता की, कहीं तेजस्विता का वर्णन है तो कहीं प्रभुता का, कहीं आभार प्रदर्शन है तो कहीं शील निरूपण, कहीं धर्मवीरता है तो कहीं काव्य-

अनुराग। इन विविध गुणों की व्यंजना करना ही कवियों का ध्येय रहा है। व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति के लिए कोई रचना लिखी हुई नहीं दिखाई देती। कतिपय कवियों ने अपने समकालीन प्रसिद्ध कवियों, लेखकों एवं धार्मिक महापुरुषों के चरणों में श्रद्धा के पुष्प चढ़ाये हैं। इनके अतिरिक्त राष्ट्रीय नेताओं को लक्ष्य करके भी स्फुट छंद-रचना की गई है। इस प्रकार आलोच्य काल में आकर प्रशंसात्मक काव्य-क्षेत्र का अभूतपूर्व विकास हुआ। कवियों की संख्या अधिक होने से यहाँ चुने हुए उदाहरण दिये जाते हैं।

वीरता का वर्णन करने वाले प्रतिनिधि कवियों में सूर्यमल्ल, कनजी, शिवबक्स, मोड़सिंह, पाबूदान आसिया, चेरजी उज्वल, अमरदान, कुशलदान देथा, रामनाथ, केसरीसिंह, अमरदान बारहठ, किशोरसिंह, उदयराज एवं साहबदान सांदू के नाम उल्लेखनीय हैं। सूर्यमल्ल कृत 'रामरंजाट' एवं 'बलवद्विलास' की रचना इसी उद्देश्य से हुई प्रतीत होती है। प्रथम में रामसिंह (बूँदी) और द्वितीय में बलवन्तसिंह (रतलाम) की वीरता का वर्णन है। कालान्तर में 'वंशभास्कर' की रचना करते समय भी कवि ने अपने आश्रयदाता रामसिंह की वीरता का बराबर ध्यान रखा है। इनके अतिरिक्त जोरावरसिंह (मालव), मानसिंह (जोधपुर), गुलाबराव (अलवर), कुशालसिंह (आउवा) एवं रणजीतसिंह (देवगढ़) की वीरता ने भी कवि को मुग्ध किया है। कुशालसिंह के लिए कही हुई कवि की उक्ति का उदाहरण दिया जाता है—

'कम्पन तैं खेती निपजाई तैं कुशालसिंह।
निश्चय को नागर जय श्री रंगनाथ है॥'

कनजी ने रावत जोधसिंह चहुआन (कोठारिया) की वीरता पर जो दोहे कहे हैं वे इस प्रकार हैं—

'जोध भलां ही जनमियो, सहूआं रै सर साल।
रावत सरणै राखियो, कमंधां तिलक कुशाल॥
खग ऊँचै खड़िया समर, मुह रववाड़िया मार।
चढ़िया रावत जोध रै, सब चढ़िया सरदार॥'

राजपूत वीर माना हुआ आखेट-प्रेमी है। महाराजा मंगलसिंह (अलवर) के पैदल सिंह का शिकार करने पर शिवबक्स का यह शब्द-चित्र मनोहर है—

'लड़वै लथवत्यांह, झड़वे चख आतस झलांह ।
हाकिल नवहत्यांह, मारे निज हत्या मंगल ।।
रोसायल जमरूप, अजकायल साम्हा उड़े ।
भले बिलाला भूप, मारै सिंह डाला मथा ।।'

मोड़सिंह ने इस कवित में महाराणा फतहसिंह (उदयपुर) के शिकार का वर्णन किया है—

'जाहरी करोल करैं अंक हत्थै बब्बर की,
ठाहरी सुने तैं रान थिरता रचै नहीं ।
थाहरी घिराय काढ लागनी लगावैं तोक,
खा हरी गुरांट पैंड एक्हू खचै नहीं ।
हाहरी अवाज छोड़ आहरी करन लागै,
ताहरी करैं तीको कोड उपमा जचै नहीं ।
बाहरी गऊ के फतहसिंह नृप धारैं जब,
ना हरी करै तो नार नाहरी बचै नहीं ।।'

पाबूदान ने आखेट के समय उम्मेदसिंहजी (जोधपुर) द्वारा बंदूक से हाथी मारने का वर्णन किया है (१९२६ ई०)—

'भूपज उम्मेद बंधु रूप नरसींग धर्‌यो । नीलगिरी चहुं ओर दूर कर्‌यो डरपे ।
हटावन फील पर्‌यो, डाहीवेर जेप ही सो । दुनाली उठात हद काज सर्‌यो करपे ।
मरु भूम देश तर्‌यो सुकृत हो पुंज हर्‌यो । लक्ष्मण वीर लर्‌यो बीजुत भरपे ।
तेजवृत तायी पर्‌यो बीच अम्भ बायी पर्‌यो । विंध्याचल सायी पर्‌यो हायी पर्‌यो घरपे ।।'

शेरजी उज्वल कृत 'राजा बलवंतसिंह रे घोड़ों रो वर्णन' बड़ा ही ओजस्वी है—

'के काठी के काबली, केई धरा धाट कही जै ।
धुराषांण कंधार लखी कसमेर लही जै ।
पनंग केई पांचाल अवर ढांगी थल आला ।
अरब थान ऐंराक वले बैराठ बडाला ।
कोकंणी असल दिखणी केई, दिपैं देस देसंतरा ।
इण खूंटे रहै बंधिया इसा बाज राज बलवंत रा ।।'

ऊमरदान कृत 'जसवंत जस जलद', 'जोधा रां रो जस', 'राठौड़ दुरगदास

री औरंगजेब ने अर्जी', एवं 'प्रताप प्रशंसा' नामक रचनायें नर काव्य के अन्तर्गत आती हैं जिनमें प्रशंसा ही प्रशंसा देखने को मिलती है। 'प्रताप-प्रशंसा' में कर्नल प्रताप (जोधपुर) की वीरता का उदाहरण दिया जाता है—

'मुरधर में पातळ मरद, इक्को रतन अमोल।
लोकां ने तो लादसी, मरियां पाछे मोल॥
सूतो लख संसार सब, पातल पुल-जाय।
मरण दशा में मइँद रे, जीव न नेड़ो जाय॥
सांचो तूं-तूं सूखों, तूं दाता दै त्याग।
पौहुमी में पातळ प्रसिद्ध, खळां विडारण खाग॥'

जुगतीदान देथा ने महाराजा गंगासिंह (बीकानेर) के विषय में कहा है—

'रजा गंग रा राज में, जुल्मी करै न जोर।
वाड़ा करै न धाड़वी, चोरी करै न चोर।
रुकी न अँगरेजों रही, फैल रही चौफेर।
रिसपत बिल्कुल रोक दी, नृप गंग बीकानेर॥'

रामनाथ कृत यह दोहा मेवाड़ के बीते गौरव की याद दिलता है—

'लखन कुंभ सांगै पते, जवन जोर दिय तोड़।
तेहिं रविकुळ चिर थिर फता, सब हिन्दुन नृप मोड़॥'

केसरीसिंह ने महाराव रघुवीरसिंह के लिए कहा है—

'हाड़ा घर लाडा रह्या, ठाठा नर कंठीर।
तिण जाड़ा कुळ में तूही, राजे तूं रघुवीर॥
वीर शत्ता रा वंश में, महपत तू शिर मोड़।
हूं छोरू हरदास रो, जुड्यो जुगारी जोड॥'

अमरदान बारहठ ने सिंह और शूकर का शिकार करने पर अलवर-नरेश को ये पद्य सुनाये थे—

'केशरिया उण दिन करै के शिर देवण काज।
में केशरिया जनमते, मरण किया महाराज॥
बीजा नृप वराह पर, भाला वाहण हार।
मरद जसा मंगलेसरा, तू वाहे तरवार॥'

किशोरसिंह उन चारण बंधुओं पर न्यौछावर है जो युद्धभूमि में जाकर वीरता प्रदर्शित करते हैं—

'धूंकळ री हूंकळ सुण खाया रण खड़ता, रुंडां सूं लड़ता अर मुंडां हड़हड़ता।
मंगळ मद माटां पर बीजड़ यूं बहती, ज्यूं मेचक जळहर में चपळा लहलहती।।
बळिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे, जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे।।'

उदयराज ने वदनोर (मेवाड़) के मेड़तिया राठौड़ ठाकुर गोविंदसिंह की वीरता पर लिखा है—

'वीर घणी वदनोर रो, गयो कमंघ गोविंद।
धारक वेडी धूड़ रो, सद गुण तणो समंद।।'

सादूळदान सांदू ने आसोप-ठाकुर के अनेक गुणों की भव्य व्यंजना की है—

'छकां जोर आनंद फतैसिंघ घर छावियौ, इस्ट फल पावियौ आज आछौ।
ग्यांन सूं करनला तणो गुण गावियौ, सेवहर पावियौ सुतन साचौ।।
थिर रवि चंद लग कंवर इळ थावसी, गुणी गुण गावसी हरख गाढै।
लाल रौ अंजस भड़ ईडरा लावसी, चावसी जिकां घर आभ चाढै।।
हरो चेनेसरौ चैन मग हालही, धेसरां घालही हिये दहला।
मेस रतनेस ज्यों प्रथी पर मालही, सत्रुआं सालही रमण सहला।।
वंस रौ भांण मळ पुन वाधावतौ जवर जग चावतौ मात जायौ।
भागरौ पुंज सेणां मन भावतौ आवतौ सरब सुख लेर आयौ।।'

दानशीलता का वर्णन करने वाले कवियों में श्यामलदास, केसरीसिंह (मेवाड़), सांवलदान, उदयराज एवं हेमदान सांदू के नाम लिये जा सकते हैं। श्यामलदास ने महाराणा सज्जनसिंह (उदयपुर) के दिये हुए पुरस्कारों का वर्णन इस छंद में किया है—

'जिम जुहार ताजीम, पाय लंगर हिम पटके।
पूरण बांह पसाव, खळां अदवां मन खटके।।
जाहिर छड़ी जळेब, धरु वीड़ो जस थापण।
मांझी पाघ मंझार, छाप कागळ वड़ छापण।।
कविदास तेण कविराज कर, कठिन अंक विधि कापिया।
करि शुभ निगाह श्यामल कुरव, सज्जन राण समापिया।।'

केसरीसिंह (मेवाड़) ने भामाशाह के लिए कहा है—

'तूटी सरब अतीव, अड़बथ त्यांरी एकठी ।
साजी रही सदीव, कावड़ियारी कावड़ाँ ।।'

महाराणा भूपालसिंह के द्वारा दान में दी हुई भूमि का बन्दोबस्त उठाने का आदेश सुनकर सांवलदान निम्न गीत में उनकी दानशीलता की प्रशंसा करता है—

'सँहस दोय विक्रमाण बिये लगत साल रे, पाख सुद चवेदस चेत पेले ।
उदय रवि किरण ज्यूं बचन हर-उदय रा, फता-सुत ताहरा हुकम फेले ।।
अघाहट सांसणा कूड़की उठंतर, खतीजे सबूतां वगसखाने ।
न्रपत भोपाळ किव पटा कर नवीना, महर हर हिंद रा कबज माने ।।
अपी रघुनाथ निज अजे नह ऊथपी, लुभ्यो नहं सोवनी लंक लेणे ।
रही घर रीत यंण सदा कुळ रघू री, दिवाकर चंद दुहुँ साख देणे ।।
लंक पत विभीखण कर्यो बिन लोभ रे, पती अवधेस रे उदक पाणा ।
महीपत दूसरां कळू विच मनायो, रघू कुळ कथन रो सांच राणा ।।'

उदयराज ने अपने ग्रंथ 'धूड़सार' में अनेक दानवीर राजाओं एवं ठाकुरों की प्रशंसा की है । रीयां ठाकुर विजयसिंह एवं पोकरन ठाकुर मंगलसिंह (मारवाड़) का उदाहरण दिया जाता है—

'वंदों सतधारी विजो, रीयों धणी राठौड़ ।
धारी बेड़ी धूड़ री, मुरधरियो रो मौड़ ।।
मउवों पाली मुरधरा, मंगल छपना माय ।
पुन अखंड पति पोकरण, पह बेड़ी धर पाय ।।'

आसोप-ठाकुर फतैसिंहजी पर लिखा हुआ हेमदान सांदू का यह गीत देखिये—

'इळा लेवणौ सुजसां आथ दुथियां समापै आचां, सूर चंद येते वाचां कीरती सहीप ।
धराधीस ज्योंही धिनो आपरा हाथ सूं ध्रवे, मांगणां अमोल चीजां ध्रवै तूं महीप ।।
सेवाहरा कूंपा इंद सराहे मुनिंद सारा, पेखे यों कमंध थारा दान रा प्रमाण ।
दाखे यों सुरिंद रीझां देण रौ माहेस दूजौ, भाखे यों कविंद फता ताहरा वाखांण ।।
राखणौ जुगादू रीत सिरे यों जोड़रा सारां, ईटगारां भड़ां आगे प्रभता अपार ।
जोर फैली दधां पार जाहरां जाहांन जांणै, अनेका वखांणे थारा आंदरा आचार ।।
रेणवा काटणौ रोर आहंसी आसोप राजे, वार अंण व्राजे कूंपो वधंते सुवेस ।
सराहे जोधांण स्याम सेवा ज्यों प्रवाड़ा साजे, दादा ज्यो अग्राजे फतौ वंस रौ दिनेस ।।'

मारवाड़ में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर (१९३९ ई०) प्रजा कराह उठी। अतः मरुधराधीश उम्मेदसिंह ने अनेक जन-कल्याणकारी कार्य आरम्भ किये। यह देखकर हरदान गाडण ने उनकी प्रशंसा में एक सिलोका बनाया जिसका नमूना इस प्रकार है—

'च्यार तरफों रे सड़कों चलाई, घर-घर आगे तो मोटर घुमाई।
हालक चालक तो मंजुरी हालो, पंगा दूंटा तो बैठा पैला लो॥
राजा सायब ने आखे मारोणी, बौळा प्रेमो सु मिठी सी बांणी।
पैली नारी तरे पुनही करवायो, परबल राजत तो बोवोणो पायो॥'

वर्षा ऋतु के आते ही अगले वर्ष धरती की काया पलट हो गई —

'अेता दिन बीता बीरखा रुत आयी, दाता सायबजी बरषों सुखदायी।
आलै परमेशर कर रै असवारी, वाशव धरणी पर बरषा दै वारी।
नोमी बराऊ बादळ निकळीया, ज्यों में चनकावे सुदरी बिजळिया।
जैठे मईनें तो हळिया जोताया, पालर पोणी तो हिरणो नें पाया।
मास आसाड़ों सोनासों जोरों, घणी बिरखा नै खावै चै घोरों।
बोले मोल्ड़ा सुरंगीजी बांणी, सगळी दुनिया नें लागै सुवाणी॥'

राजा-महाराजाओं की तेजस्विता एवं प्रभुता का चित्रण करने वाले कवियों में सर्वश्री सूर्यमल्ल, जवाहरदान, लक्ष्मीदान बारहठ, अलमीदान रतनू एवं मुरारिदान आसिया के नाम उल्लेखनीय हैं। मालवाकाश के नक्षत्र जोरावरसिंह के लिए सूर्यमल्ल ने लिखा है—

'दीपक मालव देस रा, आलम रा आधार।
रंग जोरावर राज नैं, सुजा रा सिरदार॥
तन बूंदी मन माळवै, रहे सदा दिन रात।
रण दूलह गोपाळ रा, अमर करी अखियात॥'

जवाहरदान कृत जयसाह (अलवर) विषयक ये दोहे दिये जाते हैं—

'अडिग मेरु अहि शशि अरक बसुधा कमठ बराह।
राजो खट ऊमरा रहिक जिते नृप जयसाह॥
पृथीनाथ परतापके बख्तावर वर वीर।
बखत पाट बन राजसी हुवो नृप हमगीर॥

सुत शिवदान वनेश रे सेवा सुत मंगलेश।
बख्त मंगल जे सिह त्यौ तपौ दिन रुखंड देश ।।'

लक्ष्मीदान बारहठ के प्रभावशाली दोहों के कुछ नमूने देखिये—

'जबर हितैषी जात रो, वाधू रत्ती न बत्त।
वणियों राखे वीसहथ, दिन थारो शिवदत्त।।
ओ उंचों आडोवळो, सुख रो वहै समीर।
दी रोटी दाता घणी, क्यूं जाऊँ कश्मीर।।
तूटो थंभ सतजुग तणो, सजसी कळू समाज।
आसी मंगळो अधपती, आंख फरूके याद।।
सुसरो नाठो बेशरम, कायर भागो कंत।
कीकर हूं भागूं कहो, धरती शिर धूणंत।।'

जब जोधपुर-नरेश उम्मेदसिंहजी जैसलमेर-नरेश जवाहरसिंहजी के वहाँ गये तब वहाँ के कवि अलसीदान रतनू ने दानों की प्रशंसा में काव्य-रचना की। उदाहरण के लिए यह दोहा देखिये—

'आज गोरहर ऊपरा, भळहळ ऊगा भांण।
महिपत हेकण मींढ़ रा, जैसळ नै जोधांण।।'

कविराजा मुरारिदान आसिया (जोधपुर) ने विद्यानुरागी जोधपुर-नरेश जसवंतसिंहजी (द्वितीय) की प्रशंसा में जो उद्गार प्रकट किये, उसका एक उदाहरण देखिये—

'देखै नह अवगुण दिसा, गुण ही ग्रहण करंत।
दीजे ओ खामंद दई, जनम-जनम जसवंत।।'

अपने प्रति किये हुए उपकारों का स्मरण कर कृतज्ञता प्रकट करना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। इस दृष्टि से वालाबख्श एवं ओनाड़सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। अनेक विपत्तियों से लोहा लेते हुए राणा प्रताप ने म्लेच्छों के आगे नतमस्तक होना अपने धर्म के प्रतिकूल समझा, जिसके लिए कवि का कथन है—

'राज्य-द्रंग-दुर्ग-देश वैभवज सुःख हेय,
राखी दृढ वंश परिपाटी की प्रभत्ता कों।
खग्ग वल विस्तरि अकब्बर से शत्रु अग्ग,
इक्कल निबाह्यौ जिहं वेद धर्म नत्ता कों।

आत्ममुद्र उर्विवासी अज्ज कृत मन्य देत,
धन्यवाद वीर अग्रगण्य रान पत्ता कों ॥'

औनाड़सिंह का तो स्पष्ट कथन है कि इस पापी पेट को भरने के लिए कई राजाओं के पास रहना पड़ेगा किन्तु रावत जोधसिंह (कोठारिया) याद आता रहेगा—

'पापी भरवा पेट, रहतां के राजां कनैं।
थरु मरण लग थेट, नृप जोधा भूलां नहीं॥'

फतहकरण ने इस दोहे में महाराणा फतहसिंह (उदयपुर) की स्वभावगत विशेषताओं का अंकन किया है—

'घणी रीझ थोड़ो घमंड, चित सध सरली चाल।
दीन सहायक काछ दृढ़, महाराण फतमाल॥'

प्रशंसात्मक काव्य के अन्तर्गत धर्मवीरता की अवज्ञा नहीं की जा सकती। इस काल के कवियों ने राजा-महाराजाओं के इस गुण की भी प्रशंसा की है जिनमें बालावक्स, फतहकरण, केसरीसिंह सौदा प्रभृति कवियों के नाम लिये जा सकते हैं। बालावक्स के शब्दों में महाराणा फतहसिंह (उदयपुर) की धर्मवीरता देखिये—

'धर्म मतानें चित धर्‌यौ, गिण प्रभुता ने संग।
अवल पतानैं ज्यूँ अबे, राण फता नैं रंग॥'

फतहकरण राणा प्रताप के चरणों में नमस्कार करता हुआ कहता है—

'रयो इक धर्म तुंही दृढ़यार, तुंही भव में भव को अवतार।
तुंही मनुदेव तुंही अवधेश, नमामि-नमामि प्रताप नरेश॥
तुंही वह मच्छ बन्यो जगतीश, तर्‌यो बल बाहु तलक्क न दीश।
उवारिय आर्य सधर्म अशेष, नमामि-नमामि प्रताप नरेश॥'

जयपुर-नरेश माधोसिंह धर्म का पालन करते हुए इंगलेंड की यात्रा कर आये और वहाँ भी अपने इष्ट गोपालजी की मूर्ति का विधिवत् झालर बजवा कर नित्य पूजन करते रहे। फतहकरण का यह दोहा इसका प्रमाण है—

'यादगार योरुप गये, कछु छोरे कछु वेश।
आप सुयश छोर्‌यो उतैं, अवरन धर्म अशेष॥'

केसरीसिंह सौदा ने बीकानेर-नरेश गंगासिंह के लिए ये दोहे कहे हैं—

'इष्ट सनातन आपरो, सह जांण्यो संसार।
करणी मंदिर रो कियो धिन नृप जीर्णोद्धार ।।
पुष्कर पर जूना पड्या सूना मंदिर साथ।
करनी भवन करावियो, नमो बीक पुर बाथ ।।'

चारण-प्रशंसात्मक काव्य में प्रसिद्ध कवियों, लेखकों एवं धार्मिक महापुरुषों का गुणगान भी किया गया है। इस दृष्टि से सूर्यमल्ल, भवानीदान, केसरीसिंह (मेवाड़), ऊमरदान एवं रायभाण के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सूर्यमल्ल ने अपने समकालीन बूंदी के प्रसिद्ध दरबारी कवि गुलाब राव के लिए लिखा है—

'सुनि गुलाब तव गुन सुजस, मस्तक सवन घुमात।
इहि विचार पाताल तजि, खिल्लठां पठवहु ख्यात ।।'

भवानीदान ने सूर्यमल्ल मिश्रण की प्रशंसा में इस गीत की रचना की है—

'वज्रधार अरजुन मुकट हुवौ सर बुहाकां, दूनी जसरहाकां प्रेम दूजो।
राव हद रिझाकां मुकट डुहुंरहाकां, रुदगुणां कहाकां मुकट सूजो ।।
हुकम पत रखण बजरंग असुर हणांकां, भणाकां साच मुख जुजीठळ भाव।
संभरी भूपकां मुकुट गुण सुणाकां, रूपकां वणाकां मीसणां राव ।।
सुरां सुरयंद गरुड़ परांधारां सरै, सरे तारां मयंक क्रांत साजा।
सुतन चंड सरारां अखर जोड़ां सरै, रीझवारां सरै राव राजा ।।
लखां मुख हूंत अणमाप सुसबद लियौ, जगतसिर थियौ सोभाग जाडो।
वधारे मुरातव रखै सत्रसल वियो, हिया रो कियां ताईत हाडो ।।'

और केसरीसिंह (मेवाड़) ने तो अपनी जन्म-भूमि को कवियों की खान बताया है—

'उदयनगर उन दिनन महँ, सुन्दर कविन समाज।
सुकविन सर्व सिरोमनी, हो स्यामल कविराज ।।'

सीथल (बीकानेर) के जोशी ब्राह्मण संत हरिरामदास की प्रशंसा में ऊमरदान कहते हैं—

'नमो हरिराम नमो निज नाम, गुरु हरिराम नमो गृह गाम।
मही हरि राम नमो जिन मात, पिता हरिराम नमो धिन पाय ।।

प्रभू हरिराम नमो बल पास, विभू हरिराम नमो थल बास।
नमो हरिराम नमो हरिराम, हरोहर ब्रह्म समो हरिनाम ।।'

इसी प्रकार कवि ने ऋषि दयानन्द की वन्दना में कहा है—

'नमो स्वामी दयानन्द दिव्य ज्ञानदाता,
आर्य्य धर्म आप बिना हाथ नहीं आता।
वेद ध्वंनी हाट वाट, दुष्टन के थाठ दाठ,
कलि युग को काट, जुग सत्य ना सुझाता ।।'

आलोच्य काल में विविध राष्ट्रीय आन्दोलनों के फलस्वरूप चारण कवियों ने राजनैतिक नेताओं की भी प्रशंसा की है। ऐसे कवियों में नाथूसिंह, उदयराज प्रभृति कवियों के नाम आदरपूर्वक लिये जा सकते हैं। नाथूसिंह ने विश्ववंद्य बापू के विराट्-रूप को इन शब्दों में अंकित किया है—

'फौजां रोकै फिरंग री, तोकै नहँ तरवार।
गाँधी ! तें लीधो गजब, भारत रो भुज भार ।।'

उदयराज ने प्राय: सभी राष्ट्रीय नेताओं के चरणों में श्रद्धांजलि के पुष्प चढ़ाये हैं। युग के महान नेता जवाहरलाल नेहरू के लिए कवि का कथन है—

'ओ परळै-री आग, जावै जठी जवाहरो।
भाख-भाख परतंत्र मांग भसम करै रे भानिया ।।'

कहीं-कहीं क्रांति का स्वर भी है—

'कांगरेस क्रामात भारत-काया पाळटै।
धर सगळी धड़कात भूकंप आवै भानिया ।।
रटता दुसमण राग, कांगरेस मिटगी कळा।
आ दवियोड़ी आग भारत भभकै भानिया ।।

और तो और, प्रस्तुत इतिहास के लेखक की प्रशंसा में भी कतिपय कवियों ने छंदोबद्ध रचनायें लिखी हैं जिनमें स्व० उदयराजजी उज्वल, स्व० रायभाणजी सिंढायच, माधोसिंहजी सिंढायच एवं देवकरणजी बारहठ के नाम प्रमुख हैं। स्व० रायभाणजी के सोरठों का यह अंश देखिये—

'जगत समझ सब झूट, अक्रम कियो न एक ही।
लियो सुजस तें लूट, जिज्ञासू धिन जगत में ।।

सच भाषण खाटण सुजस करण अविद्या काट ।
मोहन रै हिय में वसै निरमल बुद्धि निराट ।।
धरै न दूजो ध्यान करै न कोई छळ कपट ।
निरमळ बुद्धि निधान मोहन नर पारस मणी ।।
कर कर पर उपकार जस लीधो सह जगत में ।
औ मोहन इण वार प्रोफेसर राजै प्रकट ।।
भाव राख कीरत भणी मोहन री सुध मन्न ।
रायभांण पर राखजो चित नित होय प्रसन्न ।।'

कविराजा का क्या कहना ? भोपालदान सामौर ने तो अपने यहां एक नये कुए में मीठे जल का अक्षय भंडार मिल जाने पर प्रसन्न होकर कहा—

'बीदासर बरबीर, उभै मांणस इधकाई ।
माळी बनो महीव, बीयो देवा बरदाई ।
सपनै मैं सांपरत, देव मुख साची दरसी ।
हणमत कीयो हुकम, नीर मीठो नीसरसी ।
उण हुकम कूप खोदे इळा, इमरत नीर अथाह रै ।
गजराज बाज दौलत धणी, सत सोनग सिव साह रै ।।'

२. **निन्दात्मक काव्य (विसहर)**— इस काल में वर्गगत विसहर सूचक अनेक उत्तम कवितायें देखने को मिलती हैं। इनमें राजपूत एवं चारण जाति को सम्बोधित करते हुए व्यंग्य किया गया है। साथ ही कहीं-कहीं प्रबोध-वचन भी सुनाये गये हैं। सर्वश्री सूर्यमल्ल मिश्रण, कृष्णसिंह सौदा, ऊमरदान, केसरीसिंह सौदा, विजयनाथ, मुरारिदान कविया, उदयराज, नाथूसिंह महियारिया, चंडीदान सांदू, शम्भूदान आसिया, जुगतीदान देथा, पाबूदान बारहठ, गणपतदान वीठू, सिरेदान सांदू, धनदान लालस, वांकीदास वीठू प्रभृति कवियों ने इस काव्य का विस्तार किया है।

सूर्यमल्ल ने क्षत्रियत्व को झाड़-बुहार कर स्वच्छ बनाने की महत्त्वाकांक्षा से समय-समय पर खरी-खोटी सुनाई है। 'वंश भास्कर' के अधूरेपन में यही मर्म छिपा हुआ है। आलस्य एवं प्रमाद में पड़े हुए राजपूत वर्ग के लिए कवि का कथन है—

'खाटो कुळ री खोवणां, नेपै घर-घर नींद ।
रसा कँशरो रावतां, वरती को ही वींद ।।
सीह न बाजो ठाकुरां, दींन गुजारौ दीह ।
हायळ पाड़ै हाथियाँ, सौ भड़ बाजै सीह ।।'

'वीरसतसई' में कायर व्यक्ति को शब्द-चाबुक से रण-भूमि की ओर लौटाया गया है। वीरांगनाओं की व्यंग्यात्मक उक्तियों ने इस निन्दा में और भी विष घोल दिया है। कवि के सिद्धांतानुसार युद्ध से भागा हुआ पति एवं दूध को लज्जित करने वाला पुत्र दोनों ही त्याज्य हैं। इन दोनों की ऐसी धज्जियां उड़ाई गई हैं कि वे मुँह दिखाने योग्य नहीं रह जाते। सूर्यमल्ल की वीरांगना कायर पति का उपहास ही नहीं करती प्रत्युत उसे व्यंग्य-बाण से वेध देती है—

'पोतां रै बेटा थिया, घर में बधियौ जाळ ।
अब तो छोडौ भागणौ, कंत लुभायौ काळ ।।
कंत घरे किम आविया, तेगां रौ घण त्रास ।
लहँगे मूंछ लुकीजियै, बैरी रौ न विसास ।।'

माता की यह आत्म-ग्लानि देखिये—

'पूत महादुख पाळियौ, वय खोवण थण पाय ।
एम न जाण्यौ आवही, जामण दूध लजाय ।।'

कायर पत्नियाँ भी नहीं बच पाई हैं—

'कायर री धण यूँ कहै, छानै कंत छिपाय ।
सीस बिकै जिण देसड़ै, सांई सौ न दिखाय ।।
भोग मिलीजै किम जठै, नरां नारियां नास ।
यौ ही मायड़ डायजौ, दीजै सूवस बास ।।'

कृष्णसिंह ने प्रजा की रक्षा न करने वाले राजा की निन्दा की है। 'कृष्णोपदेश' नामक रचना के ये दोहे इस कथन की पुष्टि करते हैं—

'धणी स्त्रियां रा घेर में रचियोड़ा दिन रात ।
राजा मदमाता रहै, प्रजा महा दुख पात ।।
कौडी नहँ खरचै कदै, पहु मेटण पर-पीर ।
हाकम राजी करण हित, धन धूपटै सवीर ।।'

ऊमरदान सुधारवादी कवि थे। उन्होंने कविता के द्वारा राजनीति, समाज एवं धर्म की कुरीतियों का जो भंडाफोड़ किया है उसके पीछे यही भावना दिखाई देती है। 'कर प्रगट दोष खंडन करूं धीठ रोश मत धारज्यो' कहकर उन्होंने पहले ही क्षमा मांग ली है। राज-दरवारों को माँस, मदिरा, अफीम, तमाखू, स्त्री आदि दुर्व्यसनों में बुरी तरह फँसा देखकर उनकी अन्तरात्मा कराह उठी अतः उन्होंने इनके प्रति बारम्बार क्षोभ प्रकट किया है। 'दारू रा दोष', 'अमल रा ओगरण' आदि रचनायें इसके उदाहरण हैं। वस्तुतः नशा नाम की वस्तु से ही उन्हें विशेष चिढ़ है—

'नसा काड लीवी नसां नसां कियो सब नास।
नसां न्हाखिया नरक में, अड़ी नसां में आस॥'

इसलिए कवि अपने स्वजातियों को सावधान करता हुआ यही उपदेश देता है—

चारण बरण चकार ख्यातकर जहर न खावो।
बणै जठा लग बिहसि अमल री धूल उडावो॥
महि अपणा मा बाप प्राण हूँ छत्री प्यारा।
इण आफत हूँ अळग बचै जदि तरुण बिचारा॥
निज करम परम निरसंक व्है वीदग धरम बजावणूं।
हित हरख सवाया पूंण हुय लूण न कदे लजावरणूं॥'

कहना न होगा कि रोग-ग्रस्त राज-समाज को कवि ने एक कुशल वैद्य की नाई काव्य-रसायन से स्वस्थ बनाना चाहा है। ऊमर-काव्य देश-काल का प्रतिबिंब है। विदेशी प्रभाव में आकर नकल के पीछे असल से हाथ धो बैठना उन्हें नहीं सुहाता। 'अबार रा राजपुरुषां रा आचरण' नामक रचना का एक उदाहरण दिया जाता है—

'पढे फारसी प्रथम, म्लेच्छ कुल में मिल जावे।
अंगरेजी पढ अवल, होटलां में हिल जावे॥
पच्छ ग्रहे प्रालब्ध, नहीं पुरुषारथ नेड़ो,
चोखे मत नहिं चाय, माय आवे मत भेडो।
नित असल त्याग सीखे नकल छाज न व्हे-व्हे छाणणी।
कुलखणां मांय मोटी कसर, आदत खोटी आंणणी॥'

'अवार रो हाल' नामक रचना में वह सीधा प्रहार करता हुआ कहता है—

'छत्री धर्म छोड़ियो छेलां, चौड़े हुय व्यभिचारी रे।
परण्योड़ी रे पास न पोढे, पातर लागे प्यारी रे॥'

'चेटक चतुर्दशी' में—

'अटका तू ठाकुर अवै, बटका भरणां बोल।
भला मिनख भटका लिये, गटका खावै गोल॥'

ऊमरदान ने समाज को नशे से बचाने हेतु उसकी हानियां बताई हैं। 'तमाखू री ताड़ना' में उसका सवाल यह है कि ब्रह्ममुहूर्त के समय टाट में टके का यह टोला क्यों?—

कंथा तूं कांई करे हाय तमाखू हेत।
टका एक री टाट में दिन ऊगांई देत॥'

उसका तर्क है कि पशु-पक्षी जिसे अपनी बुराई समझकर छोड़ देते हैं, मनुष्य उसी का सेवन करने लग जाता है—

समज तमाकू सूगली कुत्तो खाये न काग,
ऊंट बाट खावे न आ अपणो जाण अभाग।
अपणो जाण अभाग गजब नहि खाय गधेडो,
सूकर, मूंडो समज निरट निकलै नहि नेड़ो।
बुरा पशू बच जाय अहर निस खाय न आखू,
बड़ा सोच री बात तिका नर खाय तमाखू॥'

'अमल रा ओगण' में अफीमची की यह सूरत देखिये, कैसा अजीब तमाशा है?'—

'सळ पड़ियोड़ा सियळ गोळ मुज हे गळियोड़ा।
गळियोड़ी छिक गुंमर गिरे हूंगा गळियोड़ा॥
गळियोड़ो रूब गाय गजब कांधो गळियोड़ो।
अमल खाय नें अजे वळै मूंडो वळियोड़ो॥
अप हूंत सरब गळगी उमग मूंडो भलो न भाळणों।
गळ गयो देख हा हा गजब गजबी तज्यो न गाळणों॥'

व्यभिचार के लिए कवि का कथन है—

'पिंड री गई प्रतीत मांण मिटग्यो मरदां में,
ग्यांन मिल गयो गरद दांम रुलग्यो दरदां में ।।'

ऊमरदान पाश्चात्य संस्कृति के विरोधी थे। विभिन्न कार्यालयों की स्थापना ने उनके मस्तिष्क में एक हलचल उत्पन्न कर दी है -

'खारी रे आ समें दुखारी, हा हा बड़ी हत्यारी रे ।। टेर ।।
अदालतां सूं होय आगती, पिरजा रोय पुकारी रे।
सूंक दुकांनां मडी सरासर, धोले दिवस अंधारी रे ।।
फिर जंगलायत कियो फायदो जुल्म कायदो जारी रे।
टोगड़ियां रा गला टूंपतां, भयो कष्ट अति भारी रे ।।'

धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होते देखकर ऊमरदान काँप उठते हैं। इसलिए ढौंगी साधुओं को आडे हाथ लिया गया है। जो लोग वाह्याचारों का स्वांग रचकर जनता को लूटते फिरते हैं और विषय-वासना के उपकरण सँजोया करते हैं, उनकी धज्जियां उड़ाने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी है। 'बिलाप बावनी' में वे कहते हैं—

'बांम-बांम बकता बहे, दांम-दांम चित देत।
गांम-गांम नांखे गिडक, राम नाम में रेत ।।'

'खोटे सन्तां रो खुलासो' में मुफ्त का माल उड़ाने वाले मोडे संतो को देखकर वे कहते हैं—

'मारवाड़ रो माल मुफत में खावे मोडा।
सेवक जोसी सेंग गरीबां दे नित गोडा।
दाता दे वित दांन मोज मांणें मुरसंडा,
लाखां ले धन लूट पूतळी पूजक पंडा।
जटा कनफटा जोगटा खाखी पर धन खावणां,
मरुधर में कोड़ा मिनक करसा एक कमावणां ।।'

नाथ-सम्प्रदाय के बहुधंधियों की धज्जियां उड़ाते हुए कवि ने 'असन्तां री आरसी' में लिखा है—

'मांरो थांरो कर माया में, उळज्योड़ा उलजावे।
कुलवे लगे गुरां री कूंची खट ताळा खुल जावे ।।

नाभ कवळ में नाच नचावे सब रग-रग सणणावे ।
अनहद नाद बजे इकतारा गगन मंडळ गणणावे ।।'

रोष में आकर कहीं-कहीं कवि ने साहित्यिक मर्यादा का उल्लंघन भी कर दिया है । यथा—

'सांडां ज्यूं ऐ साधड़ा, भांडां ज्यूं कर भेस ।
रांडां में रोता फिरे, लाज न आवे लेस ।।
भांत भांत रा सांग भर, प्रभु सूं करे न प्रेम ।
सोधे लिछमीं साधड़ा, नाभ कवळ रो नेम ।।'

केसरीसिंह सौदा ने 'शुभेच्छु चाबुक-स्पर्श में' वर्तमान राजाओं को लक्ष्य करके लिखा है—

'अवधी अब ओछीह, सोचीजै सह भूपत्यां ।
पड़गी पख पोचीह, नीत सलोची नहँ रखी ।।
साज्यो बणकां साज, रजवट बट खोवे रधू ।
रहसी नहँ ये राज; आज लगा जिण बिध रह्या ।।
निरभै हित निरभेळ, जे नर चाहै राज रो ।
बस चुगलां इण वेळ, जेल मांह पटको जिकां ।।
हुकमत गी पर हात, घर में खूणै घालिया ।
बालक भी या बात, जाण चुक्या जग मांहिने ।।
परजा ही पलटाविया, अणचींत्या बिन फौज ।
काल्ह जिके घर गंजता, आज मिलै नहँ खोज ।।
नृप ! नहँ व्हो नाराज, स्वीकारे सत सांपरत ।
आखी ईहग आज, हित री बातां हेत थी ।।
खत्रवट मांहे खोट, देखे दुख पावै दुसह ।
जद चारण चुभती चोट, हिरदै सबदां री हणै ।।'

इसी प्रकार बहादुरों की निन्दा करते हुए उनका कथन है—

'खग धारा साम्हे खड़ी, उर न चढ़ी आतंक ।
जिका बहादुरा जातड़ी, पड़ी थरहेर पंक ।।'

मुरारिदान कविया मरुधर देश की इस विपरीत रीति को देखकर क्षुब्ध हैं—

'पाड़ाँ हन्दी पीठ पर हाथी चढ़ै हमेश।
गति उलटी गोविन्द की देखी मुरधर देश ।।'

राजपूत जाति में 'रजवट' का पतन हुआ देखकर कवि उदयराज भी कम दुखी नहीं हैं—

'आप लियो नह एक, उत्तम गुण अंगरेज रो।
भवगुण गह्या अनेक, सिरदारों लीजो समझ ।।
जनम भोम रो जोश, रग रग में अंगरेज रे।
रयो न रजवट रोश, सिरदारों लीजो समझ ।।'

नाथूसिंह ने आधुनिक काल के राजपूतों एवं चारणों को लक्ष्य करके निम्न दोहों में क्षोभ प्रकट किया है—

'राजस करणा देखिया, नर गुणवान बहूत।
पण विरळा दीसै प्रथी, रण मरणा रजपूत ।।
वे रण में विरदावता, वे झड़ता खग-हूंत।
वे चारण किण दिस गया, किण दिस गा रजपूत ।।
ठाकर रहिया नाम रा, ठा करली सह ठाम।
ठाकर होता देस में, देस न हुतौ गुलाम ।।'

कायरों का भी विश्व में कुछ अस्तित्व है और महत्ता भी! ये ईश्वर से छिपकर काल-यापन कर सकते हैं, बैरियों मे छिप रण छोड़कर भाग सकते हैं किन्तु कवि की दिव्य दृष्टि से ओझल नहीं हो सकते। नाथूसिंह ने कायर पति को वीरांगना के द्वारा ऐसा लज्जित कराया है कि उसका जीना दूभर हो गया है—

'नाह निलज्जा! नहँ लजै, रण हूँ आयौ भाग।
मो हथ लाजै चूड़लौ, तो हथ लाजै खाग ।।
क्यूँ नहँ लड़िया समर में, क्यूँ मन खाधी लांच।
खांच लजाई चूड़लै, खग नहँ वाही खांच ।।
कंथा घर आवण चह्यौ, चह्यौ न रण मरबोह।
थांरै मुख आवण चहै, म्हारौ गूंघटड़ोह ।।
रण छंडे घर आवियौ, घर धण लेवै अंत।
घर रौ रह्यौ न घाट रौ, धोवी रौ खर कंत ।।
पिउ सिर होती चूंदड़ी, मो सिर होती पाग।
मर जाती नहँ मेलती, अरियां चरणां खाग ।।'

चंडीदान सांदू ने निम्न गीत में बड़े आदमी की निन्दा की है—

'आवै घर करै एक पग ऊभा, खातर खलल पड़्यां व्है खीज।
संको करां नहां न सरम सूं-चित्त चढ़ै बा ले ले चीज॥
कठै ही मिलां पिछाणै कोनी सदन गयां बूझै सार।
करां सलाम, दबे करड़ा पड़-काम पड़्यां कुछ करे न कार॥
देवां पत्र जवाब न देवै-हां, भर भूले काम हुवै न।
कदे ऊठ सतकार करे नहं जोड़ां कर, तो वकै जुवै न॥
सांची झूठी सुणां अर सहवां, पड़ै समरथन करणौ पूर।
जे ओड़ौ दे देय जरा सो, जोस जणावे लड़े जरूर॥
बहुतां में बैठां बतळावां मूंह बोलतां सरन मरंत।
काम मुळांण बाण ज्यां खासा, तेड़ावै घर हूंत तुरंत॥'

जुगतीदान देथा ने जैसे सर प्रतापसिंह के गुणों की प्रशंसा की है वैसे ही अवगुणों की निन्दा भी—

'पड़ियो क्रम पड़दे प्रिया, अटक्यो पोले ओह।
सोनो पातळ सोळवो जिमें लगीं मेध तृण लोह॥'

ऊमरदान एक कदम और आगे बढ़ते हुए कहते हैं—

'जार पणा में जोधपुर, बेटी गिणे न बाप।
राजघराणा डूब गो पातल री परताप॥
डाढ़ी मूंछ मुंडाय कै, सिर पर धरियौ टोप।
परतापसी तखतेसरा (थारै) बाकी घटे लँगोट॥'

पाबूदान बारहठ ने फूहड़ स्त्री पर इस कवित्त में प्रहार किया है—

'बैठै नळा पसार, जरख ज्यूं जाड़ बजावै।
गंडक ज्यूं गुरराय, सेर ज्यूं साम्ही आवै॥
ओछो घाघर पैर, देय मचकोळा चालै।
लग ज्यावै जिण लार, हियो डोढल्यो हालै॥
घरणी इसी आवै घरां, ज्यांरै पुन्न पुरब्या पुरबलो।
बारठ पाबू साचोब कै, ईं परणे स्यूं रंडवो भलो॥'

गणपतदान बीठू ने शराब की निन्दा करते हुए लिखा है—

'आदि जात इज्जत छीजत सरीर नित, बाम कळह कीजत सु सुने निरधारू में।
काम सुन हित्त नित्त चित्त रहै चोरी मांय, आवै दाम हाथ मार जाय मिलें यारू में।।
मात तात भ्रात बहिन बेटी की न लाज कछु, सोचै ना समाज आप बकत बारू में।
गणपत दान कहै सब मेढ सिरदार सुनो, ओगण अपार गुण एक नांय दारू में।।'

धनदान लांलस ने देहातों में चाय के कारण बिगड़ी दशा का सजीव चित्र खींचा है—

'नित भर हांडी नीर चूल पर प्रात चढावे।
थौड़ी न्हाखे चाय, लाठियौ गुळ अति लावे।।
दूध तणौ दसतूर, कदेक न्हाखे कोई।
ठीकर भर अणदीठ, दुस्ट पियै टंक दोई।
नाड़िया सबे तन नीसरी काळौ व्हियौ मुख कोयलौ।
अधमरा जेम दीसे अपत जग में ज्यांने जोयलौ।।'

शम्भूदान आसिया ने इन दोंहों में मदिरा पीने वालों का तिरस्कार किया है—

'घर ओढण नहँ गूदड़ी, फाकण नहँ फूलाह।
तो पण प्यालौ नहँ तजै, वाह दुबारा वाह।।
पीतां ही सुख व्है प्रगट—दुख्ख हिया रौ दाह।
स्वान देह चाटै सरब, वाह दुबारा वाह।।'

जान पड़ता है चारण कवि अँग्रेजी संस्कृति के विरोधी थे। क्षत्रिय जाति परम्परा का विसर्जन कर इसे अपनाती जा रही थी जिसे देखकर उन्हें दुख हुआ। साँवलदान आसिया ने अपने मन की वेदना इन शब्दों में प्रकट की है—

'धरम नीत तज रीत मेळी सरब धूळ में,
चाल अध-घेल री जके चालो।
पास इंगलिश रा कलंक नव पावणा,
हिंदवा धरम नें छोड़ हालो।।
जेज नंह राज री रीत घट जावता,
मूंछ कट होट री चाह मोटी।
रहू खर्च चून रो सेर भर रसोड़े,
रावळै तासळी डबल रोटी।।'

इसीलिए इन कवियों को पूर्वाभास हो गया था कि यही अवस्था बनी रही तो ये राजा-महाराजा राज्य से हाथ धो बैठेंगे। विजयसिंह दधवाडिया ने क्षत्रिय जाति का यथार्थ चित्र अंकित करते हुए कहा है—

'रव्वड़ रा थण धाविया, पळिया मेमां पास।
इण विध उछरिया जके, वाहे किम वाणास॥
जिण मुख पर रण जोश में, मूंछों भौंह मिलंत।
होणहार ते तिण जगह, रेजर रोज फिरंत॥
विन माथे रण वाहता, दुहु माथै तरवार।
मग जाते निरखे जके, शिर री मांग सँवार॥
मंझ सन्नाह आवध सरब, देता अरियाँ दाव।
पहर गिरारा पातळा, वे अब करे वणाव॥'

शंकरदान ने वर्गगत एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार के विसहर लिखे हैं। उन्होंने अंग्रेजों को फटकार बताते हुए लिखा है— 'तंह जिसो फिरंग तेज, कोई निलज्जो नफीटो।' इसी प्रकार कवि ने डूंगरसिंह (बीकानेर) के शासन की कमजोरियों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है—

'पत्थर पाट विराजतां, बटो लग्यो बीकांण।
डफ ही डफ भेळा हुया,(जद) बाज्यो डफ बीकांण॥'

अपने पुत्र बलदेव की सेवाओं से अप्रसन्न होकर हिंगलाजदान ने 'गीत कपूत रौ' लिखा है—

'पढ-पढ ठीक सीख पड़वा मां, कड़वा वचनां दगध करै।
जीमै घी गोहूं जोडायत, मां तोड़ायत भूख मरै॥
वरते सोड़ सोड़िया बेटो, पैमद हेटौ बाप पड़ै।
मूंडा हूंत न बौलै मीठो, लालौ बूढां हूंत लड़ै॥'

केसरीसिंह ने पिता-पुत्र में विरोध होने पर महाराजकुमार भूपालसिंह (उदयपुर) को ये दोहे लिखे थे—

'मठठ सदा मेवाड़ री, राखी फतमल राण।
क्लीव पणारा काळ में, है बब्बर हिन्दवांण॥
चूंडे हसतां छाडियो, सुख संपत सह राज।
पितु भगती रो पारखू, जग सपूत सिरताज॥

यो घर रहियो आपरो, आज लगा अकळंक।
है आसा तो हात हूं, पड़े न छींटा पंक ।।'

बूंदी-नरेश शत्रुशाल (द्वितीय) ने विश्वासघात कर फिरंगियों से घेरा दिलाकर गोठडा-पति वलवंतसिंह चौहान को मरवा दिया था। इस विषय को लेकर रामकरण ने निम्न गीत में बूंदी-नरेश की निन्दा की है—

'दगौ धारणौ नहीं छौ फेरे फिरंगी चोफेर दोळा, सता बीजा हारणो नहीं छौ सब छेत।
भाराथ जूटतां काज सारणौ सही छौ भूप, बूंदीनाथ मारणौ नहीं छौ वळूतेत ।।
उभै राहां तोक वागां बैंडाक भोवतौ आडौ, सामरायां रोकतां सत्राटां जाडै साथ।
तणो वहाद्रेस माडां जोखम्यौ न होतौ तो तौ, वळा आडौ ढाल हाडौ होतौ वळानाथ ।।
जंगां में अढंगौ छौ छटा में पाराथ जेहौ, माथै राव लीधौ रौळ दट्टा में मथोग।
छत्री वळूतेस खलां थट्टां में हकालणौ छौ, जिको सैंज सट्टा में न भांजणौ छौ जोग ।।
पढायां विया रै कांय मारियो गोठड़ा-रत्ती, उदासी धारियौ सारे हिन्दू आसुराण।
रागां सिंधू काना लागां पछतासी रावराजा, चन्द्रहासां वागां याद आसी चाहुवाण ।।'

वांकीदास वीठू झूठे गुरु-शिष्यों से क्षुब्ध हैं—

'मझधर पिछ छमांण करै चत्र मासौ, लख पुळ साधां पंथ लियौ।
मारग मिलै माड़ रा माझी, दोय संतां उपदेस दियौ ।।
चह अपराध गांठियौ चित मै, धारै सिखां छांटियौ ध्यांन।
चारु प्रसाद वांटियौ चेलां, गुरां इसौई ठांटियौ ग्यांन ।।
वावा सिक्ख मिलै वाथां सु, थळ जातां सुं हरख थुवौ।
सिख वातां सु नही सलूधा, हाथां सुं परमोद हुवौ ।।
वेड़ परायण इसी वचाइ, मही सरायण सुण ज्यौं मूठ।
निज नारायण गुरु निवाजै, फजर गइ तारायण फूठ ।।
लागौ ग्यांन धरा पर लोटै, सुध वुध भूला भोम सिलै।
विहद कपाळ हुवा परवरती, मुगती पोहरां मांय मिलै ।।
जांम घड़ी मुरछागत जागा, हर कर आगा वितन हरै।
लांठा गुरां पंजा सिर लागा, कम भागां डंडोत करै ।।
पुर पुरस मिळै पुन पैलै वैगी समरण जुगत वणी।
वलती डांग पछमणी री वाटी, त्रिगुटि फाटी सीस तणी ।।
वांट प्रसाद वलोवल वागा, त्रसना भागी लोभ तणी।
चेलां गुरां वेड़ री चरचा, साधां सौ सौ कोस सुणी ।।

हीरदास दमोदर हुंता, ओर सकै लेता उपदेस ।
डांगा जिका रिखां नै दीनी, वां संता थानै आदेस ।।
खट मिळ आया खोसबा, सोदां साधां पास ।
हीरदास ही हदकरी, दाद दमोदर दास ।।'

गोकुलदान कविया ने चिमनसिंह की व्यक्तिगत निन्दा करते हुए लिखा है—

'चिमनै री घर पूछ नै, आई धार अचूक ।
डेरा मैड़ी में दिया, भेळी हुय नै भूख ।।'

कवयित्री होने के नाते सौभाग्यवती (प्रभाबाई) ने स्वभावतः दहेज-प्रथा पर इन शब्दों में करारी चोट की है—

'पाप मूल टीका प्रथा, अबला डर री सूळ ।
पटको सभी समाज रा, धोबां-धोबां धूळ ।।
बैल गाय ने बेचतां, आवे लाज अपार ।
बेटा बेटी बेच दै, धिक टीका धिक्कार ।।
बेटि ने देवै वित बिना, लावत आवे लाज ।
कींकर मिटै कूरीतियां, सुधरै केम समाज ।।
एड़ौ करां उपाय, बेटो विष दै बीनणी ।
के हूं देहूं बलाय, आवे टीको आपणे ।।
मीठो गरळ मिलाय, कर सरबत जावै कनै ।
पापण देत पिलाय, पकड़र हाथ पिसाचणी ।।
खम वै खारा बोळ, बहु तो धरम विचार ने ।
पटके वा पेट्रोल, पापण सास पिसाचणी ।।'

और तो और, सिरैदान सांदू ने पृथ्वीसिंह धाड़वी तक को अपना निशाना बनाया है—

'पालणपुर बजार में पीथल चोरिया जूता चार ।
चौवटे मांयने चार सौ लगा होटल तांई हजार ।
पृथ्वीसिंह धाड़वी पाको रे हुवो मारवाड़ में हाको रे ।।'

३. **वीर काव्य**— डिंगल की वीर काव्य-धारा जो पूर्ववर्ती काल में मंद पड़ गई थी, इस काल में सूर्यमल्ल मिश्रण की लेखनी से पुनः त्वरित गति से प्रवाहित होने लगी । उनके पद-चिन्हों का अनुकरण कर कई कवि आगे आये

जिनमें गोपालदान, कमजी, शिवबख्श, मोतीराम, ऊमरदान, हिंगलाजदान, माधवदान उज्वल, मुकनदान खिडिया, केसरीसिंह (मेवाड़), राघवदान, गुलाबसिंह, नाथूसिंह, सांवलदान, पाबूदान आसिया, डालूराम एवं विजयदान बोगसा के नाम आदरपूर्वक लिये जा सकते हैं। युद्ध के अभाव में इन कवियों ने परम्परागत वीर काव्य की सृष्टि कर राजपूत जाति के शौर्य-पराक्रम को अक्षुण्ण बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया है। कतिपय कवियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध प्रदर्शित युद्धवीरता को लक्ष्य करके स्फुट गीत लिखे हैं।

राजस्थानी के चारण-साहित्य-सागर में महाकवि सूर्यमल्ल का वीर काव्य एक दीप-स्तम्भ है जिसके जैसा प्रकाश अन्यत्र दुर्लभ है। इससे 'वीर' का जो पथ-प्रदर्शन हुआ है, वह चारण-कुल का गौरव है। जिस धर्म की प्रतिष्ठा हुई है, वह प्रत्येक काल एवं देश के वीरों को मर-मिटने की प्रेरणा देता है। वह वीरधर्म धन्य है जो जन-मन का भूमि के साथ तादात्म्य स्थापित कर उसके वासियों को संस्कृति की रक्षा के लिए रण-भूमि में लाकर खड़ा करता है। युद्ध में उपस्थित न होते हुए भी कवि को उसका ज्ञान प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा प्राप्त था। एतदर्थ, वह ओजस्वी एवं साँगोपांग वर्णन करने में अपनी सानी नहीं रखता अस्तु,

सूर्यमल्ल कृत 'वंश-भास्कर' एक वृहत महाकाव्य है। चंद बरदाई ने जो ज्योति जगाई थी, यह उसकी अंतिम लौ है। आचार्यों द्वारा गिनाये हुए महाकाव्य के कई गुण इसमें विद्यमान हैं। इसका कथावस्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक क्षत्रिय राजवंशों से सम्बद्ध है। इसमें वीर रस की प्रधानता है, अन्य रस उसके उत्कर्ष में सहायक हुए हैं। रसोत्पत्ति में कवि ने उच्च प्रतिभा का परिचय दिया है। युद्ध के फड़कते हुए वर्णन बेजोड़ हैं। कवित्व-शक्ति अद्‌भुत है। कवि ने एक कुशल चित्रकार की भाँति युद्ध को ऐसा रंग दिया है कि जिसके सामने फुटकरिये कवियों के चित्र अत्यन्त फीके प्रतीत होते हैं। वर्णन पढ़ते-पढ़ते पाठक अपनो पृथक सत्ता को भूलकर रणस्थल में जा पहुँचता है जहां वह धावा मारती हुई सेना की पद-ध्वनि सुनता है, सैनिकों की हुँकार से भयभीत होता है और रोमांचकारी दृश्यों को अपनी आँखों से देखने लग जाता है। पाठक की आत्मा वाह्य सीमाओं का उल्लंघन करती हुई काल तथा स्थान के आवरण को चीरकर वीर-वीरांगना के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेतो है। प्राय: समस्त चारण कवियों ने *युद्ध-वर्णन में कोलाहल, आतंक, भिडन्त, शस्त्राघात, भगदड़ एवं जय-*

नाद पर समान रूप से शब्द-व्यय किया है किन्तु एक तो उनमें मौलिकता का अभाव है और दूसरे उनकी दृष्टि सूक्ष्म भावों की ओर नहीं जा पाई है। इन दोनों अभावों की पूर्ति सूर्यमल्ल के द्वारा हुई है। भूमि के लिए एक ओर सालमसिंह की सेना खड़ी है, दूसरी ओर बुधसिंह की। योद्धाओं की हुँकार होने पर सारा रूप ही बदल जाता है—

'दुव सेन उदंगन खग्ग समग्गन अग्ग तुरग्गन वग्ग लई।
मचि रंग उतंगन दंग मतंगन सज्जि रनंगन जंग जई॥
लगि कंप लजाकन भीरु भजाकन वाक कजाकन हाक बढ़ी।
जिम मेह ससंबर यों लगि अंबर चंड अडंबर खेह चढ़ी॥
फहरक्कि दिसान-दिसान बड़े वहरक्कि निसान उड़ै बिथरैं।
रसना अहिनायक की निकसैं कि पराफल होरिय की प्रसरैं॥
गजघंट ठनंकिय भेरि भनंकिय रंग रनंकिय कोच करी।
पखरान भनंकिय बान सनंकिय चाप तनंकिय ताप परी॥
धमचक्क रचक्कन लग्गि लचक्कन कोल मचक्कन तोल कढ्यो।
पखरालन भार खुमी खुरतालन व्याल कपालन साल वढ्यो॥
डगमग्गि विलोच्चय शृंग डुले भगमग्गि कृपानन अग्गि भरी।
बजि खल्ल तबल्लन हल्ल उभल्लन भुम्मि हमल्लन घुम्मि भरी॥'

बूंदी के बाजार में युद्ध की भयकरता को देखकर महादेव एवं कालिकादि क्रीड़ा करने लगते हैं—

'उड़े सिर भेलत उद्धहि ईस, वहैं इत चंडिय के भुज बीस।
चटट्टहि रत्त खिलैं चउसट्ठि, बबक्कहि वावन गावन गट्ठि॥
चुरेलिनि मंडत फालन चाल, लगावत डाइनि घुम्मर ताल।
बजै लगि खग्गन खग्गन बाढ, गिरैं भट भीरु भजै तजि गाढ॥
उमेद दिनेस रच्यो खग खेल, दुरयो सठ घुग्घुव दुग्ग दलेल।
घवै असि खुप्परि टोपन फारि, वहैं जनु सब्बुवतंति विदारि॥
फिरैं कटि हड्डन खंड करक्कि, भरैं उड़ि धारन बूर भरक्कि।
कटैं सह सात्थिन जानुव जंघ, तुज्यों गंज सुंडिन खंडन संघ॥
फदक्कहि कड्डहि कालिक फिप्फ, भचक्कहि टोप कपालन भिप्फ।
उडे सिर फुट्टत भेजन ओघ, मनों नवनीत भटक्किय मोघ॥

मचक्कहिं रीढक बंक अमाप, चटक्कहिं ज्यों मिथिलापुर चाप।
धसैं कढि लोचन सोंनित धार, चरैं सिसु मच्छ विलोम कि वार ।।'

यह एक अत्यन्त विस्तृत चित्र का छोटा सा अंश मात्र है, जो अपूर्ण होते हुए भी कितना पूर्ण है ! एक शब्द में सूर्यमल्ल की विशेषता वर्णन की पूर्णता है। इसके साथ योद्धाओं की हृदयगत भावनाओं का विश्लेषण एवं उनका काव्यमय अंकन सुघड़ता से किया गया है। कल्पना का ऐसा रूप-विधान पूर्ववर्ती कवियों में नहीं पाया जाता। भाव कितना अभिनव, भाषा कितनी प्रवाहमयी ! इनके काव्य-चातुर्य का एक और उदाहरण दिया जाता है—

'बड़े दल तोपन को करि अग्ग, मिलै भट उद्धत संगर मग्ग।
इते विच कौतुक जंग अछक्क, उदो उदयाचल के सिर अक्क ।।
भयो नभ धूमित धुंधरि मान, लगे दृग मींचन देव विमान।
भुजंगम के सिर नच्चत भुम्मि, धरै फनते फन घायल घुम्मि ।।
नचे जिम कान्हर कालिय कंध, बनै इम छोनिय तंड़व वंध।
सज्यो वढ़ि धूम सुरालय सग, ऊवौ नभ वाहुल राजहि रंग ।।'

यहाँ युद्ध का नहीं, युद्ध-क्षेत्र का वर्णन है। प्रात: काल युद्ध आरंभ हुआ, ऐसा न कहकर कवि ने युद्ध-क्रीडा देखने के लिए उत्कण्ठावश सूर्य को उदयाचल पर प्रकट कराया है। पृथ्वी डगमगा रही है, यह कहना कवियों का स्वभाव है किन्तु यह कहना कि पृथ्वी शेष के सहस्रफनों पर इधर-उधर लुढक रही है, एक मौलिक सूझ है। इसी प्रकार वादल उस धुयें से काले हो रहे हैं, कवि की नई कल्पना का प्रमाण है।

यह उल्लेखनीय है कि सूर्यमल्ल ने वीर एवं शृंगार रसों का विरोध होने पर भी इनका अनूठा सामंजस्य कर दिखाया है। एक ओर कामातुर अप्सरायें अत्यन्त उद्विग्नता में अपना शृंगार कर रही हैं तो दूसरी ओर युद्धातुर योद्धा सुसज्जित हो रहे हैं। इन दोनों की हृदयस्थ भावनाओं एवं वाह्य वेश-भूषा विषयक यह वर्णन द्रष्टव्य है—

'हूरों सूरों सत्थ ही वर साज सजाया, यो जावक लगे चरन यो लंगर लाया।
यो नेवर पग अंकुरे यों मुक्कुन आया, यों अद्धोरुक उल्लसे यो दस दिपाया ।।
यो आइत विमान के यों वाजि सजाया, यो राघन पाय प्रमुदि यो सिंधुन छाया।
यो वीणागन अग्गहे यों तेग तुलाया, यों कुंकुम कुच लग्गि यो दृढ़ छत्तिन छाया ।।'

चलता ही रहता है यह वर्णन। रुकने का नाम नहीं। कवि महाभारत-कार के सदृश पृष्ठ पर पृष्ठ लिखता चला जाता है। क्या मजाल कि कहीं पर शैथिल्य आ जाय। इस वर्णन में अनुराग और विराग तथा कामातुरता और रणातुरता का मनोहर चित्र खींचा गया है। विरोधी भावों का यह अनूठा साम्य निःसंदेह कवि की उच्च काव्य-प्रतिभा का द्योतक है।

ध्वनि द्वारा भावों की व्यंजना करना सूर्यमल्ल जैसे तपस्वी कवियों की ही करामात है। यह 'वंश-भास्कर' के पद-पद पर मिलेगी। यह लक्ष्य करने की बात है कि युद्ध के वेग का वर्णन करते समय भाषा भी वेगवती हो जाती है। भूतों, प्रेतों एवं डाकनियों के साथ मानो कवि स्वयं ही ताण्डव करने लग जाता है। यथा —

घरी-घरी घुमाय जाय डाकिनी डरी-डरी, लंजे लजि लुके लुभाय भीरु के भजे-भजे।
सजै सिपाह लेत खेत नार दे नजे-भजे, बटे बटे पिसाच बुक्क फिप्फरे फटे-फटे॥
कंपै-कंपै जुरै कितेक रंग में रुपै-रुपै, लुरै-लुपै ललात पाय धार में घुपै-घुपै।
मनोज्ञ मुंड मालिका रचैरु कालिका रमै, विमान जाल देवतान जाल दै घुमै-घुमै॥'

'वीर सतसई' वीर काव्य की एक मुक्तक रचना है। यह किसी व्यक्ति विशेष से प्रभावित होकर नहीं लिखी गई। आरम्भ शास्त्रीय पद्धति के अनुसार गणेश एवं सरस्वती वंदना से हुआ है। इसके पश्चात् कवि वीर-चरित का नाना प्रणालियों के द्वारा बड़ा ही मार्मिक वर्णन करने लग जाता है। दोहों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि इसमें राजपूत की वीरता, स्त्रियोचित वीरता एवं सतीत्व, वीर राजपूत का स्वभाव, धर्म युद्ध की तैयारी, सपत्नी के प्रति ईर्ष्या एवं योग्य सेनापति की आवश्यकता पर अनेक भावपूर्ण चित्र अंकित किये गये हैं। रसोत्पत्ति के संयोजक द्रव्यों का सम्मिलन देखने योग्य है। सभी रस वीर रस के सहायक होकर आये हैं। कवि की निरीक्षण शक्ति गजब की है। वातावरण की सृष्टि करने में उसे अभूतपूर्व सफलता मिली है। वीर की अंतः प्रकृति एवं उसके बाह्य कार्य-व्यापारों के चित्रण में उसने कमाल कर दिया है। प्रत्येक दोहे की शब्द-व्यंजना अनूठी है। इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इसे वीर काव्य की परमोत्कृष्ट निधि कहा जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

अपनी जननी जन्म-भूमि के प्रति मनुष्य में कितना नैसर्गिक प्रेम होता है? उसके कण-कण के साथ न जाने कितनी मधुर स्मृतियां लिपटी हुई होती हैं?

जीवन के मूलमंत्र का रहस्योद्घाटन करती हुई सूर्यमल्ल की कविता सीधा हृदय को स्पर्श करती है—

'इळा न देणी आपणी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय।।
थाळ बजंता हे सखी, दीठौ नैण फुलाय।
बाजां रै सिर चेतणौ, भ्रूणां कवण सिखाय।।
रण खेती रजपूत री, बीर न भूलै बाळ।
बारह बरसां बाप रौ, लहै बैर लंकाळ।।
बाभी हेकण वैर में, बोळविया दस बीस।
अब तो देवर ओहड़ौ, संचै भार न सीस।।
कुळ थारौ रण पोढणौ, मोनूं कहती माय।
प्राणां गाहक पेखियौ, कसियौ बरजै काय।।
बाप गयो ले माहिरौ, काको जात कड़ूंब।
तोहि मचाई छोकरै, वैरी रे घर बूंब।।
भोळा जाणौ भूलिया, बरसां आठां बाळ।
एथ घराणै सीहणी, कंवर जणै सो काळ।।'

बाल्यकाल में हम जिन संस्कारजन्य वीर भावनाओं का उदय पाते हैं, वड़े होने पर कर्म-क्षेत्र में उनका विकास। यह लक्ष्य करने की वात है कि इन पात्रों में उदात्त भावनाओं के साथ बैर की भावना प्रवल होती है। यह उनका कुल-धर्म है। वस्तुतः राजपूत के लिए भूमि से वढ़कर और कोई मूल्यवान नहीं। इसका उपभोग करने वालों का जीवन वड़ा ही कठिन होता है—

'धीरा-धीरा ठाकुरां, जमी न भागी जाय।
धणियां पग लूंवी धरा, अवखी ही घर आय।।
घोड़ां घर ढालां पटळ, भालां थंभ वणाय।
जे ठाकुर भोगै जमी, और किसी अपणाय।।'

सूर्यमल्ल का राजपूत शत प्रतिशत युद्धवीर है जो शौर्य, साहस, पराक्रम, प्रताप, धैर्य, उत्साह, व्यवसाय आदि विशिष्टताओं से अलंकृत है। इस सिंह को देखते ही देवता कूच कर जाते हैं—

'पग पाछा छाती घड़क, कालौ पीलौ दीह।
नैण मिचै साम्हौ सुणै, कवण हकालै सीह।।

काळी नाहक की डरै, खेती लाभ न खोय।
धरती रा जेथी धणी, हूंकळ तेथी होय॥'

कवि ने वीर राजपूत की स्वभावगत विशेषताओं का वर्णन करते हुए उत्साह, स्फूर्ति एवं ऐंठ को विशेष महत्त्व दिया है। यही कारण है कि रुण्ड-मुण्ड अलग हो जाने पर भी रजवट ज्यों का त्यों बना रहता है—

'गीध कळेजो चील्ह उर, कंकां अंत विलाय।
तौ भी सो वक कंत री, मूंछां भ्रूंह मिलाय॥'

इस धर्म-युद्ध की एक स्वस्थ परम्परा है। दोनों पक्षों के वीर क्या-क्या करते हैं, कवि के शब्दों में—

'धीरा-धीरा ठाकुरां, इती उतावळ काय।
लीजै खोबां गाळमा, जमी कठै धुस जाय॥
मिळतां क्षतरिया मरद, साकुर बाधा सेल।
मिजमानां जिम मंडिया, खोबांबाजी खेल॥
संपेखे बाल्हा सगा, मिळ गळबत्थां मार।
पहली वाहण पाहुणां, मंडीजै मनुहार॥'

युद्ध में कुशल सेनापति के न होने से सेना की क्या दशा हो जाती है, इसे कवि ने समझा है—

'पूरा आकुळ पाळ्ड़ा, भालां पड़तां मार।
हेकण कवला बाहरी, झाडां-झाडां डार॥
सुहड़ा और सिकारसी, मन में या न समाय।
भाला ऊ गिड़ भांजसी, डाढां प्रलय दिखाय॥
रुख-रुख तीरां-रुकड़ां, मुख-मुख वीरां मौळ।
पूंचाळा हेकण पखै, दळ में प्रबळ दरौळ॥
आसां बासां याद कर, जीव निसासां जाय।
विण एकण बानैत रै, मुख-मुख फौज मुड़ाय॥'

धरती के दीवानों और युद्ध के परवानों का चमत्कार पत्नी द्वारा कही हुई उन उक्तियों में देखने को मिलता है जिनमें पति के शौर्य पर आश्चर्य प्रकट किया गया है—

'देख सखी होळी रमैं, फौजां में धव एक ।
सागर मंदर सारखौं, डोहै अनड़ अनेक ॥
मूझ अचंभौ हे सखी, कंत वखाणूं कीस ।
विण माथै दळ वाढ़ियौ, आँख हियै के सीस ॥
हेली की अचरज कहूँ, कंत परा बळिहार ।
घर में देखूं दोय कर, रण में दोय हजार ॥'

सूर्यमल्ल द्वारा चित्रित राजस्थानी वीर रमणी का विराट् रूप सर्वथा स्तुत्य है। उसका स्त्रीत्व एवं मातृत्व दोनों ही चित्ताकर्षक है। यथा—

'सहणी सबरी हूं सखी, दो उर उलटी दाह ।
दूध लजाणै पूत सम, वलय लजाणै नाह ॥
गोठ गया सब गेहरा, वणी अचाणक आय ।
सीहण जाई सीहणी, लीधी तेग उठाय ॥
भाभी हूँ डौढी खड़ी, लीधाँ खेटक रूक ।
थे मनुहारी पाहुणाँ, मेड़ी झाल बंदूक ॥
घोड़ाँ चढणौ सीखिया, भाभी किसड़े काम ।
बंब सुणीजै पार को, लीजै हात लगाम ॥
धण नूं आळगसी धणी, सुणियाँ वागो सार ।
हालीजै उण देसड़ै, प्राणां रौ व्यापार ॥
नहँ पड़ौस कायर नराँ, हेली वास सुहाय ।
बळिहारी जिण देसड़ै, माथा मोल विकाय ॥'

इस वीरांगना के चरित की अन्यतम विभूति मृत्यु को महान पर्व का रूप देकर पातिव्रत धर्म का अनुष्ठान करना है। सूर्यमल्ल के वीर काव्य में सतीत्व की मनोहर अभिव्यंजनायें नारी-सौन्दर्य के आभूषण हैं। वह मोतियों का थाल लेकर विजयी प्राणनाथ की आरती उतारती है तो वीरगति प्राप्त करने पर सती होने की तैयारी करती है—

'जे खळ भग्गा तो सखी, मोताहळ सज थाळ ।
निज भग्गा तो नाहं रौ, साथ न सूनो टाळ ॥
काळी करै वधावणो, सतियां आयो साथ ।
हथळेवै जुड़ियो जिको, हमैं न छूटै हाथ ॥'

सती स्त्री की यह स्वभावगत ईर्ष्या कितनी वांछनीय है जो स्वर्ग की अप्सराओं तक को फटकार देती है—

'काली अच्छर छक म कर, सूना धव अपणाय।
सूर किसौ परखै सती, वोली सुरग बसाय॥'

इस प्रकार 'वीर सतसई' भाव एवं कला का एक अभिनव आयोजन है। साथ ही इसमें परम्परा से आती हुई अनेक रूढ़ियों का भी सन्निवेश हुआ है। इस दृष्टि से कवि ईसरदास का ऋणी है। कुछ उदाहरण लीजिए—

'घण आखै जागो धणी, हूंकळ कळळ हजार।
ब ण नूंतारा पाहुणा, मिळण बुलावै वार॥
कंकाणी चंपै चरण, गोधाणी सिर गाह।
मो विण सूतौ सेजरी, रीत न छंडै नाह॥
आळस जाणै ऐस में, वपु ढीलै विकसंत।
सींधू सुणियाँ सौ गुणौ, कवच न मावै कंत॥
सुण हेली ढीलै सहज, लेणी पड़वै लोच।
कंत सजंतां सौ गुणौ, कड़ी वजंतां कोच॥
करड़ी कुचनूं भाखता, पड़वा हंदी चोळ।
अब फूलाँ जिम आँग में, सेलाँ री घमरोळ॥'

गोपालदान कृत 'लावा रासा' वीर रस की एक सफल रचना है। इसमें कवि ने कछवाहों की नरुका शाखा के वीरों द्वारा लड़ी हुई लड़ाइयों का रोचक ढंग से ओजपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है। इस ग्रंथ में पाँच युद्धों का पाँच प्रसंगों में वर्णन है— १. महाराजा जगतसिंह (जयपुर) एवं मानसिंह (जोधपुर) का युद्ध २. लावा युद्ध ३. लदाना युद्ध ४. उणियारा युद्ध ५. द्वितीय लावा युद्ध। प्रथम युद्ध को छोड़कर शेष चारों नरुका और मुसलमान लूटेरों के मध्य हुए हैं। लदाना युद्ध के इस दृश्य में सेना के भार से पृथ्वी पर एक अद्‌भुत हलचल उत्पन्न हो गई है—

'चढ़ि चल्लिय मेछान, मान गरदावलि भिल्लिय।
हलचल्लिय हिन्दवान, खखड जुग्गनि खिल खिल्लिय॥
धर डुल्लिय परिभार, पहुमि बसवान उचल्लिय।
हल मिल्लिय परि जोर, शेष अहि फन पर सल्लिय॥

लखि जोर सोर दिल्लिय सदन, तदन तोर दरसावियो ।
कर अली-अली माधव नगर, येम सजी कर आवियो ।।'

और भी—

'धरा धूम बित्थुरे, तोय ऊछरे सरोवर ।
गिरे श्रृंग नग तुट्टि, ताम प्रज्जरे तरोवर ।।
नदी कूप नद सूकि, कूक कातर उर फट्टिय ।
आवट्टिय जल जोर, सोर दुहुं ओर उपट्टिय ।।
सर धून-धून दिगपाल डरि, कसकि कमठ्ठनि पिठ्ठि भर ।
धर धुज्जि तलातल तल वितल, शेष सलस्सल छड्डिवर ।।'

युद्ध के तेजी पकड़ने पर कवि ने क्या ही सुन्दर चित्र खींचा है ?—

'कितेक लत्थ वत्थ ह्वै अचेत भूमि पै गिरैं, किते कुठार खग्ग धार सेल खंजरु लरैं ।
कितेक हाथ पावके विहीन भूमि पै लुटैं, कितेक सीसके कटे कबंध ऊठिके जुटैं ।।
कितेक गिद्धनीन को धपाय गूद अप्पने, कितेक सुद्धि के विहीन मार-मार जप्पने ।
कितेक ईस पोय लीन सीस मुंजकी गुनि, कितेक खप्र खोपरी वनाय जुग्गनी चुनी ।।
कितेक वीर जुद्ध में अवीर होय वक्कही, कितेक भूत खेचरी अघाय श्रोन छक्कही ।
कितेक हूर अच्छरी विमान बैठि ऊतरी, कितेक जात व्योम को मनो अरक्क की धरी ।।'

कमजी ने रावत रणजीतसिंह चुण्डावत (देवगढ़) एवं रावत जोधसिंह चहुआन (कोठारिया) की युद्धवीरता पर स्फुट गीत लिखे हैं। प्रस्तुत गीत में कवि ने अँग्रेजों के अनावश्यक हस्तक्षेप करने पर रणजीतसिंह द्वारा प्रदर्शित शौर्य का बड़ा ही ओजस्वी वर्णन किया है—

'लीधां आसतीक रेणसिंग ऊचारे धड़ा रो लाडो, ऊधारो नड़ाळां नाम चाड़ी कुळां अंब ।
गोरां रे अजंटी बोल सांभळे वीराण गाडो, खगैं ऊभौ मैदपाट लाडो जेत खंभ ।।
चगे नयो पावां वीरताई ऊफणी रे चखां, वातां हुई गणीरे लनीडा बोलैं बोल ।
आवतां फरंगी समैं जालती वणीरे एळा, रहे तेण वेळा चूंडो घणी रे हरोळ ।।
माये शत्रां खांपां धावै गवांवै जिहान मावै, दसुं दसा सोभाग छवायो वीरदाण ।
जींहान जाणी जोम छते नाहरेस जायो, अजंठी ऊगगो आयो आपे ही आयाण ।।
गाजे धूंसा राणरा फरंगी लगा दीये गेले, ओलाणा साधियो टला हमला खेवाड़ ।
अई चूडा गराणे हींदवां छात आरांधियों, आपरे ग्ळे ही भलां वाधियों मेवाड़ ।।'

वीर रस का वर्णन करने वाले कवियों में शिवबक्स का विशिष्ट स्थान है।

अलवर-नरेश महाराजा जालिमसिंह के शिकार का प्रसंग लेकर इन्होंने जिस वीर भाव की सृष्टि की है, वह देखने योग्य है। भैंसे को बँधा देखकर जब सिंह फूला नहीं समाता तब सिंहनी उसे सावधान करती हुई कहती है कि यह विष भरा लड्डू है, खूब सोच-समझ कर खाना—

'निरखि कह्यो तद नाहरी, निज मन करि निरधार।
भैंसो जाळम भूप रो, बालंम हतो विचार ॥
वालंम हतो विचार, महिष महिपाल रो।
बंधियो आँण वसीठ, कंत तव काल रो ॥
भरिया विष भरतार, 'क मोदक मारका।
कठिण चणां अति कंत समझ चित सारका ॥'

लेकिन सिंह क्यो मानने लगा ? उसने अपने स्वभाववश भैंसे को मारकर खा लिया। उधर आदमियों ने दौड़कर राजा को खबर दी और वे दल-बल सहित आ पहुँचे। सिंहनी ने सोचा, अब खैर नहीं। उसने अपने पति से प्रार्थना की, चलो भागकर पहाड़ों और नगरों के पार चले चलें—

'दुरद मचोळा दे रह्या, सुभट सचोळा साज।
बचां न इण खोळा विचै, भोळा कंथ उठि भाज ॥
भोळा कंथ उठि भाज, आंज नहिं ऊबरां।
पारां नगर पहाड़, वसां ज्यां विम्मरां ॥
विकट गहन बनखंड, जठै बसि जीजिये।
पावै तठै न पंथ, कंथ घर कीजिये ॥'

ऐसे कायरतापूर्ण वचन सुनकर अंग मोड़ता हुआ आलस्य छोड़कर वह वीर केसरी उठ बैठा। उसने अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए कहा—

'इसा वचन सुणि ऊठियो, अंग मोड़ै असळाक।
वाघ कहै सुण वाघणी, तजणौं खेत तळाक ॥
तजणौं खेत तळाक, कहाऊँ केहरी।
सहौं गरज नहिं सीस, 'क माथै मेहरी ॥
मरण तणो भय मांनि, भोमि तजि भागवै।
वाघ जनम बेकाज, लाज कुळ लागवै ॥'

कवि ने यहाँ संलाप शैली में 'सिंह' (वीर) नाम को सार्थक कर दिया है।

मोतीराम ने अँग्रेजों एवं हिन्दू नरेशों के बीच विद्रोह के समय रावत जोधसिंह (कोठारिया) की युद्धवीरता पर यह गीत लिखा है—

'पड़े अमावड़ द्रोह छत्रधर फरंग पालटे, आंट घर क्रोध भुज गयण अड़िया ।
सोध अंगरेज हिंदवाण आया सरब, जोध सिर सेस रै कदम जड़िया ।।
पड़े विकट धके चांपा सुदि पुळ गया, भड़ां थट छेक अड़वास लूनो ।
तोल खग टेक नहँ छंडे मोहकम तणो, एक लौ ठोर भुज लड़ण ऊभो ।।
जाणता जिसा साभाव रहिया जबर, अड़ीयळ करे खग दाव आछा ।
राव विज पाळ रा भार भुज राखियां, पाँव समहर विचा न दिया पाछा ।।
सुणे वाखाण गड़ दिली अर सतारा, दाट जित तितारा खळां दीधा ।
राव चहुवाण जोधा अडग मतारा, कथन क लकता रा मेट कीधा ।।'

ऊमरदान कृत 'जोधा रां रो जस' (वीर बतीसी), 'राठौड़ दुरगदास री औरंगजेब ने अर्जी', 'प्रताप प्रशंसा' एवं 'तोपां री तारीफ' नामक रचनाओं में वीरता के चित्र देखने को मिलते हैं। 'वीर बतीसी' में सच्चे वीरों के लिए कवि का कथन है—

'अरे न और के अगे अराक तें अर्‌या करें।
डरें न तीन काल दीन बाल तें डरया करें ।।
सनिद्धि स्वामि के सदा पिनिद्ध पां परया करें।
लरें नहीं सुलोक तें कुलोक तें लरया करें ।।'

'राठौड़ दुरगदास री औरंगजेब ने अर्जी' एक स्फूर्तिदायक रचना है जिसमें सर्वत्र ओज टपकता रहता है। यह संलाप शैली में लिखी गई है। यथा—

'कर में नहिं चूरी करन कानि, पगहै न पगरखी धरम पानि ।
करवाल ढाल दिस कर कयास, ओलंदेहै नहिं अनायास ।।
मन भृमर मनोरथ विरय मोज, चंपक वत चांपावत सचोज ।
जैतावत दंगे जुद्ध झाट, कूंपावत नवकोटी कपाट ।।
कर नोत कुतूहल करत कोड, व्हे गोयंदा सोतां न होड ।
आहव उछाह उर अधिक ऊह, दूदावत-मेडतिया दुरूह ।।
निज कर्म सोत पैंडे न वोह, उदावत अँडेंगे अवोह ।
उछरंग अंग रिड़मल अभंग, जोधाहर नाहर रूप जंग ।।'

'प्रताप प्रशंसा' का कर्नल प्रताप कवि की दृष्टि में सिंह के समान वीर है—

'केहर टळ जावे कठे, तन सूं ओलो ताक ।
हाके सामों हुलसणों, है सूबर हुसनाक ।।
साचो तूं-तूं सूखों, तूं दाता दे त्याग ।
पोहुमी में पातळ प्रसिद्ध, खळां बिड़ारण खाग ।।'

हिंगुलाजदान ने तोपों के विषय में लिखा है—

'तोपाँ रणताल रै, सकल भूपाल सँवारी ।
खँ आकाळ खाटणी काळ थाटणी करारी ।।
जाजुळ गोळा ज्वाळ गरज जिण काळ उगल्लै ।
त्रास सुरग पाताळ दिगज दिगपाळ दहल्लै ।।
दाँमणी मेह प्रगटै दग्यां, अधिक देह अधियामिणी ।
सामणी कोट कितळाँ सको, गैबर टिल्ला गामणी ।।'

माधवदान उज्वल कृत 'सवाईसिंहजी री निसाणी' में कवि ने जो युद्ध-वर्णन किया है उसमें सवाईसिंह ने बीजंड़ टालपुरे की सेना को परास्त किया था। उदाहरण देखिये—

'सिंधी लोकन सझ्झ के चढ सैन्य चलाया ।
मानों सत्त महोदधी हठयाज हकाया ।।
राज विजेपत लेण को सब वीर सवाया ।
सो यह भूपत संभ के सब भट्ट सझाया ।।'

उनकी 'पोकरणां रा छंद' नामक रचना भी वीर रस से ओतप्रोत है। 'मोतीदाम' का यह उदाहरण देखिये—

'चढे रणधीर सुवीर उछाह, धन्या द्रुयन केसु लगे गढ ढाह ।
भयो मन अबरउ चित भाव, दटे किम सत्रु करे सिर दाव ।।
हटे मत पीठ देखावण हांन, उछावेह आहवं पै मन आन ।
सझे सब यों कह थांन सुमंत, गहे बहुवा सुर ग्रेह वसंत ।।'

यथार्थ में सूर-सूर है। मुकनदान खिडिया कृत 'वीर सतसई' के ये दोहे देखिये—

'अंग छेदयो भालां अणी, सांहस तजे न सूर ।
तोड़ दिया गज तुंडळा, भांज किया भंक भूर ।।
घर अपणी आपां धणी और करे क्यूं आस ।
देस्यां जिण दिन दूसरां, लाखां पड़सी लास ।।

मरणा पेलो मारणौ, वीरां आहिज वत्त ।
जो चाहो धर पाररी, खाग भीकोळौ रत्त ।।'

केसरीसिंह (मेवाड़) कृत 'प्रताप-चरित्र', 'राजसिंह-चरित्र', 'दुर्गादास-चरित्र', 'जसवंतसिंह-चरित्र', 'अमरसिंह राठौड़' एवं 'रूठी राणी' सभी ग्रंथ वीर काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये समस्त काव्य खण्ड काव्य की कोटि में आते हैं जिनमें नाना प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं के बीच चरितनायकों के वीरत्व का प्रकाशन किया गया है। वीर रस ही कवि का अपना मौलिक क्षेत्र है। वह स्वयं लिखता है— 'मुझ से जहाँ तक बन पड़ता है, वीर रस की ही रचना किया करता हूँ। ऐसी दशा में मेरे काव्य का आधार वीरगाथा ही होना प्राय: निश्चित था। फलत: मैंने महाराणा प्रताप की जीवनी को काव्य-बद्ध करने का साहस किया। वीर केसरी प्रताप के विषय में अनेक गद्य और पद्य ग्रंथ उपस्थित थे परन्तु उनका श्रृंखलाबद्ध काव्यमय जीवन मेरे दृष्टिगोचर न होने से मैंने यह प्रयास किया है।' इन ग्रंथों की भाषा पिंगल होते हुए भी बीच-बीच में डिंगल के छंद देखने को मिलते हैं।

कवि की विशेषता इस बात में है कि उसने काव्य और इतिहास का एक मधुर सामंजस्य उपस्थित किया है। यत्र-तत्र किंवदंतियों का भी आश्रय लिया गया है। सभी रचनायें ओजस्वी एवं मार्मिक हैं। इनमें क्षत्रिय वीरों के प्राचीन एवं अर्वाचीन कुल-गौरव का परिचय मिलता है। यों तो समय-समय पर इन वीरों को लेकर अनेक गद्य-पद्यमय ग्रंथ लिखे गये हैं किन्तु जो मौलिकता, सरसता, सरलता, सामयिकता एवं ऐतिहासिकता इनमें देखने को मिलती है, इस काल के किसी दूसरे कवि में नहीं।

केसरीसिंह के वीर काव्य की प्रमुख विशेषता उसके स्फूर्तिदायक संवाद हैं। प्रश्नोत्तर रूप में चलने से कथानक में क्रमवद्धता का अभाव नहीं। उदाहरण के लिए प्रताप और मानसिंह, प्रताप और शक्तिसिंह तथा नणद और भावज के संवादों को ही लीजिए जिनमें उत्साह ही उत्साह भरा पड़ा है। नणद-भावज का वार्तालाप यहाँ दिया जाता है—

'रहणो जाणो राजरो, यो तो नैम संसार।
किणरी बाईजी ! कहो, रण बांकी तरवार।।

भाभी खळदळ भिड़ण री, या साधारण बात।
कर जूँहर शाका करण, योहिज घर विख्यात।।
क्यूँ इण री अंजश करो ? बड़ी बणावो बात।
बाईजी ! जूँहर बळी ? जेतो म्हारी जात।।
रावां अरु रंकाँ रहै, शाराँ रै घर नार।
मोड़ तणो नहिं महतविण, शोड़ तणो संचार।।
बिन माथे खग वाहणा, रण-गहला राठोड़।
बाईजी ! इण बंश री, जुड़े न दूजा जोड़।।
बंशां पैंतीसाँ सिरे, हूँ जाणूं राठोड़।
पिण भाभी ! शीशोदियां, जग उपरान्त मरोड़।।
बाईजी ! लीधा बिरद, शोजश कहै सुपात।
जग में अवर न जनमिया, राठोडां री रात।।
कुळवट वाळा धरमरा, जुध मतवाळा जाण।
रजवट वाळा धरमरा, रखवाळा महाराण।।'

राधवदान ने महाराव केसरीसिंह (सिरोही) एवं वजावतों के युद्ध पर यह गीत लिखा है। यह युद्ध भाडोली गाँव में हुआ था जिसमें राज्य-सेना की विजय हुई थी—

'फौज मुसाहब फबे, जबर साहेब नृप जामंत।
एक-एक से अधिक, जसा पृथीराज के सामंत।।
सोनो भड़ चहुआण, सरस लड़ीयो होए सूरो।
सांमो खागां चढ़े, प्रबल कोधो जुद्ध पूरो।।
डुंगर रामींग अरियां दलन, कंठीख जीम कोपिया।
रामींग दियो खगां रमे, एत्र हुआ एल ओपिया।।'

गुलाबसिंह के इस गीत में ठाकुर गोपालसिंह (खरवा) के रण-शौर्य को उत्कृष्ट व्यंजना हुई है—

'मरद घाट जुजराट लोह लाट वेढ़ी मणा, खलां समराय खग भाट खाधा।
आठ कम साठ चव साठ घूमे उठे, मेर गिर चाढ़ लोह लाट माधा।।
जांगियां ठोर सिंधू गवे जांगड़ा, लड़ण रण खांगड़ा वीर हलके।
भेर तग जठे पीआ अमल भांगडा, जो मरद रांगड़ा पणो भलके।।

छोह छक रातंक थटा छावतां, गुमर वगड़ावतां रूप गाढ़े।
घमोड़ा तड़ा अवरी घड़ा घावतां, चमू सगतावतां नूर चाढ़े॥
पटायत लाखरा ज्यूंही थहै वजेपुर, उदेपुर भाकरां गुमर आणे।
कंठीरल मघा थारे जसा ठाकरां, तौस खट साखरा मूंछ ताणे॥'

वीरसतसई की परम्परा में नाथूसिंह का योगदान कदापि नहीं भुलाया जा सकता। इनकी रचना के ७११ दोहों में वीर रस की विशद व्यंजना देखने को मिलती है। विषय एवं उपादान सीमित होने से कहीं-कहीं सूर्यमल्ल के सदृश भावाभिव्यक्ति भले ही देखने को मिल जाय किन्तु कवि की स्वतन्त्र सूझ-बूझ का अभाव नहीं है। विषय का प्रतिपादन अत्यन्त कलात्मक ढंग से हुआ है और वीरोचित कार्यों पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। भाव सरल हैं और वे हमारे हृदय को स्पर्श करते हैं। कवि की दृष्टि वीर-वीरांगना के सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यापार की ओर गई है और उनका चित्रोपम वर्णन किया गया है। युद्ध-सामग्री जैसे तलवार, भाला, अश्व, गज आदि का वर्णन भी ओजस्वी है। वीर बालकों एवं पुत्र-वधूओं के कार्यों को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। इस प्रकार मुक्तक होते हुए भी यह रचना मौलिक एवं आधुनिक भावों से गठित है। यथार्थ में वीर वह है जो—

'रण कर-कर रज-रज रँगै, रवि ढंकै रज हूंत।
रज जेती धर नहँ दियै, रज-रज ह्वै रजपूत॥
सुरग न चाहै सिर पड़ै, समर लड़ै रजपूत।
खग धारां प्रिय जेणनूं, अमृत धारां हूंत॥
भड़ रण चढियौ कट पड़ै, पण घर मुड़ै न पैर।
सूरज ऊगौ आथमै, पाछौ फिरै न फैर॥'

ऐसे वीर को रण कितना प्रिय है, यह वीर पत्नी के मुँह से सुनने को मिलता है—

'कट-कट वगतर अरि कटै, खग मोटी धव पांण।
केहर नख चाढै किसा, सुण हेली! खुरसांण॥
नणदल रोक्यौ वारणो, रुकिया राखी हद्द।
लाखां रोकै नहँ रुकै, खग वाहै वधवध्ध॥
सेजां थोड़ा हरखता, हेली! देख सभाव।
रण चढिया घण हरखवै, म्हां विच वाल्हा घाव॥

हेली ! लड़ हिक सांप हूं, किसन हुवा काळाह ।
पिव लाखां लड़िया हुवा, कंकू-रँग वाळाह ।।
मूंघी खागां मोलवै, हेली ! देख सुभाव ।
सूंघा बगतर नहँ लियै, घावां करै उपाव ।।
पिव अरियां दिस संचरै, अरिघर दिसा सिधाय ।
हेली ! रवि ऊगां पछै, उडगण केम दिखाय ।।
मद-छकिया नहँ घूमता, पिव पड़वै दिन हेक ।
घावां-छकिया घूमता, हेलो ! आवै देख ।।
खाग कलम कागद धरा, स्याही रगत बणाय ।
पिउ नित तेड़ै नवलखा, कंकू पत्र लिखाय ।।'

पुत्र तथा पुत्र-वधू की वीरता पर माता की यह गौरवानुभूति सर्वथा हृण्य है—

'जि हर ! तूठं दीजियै, मो मन मोटी चाय ।
वेटो रण-नरणौ हुवै, बहु सँग बळणी आय ।।'

साँवलदान ने युद्धवीर वल्लू चांपावत पर यह गीत लिखा है—

'बजर जेम खग झाट, चांपा कमँध वलूड़ा, नाथड़ा जेम खळ सीस लाव्या ।
पराजय देण नूं दिली रा पती ने, किलम्मां सेन मझ रूक काव्या ।।
सदा खटतीस आवध जड़ सनाहां, रूकड़ां रटक हूँ रह्यौ राजी ।
दलीपत खेच कप्पाट चव देसरा, मौड़ सिर वीर भाराथ माझी ।।
अमर रौ पाळना वैर गढ़ आगरै, कमंध चित अजक बिन कळह कीयां ।
पटायत वज्यौ नहँ नंद गोपाळ रौ, वाजियौ बँटायत विपत वीयां ।।
सार खळ श्रोण छक धकी उर साह रै, पराक्रम सत्रुवां जंग पल्लू ।
सूर अन छत्रियां दिवालय सुरग रै, वीर कुँभ पताका थयौ वल्लू ।।'

वीर काव्य परम्परा में पावूदान कृत 'जोरजी री झमाल' एक उल्लेखनीय कृति है । खाटू निवासी जोरजी चांपावत महाराजा जसवंतसिंह के समय का एक वीर योद्धा था । इसका खैरवा एवं वांता के जागीरदारों से युद्ध हुआ था जिसका वर्णन कवि ने अपनी रचना में किया है । एक उदाहरण देखिये—

'विकट कपाटों जड़े भुरजवारा वूंदीया, नड़े शकटों अगे आप भीड़ो ।
जगत जेठी सहड़ जोर रे जावते, विकट रणझालता हुआ वीडो ।।

झळहळे वींजको चहुँ दिश झलांणी, बंदूकों घलोंणी तीर बारों ।
तिकापुळ देखने जोर आवध तजे, लजे खाट्ट गिरंद ताप लारों ।।'

इसी प्रकार 'प्रतापसिंह री झमाळ' में कवि ने सन् १६१४ ई० के विश्व-युद्ध में प्रतापसिंह की अद्भुत वीरता का वर्णन किया है ।

किसी चौहान राजपूत सरदार के लिए युद्ध में मारे जाने पर सलजी रतनू के विषय में डालूराम कवि ने लिखा है—

'राड़ँ दीसतो कराळौ सदा दोयणां घात रौ घल्लौ, वेढाक अचाळौ तेग पाथ रौ बजाव ।
भैरूंदास दूजौ सदा सुणन्ता हाथ रौ भल्लौ, जको केम मूचै 'सल्लौ' नाथ रो सुजाव ।।
आ सेर घेरियौ घड़ा दोयणां धरा रै आंटै, कवेस करारै कांटै खिझायौ कंठीर ।
माधाहरा केक मालाहरा र चढावै मूंढै, वाढे तेगां सरां रै हटाया महावीर ।।'

विजयदान बोगसा के स्फुट दोहों में वीर रस की निराली छटा पाई जाती है । यथा—

'बादळियां जद बरससी, नीपजसी जद नाज ।
वीरां खागां बाजसी, रहसी जिण दिन राज ।।
वसुधा वीरांरी वधू, जिकान ऊभां जाय ।
किण मांगी दीधी कहो, खाग तणै बळ खाय ।।
मांस धपाया ग्रीधड़ां, जोगण रगतां पत्र ।
खाग धपाया खूनियां, (जद) शीश धराणा छत्र ।।
खगवाळो कर कट गयो, सिर कटियो जिण साथ ।
खाग संभावे खेत में, लड़वावा में हाथ ।।
रुधर धार धावां बहै, रंगिया भड़ां दकूल ।
जाणक रुत्त बसंत में फूल्यो तरु केसूल ।।
झड़तां देखे खाग झड़ भाखै मुख चन्द्रभाळ ।
सिर तो दो भड़ सावतो हुं करस्यूं रुंडमाळ ।।
धारण मुंडमाळा गळे सावत मिळै न सीस ।
हड़-हड़ कर तीनू हंसे, गंगा सरप गिरीस ।।
सिर तूटो कर कट्टियो धुकै हुतासण धूत ।
प्राण जिते धड़ नह पडै रण घूमै रजपूत ।।
घुरै त्रंम्वाला वीर रस मांड़े पग मजबूत ।
पग-पग पर लोथा पड़े रूठै जद रजपूत ।।

साथी कट जावै सरब एकळ रहै अभूत।
घावां छक घूमे घड़ा रोके खळ रजपूत।।'

४. **भक्ति काव्य**— इस काल के अधिकांश भक्त कवि फुटकर हैं जिन्होंने राम, कृष्ण, इन्द्र, रामदेव आदि देवी-देवताओं को आलम्बन बनाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। शिव एवं शक्ति काव्य के रचयिता इस काल में भी हुए हैं। नीति एवं उपदेशात्मक उक्तियाँ तो अनेक कवियों ने कहीं हैं जो उनकी धर्म-परायणता की सूचना देती है। इस प्रकार आलोच्य काल का भक्ति-काव्य पूर्व परम्परा का ही एक विकसित रूप है। यह सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध होता है।

राम-कृष्ण आदि देवताओं के चरणों में काव्य-पुष्प चढ़ाने वाले कवियों में सम्मान बाई, भीखदान, ऊमरदान, राघवदान, जुगतीदान सांदू, पनजी गाडण, सादूळदान, हमीरदान, अमरसिंह देपावत, माधवदान उज्वल, हरदान गाडण, गणेशदान रतनू एवं रामदान बारहठ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सम्मान बाई कृत 'कृष्ण-बाल-लीला', 'सोळे' (वैवाहिक गीत) एवं 'भक्त चरित्र' भक्ति की उत्कृष्ट रचनायें हैं। 'कृष्ण-बाल लीला' में कृष्ण की बाल-लीला संबंधी पद (गायन) हैं। ये पद भिन्न-भिन्न रागों में हैं जिनकी गणना करना कठिन है। हिन्दी संत-कवियों की प्रायः सभी विशेषतायें इनमें पाई जाती हैं। बाल-लीला का तो बड़ा ही अनूठा वर्णन किया गया है। 'सोळे' में विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत हैं। इनकी सँख्या भी सैकड़ों है। इनमें राजस्थानी संस्कृति का सच्चा चित्रण हुआ है। राजस्थान में विवाहोपरांत वर-वधू के हाथ-पैरों में बँधे डोरे परस्पर उनसे ही छुड़वाये जाते हैं। इन डोरों सम्बंधी गीतों में राम-सीता का यह गायन कितना अनूठा है?—

'मिथिलापुर री कांमणी रेसम गांठ घुळाय।
जद चतुराई जांणस्यां खोलो की रघुराय।। कुंवरी रो डोरो री।।
मिथिलापुर री कांमणी फिर-फिर बोल सुणाय।
कांकण नहीं खूटसी नहीं धनुष रघुराय।। छिनक में तोड़ो री।।
रूप देख आणंद भयो तरक करत श्री बांम।
कर में कर सोहै नहीं तुम हो तन के स्याम।। सिया तन डोरो री।।
हम ही बतावें लाडलै खोलन एक ऊपाय।
कांकण जद ही खूटसी, दांन करो थांरी माय।। पिता कर न्हौरो री।।

कौसिक सुख (मख) पूरण में मारें असुर अनेक ।
धनुख तोड़ सीता वरी रखी रजक री टेक ।। मयौ अब मोड़ौ री ।।
दीन 'समनी' की विनती दसरथ राजकुमार ।
भगति दान मोहि दीजियो देत असीस अपार ।।'

'भक्ति चरित्र' में सवैये हैं । प्रत्येक भक्त-चरित्र की घटना के अन्त में एक सवैया ऐसा रचा गया है जो भौतिक शरीर पर घटित होता है । स्फुट पद-रचना का यह एक उदाहरण देखिये जिसमें भगवान का आह्वान कर कवयित्री ने अपने पति की प्राण-रक्षा हेतु प्रार्थना की है—

'अब हरि ! आवोजी भीड़ पड़ी !
भीड़ पड़ी राणी रुकमणी में जिण प्रभु आप बरी ।
भीड़ पड़ी द्रोपद तनया में साड़ी अनन्त करी ।।
भीड़ पड़ी प्रहलाद भगत पै खंभ में देह धरी ।
भीड़ पड़ी जद सब पंडवन में रण में विजय करी ।।
कहत 'सम्मान' सुणोजी निरंजण दुखिया पुकार करी ।
भीड़ पड़ी हरि ! मो में अब जब है क्यूं देर करी ।।'

भीखदान को नश्वर जीवन में एक मात्र ईश्वर का ही भरोसा है अतः वह उसके नाम-जप पर विशेष बल देता है—

'आँखड़ियाँ छती मती हो आंधो, गोविन्द भज रै गैला ।
दीनानाथ पूछसी जिण दिन, कासूँ जाब करैला ।।
पहले नह भजियो परमेसर, पछै घणो पछतासी ।
कदेक काळ अचानक कपटी, होळावा ज्यूं आसी ।।
लेखो रती-रती रो लेसी, खाँवँद जको खरी को ।
लाठी लियाँ बहै छै लारै, शात्रव काळ सरीखो ।।
साँस उसांस राम नै सिंवरो, समझे ऊँडो सोचो ।
करताँ जतन जावसी काया, भीखा किसो भरोसो ।।'

'ईश्वर स्तुति', 'ईश्वरोपासना', 'भजन की महिमा', 'चेतावनी', विलाप-बावनी', 'संता री महिमा', 'वैराग्य वचन' एवं 'धर्म्म कसौटी' रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि ऊमरदान एक उच्चकोटि के भक्त थे । इनमें भक्ति, ज्ञान एवं सदाचार के तत्त्व छिपे पड़े हैं । कवि इस निखिल सृष्टि में जिधर देखता

है उधर एक उसी विराट् स्वरूप की छाया दिखाई देती है—

'तुं हीं माता ताता बहिन निज भ्राता भल तुं हीं ।
तुं हीं दाता खाता अवल अनदाता बल तुं हीं ।।'

ईश्वरोपासना में नाम-जप का विशिष्ट स्थान है। भक्त के लिए भगवान का भजन ही सर्वस्व है—

'अय ओमकार, अक्षर उचार। निस दिवस नाम रट राम-राम।
है सुलभ द्वीप, श्रद्धा समीप। रुचि ह्वे सु राख, दुहुँ दिव्य दाख।
मम इष्ट मिष्ट, आदर अनिष्ट। महिमा मनोग्य, जप जपन जोग्य।।'

मनुष्य की सारी आयु विषय-वासनाओं में व्यर्थ नष्ट होते देखकर कवि ने उसे चेतावनी दी है– 'समज मन आयू बीत गई सारी, तें करी न भली तिहारी।' शुद्ध ज्ञान के विना यह कठिनाई दूर नहीं हो सकती। इसके लिए संत-पुरुषों के प्रवचन अत्यंत कल्याणकारी होते हैं अतः उनका सत्संग अनिवार्य है। धर्म की कसौटी तैयार करते हुए कवि ने ऊँच-नीच के भेद-भाव को मिटाकर सच्चे मन से ईश्वरीय भजन करने का उपदेश दिया है—

'ऊंच नींच अन्तर नंहि एको राम भजे सोइ रूड़ो,
परमेश्वर ने नहीं पिछाणें चार वरण में चूड़ो।
आतम अन्तर सार अहर निस तार निरन्तर तोफा,
पांणी पाहण में परमातम बाहर ढूंढत बोफा।
जोग जुगत जगदीश्वर जपणा अपणां जन्म उबारे,
ऊमरदान अनूपम आशय विरला बात विचारे।।'

अध्यात्मवाद के ऊँचे धरातल पर खड़े होकर जब कवि का दृष्टि रईसों की घुड़-दौड़ पर पड़ती है तब वह उस पर चुटीला व्यंग्य करने लग जाता है— 'मूढ़ मन क्यूं घुड़ दौड़ मचावे, खाली गोता खावे।' इसी प्रकार राज्य-दरबारों में शतरंज के खेल को देखकर कवि ने जिस रूपक की सृष्टि की है, वह सर्वथा दृष्टव्य है। एक ओर लाल सेना तथा दूसरी ओर पीली सेना डटी हुई है। लाल सेना में जीव स्वयं एक राजा, वैराग्य एक वजीर, ज्ञान व विचार दो ऊँट, उद्यम व पुरुषार्थ दो घोड़ा, शील व संतोष दो हाथी और अशुभ कर्म आठ पैदल हैं। दोनों ओर भीषण सँग्राम छिड़ा हुआ है किन्तु क्या युक्ति के विना यह जीवन की शतरंज जीती जा सकती है?—

'जुगत बिन सतरंज जीत न जानी । आतम मूढ अज्ञानी ।। टेर ।।
चोसट खण रो घर रचवायो, तामें सेन सजानी ।
पेदळ, घोड़ा, ऊंट, अनेकफ, मंड्यो जुद्ध मेदांनी ।।
उततें फौज अरी की आई, इततें अपनी आनी ।
कोपे सूर दोऊ जय कारन, भिरे महा अभिमानी ।।
मन मुसकाय खेत के माहीं, बोल्यो मोटी बानी ।
चंगी चाल चाहकर चूक्यो, गढ़ नँहँ सज्यो गुमानी ।।
लागी फेट किस्त की लखिये, हुई इते बड हानी ।
तीखे पग को एक तोरड़ो, कियो प्रथम कुरबांनी ।।
दूजो ऊंट मर्‌यो विन दारू, जुगल अश्व कट जानी ।
उडती किस्त लगी इक अबकी, धूर करी रजधानी ।।
उजीर को एरे कर आतर, कातर टाट कुटानी ।
वीती बात पर्‌यो अरि बस में, पीछे लगे पछतानी ।।
ऊमरदांन विवेक बिना बधु, पेदल खूब पिटानी ।
बुरद भई न भई चोमोरे, प्याद मात भई प्रानी ।।'

कवि राघवदान कहते हैं कि हे माधव ! किसी पति के जीते जी उसकी पत्नी का हरण न करना । तुम्हें वे दिन खूब याद होंगे जब सीता-हरण के अवसर पर तुम बिलख-बिलख कर रोये थे—

'कंथा पहली कांमणी, माधव मत मोरह ।
रावण सीता ले गयो, वे दिन चोता रह ।।'

जुगतीदान सांदू का भक्त-हृदय राम-कृष्ण का भेद-भाव मिटाकर प्रभु-चिन्तन में दत्तचित्त है । 'नाम माळा' एवं 'करुणा इकीसी' से इस कथन की पुष्टि होती है । 'करुणा इकीसी' का यह उदाहरण देखिये—

'प्रीत रखूं सोई आंतरो पावत, भ्रात को नेह दिखावत नूरी ।
सेंण हूता सोई होयगा दूसरा, भेळप नाम रही जूं वंधुरी ।।
जेंण में फेर अनाज न नीपजै, पेट की दाहना लागत पूरी ।
राम कृपाल रखो कर रावळो, हूं सरणागत तूझ हजूरी ।।
बेर ही बेर पुकार सुणावत, सांवरा दास की खास सुणीजै ।
मो निरधार निरास अनाथ की, क्रस्ण सदा सुम स्याय करीजै ।।

देर कियां ईण वेर दुखी अत, छिन ही छिन में घट भीतर छीजें।
पार उतार जदुपत पांमर, राख लजा कदमा रख लीजें।।'

कवि ने हरजस (पद) भी लिखे हैं जिनमें राम के चरणों में चित्त लगाकर आवागमन के चक्र से मुक्त होने का उपदेश दिया गया है—

'मनारे रांम चरण चित लाय जिण सूं आवागमण मिट जाय।।
मात पिता वंधव सुत धरनी, सब स्वारथ रा सीर।
धरमराज रा दूत ग्रहेला, कोई न आसी भीर।।
मोह ममता में छक मत रहियौ कोई न चाले साथ।
नाम लियौ सोई संग चलेला जीव अकेला जात।।
कठण पंथ को चलणौ हे पंछी, फेर ऊभांणै पाव।
जमरी मार उबारण हांरौ, सायब नाव उपाव।।
हाथ दियौ सोई खावन देसी तन ओढन पन पाव।
जुगत भणै सुण नाथ अजोनी चरण सरण रख पाव।।'

पनजी गाडण ने 'सौ सीख' नामक गीत में इसी भाव को यों प्रतिपादित किया है—

'मोटी सीख कहूँ भल मानो, काम क्रोध मद लोभ निकास।
राम नाम निस दीह रटीजै, पनां जेम छूटै जम पास।।'

सादूळदान महडू को एक भगवान का ही आसरा है—

'निराकार दा नाम संवारदा सांझ मंझयान दा मांझ ही बक्कना है।
इय फैल फिजूर सै छोड परा दीदार दा दोसत दक्कना है।।
किरतार दा चित्त उचार दा क्या तबियत्त नबी निज तक्कना है।
सादूळ सरासर मान सही, यक रब्बदा आसरा रक्खना है।।'

कौन कह सकता है कि वर्षा होगी या नहीं? यह एक ईश्वरीय रहस्य है। इसके विना मनुष्य को अन्न-जल नहीं मिलता और जीवन-जीवन नहीं रहता। कवि ने इस महत्त्व को समझा है। हमीरदान ने इन्द्र का आह्वान करते हुए यह मंगलकामना की है—

'घणा वणावौ वादळां रूप चौवड़ी रचावों घटा।
छलावौ तळावां, नदी हलावौ अछेह।।

पलावौ पवंन हमै प्रघळा करावौ पाणी।
महाराज इन्द्र आवौ बरस्सावौ मेह।।
बिराजै अंबरां गाज सेहरां वळक्के बीजां।
खळक्के ताल रा सीस पालरां रा खाळ।।
अन्नचरां जळच्चरां थलच्चरां थारी आस।
सुरांपती कीजै धरा ऊपरै सुगाल।।'

माधवदान उज्वल रामदेव के दर्शन से गद्गद् हुए हैं और इस भक्ति-भावना का प्रदर्शन उन्होंने 'रामदेवजी रा कवित छपै' में किया है, यथा—

'पिंड लगा सह पाप, दूर ह्वै कीनां दरसण।
चिंता रहे न चित्त, पाव जिन कीना परसण।।
व्यापै कदे न व्याधि, बाध नह ह्वे जग बंधण।
समरन कियो सदेव, ग्रहे नह देह रु गंधन।।
कलिकाल विघ्न व्यापे न कछु, साचो सतगुरु सेव रै।
रामेण कवर अजमाळ रै, दरसण कीनां देव रै।।'

हरदान गाडण का 'अरज बहोत्तरी' भक्ति की सुन्दर रचना है जिसमें परम तत्त्व को नाना प्रकार से समझाया गया है, यथा—

'धिन तोने मोटा धणी, खोटा दुसरां खाय।
भगतां तोरा भांजणा, रख नित ओटा राय।।
भांण धड़ै चवदै भुवन, पल-पल में परचंड।
हुवै मिटै सब हंस ही, सामंद रहो अखंड।।
जांणे कुण जगदीस वर, राज तणी तत राव।
जद परळी होवै हरी, मेरु कठै समाव।।
चार असी नै चूणही, पूरी आप अमाप।
जो देवौ करणी मुजब, सुख घण वहै संताप।।
वसै सरब जीवां विचै, न्यारो वसै निराट।
हद वेहद मांही हरी, घूम रयो सब घाट।।
वांणी थाकी वेद, कर-कर जस थाका किता।
भगवत थारो भेद, सो कुण पावै सांवरा।।'

स्व० गणेशदान रतनू सुपुत्र देवीदानजी, चौपासनी (सन् १८६१-१९५०

ई०) ने राम-नाम पर विशेष वल दिया है—

'राम तणो ले नाम आच किनी नही आवे।
जम री जाट जरूर जका सारी टल जावे॥
दुख दुर होय जाय जवर अग चीत में जारे।
इदक सुख उपजे, वसे वैकीट वीजा रे॥
ओ नाम भगतो तणी, आवागमन मीटावणो।
कर मोड़ जीव गणपत कहे एक दीवस उड़ जावणो॥'

रामदान वारहठ ने जगदम्वा, राम, कृष्ण, शिव, गणेश, पवन-सुत आदि अनेक देवी-देवताओं पर भक्ति की अनूठी रचनायें लिखी हैं। अपने समय की मँहगाई और गरीवी से संत्रस्त होकर कवि ने आधुनिक ढंग से इसके निवारण हेतु प्रभु से प्रार्थना की है—

'मिटसी कद महाराज, गरीवी-गरीव निवाज॥ टेर॥
मजदूरी हम दिन भर करते, मिले न सेर भर नाज।
तन ढकने को वस्त्र नहीं पावें ऐसो साज समाज॥ मिटसी॥
कोई चीज हम लेही नहीं सकते, मँहगे नाज के काज।
फेमिन वर्क खुले जव तव ही, तो धींगे आडे पाज॥ मिटसी॥
गऊएँ अति ही भूखें मरत हैं, मिलत नहीं तृण नाज।
दूध घृत तो देखे हमको, वीस साल हुए आज॥
राज समाज सव ही एक सो सुधरे न मोरल समाज।
रामदान कहै प्रभू नाज उपजावो, तो जावें गरीवी भाज॥ मिटसी॥

सव प्रभु का रहस्य है इसीलिए काव्य में रहस्यवाद है। विधि के अक्षर कोई नहीं पढ़ सकता। नियति अपनी डोर से विवश मनुष्य को कठपुतली की तरह नाच नचाया करती है। वह वाजीगर है, हम वंदर-वंदरिया। इस रहस्य को देशनोक के स्व० कवि-रत्न श्री अमरसिंह देपावत ने खूव समझा हैं। उनके 'शैणी वीजानन्द' खण्डकाव्य का यह अंश देखिये—

'नाच वंदरिया नाच, नचावे ज्यूं वाजीगर नाच।
देख-देख करदे अणदेखी, दिल दूनियां री दूरी॥
तन नहीं नाचे नाच रही है, आ मन री मजवूरी।
नर वांदर रो भेद न कर तूं समझ जगत रो सांच॥

नाच नाचणो और नचाणों, भेद न इण में भारी।
आ थारी मजबूरी है तो, वा उण री लाचारी।।
डाल पात ने देख न, पगली जड़ ने देखरू जांच।
जड़, जंगम, चळ, अचळ सबाँरी आ बस एक कहाणी।।
कठपुतळी जों नाच रह्या है, परबस जग रा प्राणी।
देख्या कुण पगली, दुनियां में विधि रा आखर बांच।।
नाचे निरबळ, सबळ नचावै, दुनिया में आ देखी।
एक-एक सू सबळ, अबळ है, पण म्हैं परतख पैखी।।
दिल मोटो दरपण दुनिया रो समझ सके तो सांच।
बंदरिया नाच, बंदरिया नाच, नचावै ज्यूं बाजीगर नाच।।'

शिव एवं शक्ति की उपासना करने वाले कवियों में शंकरदान सामौर, हिंगुलाजदान, गिरधारीदान गाडण, पाबूदान आसिया, उदयराज उज्वल, जुगतीदान सांदू, बलवंतसिंह, वखतराम, मुकनदान खिडिया, मुरारिदान कविया, यशकरण खिडिया, हरदान गाडण, धनेसिंह एवं बद्रीदान गाडण के नाम नहीं भुलाये जा सकते। शंकरदान रचित 'शक्ति सुजस', साकेत शतक' एवं 'भैरवाष्टक' भक्ति के उत्तम ग्रंथ हैं। 'शक्ति सुजस' में भगवती के विभिन्न स्वरूपों का डिंगल गीतों में भव्य चित्रण है। कई गीत चारण कुलोत्पन्न देवियों हिंगुलाज, आवड़, राजबाई, अन्नपूर्णा, करणी आदि के हैं जो बड़े ही सबल बन पड़े हैं। 'साकेत शतक' में उर्मिला के त्याग के महत्व पर राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त से भी पूर्व विशेष बल दिया गया है। कवि यहाँ तक कह देता है—

'तुलसी धिन-धिन तोय, रची सकल मानस रमण।
महा अंचभो मोय, उर्मिल त्याग न ओळख्यो।।'

'भैरवाष्टक' में भैरव की डिंगल गीतों में वन्दना की गई है। उदाहरण के लिये यहाँ 'शक्ति सुजस' का यह गीतांश दिया जाता है—

'लीधां खगेस ननेस हंसू गजूं वाज म्रग लीधां, मूसो मोर लीधां सुकूं पेवूं स्वांन मंक।
पालखी विवाण रत्थ चित्तु मित्रूं सूर चहूं, वाहण मेंकूं अठारों ले चलै चण्डी वैक।।
सातधंके तमे लीळंग, दंती हय सारंगी साथ, ऊंदर केकी तोता चात्रज भूसै सीसा ओल।
सुव्वे वोम चल्ले धूरे मत्रु मंजर वराह सिंध, हाकलै नो दूण हेकां भवानी हारौल।।
कासपी भ्रकेस चक्रंग गहीर तुरंग कुरंग, कावा कुंभ कीर वल्वे लाहोरी काळेस।
डंडो सुरंग ह्यण्डो पैंडें दिल्लुं विरलूं सूकर डंकी, दसे नो दाकले मुखां ईस्री दनेस।।

तारक्ख सांडेस मुराल नाग हय वाता तेज, ओ मंखी कळापी चंची बूंदि खरू ओह ।
का-डोळी प्रेषती खोळी लहरी लिक्का क्रोड कंठी, उभय दूण नोखटां बकारै देवि ओह ।।'

हिंगुलाजदान ने करणी माता के विषय में यह गीत लिखा है—

'करना दे कई बार, मन मांही कीधो मतो ।
हुकुम बिना हिक बार, देशांणो दीठो नहीं ।।
जिण दिन ओयण जाय, श्रवणे बाजा साम्हलूं ।
सो दिन धिन सुरराय, मह ऊगो मेहाशं दू ।।
दिन पलटै पलंटे दुनी, पलटै सोह परवार ।
मेहाई पलटो मती, वाई थे उण बार ।।'

गिरधारीदान ने जैसलमेर भाटियों की कुल-देवी सांगीयोजी के सवैये बना कर अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित की है । एक उदाहरण देखिये—

'आद जुगाद दुर्गा तूं आपं तु गवरी हिगलाज कहाई ।
तुं करनी देसोण धरातप बेचर तु तम राजल बाई ।।
सेणल तुं जुडिये पर सोवत मात तु आवड़ मोमड़ियाई ।
मेपत ज्वार मनो सुख मांगीयो सांगीयों जैस समेर सहाई ।।
चालक नेचीय देवल चामण्डवाडी गोताबर इंदो वदाई ।
पात कितों दुख दालद पालण राजत मालण तुज बीराई ।।
वाँकल तुं संचाय वीरोवड ओर बोलाड़े तापत आई ।
में पल ज्वार मनो सुख मांगीयो सांगीयो जैसलमेर सहाई ।।'

पाबूदान ने 'करनल सुयस प्रकास' में करणी माता का स्तवन किया है । कहते हैं, कवि ने करणीजी से प्रार्थना की कि यदि मुझे पुत्र मिल जाय तो उसका नाम करणीदान रखूँगा और एक ग्रंथ की रचना करूँगा । कवि का मनोरथ सिद्ध हुआ (१९०८ ई०) और उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई । इस देवी को लक्ष्य करके आलोच्य काल के अधिकांश कवियों ने पद रचना की है । स्थान के अभाव से यहाँ कतिपय चुने हुए कवियों के उद्धरण ही दिये जा सकेंगे । उदयराज उज्वल ने माँ करणी का माहात्म्य इन सोरठों में गाया है—

'हरणी विपद हमेश, भरणी संपत भांणवां ।
करणी मेट कळेश, तरणी लोकां तीन री ।।

धाबळियाळी धाय, अरज करूं छूं आपने ।
आय सके तो आय, वरणे जठा लग बीसहथ ।।
अंबा कर-कर याद, जीबड़िया छाला जस्या ।
सेवग रौ सुग साद, आई क्यूं नीं ईसरी ।।
पूजी नह पारवांण, देवी जांण पूजी दुरस ।
अब तो छै तो आंण, जेज न कीजै जोगणी ।।'

मुरारिदान कविया ने माँ करणी की आराधना में यह गीत लिखा है—

'कूक जन अवर किण सामनै करै तो, ध्यान कुण धरैलो और धरणी ।
हरैलो आप बिण कूण दुख हे ववा, कर्यो नँह सरैलो विळम्ब करणी ।।
निहारे दुश्मणाँ करण बळ नाशरो, दुरावण आसरो अन्नदाता ।
आपरो मैं लियो जब अति आसरो, मेटजे दासरो कळेस माता ।।
सेवगाँ सगापण सिवा सुख साजरी, जगत सब रावरी बात जाणै ।
कथै कवि 'मुरारो' करण सिध काजरी, आजरी वखत मत जेज आणै ।।'

हरदान गाडण की स्तुति इस प्रकार है—

'देवी दढ़ाळी कोप काळी खळां जाळी तूं खरी ।
अमा उताळी तीज ताळी ह्वै दयाळी तूं हरी ।।
विघनां वढ़ाळी गजब गाळी है सिगाळी तूं हरै ।
मालण विराई महंमाई सुरराई तूं सिरै ।।
हरदांन बेलो सुणे हेलो पांण झेलो आप ही ।
जगतंब मीजे महर कीजे स्यांय रीजे तूं सही ।।
वसु दीप साता वधी वाता ध्यांन माता को धरै ।।' मालण....

धनेसिंह के इस गीत का भाव भी यही है—

'सदाई अरज सुरराय मो सांभलो, कृपा कर अंबका उछब कीजे ।
सगत दिन रात हूं भजूं तोय भाव सूं, दुखिया पुतर रो दान दीजे ।।
विनती कृपा हर करे करे नित भवानी जगत त्रइ लोक में जोत जानी ।
इस्ट सुभ आपरो थेट लग आद सूं, बदाइ बंसरी वाक बानी ।।
अराधि माल री भदोरे आज दिन, सिवरिया रेणवां काज सारे ।
दिखावौ मनैं दरसाव नित दया कर, मात बड़ आसरो सदा मारे ।।

इळा रिव जिते अकड तूं ईसरी, मात तोय सिंवरियां रिजक पावे।
अमर सुत धना ने समापो ईसरी, ग्यांन सूं चहुं चख सुजस गावे ॥'

और बद्रीदान गाडण ने जगदम्बा माता की महिमा में लिखा है—

'भेद न पूत कपूतां भाखै, राखै निस वासर रखवाळ।
मूरख सुत तोसूं मुख मोड़ै, खिण भर तूं छोडै न खयाल ॥
चित में हूं नित की न चितारूं, धारूं नंह विध सूं कुछ ध्यान।
सांचो करम कदे बित सारू, नंह कारूं इसडो अज्ञान ॥
तो भी भीड पड्यां जगतम्बा, अम्बा तनै करूं जद याद।
गजरी बेर हरी ज्यों भागै, माता नंह त्यागै मरजाद ॥'

नीति एवं उपदेशात्मक काव्य रचयिताओं में सर्वश्री गणेशपुरी, रिडमलदान, हरसूर, बक्सीराम, ऊमरदान, सुजानसिंह, सौभाग्यवती (प्रभाबाई), वेळुदान लालस प्रभृति कवियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गणेशपुरी कृत ये दोहे अनुभवपूर्ण हैं—

'नर जिण सर ग़ालिब नहीं, दुसमण रा सो दाव।
बिन पढियां ही "बांकला", बेपढ़ियां रा राव ॥
जवर विरोधी अगन, जळ, ले निज काज लुहार।
जेम विरोधी मन्त्रियां, सुपह काज ले सार ॥
कतरण, सीवण, केबटण, ले चित दरजी दौर।
रजधानी तम्बू रचै, वह नर नायक और ॥
ज्यौं भ्रत अपने आन की, रखे परस्पर टेक।
त्यौं सितार के मेळ ज्यौं, प्रभु हित मैं है एक ॥'

कविवर रिडमलदान सांदू ने प्रसिद्ध डॉक्टर शिवदत्तजी उज्वल के सेवक श्री आईदान को सम्बोधित कर कतिपय नीति विषयक दोहों की सृष्टि की है, यथा—

'टळसी विघन तमाम, मन वचन कारज सुफल।
लीजे पहली नाम, एक रदन रो आदिया ॥
मनो अणावे मोद, विध-विध चारण वरण ने।
उजळियो री ओध, आछी सवसूं आदिया ॥'

हरसूर ने कलयुगी मनुष्य को लक्ष्य करके यह गीत लिखा है—

'कुळजुग रा मिनख दिये दुख काया, माया संघ लगावै मोह ।
चित पर रहै वादळां छाया, जाया आव घटै इम जोह ।।
साचो कांम करै दिन सारौं, खावै कूड़ न पौढ़े खाट ।
अनड़ां पणंग पड़ै धर आयां, वेळा इती चालणौ वाट ।।
खावौ माल भलौ जस खाटो, द्रिग पाछौ मत बांधो देख ।
घोड़ सराड़ आव रौ घाटौ, लिखिया इता विधाता लेख ।।
कव हरसूर कहै विप काचौ, साचो नांम धणी रौ सोय ।
मांनव पलम समझ रे मूरख, तवा न मिळणी पाछो तोय ।।'

जीवन की नश्वरता को देखते हुए बक्सीराम ईश-भजन का उपदेश देते हैं—

'थावी केतली नर ऊमर थारी, भाखै-मुख असहा मुख भारी ।
वचस्यो नहीं आवियाँ वारी, गावो रै गावो गिरधारी ।।
बांटो वित्त आपणै वारै, लाछ नहीं हालैली लारै ।
थिर अै दिन रहसी नह थारै, तूँ नर ईशर क्यों न चितारै ।।
यूँ तर-तर पड़ता दिन आसी, जौहा कर पद चख थक जासी ।
पाकड़ जम घातेला पासी, पापी इण दिन नै पिछतासी ।।
बपु माया नै जाण विराणी, पांव न धर खोटी दिस प्राणी ।
रघुवर साचो दास रसाणी, बोल बगसिया अमृतवाणी ।।'

ऊमरदान मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं—

'बींछू बानर ब्याल विष, गंडक गर्दभ गोल ।
अै अलगाहिज राखणो, ओ उपदेस अमोल ।।
धन्धो करणो धर्म सूं, लोकां लेणों लाव ।
पइसो आवे प्रेम सूं, दबके देणों दाब ।।'

सुजानसिंह रचित 'सुजान शतक' नीति के दोहे-सोरठों का अच्छा सँग्रह है जो साक्षी रूप में भी व्यवहृत होता है—

'निर्मल चित्त हरिनाम, परभातै लीजे प्रथम ।
कीजे ग्रहचो काम, नेम धरम असनान नित ।।
सूतो जहां समाज, कलम संभाळो तहां कवि ।
कर पर सेवा काज, रखो लाज निज देश री ।।

बीज न इयां बडोह, खड़ो विरच्छ करदे खटक ।
बीज इयांह बडोह, नवा बीज निपजाय दे ।।
दोय लडन्ता देख, जोड़ न मोटा री जुवो ।
पथ सत पुरषां पेख, राड़ मिटा राजी करो ।।'

सौभाग्यवती (प्रभाबाई) का नीति विषयक यह सोरठा देखिये—

'औरां री औलाद, कर अपणी राखे कने ।
आवै न पीहर याद, माता सम सासू मिले ।।'

वेळुदान लाळस ने इस काया को कच्चे घड़े से उपमित किया है—

'एक समै जम आवसी, लेसी जीवण लूट ।
काया काचै कुंभ ज्यूं, फटकै जासी फूट ।।'

५. शृंगारिक काव्य— इस काल में आकर शृंगार रस की धारा विकास की ओर उन्मुख हुई और उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की रचनायें होने लगीं। सूर्यमल्ल, शिवबख्श, ऊमरदान, फतहकरण, किशोरसिंह, अमरसिंह देपावत प्रभृति कवियों के मुक्तक काव्य में यह प्रवृति पाई जाती है। सूर्यमल्ल ने करुण घटनाओं को सँजोकर वियोग का मार्मिक चित्रण किया है। नायक की युद्धवीरता में शृंगार का पुट देना उनके जैसे पहुँचे हुए कवियों का ही काम था। एक युद्ध के बाद ज्योंही प्रियतम के घाव भरने को आते त्योंही दूसरा युद्ध छिड़ जाता। इस प्रकार योद्धा के स्वस्थ होने पर नायिका यौवन का उपभोग करने के लिए अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करती ही रही। जीवन बीत चला पर वह अवसर नहीं आया—

'किण दिन देखूं बाटड़ी, आतां पड़वै तूझ ।
घाव भरंतां आवगो, बीत्यो जोबन मूझ ।।'

राजपूतों में विवाह के अवसर पर नैहर में ही एक दिन सुहाग रात मनाने की प्रथा है। नायिका को केवल यही नसीब हो सकी। घर आने पर तो बराबर दुगुना दुहाग ही प्रतीत हुआ क्योंकि पति सदा रण-निरत रहता—

'हेली पीहर देखियौ, एकण रात सुहाग ।
घर आयाँ धण जाणियौ, दूणा दूण दुहाग ।।'

वियोग-वर्णन में शिवबख्श सिद्धहस्त हैं। रीति काल के अंतिम चरण के कवि होने से प्राचीन काव्य-प्रथा से बच नहीं पाये। उन्होंने अन्य कवियों के

सदृश षड्ऋतु, नायिका-भेद, अलंकार-शास्त्र, छंद-शास्त्र आदि विषयों को साधन न मानकर साध्य माना है। इन पर लिखे बिना जैसे कोई कवि होने का अधिकारी नहीं। सावन के महीने में वियोगनी नायिका पर बादल विरह का दल लेकर धावा बोलने आया है—

'वादळ नहि दळ बिरह रा, आया मिलि अप्रमांण।
सोर सिखंड्या नहि सखी, जोर नकीबां जांण॥
जोर नकीबां जांण, घोर घंणरी नहीं।
ठई त्रमागळ ठोर, मदन जीपण मही॥
संपा नहि समसेर, कढ़ी नृप कांमरी।
अबकी जीवण आस, बियोगण बांमरी॥'

घटाओं के उमड़ आने पर सारा संसार, चर-अचर, सभी खेल रहे हैं। अभागिन है तो अकेली वह—

'घूंमी घंण हर री घटा, बिरछां लूंभी बेल।
नरां बिलूंभी नारियाँ, खरो हजूमीं खेल॥
खरो हजूमीं खेल, केल थिर चर करै।
पाज सरोवर पेल, भली छबि सूं भरै॥
मिली धरा मधघवांण सरित संमदां चली।
अली रही मैं आज, अभागण एकली॥'

मोर एवं पपीहे का स्वर उसके घावों पर नमक छिड़कता है। वह पपीहे से पीव-पीव न करने की प्रार्थना करती है—

'सोर मोर सुणतां सखी, जोर दुखी छै जीव।
बैरी तूं तो वक सिरे, पपिहा बोल न पीव॥
पपिहा बोल न पीव, कहै मैं के कियो।
मारी नैं मत मारि, हिलोला ले हियो॥
लागे दाझै लूंण, जळण व्है जीव रो।
बैरी बोल न बोल, पपीहा पीव रो॥'

और सावणी तीज के दिन तो यह विरह अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है—

'मन भांमण सांमण मंहीं, कीधो आंमण कोल।
तरसाज्यो मत तीज नैं, बलंम निभाज्यो बोल॥

बलंम निभाज्यो बोल, बचाज्यो बिरह सूं।
पिय बिण रहसी प्राण, तीज किण तरह सूं।।
दिल मति धारो देर, पधारो पाँम्हणा।
समझूँ जणाँ सनेह, अचाँणक आँम्हणा।।'

यह बात नहीं कि कवि ने संयोग-वर्णन न किया हो! 'हिंडोला-वर्णन' में चारों ओर आनन्द ही आनन्द छाया हुआ है—

'ऊँचो अंब शोभा अधिक, रेशमरी तणियाँह।
झोटा दे-दे झूलवै, त्याँ चढ़ि तीजणियाँह।।
त्याँ चढ़ि तीजणियाँह, भिड़ै आय भूंम सूं।
आँब तोड़ि उण बार, लियावें लूंम सूं।।
सिर साड़ी सरकंत, तीज तिण बरगलैं।
हुय अति हास हुलास, मोह फंदा मलै।।'

ऊमरदान की रुचि श्रृंगार की ओर नहीं अतः उनके काव्य में स्वतंत्र रूप से इसका चित्रण नहीं हो पाया है। जहाँ कहीं ऐसे चित्र देखने को मिलते है वहाँ विलासिता के प्रति विरोध भावना प्रकट हुई है, यथा—

'स्वतन्त्र नृत्यसाल में नितम्बिनीं नचैं नहीं।
सुहागिनी स्वराग राग रागनी रचै नहीं।।
तथुंग थुंग तत्थ थेइ ताल साजती नहीं।
बधू उमंग संग में मृदंग बाजजी नहीं।।
सुरंग रंगभोमि में तरंग हे न ताँनकी।
ढमंक ढोलकी न त्यूं धमंक घुग्घराँन की।।
छमंक बिच्छवाँन की दमंक ना दरीन की।
झमंक जेहराँन की चमंक नाँ चुरीन की।।'

इसी प्रकार—

'प्यारा थां सूं पलक ही, बांछूं नहीं वियोग।
उर वसिया मुहि आवज्यो, रसिया थांरो रोग।।
अंग घणां आलंगियो, अधर घराणी अैठ।
नर मूरख जाणै नहीं, पातर री आ पैठ।।'

फतहकरण का उदयपुर के मनोहर घाटों पर जल भरती हुई पनिहारनियों का यह चित्र कितना आकर्षक है?—

'लसै अलकें मुख पै वल खाय, जची अलि पंक्ति कि पंकज जाय।
किधों विधुमंडल की गह कोर, कढ़ी धनकी कि लकीर दु ओर॥
लसै अलकें मुख पैं वल खाय, जची अलि पंक्ति कि पंकज जाय।
किधों विधुमंडल की गह कोर, कढ़ी घनकी कि लकीर दु ओर॥
किधों दृग मत्त करींद्र प्रचंड, वंन्यो जिनके जनु बीच वरंड।
किधों रद मोक्तिक तोलन काज, रयो बिच कंटक हैम विराज॥
कढ़े मुख कांति इकत्रांकि होय, लगी जनु तैजस दीपक लोय।
सबै अनिमेष रहै रस छाक, निहारत नारिन के हम नाक॥
लखी कति कामिनि श्यामल चीर, सधूम कि अग्निशिखा ससमीर।
भुजंगम वेष्टित चंदन भ्रांति, किधों घन मध्य दिवाकर कांति॥
कसौटिय में कस हेम कि कीन, लसै मनु मंगल अंवर लीन।
मनो जमना जल में जल जात, किधों तड़िता घन में चमकात॥'

किशोरसिंह को 'वना' की छवि अत्यन्त प्यारी लगती है अतः वह उस पर न्यौछावर हो जाना चाहता है—

'वारी जावाँ लाल हो बना (स्थाई)

म्हे तो थाँरा डेरा निरखण आई वारी जावाँ लाल हो वना॥
वना रो व्याघ्र-चरम रो डेरो, जिकण रो गज दो सौ से घेरो।
फिर रह्यो राती कनात रो फेरो, वारी जावाँ लाल हो वना॥
वना रे ध्वजादंड सोनारी, दंड पर पीली ध्वजा पसारी।
ध्वजा पर मंडिया कृष्ण मुरारी, वारी जावाँ लाल हो वना॥
'जीवण जन्म-भूमि हित जाण' ध्वजा पर वांचे वाक्य पुराण।
उमंडियो मोद तणो महराण, वारी जावाँ लाल हो वना॥
वना री राजै रोहित गाड़ी, सीस पर बाँधी पाघ अजादी।
अंग पर सुद्ध केसर्यां खादी, वारी जावाँ लाल हो वना॥'

राजस्थानी साहित्य में शृंगारिक रचनाओं के अभाव को देखते हुए स्व० अमरसिंह देपावत ने अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का अविकल अनुवाद प्रस्तुत किया। इससे सबका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। कवि ने सर्व प्रथम ऊमर खय्याम की रूबाइयों का सरस अनुवाद किया और इससे उसे अपार यश मिला। फिर उसने महाकवि कालिदास की प्रख्यात कृति 'मेघदूत' का भाषान्तर कर

शृंगार में वियोग की प्रतिष्ठा बढ़ाई। कहना न होगा कि इसमें यक्ष की विरह-वेदना पूर्ण रूप से व्यंजित हुई है। भाषा अत्यन्त सरस एवं भावपूर्ण है। कुछ चुने हुए उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जायगी—

'छळ-छळ भरया पलक में आँसूं पळ-पळ हिवड़ो बहे पिघळ।
जळ वळ सजग हुई सुख सुधियाँ देख-देख नभ रा बादळ।।
हुवै सँजोग्याँ रो चित चंचळ विषम विजोग्याँ विरह विथा।
असह दरद सूं मौन यक्ष री कहे नैण जळ करुण कथा।।
छोड़ साज सिणगार सीस रा धण बाँधे वेणी सूनी।
डसे हाथ वैरण नागण-सी व्यापे दिल पीड़ा दूणी।।
वण्यां मीत संजोग मिलण रो घणे हेत सूं निज कर सूं।
गूंथ सीस में विध-विध गहणा फूलां सूं वेणी सज सूं।।
दुरबळ देह अडोळी अँग-अँग झरै नैण आँसू झर-झर।
खाय पछाड़ गिरै धण सेजां छावै मुखड़ै केस विखर।।
देख हाल इण विरहण बादळ होसी थांरा नैण सजळ।
बहे पराये दुख हुय कातर दिल सज्जनां रो मीत! पिघळ।।'

और भी—

'पँच पोरी लाँवी रातडल्यां कटै कियाँ पळ में छण में।
लाय लपट सी आ झळबळती दाह नहीं दाझै दिन में।।
चीत-चीत हिवड़ो अणहोणी पळ-पळ घणो अधीर हुवै।
मृगनैणी यूं विरह दाह में दाझै तन मन नैण चुवै।।
कलप-कलप काया आलीजी झुर-झुर नैण न खोये।
धीरज धार मिळण आसा रो मन में दीप सँजोये।।
थिर न रह्या जे सुख रा दिनड़ा दिन दुखड़े रा जासी।
मधुर मिळण री सुख री घड़ियां आसी मरवण आसी।।'

६. **राष्ट्रीय काव्य**— कई वर्षों तक भारत भूमि पर अँग्रेज अपनी कूटनीति से आधिपत्य जमाते रहे और देश अंधकार के गर्त में धँसता ही गया किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहने पाई। सन् १८५७ ई० के आते ही समूचे देश में राष्ट्रीय चेतना की लहर दौड़ पड़ी और अँग्रेजों को निकाल बाहर करने के लिए भयंकर युद्ध छिड़ गया। फलतः राजस्थान में भी सोई हुई शक्ति जाग उठी। अँग्रेजों की संधियां में जकड़े हुए राजा-महाराजा तो उनके संकेतों पर ही चलते

रहे किन्तु कतिपय राष्ट्र प्रेमी राजाओं एवं जागीरदारों ने सम्पूर्ण शक्ति के साथ विदेशी सत्ता का सामना किया। स्वतंत्रता के इतिहास में तेजस्वी आउवा ठाकुर खुशालसिंह का नाम अमर रहेगा। रावत जोधसिंह (कोठारिया) ने उन्हें शरण देकर देशभक्ति एवं सच्ची वीरता का परिचय दिया। इनके अतिरिक्त मारवाड़ के आसोप, गूलर, आलनियावास, बाजावास, लाँबिया, बाँता, भिवाळिया एवं मेवाड़ के रूपनगर, सलूंबर, लसाणी आदि स्थानों के सरदार भी अँग्रेजों के विरुद्ध थे। ऐसे समय में चेतनाशील चारण कवियों ने बिखरी हुई राजपूत शक्ति को एक सूत्र में पिरोकर राष्ट्र-देवता के चरणों में न्यौछावर होने की बलवती प्रेरणा दी। कहना न होगा कि अँग्रेजों के विरुद्ध वीर राजपूतों को युद्ध के लिए उत्तेजित करने में इन कवियों का योगदान रहा है। यद्यपि इतिहास में इसका उल्लेख नहीं मिलता तथापि उनकी स्फुट रचनाओं से ऐसा ही ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए सूर्यमल्ल मिश्रण के ठाकुर फूलसिंह (पीपल्या) को लिखे हुए पत्र का यह अंश दिया जाता है—

'ये राजा लोग देसपति जमी का ठाकर छै जे सारा ही हिमालय का गळयाई नोसर्‌या, सो चाळीस से लेर साठ-सतर बरस तांई पाछा पटक्या छै तो भी गुलामी करै छै। पर यो म्हारो वचन राज याद राखोगा कि जं अबकै अंग्रेज रह्यो तो ईको गायो ही पूरो करसी। जमी को ठाकर कोई भी न रहसी। सब ईसाई हो जासी, तींसों दूरन्देसी विचारै तो फायदो कोई कै भी नहीं, परन्तु आपणो आछो दिन होय तो विचारै और राज जिसो सुहृत म्हारे होय तो लड़ाई तरीके लिखी जावै, तींसूं थोड़ी में वहुत जाण लेसी।' इस प्रकार अँग्रेजी साम्राज्यवाद का विरोध प्रकट करने वाले क्रांतिकारी कवियों में मोहवतसिंह, गिरवरदान, तिलोकदान, विसनदान, सूर्यमल्ल मिश्रण, नवलदान, शंकरदान, राघवदान, केसरीसिंह (शाहपुरा), नाथूसिंह, चमनसिंह, फतहकरण, हरीदान, रामलाल, उदयराज, अलसीदान रतनू, यशकरण, साँवलदान आसिया, नाथूसिंह महड़ू एवं सूर्यमल आसिया के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने गदर, आउवा, सलूंबर, नृसिंहगढ़ एवं भरतपुर की गतिविधियों से प्रभावित होकर काव्य-रचना की है। इनके अतिरिक्त प्रमुख राष्ट्रवादी कवियों में हरीदान, ऊमरदान, रामलाल, नाथूसिंह, उदयराज आदि के नाम आते हैं जिन्होंने देश-प्रेम के गीत गाकर राष्ट्रीय भावनाओं का विकास किया है। अस्तु,

मोहवतसिंह के इस दोहे में अँग्रेजों के एजेन्ट का खुशालसिंह के द्वारा मारे

जाने का उल्लेख है—

'आउवा में बरघू बाजे, विठोरा में बांकियो।
अेजेन्ट रो शिर तोड़ ने, दरवाजे टांकियो॥'

गिरवरदान ने 'आउवा रा गदर' नाम से नामी छप्पय लिखे हैं जिनमें खुशालसिंह के युद्ध में कूद पड़ने का वर्णन है। संदेह नहीं कि उस निडर योद्धा के हृदय में भारत को स्वतंत्र करने की उमंगें हिलोरें ले रही थीं—

'सुण चांपै रच सला, मित्र परधानां मेले।
खामन्द बगसो खून, बंधो मत दुसहां बेले॥
सह मंत्री मिळ सला, थाप जुध करण थटाई।
होणहार ज्यूं होय, मिटै किण भांत मिटाई॥
भरोसे खुसाळ सक्ति भिड़ण, संभियो सगळां साथ रै।
आजाद हिंद करवा उमंग, निडर आउवा नाथ रै॥'

तिलोकदान ने अपने गीत में खुशालसिंह के युद्ध-चातुर्य का ओजस्वी शैली में वर्णन किया है—

'चोळ चखचूर वीरां मनां चाविया, धीट वतळाविया हियै धरिया।
सुत वगत प्रवळ तप तेज सरसाविया, मारवा आविया जिकै मरिया॥
कायरां चेत उड़ प्रेत जोगण किलक, उप्रवट भूभट विरदेत अड़िया।
जेत हर जीत पाई समर जीतियो, पांच अर असी जुध खेत पड़िया॥
रेण भरतार खुसियाळ अवचळ रहौ, वेर हर सार अण पार वीधौ।
भूसळ खळ भार संसार जस भाखियो, खुसळ हर खुसळ करतार कीधौ॥'

इसी प्रकार विसनदान के गीत में खुशालसिंह एवं अँग्रेजों का युद्ध-वर्णन है—

'जबर अभंग जुध सुभट अंग कड़ां जरद्दां जड़ै, प्रगट हद राग जांगड़ौ हाका पड़ै।
धाक सुण उरां प्रसणन दिल धड़हड़ै, खाग कर तांण कित पमंग खाता खड़ै॥
खिमै कूंतां अणी गजां लंगर खळळ, भांण कर प्रगट अत तेज तन में भळळ।
दध चलै प्रलय कज बहुलै अतरदळ, कवण सिर आज री सीस दूजा खुसळ॥
फवै दळ कुंजरां सीस भंडा फरक, तुरंगां हांफ रड़ सघर त्रवंक त्रहक।
थयो रज तिमर दिगपाळ पवै थरक, रीस री भाळ किण माथ कमधां अरक॥'

सूर्यमल्ल मिश्रण स्वतंत्रता के जागरूक प्रहरी थे। इस दृष्टि से 'वीरसतसई' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके लिखने का उद्देश्य वीर धर्म का आदर्श

उपस्थित करते हुए क्षत्रिय वर्ग को सन् १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-सँग्राम में गतिशील करना था किन्तु उसकी विफलता के साथ ही यह भी अधूरी रह गई। इस समय समूचे देश में विद्रोह की अग्नि भभक रही थी और राजस्थान में भी इसका प्रभाव बढ़ रहा था। कवि की हार्दिक अभिलाषा थी— कायर वीर बने और विद्रोही सेना टक्कर लेकर अँग्रेजों का तख़्ता उलट दे। आरम्भ एवं अंतिम दोहों में इस ओर चतुराई भरे संकेत मिलते हैं। समय के साथ-साथ राजपूत भी बदल गया था। जन-समाज में नैराश्यता छाई हुई थी जिसे दूर करना कवि का कर्त्तव्य था। यह उल्लेखनीय है कि उसने क्षात्र-धर्म की सीमा में ही अपने राष्ट्रीय विचार व्यक्त किये हैं। वीर भावों का साधारणीकरण कराकर उसने युद्ध-प्रिय राजपूतों को राष्ट्रीय-धारा में कूद पड़ने का मौन निमन्त्रण दिया है। संदेह नहीं कि राजपूत जाति के आदर्श को लक्ष्य करके कवि ने जो भाव-कण बिखेरे हैं, वे राष्ट्रीय आभा से दीप्तिमान हैं। यथा—

'बीकम बरसां बीतियो, गण चौ चंद गुणीस।
बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस॥
इकडंकी गिण एकरी, भूले कुळ साभाव।
सूरां आळस ऐस में, अकज गुमाई आव॥
इण वेळा रजपूत वे, राजस गुण रंजाट।
सुमिरण लग्गा बीर सब, बीरां रौ कुळबाट॥
सत्तसई दोहामयी, मीसण सूरजमाल।
जंपै भड़खाणी जठै, सुणै कायरां साल॥
नथी रजोगुण ज्यां नरां, वा पूरौ न उफांण।
वे भी सुणतां ऊफणै, पूरां वीर प्रमांण॥
जे दोही पख ऊजळा, जूझण पूरा जोध।
सुणतां वे भड़ सौ गुणा, वीर प्रकासण बोध॥
सूता घर-घर आळसी, वृथा गुमावै वेस।
खग-धारां घोड़ां-खुरां, दाबै अजका देस॥
टोटै सरकाँ भींतड़ा, घातै ऊपर घास।
वारीजै भड़ झूपड़ाँ, अवपतियाँ आवास॥
जिण वन भूल न जावता, गैंद, गवय गिड़राज।
तिण बन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज॥

डोहै गिड़ बन बाड़ियां, द्रह ऊंडा गज दीह ।
सीहण नेह सकैक तौ, सहल भुलाणौ सीह ।।'

उपर्युक्त दोहों में राज्य-क्रांति का आभास मात्र है। उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति आउवा क्रांति के समय देखने को मिलती है। सूर्यमल्ल कृत 'गीत आउवा रो' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—

'लोहां करंतो झाटका फणां कंवारी घड़ा रो लाडौ,
आडो जोधांण सूं खेंचियो वहे अंट ।
जंगी साल हिंदवांण रो आवगो जींनै,
आउवो खायगो फिरंगाण रो अजंट ।
भागे मीच गोरा सिधांपरां रा जिहांन माळो,
दावो तेगां झाट दे उत्तालो दसूं देस ।
तीसूं नींद न आवै, कंपनी लगाड़े ताला,
कालो हिये न मावै अगंजी खुसळेस ।।'

सूर्यमल्ल का निम्न गीत इस बात का साक्षी है कि खुशालसिंह के सदृश नृसिंहगढ़ के चैनसिंह ने भी अँग्रेजों के साथ भीषण युद्ध किया था। धोखे से अचानक घिर जाने पर भी उसने अर्जुन का सा शौर्य प्रदर्शित किया और अंत में रण-क्षेत्र में ही सदैव के लिए सो गया—

'हीकां धरै साहंसी वैरियां धू चलाया हाथ,
आहंसी नत्रीठा काछी मलाया औसांण ।
पाथ ज्यूं अनम्मी खंध वंसनूं चाढियौ पांणी,
यूं पछै ऊमटां नाथ पोढियौ आरांण ।
वांना अंग धारण भू जाहरां करेगो वातां,
उधरेगो हाथां दंत वारणा ऊवाड़ ।
उछाहां भरैगो खाग धारंगां खरेगो अंग,
बारंगा वरेगो चैन लोहड़ा वजाड़ ।।'

नवलदान गाडण के इस गीत में भरतपुर नरेश एवं अँग्रेजों के युद्ध का वर्णन है—

'....हिन्दूयांन रे अभागां....होवे फिरंगी थाटां रो हल्लो,
मन्त्र खट घाटां रो उपायो पाप माग ।

भाईं भड़ाँ थाटां रो हरी कां हाथ दीधो भेद,
उभा टीकां वाळे कीन्हो जाटां रो अभाग ।।
माल खायो ज्याँरो त्याँरो रत्ती ही न लायो मोह,
कुबुद्धि सूँ छायो नंही भायो रमा कन्त ।
विस्सवास घाती कांम कमायो बुराई वाळो,
माजनो गमायो .... रे महन्त ।।'

शंकरदान ने सन् १८५७ ई० की राज्य-क्रांति के समय अँग्रेजों को अव्वल नम्बर का अत्याचारी, निर्लज्ज एवं मक्खीचूस तक कह दिया—

'अंगरेजां जिसड़ो अवर, जुळमी मिलै न जगत में ।
निचोयले मांखी निलज, घरू नफै हित घिरत में ।।'

इस अवसर पर राजा और प्रजा को उत्तेजित करता हुआ कवि कहता है कि ऐसा अवसर हाथ आने का नहीं —

'आयो अवसर आज प्रजा पख पूरण पालण ।
आयो अवसर आज गरब गोरां रो गाळन ।।
आयो अवसर आज रीत राखण हिन्दवाणी ।
आयो अवसर आज बिकट रण खाग बजाणी ।।
फाळ हिरण चूक्यां फटक पाछो फाळ न पावसी ।
आजाद हिंद करबा अवर, औसर इस्यो न आवसी ।।'

उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के साथ हुई संधि के अनुसार राज्य एवं जागीर के बहुत से अधिकार अँग्रेजों के हाथ में चले गये । जब संधि-पत्र रावत केसरीसिंह (सलूम्बर) के पास हस्ताक्षर के लिए भेजा गया तब उसने उसे निधड़क होकर फाड़ फेंका और कह दिया कि इन हाथों में अभी तक अँग्रेजों का सामना करने की ताक़त बाकी है । राघौदान के इस गीत में यह वर्णन है—

'जंगी रिसाला हलंतां अळै, सामंद हिलोळां जेहा,
छात – रंगी हसम्मां भळंतां काळ चोट ।
जोर दीधौ फिरंगी लिखायो कौल नांमौ जठै,
आप-रंगी चूंडा तें मेवाड़ राखी ओट ।
घमै तोपां जिसूं अहिराट रा सिनांण धूजै,
रोक जंगां ले खोहो ओघाट रा रकत ।

थें मुदेत थाट रा फड़ाया भुजां आभ थांभें,
लाट रा लिखाया मैद पाट रा लिखत ॥'

केसरीसिंह (शाहपुरा) प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि एवं प्रमुख राजनैतिक सेनानी थे। राजस्थानवासियों के हृदय में स्वाधीनता की चिनगारी उत्पन्न करने का श्रेय इसी चारण कवि को है। महाराणा फतहसिंह (मेवाड़) तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जन के विशेष आग्रह पर दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गये थे (१६०३ ई०) यह बात कवि के हृदय में काँटे की तरह चुभ गई। शाहपुरा-नरेश नाहरसिंह के कहने से ये तत्काल सरेरी स्टेशन पहुँचे और महाराणा को तेरह सोरठे सुनाये। कहना न होगा कि कवि के इन प्रभावशाली सोरठों को सुनकर महाराणा दिल्ली पहुँचकर भी दरबार में सम्मिलित नहीं हुए। ये सोरठे 'चेतावणी रा चूंगटिया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह उद्बोधन देखिये —

'पग-पग भम्या पहाड़, धरा छांड़ राख्यो धरम।
(ईंशूं) महाराणा र मेवाड़, हिरदै बसिया हिंद रै ॥
घण घलिया घमशाण, राण सदा रहिया निडर।
(अब) पेखंतां फुरमाण, हलचल किम फतमाळ हुवै ॥
अब लग सारां आश, राण रीत-कुल राखसी।
रहो रहाय सुख-राश, एकलिंग प्रभु आपरै ॥
नरियंद सह नजरांण, झुक करसी सरसी जिकां।
पसरेलो किम पांण, पांण थका थारो फता ॥
सकल चढ़ावै सीस, दान धरम जिण रो दियो।
सो खिताब बगसीस, लेवण किम ललचावसी ॥
सिर झुकिया सहसाह, सींहासण जिण सांमने।
रळणो पंगत राह, फाबै किम तोनै फता ॥
देखै अंजस दीह, मुळकैलो मन ही मनां।
दंभी गढ दिल्लीह, सीस नमंतां सीसवट ॥
मांन मोद सीसोद, राजनीत बळ राखणो।
(ई) गवरमिन्ट री गोद, फळ मीठा दीठा फता ॥'

इस विषय को लेकर नाथूसिंह महियारिया, चमनसिंह दधवाडिया एवं फतहकरण उज्वल ने भी काव्य-रचना की है। फतहकरण उज्वल ने महाराणा फतहसिंह के लिए कहा है—

'माळा ज्यूं मिलिया महिप, दिल्ली में दोय दाण ।
फेर-फेर अटकै फिरंग, मेरू फतो महराण ।।'

नाथूसिंह महियारिया का यह निम्न सोरठा एवं गीत द्रष्टव्य है—

सोरठा— 'तोलै भुज तरवार, बोलै मद भरिया बयण ।
दिल्ली रे दरबार, राण फतो अनमी रियो ।।'

गीत— 'अकबर पतसाह बिचै बळ अधकै, हथनापुर दरबार हुओ ।
गुणसठ साल लिख्यो मिल गोरां, हाजर सह नृप आय हुओ ।।
आप तणो अनमी घर आहड़ा, कीधी घणा नरिंदा कीत ।
जस करणो म्हारो ध्रम जाती, राजद्रोह कहसी किण रीत ।।
कूरम कमध जसी गत करवा, फरवा जद लागो फिर गाँण ।
डग भर भाण-हिन्दू नह उगियो, ऊ रवि उग उगियो आथाण ।।
राण सरूप सकै लिख राख्यो, वो वरताव कियो जिण वार ।
नह पतसाह अगै सिर नमियो, उण इकलिंग तणै ओतार ।।
राण फता गौरव सह राख्यो, पातळ जसो भुजां रै पांण ।
केलपुरा अनमी कहलायो, आछै छक आयो उदियाण ।।'

महाराणा शंभूसिंह (उदयपुर) का देहान्त हो जाने पर जब राज्याधिकार के लिए ब्रिटिश अधिकारी ने हठपूर्वक आदेश दिया तब वीर रावत जोधसिंह चूण्डावत (दूसरा) सलूम्बर ने उसका डटकर विरोध किया। इस विषय में सूर्यमल आसिया ने यह गीत लिखा है—

'हूँ थपू भूप मुलक म्हारो हुकम, बराबर न. पूछूं कवण बीजे ।
पड़ी क्यू सलारी तूझ रख पखैरी, (थारी) लखेरी कोड़ियां उरी लीजे ।।
तस धरे मूँछ खतेस बोळै तमख, हुआ विद लेख म्हें कीध हाथां ।
पौळ बाहर हमैं छावणी पधारौ, वधारौ फैल किम सहज वातां ।।
तवां परताप सगराम बापा तसो, समै परमाण अवसाण साजै ।
तणा केहर अनम किलौ चीतौड़ रौ, (जीने) ऊजळौ दिखायो भलां आजै ।।
माण रख राण जेठाण हिंदू मुगट, कथन जग जाण सैवास कहसी ।
तिको कसना वतां छात जोधा त्रपत, रसासिर वात अखियात रहसी ।।'

हरीदान ने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का स्मरण कराकर राष्ट्रीय-भावना को दृढ़ वनाया—

'आयो अंग्रेज देश रे ऊपर, भूघर दुखद भारती भू पर।
राजावांली ओढ रजाई (थने) वोहला रग लछम्मी बाई ।।
सोषणिया रत हिन्द सुजावां, घोळविया भोमी खग घावां।
लच्छी लड़े लाज भूज लीधां, गोरा मांस धपाया गीधां ।।
अमर कलो पाबू रण आवै, सूजो रणजी सिवा सरावे।
राजल पिरथी लाज रुखाली, हाडी पदमण आई हाली ।।
रग दिया सह झांसी रांणीं, करगी अम्मर वीर कहाणी।
दरप पातसाहां रा दळगी, रांणी जोति जोत में रळगी ।।'

ऊमरदान ने पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिक शिक्षा की निंदा करते हुए उससे बचने की सलाह दी है। 'अंगरेज मुलक दाबण अडे ऐ जूवां सू आथडै' कहकर उन्होंने देशवासियों के आलस्य की ओर संकेत किया है। अँग्रेजों की एकता और भारतीय अविद्या के लिए उनका कथन है—

'मिलके लख गोरन मती एक, इत एक-एक की मत अनेक।
उत रेल तार उद्दम अपार, गौरव, इत विद्या विन गिंवार ।।'

रामलाल ने 'देश मित्र' रचना में अँग्रेजों के विरोधियों का वर्णन किया है—

'वीर रुघो वगतो विशन, निर्भय चिमन नरांण।
गोरा माण गमाणिया, भू रजथांनी भांण ।।
समरथ सिवो कुसाल सी, जोरो डूंगर जांण।
गोरां मांण गमाणिया, भू रजथांनी भांण ।।'

राष्ट्रीय कवि नाथूसिंह ने देश के लिए बलिदान के महत्त्व को लक्ष्य करके कहा है—

'सुत मरियौ हित देस रै, हरख्यौ वंधु-समाज।
मा नहं हरखी जनम-दिन, जतरी हरखी आज ।।
सुत ! करजे हित देस रौ, झड़जे खागां-हूंत।
वूढापा री चाकरी, जद मर पाऊं पूत ।।
जिण पायौ मानव जनम, फिर धन पायौ लाख।
पायौ मरण न देस हित, पायौ सरव नहाक ।।
घर कज धन कज धाम कज, जस ले सीस कटार।
जे मरसी हित देस रै, वार-वार वळिहार ।।

सह कुटंब रण मेलियो, देस हेत र काज।
पोतां पोतें रालणो, दादो चहै न आज ॥'

उदयराज मातृभूमि एवं उसके साहित्य के अनन्य प्रेमी हैं यह प्रेम इन शब्दों में व्यक्त हुआ है—

'राजनीति रै रोग सूं, वडै विपद जद पूर।
मेटै संकट मुलक रो, कै साहित कै सूर ॥
सत ऊजल संदेश, ऊजल चारण ऊचरै।
दीपै वांरा देश, ज्यांरा साहित जगमगै ॥'

अलसीदान रत्नू ने ब्रिटिश सत्ता के विद्रोही नाथूसिंह भाटी (जैसलमेर) के शौर्य सम्बंधी अनेक छंद रचे जिनमें अनेक स्थानों पर उनकी राष्ट्रीय भावनाओं की झलक मिलती है। एक उदाहरण देखिये—

'चढ़ों न परतक चाकरी, करों न करसण कांम।
ले लसकर घर लूटस्यों, गवरमिंट रा गांम ॥'

राष्ट्रीय काव्य में यशकरण का नाम उल्लेखनीय है। सीकर काण्ड के सम्बन्ध में महाराजा मानसिंह (जयपुर) को शिक्षा देते हुए उन्होंने लिखा है—

'मानो मानो मान, सेखावत न सतावजे।
देसी सिर रा दान, आफत जैपर आवतां ॥
झडिया जैपर वालते, सीकर रा रणसेर।
वां री वा अब चाकरी, हे राजा हयन्हेर ॥
जरा नैं जैपर राज नैं, वैरी सकै न विगाड़।
उत्तर मैं रहिया अटळ, वण सेखावत वाड़ ॥'

यही नहीं, देशी राज्यों में उच्च पदों पर अंग्रेजों की नियुक्ति देखकर कवि को गहरी ठेस लगी है—

'परदेसी पद सचिव पर, आणै नृप कर आघ।
कडै न फिर वै काडिया, बुडिया रैं घर बाघ ॥
तठै रहे नृप तंग, जठै सचिव गोरा जमैं।
पकड्यां पछै भुजंग, छांड न सकै छछूंदरी ॥
परदेसी सरपंच, वण राजा घर मैं वड़ै।
पूरण रच परपंच, सब री सुख सम्पत हर ॥'

सांवलदान आसिया अँग्रेजों को मार भगाने के लिए संगठन को अधिक महत्त्व देते हैं, प्रचार को नहीं—

**'नंह सत्रु मरै अखबारां छपियां, बैरी न भगै रेडियां बोल।
घण रण-भोम तदै नभ गाजै, बड़बड़ती गूंज मसीनां बोल ।।
बळ क्षात्रव बाढीजै जुध बेळा, संगठण अधिक करीज सैन।
पोसण कुटम कीजे अत पाछे, (जी सूं) चित भिड़बा लागै भड़ चैन ।।'**

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में शस्त्र-बल से विजय प्राप्त करना कठिन था। वस्तुतः महात्मा गाँधी का शास्त्र-बल ही एक मात्र आधार रह गया था। अतः चारण कवि उनकी विचार-धारा से प्रभावित हुए और उन्होंने उनके व्यक्तित्व को उजागर किया। नाथूसिंह महड़ू ने सत्य ही लिखा है—

**'खारक दोय खुराक में, अजा दूध अहार।
डोकरियो डिगतो फिरै, धूजै सब संसार ।।'**

इसी प्रकार नाथूसिंह महियारिया ने 'गाँधी शतक' में उनके अद्‌भुत आत्म-बल को सर्वोपरि माना है—

**'फौजां रोकी फिरंग री, तोकी नह तरवार।
गांधी तैं लीधौ गजब, भारत रौ भुज भार ।।
आतम बळ सो बळ नहीं, आतम बळ अदभूत।
जे जरमन सूं जीतिया, हार्‌या गांधी हूंत ।।
साइंस हूं साहस बड़ौ, विजय हुई विखियात।
गांधी मन साहस भर्‌यो, साइंस भरी विलात ।।'**

७. रीति काव्य इस काल के रीतिकारों में गणेशपुरी, मुरारिदान (जोधपुर), मुरारिदान (बूंदी) एवं उदयराज के नाम आते हैं। गणेशपुरी कृत 'मारु महराण' एवं 'जीवन मूल' दो ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है किन्तु इनकी प्रतियाँ उपलब्ध न होने से न्याय नहीं किया जा सकता। पहले ग्रंथ में साहित्य के सम्पूर्ण अंगों का तथा दूसरे ग्रंथ में अलंकारों का विवेचन बताया जाता है।

मुरारिदान (जोधपुर) कृत 'जसवंत जसो भूषण' (जसवंत भूषण) एक अलंकार ग्रंथ है जो सबसे बड़ा है। यह कविता की जाति, भेद, रस, अलंकार आदि पर प्रकाश डालने वाला अमूल्य ग्रंथ है। इसमें कविता के भेद इतनी उत्तम रीति से समझाये गये हैं कि इसके विषय में राजस्थान में यह दोहा प्रचलित है—

'भोज समय निकसी नहीं, भरतादिक की भूल।
सो निकसी जसवँत समय, भये भाग्य अनुकूल ॥'

यह लक्ष्य करने की बात है कि मुरारिदान ने अलंकारों के नामों को ही उनका लक्षण माना है और उदाहरण में अपने आश्रयदाता महाराजा जसवंतसिंह का यशोगान किया है। इस ग्रंथ से कवि का संस्कृत एवं हिन्दी वाङ्मय के ज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है। नाम में लक्षणा को सर्वत्र खोज करते रहने से कहीं-कहीं अनावश्यक तोड़-मरोड़ भी देखने को मिलती है। इसमें परम्परागत अलंकारों के अतिरिक्त तीन नये अलंकार भी बनाये गये है— अतुल्ययोगिता, अनवसर एवं अपूर्व रूप। इनकी दृष्टि में प्रमाण कोई अलंकार नहीं है। ग्रंथ का शिल्प-तंत्र एवं विवेचन-शैली कलापूर्ण है जिससे हमारे हृदय पर प्रभाव पड़ता है। यथा—

'गोकुल जनम लीन्हौ, जल जमुना को पीन्हौ,
सुबल सुमित्र कीन्हौं ऐसो जस-जाप है।
भनत 'मुरार' जाके जननी जसोदा जैसी,
उद्धव ! निहार नंद तैसो तिह बाप है ॥
काम-बाम तें अनूप तज बृज-चंद-मुखी,
रीझे वह कूबरी कुरूप सौं अमाप हैं।
पंचतीर-भय को न बीर मेह-बय को न,
बय को न, पूतना के पय को प्रताप है ॥
सुर-धुनि-धार घनसार पारबती-पति,
या बिधि अपार उपमा को थौभियतु है।
भनत 'मुरार' ते विचार सौं विहीन कवि,
आपने गँवारपन सौं न छौभियतु है।
भूप अवतंस, जसवंत ! जस रावरो तो,
अमल अतंत तीनों लोक लौभियतु है।
सरद पून्यौ-निसि जाये हंस को है बन्धु,
छीर-सिंधु-मुकता समान सौभियतु है ॥'

मुरारिदान (बूंदी) कृत 'डिंगल-कोष' एक पद्य बंध पर्यायवाची कोष है जो अपने ढंग का सबसे बड़ा ग्रंथ है। कोष परम्परा में यह महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक है। इस कोष में अनुमानतः सात हजार शब्द मिलते हैं। इसके

अतिरिक्त इसमें १५ गीतों के लक्षण भी दिये गये हैं। साथ ही अलंकारों पर भी हल्का प्रकाश डाला गया है किन्तु कोष ही इसका मुख्य ध्येय है। इसका प्रकाशन पुराने ढंग से वहुत पहले ही हो चुका था जिसकी प्रतियां आज उपलब्ध नहीं होतीं। यह उल्लेखनीय है कि इसमें डिंगल ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दों को ही स्थान दिया गया है, अपनी ओर से गढ़े हुए अथवा अप्रचलित शब्दों को नहीं रखा गया है। संस्कृत शब्द कई स्थानों पर निःसंकोच भाव से अपनाये गये हैं। ग्रंथ कई अध्यायों में विभक्त किया गया है और शैली की दृष्टि से अमर-कोष का अनुकरण किया गया है। इस कोष की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आरम्भ के अध्यायों में जहाँ गीत के लक्षण दिये गये हैं 'वहाँ उदाहरण में भी पर्यायवाची कोष का ही निर्वाह किया गया है। ऐसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इसका निर्माण आधुनिक काल में होने से डिंगल से अनभिज्ञ पाठकों की सुविधा के लिए नामों के शीर्षक प्राय: हिन्दी में दिये गये हैं और अनुक्रमणिका में भी ऐसा ही किया गया है। यहाँ गीत सुपंखरो का लक्षण एवं उदाहरण दिया जाता है—

(दोहा)

'अखर अठारै आद तुक, बीजो चवुदह वेख।
बिखम अखर सोळह वळे, सम चवुदह संपेख॥
मेळ तणी झड़ मांहिनै, गुरु लघु अन्त गिणाय।
पेखो गीत सुपंखरो, वीदग ऐम वणाय॥'

(गीत सुपंखरो) घोड़ा नांम

'वाजी तोखार तुराट तुरी ऐराक वेंडूर वाह वेंडाक केसरी हरी काछी खेंग वाज,
होवास व्रहास धाटी वडंगी निहंग हंस वाजिद तारखी प्रोथी घोड़ो वाजराज।
उडंड चांमरी ताजी हैराव सारंग अस्व मिडज्जां काठियावाड़ हींसी वाहभाण,
पमंगाण हैजमा हैवरा लच्छीवाळा पूत कुंडी हयांराज तुरां धुड़ल्ला केकाण।
अलल्लां वितंडां हयां सपत्तासवाळां अंसी रेवंतां साकुरां अस्सां जंगमां तुरंग,
क्रमाणंकां पमंगां हैवरां सिंहविक्रमाका चंचळां तुरग्गां धजांराज है सुचंग।
मासासी पकल्ल देव सिंधुजात वासू मुणां वंगळी जंगळी रूमी अरव्वी कंवोज,
जोवो पांच दोय नांव खेत सूं उपाया जिके नामी पात तुरी नाम वखाणे हनोज॥'

(दोहा)

'मात अठारा प्रथम तुक, आगे सोळह आण।
सोळह-सोळह तुक सकळ, गीत त्रंवकड़ै जाण॥'

(गीत त्रंबकड़ो) ब्रह्मा नांम

'बेदोधर कमळसुतन बिध बिधना अज चतुरानन जगतउपाता,
सतानंद कमळासन संभू ध्रुव लोकेस पतामह धाता।
परजापत ब्रहमाण पुराणग ब्रहमा ब्रहम बेह कबि बेधा,
सनत हंसबाहण सुरजेठो मुखचवु आठद्रगन बड मेधा।
सुरसतजंनक स्वयंभू सतध्रत बेदगरभ अठश्रवण बिधाता,
आतमभू सावत्रीईसर नाभीसंभव कमंन सुहाता।
सत्यलोक गायत्री ईस क बेधस लोकपता (बिख्याता),
हिरणगरभ बिरंची द्रूहिंण द्रुघण बिश्वरेतस (बरदाता)।।'

उल्लेखनीय है कि उदयराज एवं सीताराम दोनों के सहयोग से जिस 'सबद कोस' का शुभारम्भ इस काल में हुआ, उससे आगे चलकर राजस्थानी साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई। अस्तु,

८. शोक काव्य (मरसिया)— इस काल में आकर चारण कवियों ने प्रसिद्ध साहित्यकारों एवं राष्ट्रीय नेताओं के प्रति भी गहरी संवेदनायें व्यक्त की हैं। अतः शोक-काव्य का जितना विकास इस काल में हुआ उतना पहले नहीं। व्यक्ति विशेष के प्रति करुण क्रन्दन होते हुए भी यह काव्य पाठकों के हृदय को द्रवीभूत करने में सक्षम है। इसमें कवियों ने दिवंगत आत्माओं के गुणों का गान कर उनके पुनः अवतरित होने की अभिलाषा प्रकट की है। विषय की दृष्टि से इसे चार भागों में विभाजित किया जा सकता है— १. राजाओं पर लिखा शोक-काव्य जिसमें सूर्यमल्ल, गणेशपुरी, ऊमंरदान, केसरीसिंह, राघवदान, नाथूसिंह, उदयराज एवं नवलदान २. जागीरदारों पर लिखा शोक काव्य जिसमें केसरीसिंह, जवानसिंह, उदयराज एवं अंबादान ३. स्वजातीय कवियों पर लिखा शोक-काव्य जिसमें रामनाथ, भवानीदान, गणेशपुरी, पाबूदान फोगा बारहठ, ईश्वरदान, चंडीदान सांदू एवं रूपसिंह और ४. राष्ट्रीय नेताओं तथा प्रसिद्ध चारणेतर लेखकों पर लिखा शोक-काव्य जिसमें सांवलदान, लालसिंह, यशकरण खिडिया एवं रूपसिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सूर्यमल्ल ने महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के निधन पर उनके विद्यानुराग को लक्ष्य करके उन्हें 'मीठा मानसरोवर' की संज्ञा दी है—

'विद्या हंस विनोद, कारंडव कविजन तरै ।
मन जाणै तव मोद, मीठो सागर मानसी ।।'

गुसाईं गणेशपुरी ने प्रताप के अंतरंग चेतक के शोक में लिखा है—

'नच्चन बेर निहारि, पुत्त कहि चारु प्यार चहि ।
उहि छिन उमंगि उडात, कंध धर हाथ भ्रात कहि ।।
बग्ग उठत रन रुप्पि, बप्प कहि अप्प विरुदवर ।
तात भ्रात सुत लोक, गजब भिक परिग अरिग गर ।।
कट्टिग न पैर कट्टिग यकृत, कट्टिग मान निसान धन ।
हय मरिग नहिं न चेटक अहह, मरिग रान पत्ता सु मन ।।'

महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय (जोधपुर) के स्वर्गवास से ऊमरदान के हृदय को गहरी ठेस लगी । इस विषय के अनेक दोहे एवं गीत 'जसवंत जस जलद' में उपलब्ध होते हैं । महाराजा की 'अंतिम असवारी' का यह वर्णन हृदय में करुण भावनाओं का संचार करता है—

'हा-हा दिये घरोघर हेला, पुरजण हिए प्रलापा ।
जिये जिके नहिं जिये जांण जग, किये अनेक कलापा ।।
धुवी चराकां हा दिन धौले, मा दिन सोर मचायो ।
नाद सुवाद्यन पत्ति निसा दिन, सा दिन नहीं सुहायो ।।
व्याकुलतां घुलतां वलतां वह, मरघट पुलतां माळी ।
अकुलतां अंतिम असवारी, चवरां ढुलतां चाली ।।
झग-झग उठै हिया में झालां, दग-दग दृग जल डारै ।
मग-मग लखै आव तौ मारू, पग-पग प्रजा पुकारै ।।
बरसण लागा वैण विरंगा, तरसण लागा तीठा ।
परसण लागा पाव दुहेला, दरसण छैला दीठा ।।'

केसरीसिंह (शाहपुरा) ने महाराव उम्मेदसिंह (कोटा) के स्वर्गवास पर अपने हृदय की व्यथा इस प्रकार प्रकट की हैं—

'गुन गाहक उम्मेद ने, किय पयान सुर थान ।
छटपटाय हा ! रह गये, कढ़े न ये धिक प्रान ।।'

राघवदान ने महाराव उम्मेदसिंह (सिरोही) पर अनेक मरसिये लिखे हैं । एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

'पग-पग रच धांम-धांम क्रत पावन गांम-गांम प्रती राख गुणी ।
विद्या पढ दांम-दांम अ्रत बालक सांम नांम नत कथा सुणी ।।
कीनो वश कांम तमांम कला कर ठांम-ठांम श्रम अडग थयो ।
छत्र पत उमेद वेद मत चालण गुण ग्राहक शिव लोक गयो ।।'

नाथूसिंह ने महाराजा उम्मेदसिंह (जोधपुर) के स्वर्गारोहण पर करुण रस से ओतप्रोत दोहे लिखे हैं। उदाहरण देखिये—

'कै मैं मोटो अघ कियो, कै हर कियो अकाज ।
श्रवणां मरण सुणावियो, नृप उम्मेद रो आज ।।
आज मरूधर ऊपरां, अंबर पड्यो करूर ।
नृप उमेद दीसे नहीं, दीसै सुरपुर दूर ।।
बरसै आज उमेद बिण, नेणा नीर हमेस ।
मेह न अतरो मालवे, जतरो मरुधर देश ।।
मन उमेद रहगी बणी, रहगी बात न जोर ।
कुण उमेद पूरी करे, नृप उम्मेद बिण ओर ।।'

उदयराज ने भी महाराजा उम्मेदसिंह (जोधपुर) के आकस्मिक स्वर्गारोहण पर ५० सोरठे लिखे हैं जिनमें उनके द्वारा किये हुए लोक कल्याणकारी कार्यो का वर्णन है। इनमें करुण रस का अच्छा संयोजन हुआ है। प्रकृति भी उनके वियोग में विलाप करती दिखाई गई है। यथा -

'रैयत हित राजाह, राज सता देतो रयो ।
करगो शुभ काजाह, इल पर भूप उमेदसी ।।
मुरधर री माताह, कुरळावै कुरजां कळी ।
आजे अनदाताह, इण भव फेर उमेदसी ।।
करसा कुरळावेह, दूणा मरूधर देस रा ।
घर-घर गरळावैह, आज न भूप उम्मेद सी ।।
पूरा दुखी पहाड़, रोय-रोय राता थया ।
बळती दये बराड़, अधपत गयो उमेद सी ।।
रोवै रूखंडलाह, कुम्हळाणी जीवण कळी ।
तापै तावड़लाह, अधिपति गयो उमेद सी ।।'

नवलदान ने महाराव सर केसरीसिंह (सिरोही) के वैकुंठवासी होने पर यह मरसिया रचा है—

'विमल धरम धरवरम, परम पथ जोग प्रकाशक,
शरण अभय निर्शरण, तीव्र तरणिय अरि त्रासक।
कुशल काछ दृढ वाक्य, नैमवृत अडग निभावन,
पंडित कवि प्रतिपाल, पाठ प्रोक्ता श्रुति पावन।
निर्णय जु सुभासुभ गुनकरन, हद समाज दंभी हरन,
नवलेश कहत केहरी नृपत, स्वर्ग गयो अशरन शरन।।'

जागीरदारों पर लिखे शोक-काव्य में संखवास ठाकुर प्रतापसिंह (मारवाड़) के गुणों का चित्र खींचते हुए केसरीसिंह ने लिखा है—

'आस बिसासरु आसरो, हो कवियन को खास।
हा! हा!! वह सुरबास किय प्रिय प्रताप सँखवास।।
नामी बीरां-मुकट मण, स्वामी पख गुणसाण।
हो हाँमी कुळ हेतवां, चामीकर चहुवाण।।
धुरी सुभट जोधाणरो, सूर सिपह-सालार।
सुरग सिधातां संभरी, करी बुरी करतार।।
जोंहैं पातल जूटतो, बाँवाळो बळभद्द।
हा! चुहाण-जोडी हरी, हरी करी दुःख हद्द।।'

जवानसिंह ने राजराणा फतहसिह (देलवाड़ा) के चल बसने से चारणों की अपार क्षति बताई है—

'करतौ उपकार दीन हितकारी, नहँ करतौ दत देण नकार।
मरतौ लोभ न लाभ भँडारां, सुध सागर तरतौ संसार।।
सुत अरिसाल ढाल सुभ टांरौ, है उण बिन सेवक बेहाल।
भाल विसाल होय कद भेटौ, पोहमी कद करही प्रतपाळ।।
मता तणौ अडग मकवाणौ, सता धरम जिण रखी सरं।
फता जिसौ धणी को फत ही, खता न देतौ खून खरं।।
रहतां दूर घड़ी नहँ सरतौ, रघुवर खोसी हेम रड़ी।
जातां जीव जड़ी नृप झालौ, पात मोटी कसर पड़ी।।'

ठाकुर जवाहरसिंह (पाटौदी) पर उदयराज ने सोरठे लिखे हैं—

'सेणों रो सिरताज, वीर दलंतो वैरियों।
ओ ठाकुर गो आज, जोधो सरग जवारसी।।

मन जिण रो गिरमेर, सदगुण रो मीठो समँद ।
लाखों रो चित लेर, जग सूं गयो जवारसी ।।
सेवा करी सपूत, वीर छतीसों वंश री ।
रजवालो रजपूत, जातो रयो जवारसी ।।'

अंबादान ने ठाकुर प्रतापसिंह (डिग्गी) पर ३८ सोरठों का एक मर्मस्पर्शी शोक-काव्य लिखा है जिसमें उनके समस्त गुणों का वर्णन है। उदाहरण इस प्रकार है—

'तूटी रीति तमाम, छत्रीध्रम वाळी छिती ।
व्रन चारण विसराम, अरक पतौ आथम्मियो ।।
ईस्वर करी अजोग, तो वियोग वाळी पता ।
उर दुख थयौ अयोग, भूलां किम भीमेण रा ।।
राखण कुळ मरजाद, अधपतियां ढांकण अडिग ।
आवै वर-वर याद, भूलां किम भीमेण रा ।।
मचियौ सोच मयाण, पचियौ नहँ मन प्राजलै ।
गवण सुरंग खांगांण, भूळां किम भीमेण रा ।।
पेटज भरण उपाय, करस्यां म्हैं जग में किता ।
जिय सूं रंज न जाय, तो वियोग वाळी पता ।।'

रामनाथ ने सूर्यमल्ल पर जो गीत लिखा है वह स्वजातियों पर लिखे शोक-काव्य में उल्लेखनीय है। यह अत्यन्त हृदयद्रावक है—

'देस कविंद दूजाह रहिया सो आछां रहो, सामँद गुण सूजाह तो मरतां विनस्यों त दिन ।
करवा अपका जाह सपूती धारै सकळ, रजवाड़ा राजाह सव जग जाणै सूजड़ा ।।
थई मृत्यु थारीह कुण मेटे करतार सूं, खतम लगी खारीह सुणतां कानां सूजड़ा ।
जिण सूं ऊजळ जात दिस-दिस सारै दीसती, रैणव थारी रात सुकवि न जनम्यौ सूजड़ा ।।
थूंक्यौ थुय कारोह गाडण वीकाणै गुड्यौ, हुवै जग हैकारोह सुकवी मरतां सूजडो ।
जळ कायब जस जोग ये सव सायै ऊठिया, भामी कीरत भोग सुरग सिधातां सूजडा ।।'

शंकरदान के लिए रामनाथ का उद्गार है —

'शिकस्या देवण साथ, हो शंकर स्त्रष्टि तणो ।
(अव) किण संग करस्यां वात, शेर सुवन सुरगां गयो ।।'

भवानीदान कृत सूर्यमल्ल विषयक यह मार्मिक मरसिया भी महत्त्वपूर्ण है—

'आई राशी आदि यह, सुणियो कायब सार।
जब सूजा में जाणियौ, ईहग तूं अवतार॥
कायब रचना तैं करी, आतम बुद्धि उदार।
जेम सिकंदर पूतळी, नीरधि पंथ निवार॥
माण इखू रस घट भयो, चूंछ भयो कवि चंद।
नर वाणी सूजा करी, वर वाणी सुर वन्द॥
हायन एक हजार में, आदि हुवौ नहिं अंत।
सुरसत वाणी सूजड़ा, पढ़ी पदारथ पंत॥'

गुसाई गणेशपुरी ने शंकरदान सामौर के लिए 'गिरवर डिंगल रो गुड़यो, इण मरुधर में आज' 'वळी वीकपुर वाजतो, हो शंकर सिरताज' कहकर अपना शोक प्रकट किया है।

ईश्वरदान की दृष्टि में राजस्थान केसरी केसरीसिंह के उठ जाने से क्षत्रिय एवं चारण जाति की जो क्षति हुई है वह अकथनीय है—

'तो जातां हीणी थई, खत्र वट चारण खान।
केहर ! किण विध कह सका, मन री व्यथा महान॥'

चंडीदान सांदू ने कविराजा दुर्गादान (कोटा) के निधन पर कई गीत लिखे हैं। निम्न गीत में उनके गुण-वर्णन के साथ ईश्वर को कोसा गया है—

'इळ सत रौ दुरग अथमायौ, चित म्हारौ घायौ कर चोट।
लहरी दया-दया नहं लायौ, खगपत चढण करी वड खोट॥
देसभगत विदवान दयानिध, भलपण रौ सागर कुळभूप।
कीधन पाय लियौ करुणाकर, रे हरि विणठ जात रौ रूप॥
दण गंभीर अनूपम गाढम, मृदुभाखी राजा महियार।
जाण अजाण वर्ण जोखमियौ, कीधौ अक्रत घणौ करतार॥
महा उदार मोट मन महपत, कायब कंत अटळ कुळ काण।
असमय में कविराज उठायर, (तैं) भूल करी भारी भगवाण॥
जिता सास जीसां की जोरी, सहसां औ सांसौ घर सीस।
कहसां विलख न्याय नहं कीधौ, अनरथ वड़ कीधौ जग ईस॥'

रूपसिंह ने इन्द्रबाई रत्नू एवं राजस्थान केसरी केसरीसिंह पर शोक काव्य लिखा है। प्रत्येक का उदाहरण क्रमशः यहाँ दिया जाता है—

१. 'मेळो रहतो मंडियो, तव दरसण रै काज।
खटकै हिय देख्यां खुड़द, आप बिना वा आज ।।
जनमी तूं जिण जात में, वा भारत व्है आज।
एका रुं फिर इन्द्र माँ, आवो रावण लाज ।।'

२. 'हो सांचो कविराज, गो जग तज गो लोक में।
भो सूनो सह आज, कवि कानन बिण केहरी ।।
वन केहर री हाक तो, पल में ही मिट जाय।
(पण) अमर नाद कवि सिंघ री, जतन क्रोड नहँ जाय ।।
चारण केहरि चल बसा, रहिगे नकली रूप।
जैसे वारिधि नाम के, बाजत पय बिन कूप ।।'

ब्रजलाल कविया ने भांडू (शेरगढ़) निवासी करणीदान के प्रति शोक व्यक्त करते हुए कहा है—

'रोहड़ कुळ रा रूप, आला मांडू ऊपनौ।
भव अगलै रा भूप, कुळ में फिर आजे करन ।।'

इसी प्रकार यशकरण ने ठाकुर गोपालसिंह (खरवा) के निधन पर यह मरसिया लिखा है—

'खरवा वाळो खोह रो, बीत गयो वो बाघ।
सूरापण साहस तणो, अब कुण करसी आघ ।।
गूजरियो गोपाल, विधवा रजपूती बणी।
होसी कवण हवाल, अब इण राजस्थान रो ।।
गोपाला हिव घाव, थारा बिन कोजो थियो।
एक रस्या फिर आव, भारत रो कज्जा भलो ।।'

राष्ट्रीय नेताओं तथा प्रसिद्ध चारणेतर लेखकों में सांवलदान ने सुप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता गौरीशंकर ओझा के प्रति काव्यबद्ध श्रद्धांजलि अर्पित की है—

'लीधो हर लूटेह, भारत इतिहासी भवन।
ओझा बिन ऊठेह, हिंदवां रै ज्वाळा हियै ।।
ओझा भल ओप्योह, हीये भारत हार ज्यूं।
करतावर को प्योह, हार हर्यो इतिहास रो ।।
जणही नहँ जणणीह, संकर गौरी द्विज जिसा।
जस सारै नर-जीह, ओझो सह भारत अमर ।।

मरसी वे जग मांय, करतब जे नहँ कर सक्या ।
मुख नर-नर रै मांय, ओफ्रौ इतिहासी अमर ।।
भारत देस अभार, तोसूं हीराचँद तणा ।
सुगँध करी संसार, अमर लता इतिहास री ।।'

रूपसिंह बारहठ ने लोकमान्य तिलक पर कवित्त लिखकर अपनी संवेदना प्रकट की है—

'हाय तिलक भारत तनय, तिलक गंगधर बाल ।
सुरग तिहारे गमन ते, है हमरो जो हाल ।।
सुनै कौन जासौ कहैं, हाय विरह की बात ।
आवत तव गुन याद जब, रोवत सब अध रात ।।
तात त्रिलोकी तें विनय, है मम बारम्बार ।
तनय हिंद को तिलक सो, दीजे सरजन हार ।।'

लालसिंह ने कराल काल के झंझावात में राष्ट्रपिता गाँधी जैसे रत्न के खो जाने पर अपार शोक प्रकट किया है—

'विविध विचार बांधि वरणंत है लाल आज ।
हाय ! काल आंधी मांझ, गांधी रत्न खो गयौ ।।'

इसी प्रकार यशकरण खिडिया ने प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के निधन पर गहरा शोक प्रकट किया है—

'लाल बहादुर निधन से, देश हुआ दुःख लीन ।
जहँ तहँ जनता तड़पति, जैसे जल बिन मीन ।।'

और रूपसिंह को विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर के उठ जाने का दुख है—

'गिरा वज्र माँ हिंद पर, दुख बंधन बिच डार ।
रक्षा-बंधन दिन रवी, गो भव-वध निवार ।।
हरि कीधो की हाय, हिन्द खो हर ने हमें ।
इळ हित इक अध्याय, आफ़त रो जोड़्यो अधक ।।'

शोक की यह प्रवृत्ति मनुष्यों तक ही सीमित नहीं, पशु-पक्षियों तक भी फैली हुई है। यह लक्ष्य करने की बात है कि चारण कवियों ने अपने परम प्रिय पशुओं के बिछुड़ जाने पर जो आंसू बहाये हैं, उससे उनका रागात्मक स्नेह प्रकट होता है। जसवंतदान कविया अपनी गाय के चल बसने पर कहते हैं—

'घेरो काळ ज घालियौ, कारी लगी न काय ।
देखो हीरादेर में, (म्हारी) गारत हुयगी गाय ।।'

इसी प्रकार व्रजलाल कविया को अपने पाडा के मर जाने का अपार दुख है—

'गुण गाडा सुरगां गयो, असली पाडा ओध ।
तूं लाडा भैंस्यां तणा, जाडा महखां जोध ।।
सींग सुघट्टां अंग सांवळ, अंजण थट्टां अंग ।
सुरग भपट्टां साजणो, जूटण भट्टां जंग ।।
महिखी सुत माडाह, कांकड़ पग काडा कदन ।
पड़तां घर पाडाह, तो ताडा मांही तिरै ।।'

९. **सती-माहात्म्य**— इस काल के सती-माहात्म्य में सूर्यमल्ल, उदयराज, भारतदान एवं अर्जुनसिंह की रचनायें उल्लेखनीय हैं । सूर्यमल्ल ने 'सती रासो' नामक रचना का निर्माण किया किन्तु वह उपलब्ध नहीं होती । ठा० बलवंतसिंह ने इसकी एक प्रति अलवर में बताई है जिसके कुछ पद 'बलवद्विलास' में भी आये हैं । यह रचना भिणाय (अजमेर) की रानी के सती होने पर वचन निर्वाह हेतु लिखी गई थी ।

उदयराज एवं भारतदान दोनों के भाव का विषय एक है जिसमें ठाकुर जबरसिंह (बेड़ा) की पत्नी सुगन कुंवर के सतीत्व की महिमा गाई गई है । उदाहरण के लिए यहाँ उदयराज के ये दोहे दिये जाते हैं—

'गई हरी गुण गावती, सती पती रै संग ।
सुगन कँवर तोनै सदा, रजपूताँणी रंग ।।
जळी अगन में जीवती, अेक न मुड़ियो अंग ।
सत कीधौ सुगनां सती, रजपूताँणी रंग ।।
सौ वरसाँ पैली सती, आगे हुती अभंग ।
सुगन हुई इण पुळ सती, रंग भटियाँणी रंग ।।
जद खूटौ पत जबरसी, गुण जैंरा जळ गंग ।
संग जळी सुगनां सती, रंग भटियाँणी रंग ।।
गौ राँणावत जबरसी, अंत सुरत अरधंग ।
सत करगी सुगनां सती, रंग भटियाँणी रंग ।।'

अर्जुनसिंह ने ठा० जीवराज (रूपनगर) की पत्नी खुशाल कुमारी के सती

होने के विषय में कई छप्पय एवं गीत लिखे हैं जिनमें सती होने की रीति का उत्तम ढंग से वर्णन किया गया है। यथा—

'मंजन अंजन करे, करे पौसाक सुरंगी।
कुटंब भ्रात मिल करे, दुनी दुख होय दुरंगी॥
भूखण धारण करे, करे त्याग न घर अंगण।
करे अतर भर कपड़, अमरपुर करे उमंगण॥
चाळकांछात लारै चलण, इन्द्र परी जिम आवळी।
जतरी न हुई परणी जदी, अतरी हुई उतावळी॥'

कवि ने प्रतीक शैली में सती की विचित्र वेश-भूषा का वर्णन करते हुए लिखा है—

'राचै मन इसौ न छत्री रहियौ, वीर समोभ्रम गयौ वर।
बोलै नहीं उणमणी बैठी, कीरत भगमा भेख कर॥
सूधौ बाळ न नकौ सँवारै, काजळ सारे नयणै केम।
भूपत गयौ जीवसा भोगण, जोगण पंगी थाई जेम॥
आछै चित जिण नै आदरतौ, अत रीझां देतौ उरड़।
बीरम तणा जिसौ इण वारै, भेख उतारै किसौ भड़॥
किरत एम कहै अनकारां, पत नहँ दूजौ सूरत पाक।
ऊ जिवराज फेर जग आवै, पहखै भूखण पोसाक॥'

तेजदान आढ़ा ने चारण महासती सजनाँ बाई की पावन स्मृति में इस गीत के द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की है—

'वरण न आवै जीह मने इण वार रौ, भुयण किरतार रौ धरण भजनां।
पैंड असमेद रा भरण अन पार रौ, साथ भरतार रौ करण सजनां॥
कराळों वात सह जगत लागी कहण, बराळों पाल मुख ओपियो वांन।
थिती मन त्रंवाळों साद विखमे थियौ, सती झाळों विचे कियौ असनांन॥
उमाया देव वरखंत फूलां अतर, निभाया वचन पट ग्रंथ माथै।
अंत नंदराम रै सुणे ऊठी उमंग, सिंधु सुख भाळ री कंत साथे॥
दिखावत साच देवत पणौ दुनी मझ, चित सधर लखावत सोह चाढ़ा।
रयण थिर नांम जुग चार लग रखावत, अखावत ऊजळा किया आढ़ा॥

इसी प्रकार चारण महासती सायवाँ वाई के पति का साथ देने पर गुलजी आढ़ा का यह गीत देखिये—

'निरख असाचो जगत पिव नेह साचो निरख, परख तंत हरीरस अछक पीधौ ।
सुणे वे हरख निज तन तजण सायबां, कंत संग तरण मन हरख कीधौ ।।
वेद तंत सार मत तोलड़ा विचारे, ग्रहे अण डोलड़ा सरण गाढी ।
दिराया ढोलड़ा ध्राह ऊपर दुसह, उबारण बोलड़ा आप आढी ।।
मिटावण फेर जांमण मरण मासती, चरण असमेद रा भरण चाली ।
ध्यांन तारण तरण राम उर बीच धर, हरख कर कंत कर संग हाली ।।३
ऊजळी रहाई कीत उर ऊजळी, पतिव्रता उमाहे ऊमा पाहै ।
जांण तन वृथा लालां अगन जळ गई, मळ गई जोत अग लोक माहै ।।'

१०. **प्रकृति-प्रेम**— आधुनिक शिक्षा के फलस्वरूप इस काल में चारण कवियों का ध्यान प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ अतः उन्होंने इसका सुन्दर चित्रण किया है । मुख्यतः यह चित्रण दो रूपों में पाया जाता है— आलम्बन रूप में तथा उद्दीपन रूप में । आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण करने वाले कवियों में फतहकरण, किशनदान, प्रभुदान, लक्ष्मीदान, मोडजी, चैनजी, फतहदान और उद्दीपन रूप में चित्रण करने वाले कवियों में शिवबख्श, ऊमरदान, अर्जुनसिंह, पाबूदान आसिया, मुरारिदान आसिया, अमरसिंह देंपावत आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । कहीं-कहीं एक ही कवि में ये दोनों रूप पाये जाते हैं । अन्य फुटकर कवियों ने भी इस ओर अपनी रुचि प्रदर्शित की है जिनमें हरीसिंह, मूळजी, रणजीतदान आदि के नाम आते हैं । विस्तार-भय से यहाँ कुछ चुने हुए कवियों का विवेचन प्रस्तुत किया जायगा ।

फतहकरण कृत 'पत्र प्रभाकर' में राजस्थान की रमणीय नगरी उदयपुर की प्राकृतिक शोभा का वर्णन है जिसे पढ़कर हृदय पुलकित हो जाता है । एक उदाहरण इस प्रकार है—

'लंगे घन नीलक कंठ ललाम, शुधोज्वल सन्तत है सह वाम ।
शशी शिर पैं जलजंत्र विशेष, उदैपुर के गृह तुल्य उमेश ।।
स्वभावज बृक्ष लतासुम तोय, गृहो गृह बाग बिना श्रम होय ।
द्विरेफ जहाँ मधुछत्त बनाय, सकाकलि कोकिल शब्द सुनाय ।।
रचै शिखि ताण्डव बोलत कीर, सुशीतल मंद सुगंध समीर ।
लसै गृह वापि सकंज ललांम, करै तिय कर्णन पुष्प सकाम ।।
सदा जल शीतल निर्मल जास, हिमानिय को कि करै उपहास ।
पराभव ग्रीष्मक कोकि प्रसिद्ध, जहाँ घन को ननु आश्रय सिद्ध ।।'

इतना होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कला की दृष्टि से कवि का चित्रण सफल नहीं बन पड़ा है क्योंकि पांडित्य प्रदर्शन के लोभ में सारे ग्रंथ में दुरूह कल्पनाओं एवं अलंकारों की प्रचुरता है। साथ ही चित्रात्मक वर्णन के स्थान पर वस्तुओं का परिगणन ही अधिक कराया गया है। यथा 'पिछोला' की महिमा गाते हुए कवि कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है—

'स्वभू हरनाभिज ब्रह्म समांन, पुरंदर सागर तीर्थ प्रमान।
नमो सरनाथ पिछोलक नांम, करां नुति पीवन जीवन कांम ।।
तुही इक दान अहर्निश देत, तुही सब जंतु तृषा हर लेत।
तुही परमारथ धारत देह, तुही कबहू न दिखावत छेह ।।
तुही शरणागत रक्खनहार, तुही करता सबको उपकार।
तुही जग निर्मित निर्मल काय, तुही कुल तीर्थन तैं अधिकाय ।।'

किशन ने अर्बुद की शोभा का वर्णन करते हुए वहाँ के फल-फूलों के नाम दिये हैं—

'चंपक कदंब अंब जंबु वो गुलाब वृंद, केतकी रु केवरे चमेली पुष्प छावे हैं।
दाड़िम अनार दाख सेवती जसूल केते, मोगरे नरंगी नींबू ग्राम कूँ निसावे हैं ।।
सँकुलित नाना व्रछ कोकिल मयूर पुंज, डम्मर सुगंधी तें भौंर छक जावे हैं।
अष्टोत्तर तीरथ को प्रगट प्रभाव लियें, अरबुद की शोभा कैलाश सी दिखावे हैं ।।'

मुरारिदान आसिया ने प्रकृति के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों रूपों का चित्रण किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। पत्नी के वियोग में चैत की चाँदनी उन्हें कितनी दारुण लगती है ?—

'दीजिये 'सज्जन' रान रजा मन, मज्जत है वह सिंधु कढे जिन।
दैत की भांति लगै अति दारुन, चैत की चांदनी चंदमुखी बिन ।।'

वर्षा-ऋतु में सर्वत्र हरियाली देखकर कवि की तबियत भी हरी-हरी हो जाती है। मुरारिदान आसिया के ही शब्दों में—

'कारी घटा घर जात ढरी-ढरी, फेर 'मुरार' भरी-भरी आवे।
बीज परी-परी सी ह्वै चढे जु, डरी-डरी दौर कहां लपटावे ।।
नाचत कुंज गरी-गरी मोर, घरी-घरी चातक बोल सुनावे।
हाय हरी बिन भूमि हरी-हरी, हेरि के आँखें जरी-जरी जावै ।।'

शिवबख्श कृत 'षड् ऋतु वर्णन' प्रकृति पूजा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें १३० झमाल हैं जिनमें ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ अलवर की शोभा का सुन्दर वर्णन किया गया है। प्रकृति के ऐसे रंग-विरंगे चित्र अन्यत्र दुर्लभ हैं। महाराजा बख्तावरसिंहजी के समय में बना हुआ जलाशय कैसा शोभायमान हो रहा है और कितना सुन्दर लगता है उस पर बना हुआ राजमहल! —

'सोभा अति सागर तणी; जो नहि बरणीं जाय।
देखि भर्‌यो मंजार दधि, पय भोलैं पी जाय॥
पय भोलैं पी जाय, भलो इण भाँत सूं।
हंसा संभ्रम होय, क्षीर सिंधु खाँत सूं॥
बणियो ताल विहद्द, बखत नृप वार रो।
उण पर अधिक अराम धाम, छत्र धार रो॥'

वहाँ जल भरती हुई पनिहारिनों को देखकर कवि ने जो कल्पना की है, वह सर्वथा द्रष्टव्य है—

'महलां तळ छळियो महण, सागर जल सरसार।
आवै मिल लंझा उठै, पंणघट पर पणिहार॥
पंणघट पर पणिहार, नीर कज्ज नीसरी।
श्रीफल तणै प्रमाणक, शोभा शीसरी॥
कच वैणीं गुंथि कुसम, लपेटा लागणीं।
साँपड़ि क्षीर समुद्रक, निकसी नागणीं॥'

सावणी तीज के दिन इस जलाशय को देखकर लोगों का हृदय-सागर उमड़ आया है। सुरंगे ओढ़ने ओढकर पद्मिनी नायिकायें अट्टालिकाओं पर चढ़कर लहरों का आनन्द मन भरकर लूट रही हैं—

'आय सांमणीं तीज अब, सरसांमणी सनेह।
ऊठि घटा उतराव सूं, छूटि पटा अणछेह॥
छूटि पटा अणछेह, मेह झड़ मंडवै।
चमंकि छटा चहुँ ओड़, घटा घूमंडवै॥
सुरंग दुपट्टा शीस घटा सुघटा घणीं।
लहर अटा चढ़ि लेत, पटा भर पदमणीं॥'

मेघों का गरजना और बिजली का चमकना, कभी प्रकट होना और कभी

छिप जाना यह दृश्य ऐसा दिखाई देता है मानो बिजली बादल से आँखमिचौनी खेल रही हो—

'झुकि बादल लागी झड़ी, उघड़ै घड़ी न इंद।
बायु ऋहूं बागी बहण, शीतल-मंद-सुगंद ।।
शीतल-मंद-सुगंद, वायु ऋहूं बाजावै।
मधुरो-मधुरो मेह क, गहरो गाजवै ।।
छटा चमंकि छिप जात, घटा मधि यों घणीं।
मिलि खेळत घंण माँहि, मनौं तुक मीचणी ।।'

कवि ने परम्परागत साहित्यिक रूढ़ियों-को भी सहृदयता के साथ अपनाया है। वर्षा-ऋतु के फलस्वरूप वसुधा का यह नव श्रृङ्गार बड़ा ही आकर्षक है—

'हरिया तरु गिरवर हुवा, पांचरिया बन पात।
सर तालर भरिया सुजल, बसुधा सबज बनात ।।
बसुधा सबज बनात, बिछायत ज्यौं बणीं।
जिलह ओस कंण जोति, कि नां हीरा कणीं ।।
इंद बधू अण पार, क बसुधा बिरारी।
मनु तूटी मणिमाल, मदन महिपत्तरी ।।'

ऊमरदान की प्रकृति ऋषि दयानंद के शुभागमन से लहलहा उठी है—

'अन्त असाड दयानन्द आयो, छोणी ज्ञान घुमड घण छायो।
सावण हरिकर सुख सरसायो, भादो अम्मृत झड़ बरसायो ।।
बहे व्याख्यान बळोबळ वाळा, नीर निवाण ताल नद नाळा।
पड़े प्रेम घर-घर परनाळा, जुगति जळ मेटी त्रिस ज्वाळा ।।'

और शोक में यही प्रकृति अर्जुनसिंह द्वारा चित्रित खुशालकुमारी को सती होने के लिए प्रेरित करती है—

'परवाई वज पवन, वाहळ अनड़ां रा वाजै।
दिस-दिस रींछी दौड़, छटा झळमळ छत छाजै ।।
हर वल बुग पंथ हलै, स्याम घण वदळ सुरंगा।
वन गेहरा रँग वणै, तणै इँद धनख दुरंगा ।।
धूंक धार अखँड मोरां कुहक, गहरै अंबर गाजतां।
खुसहाल उमँग हरख र चली, वर सँग ढोल वजावतां ।।'

हरीसिंह ने अठारह वर्ष की आयु में अपने भाई जसकरण को सर्वप्रथम सवैये में एक पत्र लिखा जो उनके प्रकृति-प्रेम का सूचक है—

'घुमंडी इत्त सावन की जो घटा, बिच बादल के बिजली झलके।
हरियाली विलोकी में केकि नचे, सुउदग्ध वियोगन के दलके।।
सरितापति हूत्त मिले सरिता, लघु खोय न माज मधु ढलके।
जसकरण पति घर आवत ना. सखी मोही गयो छलिया छलके।।'

मूळजी कविया ने मंडोर मार्ग पर स्थित 'किशोर बाग' के विषय में यह उद्गार प्रकट किया है—

'कोयलियों गहका करै, मुधरा बोलै मोर।
बागों हुई बिछायतों, कमधज भूप किसोर।।'

रणजीतदान लाळस ने 'सूरम दे रूपक' नामक ग्रंथ में भांडू स्थान का जो वर्णन किया है, वह उनके प्रकृति-प्रेम का परिचायक है—

'इळ भांडू थळ ऊजळा, तरवर वधतै तौर।
नाळ हवाई नौबतां, जस वाजा घण जोर।।'

प्रकृति के आधुनिक कवियों में स्व० अमरसिंह देपावत का विशिष्ट स्थान है। संदेह नहीं कि इस यशस्वी कवि ने 'मेघदूत' का राजस्थानी में सफल भाषान्तर कर साहित्य को समृद्ध बनाया है और सिद्ध कर दिया है कि राजस्थानी भी प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को प्रकट करने में अन्य भाषाओं के सदृश सक्षम है। इस भाषान्तर में शब्द और भाव दोनों की समुचित रक्षा हुई है। चारण साहित्य का यह प्रकृति-वर्णन उनकी अमर लेखनी से और भी खिल उठा है। उदाहरण देखिये—

'परभाते शिप्रा तट रो बह बायरियो झीणो-झीणो।
मधरी कूंज लियाँ कुरजाँ री पोयण रे गंध रस भीणो।।
सुख सेजां में मन-मेळू रे बोल जिसो मन मोद भरे।
सिथळ अंग रति रस सूँ धण रो सहलावे तन क्लेश हरे।।
झीणी-झीणी महक झरोखां उड़-उड़ घन मनड़ो हरसी।
नाच-नाच मन मुदित मोरिया कोड घणां थां रा करसी।।
महल माळियाँ झाँक झरोखाँ मीत मौज भरपूर करे।
पी-पी छिव वाली नैणां सूं तन थाकेलो दूर करे।।

नीळकंठ उणियार निरख घन हर गण घणां कोड करसी ।
पूजी-जे हर घणे हेत सूँ मन चींत्या कारज सरसी ।।
कमळ फूल कामण केसां री गँध पती तट तणी समीर ।
ले सुगन्ध विचरे उण बागाँ घन मेटण तन मन री पीर ।।'

११. ऐतिहासिक काव्य— इस काल के ऐतिहासिक काव्यकारों में सूर्यमल्ल मिश्रण, श्यामलदास, बालाबक्स एवं किशनजी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वैसे तो वीर काव्य के रचयिताओं ने इतिहास की सामग्री प्रदान की ही है फिर भी ऊमरदान एवं केसरीसिंह (मेवाड़) ने महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लिपिबद्ध कर बड़े उपकार का कार्य किया है। अन्य ऐतिहासिक रचनाकारों में मोडजी आसिया, पदमजी आढ़ा, उदयभाण बारहठ, शिवदान सांदू, सागरदान कविया, हरीसिंह आदि का विस्मरण नहीं किया जा सकता। अस्तु,

सूर्यमल्ल कृत 'वंश भास्कर' इतिहास है अथवा काव्य, इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद है। राजस्थान के चारण-बंधुओं ने दोनों का अपूर्व सामञ्जस्य बताते हुए कवि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। श्री कृष्णसिंह सौदा के शब्दों में— 'हम शपथपूर्वक कह सकते हैं कि ऐसा सत्यवक्ता इतिहासवेत्ता अद्यावधि कोई नहीं हुआ और अब होना भी कठिन है।'.... इसके विपरीत डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का कथन है— 'सूर्यमल्ल एक अच्छा कवि था परन्तु इतिहासवेत्ता न होने से उसने वंशभास्कर में प्राचीन इतिहास भाटों की ख्यातों से ही लिया है।' हमारी तुच्छ सम्मति में सूर्यमल्ल कवि अधिक था, इतिहासवेत्ता कम। इतिहास तो उनसे लिखवाया जा रहा था जिसकी सामग्री के दो स्रोत थे— १. प्राचीन काव्य, नाटक, भाण, चम्पू आदि में वर्णित घटना। २. वंशावली रखने वाले भाटों की पोथियाँ। प्रथम स्रोत शुद्ध नहीं माना जा सकता क्योंकि काव्य और इतिहास का क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। आज की वैज्ञानिक शिक्षा पुराणों के ब्यौरों को संदिग्ध दृष्टि से देखती है। इतिहासवेत्ता के रूप में सूर्यमल्ल की सबसे बड़ी असफलता तो यह है कि वह १६ वीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) तक कृत्रिम पीढियाँ रखने वाले बड़वा भाटों से प्रभावित है। इससे कहीं-कहीं झूठा विवरण भी आ गया है किन्तु इसमें उनका इतना दोष नहीं। उन्होंने तो सामग्री मिलने पर उसका उसी रूप में समावेश कर दिया है। सूर्यमल्ल ही क्यों, राजस्थान का कोई भी चारण कवि इतिहास को उस दृष्टि से नहीं देखता, जिस दृष्टि से आज का इतिहासकार देखता है। वह तो ऐतिहासिक भूमि पर काव्य का महल खड़ा

करने में ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझता है। १६ वीं शताब्दी से आगे का इतिहास अपेक्षाकृत ठीक है। इसकी घटनायें विश्वसनीय हैं जिनका उपयोग अन्य लेखकों ने भी किया है परन्तु इसमें भी छान-बीन की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। कहना न होगा कि कवि का लक्ष्य कविता की ओर होने से ऐतिहासिकता दब गई है। इन कारणों से यह एक ऐसा ऐतिहासिक काव्य बन गया है जिसमें काव्य का अंश अधिक एवं इतिहास का अंश कम है। इतना होते हुए भी इसमें बूंदी राज्य का विस्तृत वर्णन है तथा राजपूताना के भिन्न-भिन्न राज्यों एवं राज-वंशों का भी संक्षिप्त इतिहास दिया हुआ है। इसके साथ गौण रूप से अनेकानेक विषयों एवं कथाओं का वर्णन पृथक महत्त्व रखता है।

श्यामलदास कृत 'वीर विनोद' इतिहास का एक प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें मेवाड़ का इतिहास दिया गया है पर प्रसंगवश जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर आदि अन्य राज्यों एवं बहुत से मुसलमान बादशाहों का विवरण भी इसमें आ गया है। इससे ग्रंथ की उपादेयता और भी बढ़ गई है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, बादशाही फरमानों इत्यादि का इसमें अपूर्व सँग्रह हुआ है।

बालाबख्श कृत 'नरूकुल सुयश' १३४ झमाल छंदों का एक छोटा सा ग्रंथ है जिसमें कवि ने अलवर के राजा मंगलसिंह का वृतान्त दिया है। इसमें एक धार्मिक घटना को लेकर मुसलमान एवं राजपूतों के युद्ध का विस्तृत वर्णन है जिसका उल्लेख इतिहास-ग्रंथों में नहीं मिलता। कवि ने प्रमुख-प्रमुख योद्धाओं के नाम भी दिये हैं।

किशनजी कृत 'उदय प्रकाश' की ऐतिहासिक महत्ता कम नहीं है। इसमें ४५५ छंदों में कवि ने डूंगरपुर के महारावळ उदयसिंह का जीवन-चरित दिया है। साथ ही उनके पूर्वजों पर भी यत्किंचित प्रकाश डाला गया है। इस ग्रंथ का निर्माण महारावळ की आज्ञा से हुआ था।

ऊमरदान ने बताया है कि ऋषि दयानन्द आषाढ़ महीने के अंत में जोधपुर आये थे और पाँच मास तक जोधपुर के हजारों नर-नारियों को वेदोपदेश देते रहे। प्रसिद्ध वेश्या नन्ही भगतन ने अपने एक विशेष कृपा-पात्र को लालच दिया और उसके कहने से ऋषि के ब्राह्मण रसोइये ने कलिया (कल्लाजी) जगन्नाथ को बहकाया जिसने उन्हें दूध में विष घोलकर पिलाया। इससे वे चिरशांति की गोद में सो गये।

केसरीसिंह (मेवाड़) का इतिहास-प्रेम उनकी रचनाओं में भली भाँति प्रकट हुआ है। प्रताप, राजसिंह, दुर्गादास एवं जसवंतसिंह के स्वभाव पर कवि ने सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है और महत्त्वपूर्ण घटनाओं की तिथियाँ भी दी है। युद्ध में उपस्थित उसने दोनों ओर की सेनाओं के सुभटों के नाम भी दिये हैं।

इसी प्रकार मोडजी आसिया कृत 'पाबू प्रकाश' (बड़ा), पदमजी आढ़ा कृत 'जोरजी चांपावत री झमाळ', उदयभाण बारहठ कृत 'बूलीदान री झमाळ', शिवदान सांदू कृत 'जोरजी चांपावत री झमाळ', सागरदान कविया कृत 'रतन जस प्रकास' एवं हरीसिंह कृत 'जोधपुर महाराजाओं की तवारीख़' नामक रचनायें भी ऐतिहासिकता से ओतप्रोत हैं।

१२. भाषा, छन्द एवं अलंकार— इस काल में राजस्थानी भाषा का रूप बदलने लगा और उसमें अन्य भाषाओं के शब्द भी निःसंकोच अपनाये जाने लगे। ब्रजभाषा का प्रभाव तो पहले ही पड़ चुका था अतः चारण कवि उसके शब्दों से वंचित नहीं रह पाये। कतिपय कवि हिन्दी के व्यापक प्रसार को देखकर उसकी ओर भी उन्मुख हुए। साथ ही उर्दू, फारसी यहाँ तक कि अँग्रेजी के शब्द भी राजस्थानी में प्रयुक्त किये जाने लगे। कहने का अभिप्राय यह कि अब भाषा पर वह प्रतिबंध नहीं रहा जो पहले था। इससे शब्द-भण्डार बढ़ा। विशुद्ध राजस्थानी में रचना करने वाले कवियों में सूर्यमल्ल मिश्रण, कमजी, भवानीदान, शंकरदान सामौर, हरीदान, हरसूर, शिवबख़्श, कृष्णसिंह, भीखदान, मोतीराम, मोडसिंह, श्यामलदास, राघवदान, किशोरसिंह, गुलाबसिंह, सूर्यमल आसिया, साँवलदान, चंडीदान सांदू, अर्जुनसिंह, बिजैदान, रामकरण महडू, हरदान गाडण, लालसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सूर्यमल्ल कृत 'वीर-सतसई' की भाषा उत्तरकालीन राजस्थानी का उत्कृष्ट उदाहरण है किन्तु रूढ़ि का पालन करने से कहीं-कहीं प्राचीन प्रयोग भी पाये जाते हैं। उन्होंने नाटकीय शैली में चमत्कार उत्पन्न करने की चेष्टा की है। बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य का भी पुट दिया गया है। शिवबख़्श का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उन्होंने भी संलाप-शैली को अपनाया है। अन्य कवियों में भाषा का समुन्नत रूप देखने को मिलता है। कुछ कवि ऐसे हैं जिन्होंने भाषा के सरल रूप की ओर ध्यान दिया है। इनमें ऊमरदान, अमरदान, बावनदान रतनू सुपुत्र श्री मुरारिदान, सन् १८८०-१९४० ई०, चौपासनी (जोधपुर), गणेशदान लालस (चांचळवा), फतजी सांदू, हिलोडी (नागौर), नाथूसिंह, उदयराज, आदि मुख्य हैं। ऊमरदान की भाषा

व्यावहारिकता के समीप पहुँच गई है। अतः सरलता, स्वाभाविकता एवं सजीवता उसके आवश्यक गुण हैं। उसमें उच्च कोटि के पांडित्य के दर्शन नहीं होते। प्रायः सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है। भाषा चुभती हुई है। बीच-बीच में मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी आ गई हैं। साथ ही उसमें हास्य-व्यंग्य का पुट भी दिया गया है। अमरदान एवं नाथूसिंह की भाषा सीधी-सादी एवं कर्णमधुर है। शेष कवियों ने जन-साधारण की रुचि को ध्यान में रखते हुए भाषा को क्लिष्ट होने से बचाया है। सूर्यमल्ल मिश्रण, गोपालदान, गणेशपुरी, सम्मानबाई, मुरारिदान आसिया, शिवबख्श, जुगतीदान, बालाबख्श, फतहकरण, श्योबख्स, हिंगुलाजदान, केसरीसिंह (शाहपुरा), केसरीसिंह (मेवाड़), जवानसिंह, शेरादान, बलदेवदान, बलवंतसिंह, पाबूदान, जोगीदान, रामदान, रूपसिंह, आईदान प्रभृति कवियों ने ब्रजभाषा में भी रचनायें लिखी हैं अतः इनमें भाषा का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। सूर्यमल्ल मिश्रण की भाषा का दूसरा रूप 'वंशभास्कर' में देखा जा सकता है। यह एक अत्यन्त गूढ़ एवं क्लिष्ट रचना है। इसमें शब्दों की मनोनुकूल तोड़-मरोड़ देखने को मिलती है। आचार्य केशव के सदृश यहाँ भी पांडित्य-प्रदर्शन हेतु नवीन शब्दों का आविष्कार मिलेगा अतः कवि को शब्दों का जादूगर कहा जा सकता है। केवल ब्रज ही नहीं, षड्-भाषा प्रवीण होने के कारण इन पर अनेक भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। यही बात गोपालदान में देखने को मिलती है। उनमें अरबी, फारसी, संस्कृत एवं डिंगल शब्दों के प्रयोग के साथ खड़ी बोली एवं पंजाबी का भी पुट है। गणेशपुरी के कवित्त-सवैयों की भाषा पिंगल के सन्निकट है। 'वीर विनोद' में क्लिष्ट शब्दों की बहुलता के कारण प्रसाद गुण का लोप हो गया है। शेष कवियों की रचनायें भी ब्रजभाषा की शब्दावली से ओतप्रोत है। केसरीसिंह (शाहपुरा), ऊमरदान, शम्भूदान, मुरारिदान कविया, यशकरण, अर्जुनसिंह, पाबूदान, रामदान, धनेसिंह आदि की रचनाओं में खड़ी बोली के अनेक शब्द आ गये हैं।

आलोच्य काल के कवियों ने अधिकांश में प्राचीन छन्दों का ही प्रयोग किया है। छंद-विविधता इने-गिने कवियों में ही देखने को मिलती है जिनमें सूर्यमल्ल मिश्रण, गोपालदान, गणेशपुरी, सम्मानबाई, ऊमरदान, केसरीसिंह (मेवाड़), किशन आदि के नाम मुख्य हैं। सूर्यमल्ल मिश्रण छंद-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। 'वंशभास्कर' में उन्होंने इस ज्ञान का प्रकाशन किया है।

यह उल्लेखनीय है कि वीर रस की ध्वनि के लिए कवि ने कवित्त, छप्पय आदि छंदों का प्रयोग किया है और इनमें भी अनूठे छन्द दोहे को उपयुक्त माना है। 'वीर सतसई' में रीति की दृष्टि से विशेष प्रयोग भी हैं यथा पारिजाऊ दूहा, रंग रा दूहा आदि। गोपालदान ने रस के अनुकूल ही छन्दों का प्रयोग कर वर्णनीय दृश्य में रंग भर दिया है। उन्होंने दोहा, सोरठा, छप्पय, दुर्मिल, भुजंग प्रयात, मोतीदाम, भुजंगी, त्रोटक, निसाणी एवं पद्धरी छन्दों का बहुलता से प्रयोग किया है। साथ ही त्रिभंगी, बेक्खरी, नाराच, दीर्घनाराच और बेताल का भी प्रयोग देखने को मिलता है। इन विविध छन्दों के प्रयोग में कवि ने चतुराई से काम लिया है। किस वर्णन में अथवा किस विषय में कौन सा छन्द उपयुक्त होगा, इसका कवि को ध्यान है। गणेशपुरी कृत 'वीर विनोद' के छन्द तो ऐसे शक्तिशाली हैं कि पढ़ते-सुनते ही वक्ता और श्रोता का रोम-रोम खड़ा हो जाता है। सम्मान बाई ने अधिकांश में पद, भजन, कवित्त और सवैये लिखे हैं। ऊमरदान ने विविध छंद अपनाये हैं जिनमें छप्पय, शिखरिणी, नाराच, त्रोटक, दोहा, सोरठा, मोतीदाम, मधुभार, गीत सावझडो, लावनी, सवैया, गीत जांगडो, गगरनिसांणी, पंझटिका, कुंडळिया, चौपाई एवं सिलोका मुख्य हैं। इनमें सिलोका की छटा देखने योग्य है। भजनी भक्त होने से ऊमरदान अनेक प्रकार को राग-रागनियाँ भी जानते हैं यथा-राग आसावरी, भैरव, कलिंगड, सोरठ, भैरवप्रभाती, आसा, सारंग, सोरठ पश्चिमी और बिलावल। केसरीसिंह (मेवाड़) का दोहा, सोरठा, कवित्त, और सवैया पर पूरा अधिकार है। किशन ने 'उदय प्रकाश' में दोहा, कवित्त, पद्धरी और त्रोटक छन्द प्रयुक्त किये हैं। फुटकर कवियों ने प्रधानतः दोहा, सोरठा, गीत, छप्पय एवं सवैया छन्द का ही प्रयोग किया है। प्रमुख दोहा-सोरठा लिखने वालों में गोपालदान, रामनाथ रतनू, सुजानसिंह, केसरीसिंह (शाहपुरा), अमरदान, उदयराज, वद्रीदान, औनाड़सिंह विजेदान, हरदान गाडण, केसरीसिंह (मेवाड़) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। गीत के रचयिता तो अनेक हैं जिनमें कुछ प्रमुख नाम ये हैं—कमजी, शंकरदान सामौर, कृष्णसिंह, मोतीराम, जवानसिंह, गुलावसिंह, सूर्यमल आसिया, सांवलदान, औनाड़सिंह, चंडीदान सांदू, अर्जुनसिंह, रामकरण, जोगीदान, अम्वादान, रूपसिंह एवं लालसिंह। इसी प्रकार छप्पय लिखने वालों में शिवबख्श, श्यामलदास, मोडसिंह एवं हिंगुलाजदान के नाम नहीं भुलाये जा सकते। सवैये मुरारिदान आसिया तथा जुगतीदान देथा के हाथ से खिल उठे हैं। इनके अतिरिक्त शिवबख्श ने झमाल छंद का भी सफल प्रयोग किया है।

आलोच्य काल में कवियों की सँख्या अधिक होने पर भी अलंकारों का निर्वाह अत्यन्त कम कवियों में देखने को मिलता है। इस विद्या में सूर्यमल्ल मिश्रण, गोपालदान, गणेशपुरी, कमजी, मुरारिदान मिश्रण, शिवबख़्श, कृष्णसिंह, मोडसिंह, ऊमरदान, जुगतीदान, फतहकरण, रामनाथ रतनू, केसरीसिंह(शाहपुरा), किशोरसिंह, नाथूसिंह, प्रभृति कवि विशेष निपुण हैं। सूर्यमल्ल काव्य-शास्त्र के धुरन्धर पंडित हैं। उनका पांडित्य बाधक बनकर नहीं, साधक बनकर आया है। अतः पांडित्य, अलंकार एवं ध्वनि के योग से जो भाव खड़े किये गये हैं, वे मन पर चोट करने वाले हैं। अन्य आचार्यों के सदृश कवि हाथ धोकर अलंकारों के पीछे नहीं पड़ा है। अलंकारों का समुचित प्रयोग होने पर भी कहीं कोई प्रयत्न नहीं दिखाई देता। उपमायें, रूपक एवं उत्प्रेक्षायें स्थानीय वातावरण से ओतप्रोत हैं। प्रश्नोत्तर अलंकार का विशेष प्रयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्योक्ति, अनुमान, काव्यलिंग, विकल्प, पर्यायोक्ति आदि के उदाहरण भी पाये जाते हैं। कहना न होगा कि वीर रस का वातावरण खड़ा करने में इन अलंकारों से पर्याप्त सहायता मिली है। कहीं एक ही दोहे में स्वभावोक्ति, यमक एवं अनुप्रास इन तीनों अलंकारों को जड़ दिया है। यह उल्लेखनीय है कि कवि काव्य-शास्त्र की बँधी-बँधाई लकीर का फकीर नहीं है। काव्य-शास्त्रियों ने वयण-सगाई अलंकार की अनिवार्यता पर बल दिया है। डिंगल के नियमानुसार इसका प्रयोग निर्दोषता का द्योतक है किन्तु सूर्यमल्ल वीर रस की कविता में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं करते। हाँ, रसानुभूति के लिए इसका प्रयोग अवश्य करते हैं। गोपालदान ने काव्य-रीति के अनुसार स्थान-स्थान पर वर्णन को सजीव करने हेतु उपमा, रूपक, संदेह, उत्प्रेक्षादि का प्रयोग किया है जो सुन्दर है। गणेशपुरी के प्रिय अलंकार हैं– उपमा, रूपक और सन्देह। कमजी ने वयण-सगाई और उत्प्रेक्षा का अच्छा निर्वाह किया है। मुरारिदान मिश्रण की कविता भी बड़ी सानुप्रास है। शिवबख्स का उक्ति-चमत्कार सहज ही में पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींच लेता है। कृष्णसिंह एवं मोडसिंह ने सामान्य अलंकार ही अपनाये हैं। ऊमरदान भी उपमा, रूपक एवं अनुप्रास से आगे नहीं बढ़े। जुगतीदान, फतहकरण, रामनाथ रतनू, केसरीसिंह (शाहपुरा) एवं किशोरसिंह में यही बात पाई जाती है। नाथूसिंह ने अनेक अलंकारों का सफल निर्वाह किया है जिनमें काव्यलिंग, वयण सगाई, यमक, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, दीपक, अर्थान्तर-

न्यास, रूपक, व्यतिरेक, विभावना, तद्गुण, स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, पर्यायोक्ति, अन्योक्ति, परिसंख्या, सम, सहोक्ति, स्मरण एवं भ्रांति मुख्य हैं।

१३. **गद्य साहित्य** – आधुनिक काल (प्रथम उत्थान) तक राजस्थान में गद्य-निर्माण की परम्परा बनी रही किन्तु इसके अनन्तर जब भारत में राष्ट्रीयता की लहर उठी और हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने के प्रयत्न होने लगे तब से प्रांतीय भाषा के मोह को छोड़कर राजस्थान के चारणों ने भी हिन्दी गद्य लिखना आरम्भ किया। एतदर्थ शुद्ध साहित्यिक राजस्थानी गद्य का विकास मन्द पड़ गया। इतना होते हुए भी कुछ लेखकों ने इस ओर अपनी रुचि ज्यों की त्यों बनाई रखी। ऐसे मातृभाषा प्रेमियों में सूर्यमल्ल, गोपालदान, माधवदान उज्वल, केसरीसिंह (मेवाड़), उदयराज, सीताराम आदि के नाम सगर्व लिये जा सकते हैं।

पद्य के सदृश गद्य के क्षेत्र में भी सूर्यमल्ल की सेवायें सराहनीय हैं। 'वंशभास्कर' के बीच-बीच में गद्य का प्रयोग हुआ है। यह गद्य वर्णनात्मक है। उसमें काव्य का पुट पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इस पर ब्रज एवं खड़ी बोली का भी प्रभाव है। यथा—

'रच्छकन की यह सुनि सत्या कह्यो सिंधु के मंथन तैं सुरा, चंद्र, लच्छी हू निकसे ते जैसें सर्व सामान्य भोग्य है तै सै ही पारिजात कों जानों ।। अरु सची कै सकसे पति को गर्व है तो वाके अधीस कों इहाँ आहवकों आनों ।। शक्र कों जानतहू मर्त्यलोक वसिनी मैं पारिजात कों लिवाय जातहों ताकी लज्जा करि जो वलिष्ठ होहु सोही निवारन करहु। तैसें ही रच्छकन की सुनि सची नें सव सुरन सहित सक्र संग्राम कों पठायो ताके हु वर्णन में श्रवन धरहु ।। तहां पास, परिघ, प्रास, कृपान, पट्टिस, द्रुघन, दंड, भुसुंडी, भिंदिपाल, सतघ्नी, सूल, गदा, खट्वां, कुंत, कोदंड, परस प्रमुख सव सस्त्र धारत सुरनके सैन्यनें वासुदेव वेढि लये ।।'

कहीं-कहीं तुकांत गद्य के उदाहरण भी मिलते हैं, यथा—

'इण ही समय राणाँ लक्खण रो पट्टपकुमार अरिसिंह आखेट में रमताँ कोई ग्राम रा परिसर में एक चंदाणा जातिरा हळखड़, रजपूत री पुत्री नूं वळ में अतुळ जाणि प्रसभ-पूर्वक [illegible] गयो। अर के ही दिन उठैंही रहि चंदाणी कुमराणी नूं आधान सहित पिउहर ही मेल्हि [illegible]वो पछैं जिण प्रसवरै समय हम्मीरनाम कुमार जणियो। सोतो वाळकयको आपरी माता समेत पिता, पितामह रा वुलावण रो अवसर न जाणि नांनां रै घर ही रहै।

अर अठी चित्रकूट चंडासिराज हम्मीर रा पुत्र रत्नसिंह नूं सरणें राखि राणा लक्खणसिंह रो मन आपरै आयाण आवता अलाउद्दीन रा अनीकनूं चड चंद्रहास चलावण री चहै ॥'

इसके अतिरिक्त 'वीर सतसई' के सम्पादकों ने राजा-महाराजाओं को लिखे हुए जिन पत्रों के नमूने दिये हैं वे गद्य की दृष्टि से नितान्त उपयोगी हैं। सूर्यमल्ल का गद्य परिमार्जित, पुष्ट एवं प्रांजल है। बलवंतसिंह (भिणाय) के नाम लिखे हुए पत्र की भाषा से इस कथन की पुष्टि होती है—

'हिन्दुस्तान को दिन खोटो छै तीसूं एकता कोई बिरली ठांव ही रह गई छै. पांच बरस पहली अंग्रेजां ने सती होबा की बात मनै करिबा को हुकम सारा ही रजवाड़ा में लगायो तीं पर त्यां-त्यां की जसी-जसी बानगी का जवाब आप आपकी अरजंडी में जाहिर किया त्यां में कोयां का बी जवाब एकता की संगति सूं मिल्या नहीं. तीसूं इंग्रेज भी हंस्या अर बिना एकता का जवाब कोई बी यकीन हुवो नहीं त्यां में कोई ने आपकी धर्म की राह सूं ठीक जवाब लिख्यो छै तो अबी जुदा-जुदा मत का कारण सूं सारां का जवाब छा जस्यो ही मान्यो गयो. एकता होती अर सबको एक जवाब जातो तो सरकार कंपनी में बी मंजूर ही होतो परन्तु हिन्दुस्थान का राजां में तो या बुद्धि रहि गई सो पैला दीन का इंग्रेज लोक वा मुसलमान पैलो बिलायती सूं बापर्‌या छै ॥'....

गोपालदान कृत 'लावा रासा' के बीच-बीच में गद्य की सुन्दर छटा को देखकर चित प्रसन्न हो जाता है। लेखक ने गद्य की तीन प्रमुख शाखाओं—दवावैत, वचनिका एवं वार्ता को सींचकर बड़ा बनाया है। दवावैत लावा युद्ध प्रथम को लक्ष्य करके लिखी गई है जो बड़ी ही ओजस्वी है। भाषा पर हिन्दी तथा ब्रज का प्रभाव है। इसमें तुक का ध्यान रखा गया है। एक उदाहरण दिया जाता है—

'जिस वखत मीर खान, अहलकार दिल मालीक बुलवाये, बड़े-बड़े मीरजादे, अपने डेरू से चलि आये। कमर्दीखान, जाफरीखान, मीरजहान मीर, सलमान खान, यकतारखान, ततार कर्नल जमसेर. बांई दस्त बांई फिर दाहनी दस्त समसेर। उसके बीच मीर मन्नु अरज गुजराई, इस किल्ले में बहुत सी मालियत बतलाई। अपनी फौज का भय मान, इन रजपूतों को जबरदस्त जान इन गाऊं के वकाल, जिसके ये हाल हवाल। तमाम इस किल्ले में आया, जिससे अपना है दाया। हुक्म हो इससे मामला ठहिरावें, हुकम होय फजर किल्ले गरदावें। जिस वक्त बोले मीर मुल्ला नवाब के चच्चा, बहुत सच्चा, मामले ठहिरायबे की बात सच्ची, किल्ले गदरायबे की बात कच्ची, ये हिन्दु कछवाहे कौन नरुके, देग तेग के मुई

में सावत कहूं न चूके, कल्लके रोज नारनोल के चाले द्वादस हजार सैयद सांभर के खेत आये जिस पै आमेर वा जोधपुर के महाराज दोऊ सन्नाह करि जंग करिबे को चलाये। हिन्दु मुसलमान के तीन पहर तलवार चल्ली, आफताब का तेज मंद हुआ बारूद की धूम से रात मिल्ली। सैयद की फौज सिरजोर जानी, राठौर कछवाहों की फौज ने हार मानी। हिन्दू की फौज सिकिस्त खाई, यह बात नरुकोने सुन पाई।'....

वचनिका पदबंध है और कसी हुई है। इसमें भी तुक का ध्यान रखा गया है। यह द्वितीय लावा युद्ध के विषय में लिखी गई है—

'नवाब के सामने आया, हल्ले का जिकर चलाया। किस तौर से आज का दग्गा, कोन भिरा कोन भग्गा। उस बखत बोले कालू मीर, फुरतके फरिस्ता अकल के उजीर। इस किल्ले में सुजान सिंघ ठाकर, जिसके 'हाजर्‌या' चाकर। 'हाजर्‌या' ने आपा दिखलाया, गलबे के साथ बाहर को आया। 'हाजर्‌या' ने जान झोका, आफताब ने विमान रोका। निमक की सरीतीपै सिर दिया, हूरके विमान बैठि आसमान को गया। आज के हल्ले में नवाब की दुहाई, सीना सें सीना मिलाकर तरवार चलाई। सब जवान वहाँ गया था, किल्ला लेना में कसूर ना रहा था। उस सुन्ने-रनि मूंठ वाले ने जुल्म किया, तमाम मुसलमानों को घेंचि किल्ले की रनी में दिया। क्या अच्छी तरवार चलाई जिस बखत बोले खान दुर्जन, कालपी के सैयद ईलाहीबकस के फरजन। हिन्दु जाति काल के काल, बाडव के ज्वाल। सेरों के झुंड, बलके बितुंड। हूरों के हार, दिल के उदार। काली के चक्र, जलाल्या की टक्कर। उरस की तेज, मारुत का बेग। पोरस का भीम, उतरकी सीम। बीरों के बीर, सागर के धीर। नाहर के थाहर लोह की लाट, जंगू के जालम जमकी सी झाट। लावा के किल्ले में ऐसे रजपूत, सार के संगर बल के मजबूत ॥'

गोपालदान कृत 'शिखर वंशोत्पत्ति' (पीढ़ी वार्तिक) ग्रंथ गद्य की उत्कृष्ट रचना है। इसमें वार्ता भी आई है। लेखक ने तुक मिलाई है। यथा—

'स्याम ताज कफनी कमंडल में नीर। डाटी सुपेत सेष सुवरण शरीर। मोकल राव आती देखि माथा कों नवायो। साँई स्यां भुरांनी सेष नामी पंथ पायो। जंगल में चरे छी सो अव्याई झोटी आई मोकल का कनांसू सेष चीपी में दुहाई। बोल्यो दूध पीकै सेष नीकी भांति रैणां। तेरे पुत्र होगा राव सेषा नाँव कैणां ॥'

राजस्थानी गद्य के क्षेत्र में माधवदानजी उज्वल कृत 'महात्मा श्री रामदेव जी री जीवनी' का कुछ भाग उपलब्ध है। यह एक सराहनीय प्रयास है, उदाहरण देखिये—

'क्षत्री वंश में तुंग्रर रजपूत जिणों रो राज दिली में हतो सो राजा ग्रंव सूधो तो दिली पर राज कीनो ने पछै ग्रंव राजा री गया करावण गया जितरे चवोंण प्रथवीराज तुंवरों रो भोंणेज हतौ सो प्रथवीराज ने राज सूंप ने गया ने क्यो राज किणी ने दीजे मती ने पछे गया सराध करने पाछा ग्राया जितरे प्रथवीराज वंदोवस्त कर लीनों, ने इण ने क्योके गया ता के किणी ने राज मत दीजे सो हमे थोंनेई राज देउ नहीं।'....

केसरीसिंह (मेवाड़) ने ग्रपने काव्य-ग्रन्थों के वीच-वीच में सचरण गद्य भी दिये हैं जिनकी भाषा सशक्त है। पद्य के सदृश इस पर भी हिन्दी एवं व्रजभाषा का प्रभाव है। यथा—

'जा समे विशाल चतुरंगिनी के जुरने पर कंवर मानसिंह गजारूढ़ ह्वै सेना के मध्य भाग में स्थित होय ख्वाजा महमूदरफ़ी औ सियाजुद्दीन गुरोह पायन्दाह क़ज्जाक ग्रली, मुराद उजवक़, सैयद हासिम वारहा व वक्षी अली मुराद पातशाही इक्के ग्रौर राजा लुणकर्ण को हरोल में करन लगे। तथा सैना क़े वाम भाग में सैयद ग्रहमद को रु दक्षिण में सीकरी के शेखों के समूह सहित काजी ग्रली को स्थिर करि महतरखां को चन्दोल में रखि दुन्दभि पे डंके परन लगे। या प्रकार वीर पुंगव महाराणा ने भी सेना के दो विभाग करि एक सेना का नायक हकीम सूर नामक पठान शाहज़ादा को नियुक्त करि दूसरी प्रवल वाहिनी के संचालक स्वयं वनी ग्रग्रभाग में वदनोर के रामदास राठौर को रु दक्षिण भाग में गवालियर के राजा रामशाह तँवर को तथा वाम पार्श्व में सादड़ी के राजराणा मानसिंह झाला को नियुक्त करने लगे। या तरह व्यूह वनाइ संसार से मोह त्यागि मत्ते गयन्दन की भाँति भिरन लगे।'

उदयराज उज्वल की साहित्य-सेवा सराहनीय है। उन्होंने जैसे पद्य की सेवा की है, वैसे ही गद्य की भी। व्यवहार में तो राजस्थानी का प्रयोग करते ही थे साथ ही भाषण, निवन्ध ग्रादि भी धारावाहिक भाषा में लिखते थे। 'विद्वानों री भूल' नामक वार्ता में उनकी भाषा सरल, सुवोध एवं स्वाभाविक है। उनके गद्य का एक नमूना यहाँ दिया जाता है—

'राजस्थान में साहित्य संवंधी व इतिहास संवंधी केई वातां लिखण में केई विद्वांन भूलां करता ग्राया है, उणों मांय सूं एक भूल ग्रठै लिखी जावे है। ग्रकसर इण दुहे ने महाराणा श्री भीमसिंहजी ने किणी चारण कयो ग्रा वात मांनी हुई है नै केई लिख भी चुका है—

भीमा तूं भाठोह, मोटा मगरा मायलो।
कर राखूं काठोह, संकर ज्यूं सेवा करां।।

इणा महाराणाजी ने घणा वरस नहीं हुवा है। राजा ने इण तरें केण वाले कवि रो नांम इतो जल्दी नही भूलीजै खास कर कवि रा जात चारण में, सो उण कवि रो नांम कोई नहीं बतावै।'

सीताराम लाळस को अपनी मातृभाषा के प्रति असीम प्रेम है। उन्हें किसी भाषा पर अधिकार है तो वह राजस्थानी पर। अतः गद्य बोलते भी सुन्दर हैं और लिखते भी सुन्दर हैं। उनके प्रकाशित 'राजस्थांनी व्याकरण' से एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

'मिनख समजदार तथा विचारवांन प्रांणी है। वो आपरै मन रा विचार बोलै नै अथवा लिख नै दूजां रै सांमनै प्रगट किया करै है नै दूजां रा विचार आप खुद सुणिया करै है। इण विचारां नै खुलासा सूं ठीक प्रगट करण सारू साधन भासा है। आ भासा मिनख रै अनेक विचारां रै मेळ सूं वणै है नै हरअेक पूरा विचारां रै मांय केई तरै री मन री भावनाआं होवै है। हरेक पूरै विचार रो नांम वाक्य नै हरेक भावना नै सब्द कैवै है।'

चारण साहित्य का इतिहास

भाग २

आठवाँ अध्याय

चारण काव्य का नव चरण (उपसंहार)

[सन् १९५०–१९७५ ई०]

चारण काव्य का नव चरण (उपसंहार)

[सन् १९५०–१९७५ ई०]

(१) **सिंहावलोकनः—** पिछले अध्यायों में राजस्थानी के चारण साहित्य का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस अनुशीलन से स्पष्ट है कि यह साहित्य अत्यंत विशद, गहन एवं समृद्ध है। प्राचीन काल में इसका बीजारोपण हुआ। मध्य काल के प्रतिभा-सम्पन्न कवियों एवं लेखकों ने इसे सींचकर पल्लवित एवं पुष्पित बनाया। आधुनिक काल में यह एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत होकर दूर-दूर तक अपना सौरभ बिखेरने लगा। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक चारण काव्य परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। यह इस जाति की साहित्यिकता का ज्वलंत निदर्शन है।

संदेह नहीं कि राजस्थानी साहित्य के निर्माण में जितना योगदान चारणों का रहा है, उतना और किसी का नहीं। चारण जाति राजस्थान की एक प्रतिष्ठित साहित्यिक जाति है जिसके पास लाखों की जागीर है और है करोड़ों का साहित्य ! फलत: डिंगल काव्य में जो धारा प्रवाहित हुई, उसका निनाद अपने ढंग का एक ही है। चारण काव्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध क्षत्रिय राजवंशों से है। काव्य एवं इतिहास के माध्यम से इन कवियों ने क्षत्रियत्व की जो मनोहर अभिव्यंजना की है, वह निश्चय ही भारतीय साहित्य की अमूल्य सम्पदा है। इस काव्य में वीरता का अद्वितीय कीर्त्ति-गान है। युद्धवीर सर्वाधिक रूप में चित्रित हुआ है। साथ ही दानवीर, धर्मवीर, सत्यवीर एवं दयावीर की भी उपेक्षा नहीं। यह युद्ध, योद्धा एवं युद्धभूमि की रक्त-बिन्दुओं के अक्षरों में लिखी हुई एक अनोखी कहानी है। उल्लेखनीय है कि इन कवियों ने अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखते हुए आवश्यकतानुसार क्षत्रिय नरेशों एवं सरदारों को चेतावनी दी है और उनके कुकृत्यों की खुलकर भर्त्सना भी की है। इस दृष्टि से इन्हें शासनारूढ़ राजवंशों के आलोचक कहा जा सकता है। अनेक प्रतापी नरेशों के स्वर्गवास पर इन कवियों ने आठ-आठ आँसू बहाये हैं और सतियों का माहात्म्य भी गाया है। इसे पढ़कर कोई यह न कहे कि यह साहित्य एकांगी है। चारण काव्य में वीर रस की मौलिकता के साथ अन्य रसों की छटा भी बड़ी ही मुग्धकारी है। चारण जाति में अनेक उत्कृष्ट कोटि के

भक्त कवि भी हुए हैं जो एक स्वतंत्र शोध का विषय है। यह लक्ष्य करने की बात है कि देश-सेवा की पुण्य भावना से अनुप्राणित होकर कतिपय स्वातंत्र्य-प्रेमी कवियों ने राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी रचनाओं की भी सृष्टि की है। संकट की की घड़ियों में यह साहित्य हमारा पथ-प्रदर्शक है। शस्त्र और शास्त्र इन दोनों विद्याओं में पारंगत कवि और कहाँ मिलेंगे? चारण इतिहास का रक्षक है। पद्य के सदृश गद्य के क्षेत्र में भी इनकी सेवायें स्तुत्य हैं। नि:संदेह महाकवि ईसरदास बारहठ, दुरसा आढ़ा, सायां झूला, वीरभांण रतनू, करणीदान कविया, ब्रह्मानंद आसिया, बाँकीदास आसिया, ओपा आढ़ा, सूर्यमल्ल मिश्रण, मुरारिदान आसिया, ऊमरदान बारहठ, श्यामलदास दधवाडिया, केसरीसिंह सौदा (शाहपुरा), उदयराज उज्वल प्रभृति कवियों को पाकर कोई भी साहित्य धन्य हो सकता है। अपने-अपने काल में ये कवि साहित्य में एक अक्षय छाप छोड़ गये हैं। चारण काव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ इनकी रचनाओ में कलात्मक रूप से प्रतिबिम्बित हुई हैं। व्यक्तित्व एवं कृतित्व की गरिमा को देखते हुए राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन इनके नाम पर सम्भव है। यह परम प्रसन्नता एवं संतोष का विषय है कि स्वतंत्र भारत में महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण का शताब्दी समारोह देश के अनेक भागों में मनाया गया है और उनकी साधना-स्थली बूंदी में एक संगमरमर की मूर्ति की स्थापना हुई है। इसी प्रकार केसरीसिंह सौदा (शाहपुरा) का निवास-स्थान राष्ट्रीय स्मारक के रूप में एक दर्शनीय स्थल बन गया है। कहना पड़ेगा कि अन्य प्रतिभा-सम्पन्न कवियों में सर्वश्री हूंपकरण सांदू, आल्हा बारहठ, सिवदास गाडण, पीठवा मिश्रण, हरीदास महियारिया, अक्खा बारहठ, आशानंद बारहठ, माला सांदू, केशवदास गाडण, लक्खा बारहठ, माधोदास दधवाडिया, पदमा सांदू, मेहा वीठू, सूजा वीठू, नरहरिदास बारहठ, जग्गा खिडिया, करणीदान बारहठ, हुक्मीचंद खिडिया, महादान महडू, ब्रह्मदास वीठू, रायसिंह सांदू, सालूदान कविया, किसना आढ़ा, रामनाथ कविया, स्वरूपदास देथा, बुधसिंह सिढायच, आवड़दान लाळस, चिमनदान कविया, गणेशपुरी पातावत, शंकरदान सामौर, सम्मान बाई कविया, शिवबख्श पाल्हावत, कृष्णसिंह सौदा, बालाबख्श पाल्हावत, फतहकरण उज्वल, अलसीदान रतनू, केसरीसिंह सौदा (सोन्याणा), किशोरसिंह सौदा, नाथूसिंह महियारिया, अमरसिंह देपावत आदि चारण साहित्य-गगन के अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र हैं।

(२) **परिवर्तन-काल** :— राजस्थानी के चारण साहित्य का यह स्वर्णिम

अतीत उसके उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करे तो यह उसकी परम्परा के अनुकूल ही है किन्तु वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप चारण कवि किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा है। १५ अगस्त, सन् १९४७ ई० की राजनैतिक स्वतंत्रता ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित कर दिया। अतः राजस्थान, डिंगल, चारण एवं राजपूत का रंग-रूप-रस ही बदल गया है। स्वर्गीय कवि उदयराज उज्वल के शब्दों में—

'गी डिंगळ, साहित गयो राजस्थान-रो रूप।
पय चूका, नीचे पड्या अपणै गुण अनुरूप॥'

परिवर्तन को लक्ष्य करके एक अन्य कवि ने तो यहाँ तक कह दिया—

'कविराजा खेती करो, हळ सूं राखो हेत।
गीत जमीं में गाड दो, राळो ऊपर रेत॥'

अतः इस परिवर्तन को हृदयंगम करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसी से मूल प्रेरणा ग्रहण कर स्वातंत्र्योत्तर चारण साहित्य नवीन दिशा की ओर अग्रसर होकर व्यापकत्व को प्राप्त हुआ। अस्तु,

(३) लोकतंत्र का उदय :— इतिहास इस कथन की पुष्टि करता है कि स्वतंत्रता से पूर्व राजस्थान के विभिन्न राज्यों में राजपूत राजा-महाराजा सिंहासनारूढ़ थे और शासन-प्रबन्ध उनके हाथ में था। सामन्ती प्रथा होने से गाँवों में जागीरदारों का प्रभुत्व था। महाराजा पृथ्वीराज चौहान के बाद केन्द्रीय सत्ता मुसलमानों और फिर अँग्रेजों के हाथ में आ गई। अतः यहाँ का शासक वर्ग इन दो विदेशी जातियों से आठ-सौ वर्षों तक गठ-बंधन करता रहा फिर भी उनके अधीन ही रहा। राजा-महाराजाओं एवं जागीरदारों ने सीमित स्वतंत्रता में अपने-अपने राज्यों में वंश-परम्परानुसार शासन किया। अँग्रेज अपनी नींव दृढ़ करने की महत्त्वाकांक्षा से राज्यों में हस्तक्षेप करते रहते थे। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का रोग फैलाकर एक ऐसी घृणित राजनीति को जन्म दिया जिसका निदान पाकिस्तान बन जाने पर भी नहीं हुआ। राज्यों की अपनी-अपनी सीमायें, पताकायें एवं मुद्रायें थीं। प्रत्येक राज्य का अपना-अपना मंत्रिमंडल था। उच्च पदों पर अँग्रेजों के प्रतिनिधि नियुक्त थे। अँग्रेज शरीर, मस्तिष्क एवं चरित्र में उन्नत था। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उसकी देन स्वीकार

करनी होगी। समय-विवेक, शासन-प्रबन्ध एवं राष्ट्रीय चरित्र की दृष्टि से वह अनुकरणीय है। यह लक्ष्य करने की बात है कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही राजस्थान में विदेशी सत्ता से मुक्त होने की भावना उत्पन्न हो गई थी। मुगल-सम्राट् अकबर के समकालीन कवि दुरसा आढ़ा की स्फुट रचनाओं में इसका सर्वप्रथम आभास देखने को मिलता है। निश्चय ही महाराजा मानसिंह (जोधपुर) के राज्याश्रित कवि बाँकीदास आसिया ने सर्वप्रथम राजाओं को अँग्रेजों से स्वतंत्र होने के लिए ललकारा। फिर तो अनेक कवि राष्ट्रीय धारा में कूद पड़े। स्वतंत्रता-सँग्राम में चारण कवियों का योगदान पृथक् अध्ययन का विषय है। संदेह नहीं कि इन कवियों से प्रभावित होकर स्वतंत्रता-प्रेमी नरेशों ने परोक्ष रूप से विदेशी सत्ता का विरोध किया। यदि समस्त नरेश प्राण-प्रण से इस ओर जुट जाते तो देश कभी का स्वाधीन हो गया होता। किन्तु स्वयं राजपूत जाति में प्रेम, एकता एवं संगठन का अभाव था। दुर्भाग्य से जर-जोरू-जमीन के चक्कर में राजपूत-राजपूत में भी टक्कर होती रही अतः रजवट शनैः शनैः रज-रज होता गया।

बीसवीं शताब्दी में सार्वजनिक समानाधिकार की भावना प्रबल होती गई। राजस्थान की जनता अँग्रेजों, राजाओं एवं जागीरदारों— इन तीनों के शोषण से मन ही मन क्षुब्ध थी और 'जी हूजरी' में अपने दिन काट रही थी। वह दुर्बलता, दारिद्रय एवं असहाय अवस्था में जीवन-यापन कर रही थी। भेद-भाव बहुत बढ़ गया था अतः समाज शासन से कटकर अलग पड़ा हुआ था। दलित वर्ग आर्थिक, सामाजिक एवं शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा रहने के साथ प्राथमिक सुविधाओं से वंचित था। ऐसे समय में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना से (१८८५ ई०) जनता में चेतना आई। प्रत्येक राज्य में इसकी शाखायें खुलीं। केन्द्र, राज्य एवं ग्राम स्तर तक इसका विस्तार हुआ। प्रजा अपने मूल अधिकारों के प्रति सजग हुई। राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गाँधी की अवतारणा भारत के लिए ही नहीं प्रत्युत् सारे संसार के लिए वरदान सिद्ध हुई। भारत जैसे गरीब देश के लिए युद्ध के द्वारा अँग्रेजों को मार भगाना सम्भव नहीं था। अतः उन्होंने मानव की महिमा एवं गरिमा के लिए 'सत्याग्रह' नामक पहला अहिंसक आंदोलन चलाया और सिद्ध कर दिया कि यदि दृढ़ता के साथ इसका प्रयोग किया जाय तो हिंसा के बिना ही शांति से परिवर्तन लाया जा सकता है। यह इस शताब्दी की एक महान् घटना है। उन्होंने सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा,

त्याग, बलिदान एवं नैतिकता का संदेश देकर विश्व को एक सर्वथा नूतन मार्ग दिखाया और सब ने माना कि जो दम गाँधी में है, वह अणु-बम की आँधी में भी नहीं। उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का संस्पर्श कर उसके स्वाभाविक सर्वांगीण विकास का रहस्योद्घाटन किया। अजेय आत्मा के उनके परीक्षण इस सृष्टि में सदैव अजर-अमर रहेंगे। 'गाँधीवाद' नामक नई विचार-धारा के ऋण से यह देश तो क्या संसार भी उऋण नहीं हो पायेगा। यह समय का तकाज़ा और परिस्थिति की विवशता थी कि अँग्रेज भारत से शासन की बागडोर राष्ट्रीय नेताओं को सौंपकर चल दिये, मुसलमानों की तरह यहाँ जमे नहीं। कहना न होगा कि गाँधी ने स्वतन्त्रता के स्वप्न को साकार कर दिया— १५ अगस्त, सन् १९४७ ई० के शुभ दिन भारत राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र हुआ। दिल्ली के लाल किले पर तिरंगा लहराया। फलतः एक नवीन शासन-पद्धति का उदय हुआ जिसे प्रजातंत्र कहते हैं। लोकतंत्र अथवा जनतंत्र इसी के पर्याय हैं। भारत जन-सँख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। आज इसकी जन-सँख्या लगभग ६० करोड़ है। सिक्किम के विलय से (१६ मई, सन् १९७५ ई०) अब देश में कुल २२ राज्य हो गए हैं।

(४) **'राजस्थान' राज्य का नव-निर्माण** :— जहाँ तक राज्य का सम्बंध है, स्वाधीनता की स्वर्ण किरण ने बिखरी हुई भूतपूर्व देशी रियासतों का एकीकरण कर इसे एक विशाल रूप प्रदान कर दिया है। तत्कालीन प्रथम केन्द्रीय गृह एवं रियासत मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जर्मनी के बिस्मार्क की तरह जिस दृढ़ता और क्षिप्रता से इन रियासतों का एकीकरण किया, वह इतिहास का एक मौलिक अध्याय है। इस भूकम्प से सामन्तवाद की प्राचीर हिल उठी।

सबसे पहला कदम राजपूताने के पूर्वी भाग में स्थित अलवर, भरतपुर, करौली और धौलपुर रियासतों ने उठाया। १७ मार्च, सन् १९४८ ई० में ये चारों रियासतें परस्पर मिला दी गईं और इस संघ को 'मत्स्य' की संज्ञा दी गई। अलवर नगर को इस नव-निर्मित संघ की राजधानी बनाया गया। २५ मार्च, सन् १९४८ ई० में कोटा, बूँदी, टोंक, झालावाड़, प्रतापगढ़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, किशनगढ़, शाहपुरा और कुशलगढ़ (जागीर) के नरेशों ने संघ बनाने की अनुमति प्रदान की। इसका कार्य आरम्भ होने ही वाला था कि १८ अप्रैल, सन् १९४८ ई० में उदयपुर रियासत भी इसमें सम्मिलित हो गई। इस नवीन संघ को 'सँयुक्त राजस्थान' कहा गया और

इसकी राजधानी उदयपुर रखी गई। १५ मई, सन् १९४८ ई० में मत्स्य संघ भी संयुक्त राजस्थान में मिला दिया गया। शेष बचीं जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, जैसलमेर एवं सिरोही रियासतें इसमें सम्मिलित नहीं हुई। ३० मार्च, सन् १९४८ ई० में सिरोही को छोड़कर चारों रियासतें मिला दी गई। इस बड़े राज्य का नाम 'बृहत् राजस्थान' रखा गया। सिरोही को कुछ समय के लिए बम्बई राज्य में रखा गया, परन्तु अंत में आबू तथा उसके निकट के कुछ भाग को छोड़कर सिरोही रियासत भी राजस्थान में विलीन कर दी गई। भौगोलिक दृष्टि से यद्यपि अजमेर राजस्थान का ही अंग था किन्तु कुछ वर्षों तक राजनैतिक दृष्टि से इसे 'ग' श्रेणी का पृथक् राज्य माना गया। १ नवम्बर, सन् १९५६ ई० में अजमेर के मिल जाने से इस राज्य को अपना पूर्ण रूप प्राप्त हो गया। राजस्थान के इतिहास में सन् १९५७ ई० का वर्ष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस वर्ष राजस्थान 'बी' श्रेणी के राज्य से 'ए' श्रेणी का राज्य बना और राजप्रमुख पद का अंत हुआ। अजमेर, आबू तथा सुनेल टप्पा के विलय से राजस्थान की सीमायें विस्तृत हुई। इस प्रकार यह नव-निर्मित विशाल 'राजस्थान', जिसकी राजधानी जयपुर है, देशी रियासतों को मिलाकर सात चरणों में पूर्ण स्वरूप ग्रहण कर सका।

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का दूसरा बड़ा राज्य है। इसकी जन-संख्या ढाई करोड़ है। इसकी सीमा पाकिस्तान से लगे होने के कारण सामरिक दृष्टि से इसका महत्त्व बहुत अधिक है। आज राज्य भर में प्रशासन की एक-समान पद्धति लागू है और संसदीय ढंग की सरकार है। वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की यहाँ विधान-सभा है। विधान-सभा के बहुसंख्यक दल का प्रतिनिधित्व करने वाला और उसके प्रति उत्तरदायी मंत्रि-मण्डल प्रशासन का संचालन करता है। एकीकरण से राज्य में राजनैतिक चेतना तथा भौतिक प्रगति दृष्टिगोचर हो रही है। गहरी आँचलिक संकीर्णताओं के होते हुए भी यह राज्य सम्पन्न होता जा रहा है।

(५) नवीन राजनैतिक अवस्था :— (क) केन्द्रीय सत्ता एवं विदेश नीति— संदेह नहीं कि भारत में साम्राज्यवाद के साथ सामंतवाद का सूर्यास्त होते ही एक सर्वथा नई राजनीति का सूत्रपात हुआ। सत्ता व्यक्ति से हटकर वर्ग के पास आ गई। परम्परागत राज्य एवं जागीरी के दिन लद गये। अब प्रजा स्वयं अपने प्रतिनिधि का चुनाव करती है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के अनन्तर भारत ने

अपना नया संविधान बनाया जिसके अनुसार एक स्वतंत्र प्रजातंत्रात्मक गणतंत्र की स्थापना हुई (२६ जनवरी, १९५० ई०)। सर्वप्रथम महामहिम डॉ० राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर निर्वाचित हुए। फिर क्रमशः डॉ० राधाकृष्णन, डॉ० ज़ाकिर हुसैन, श्री वराह वेंकट गिरि एवं श्री फखरुद्दीन अली अहमद इस पद पर चुने गये। इसी प्रकार संविधान के अनुसार काँग्रेस के महान् नेता माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए और उन्होंने सर्वप्रथम केन्द्रीय मंत्रिपरिषद का गठन किया। फिर श्री लाल बहादुर शास्त्री इस पद पर प्रतिष्ठित हुए। वर्तमान में प्रथम महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के कुशल नेतृत्व में देश तेजी से विकास की ओर बढ़ रहा है। कहना न होगा कि इन सबके शासन-काल में भारत लोकतंत्र, समाजवाद एवं धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र के रूप में इस भूमण्डल में चमका। वैज्ञानिक युग में परस्पर जुड़े होने के कारण इन यशस्वी नेताओं का ध्यान राष्ट्रीय एकता के साथ अन्तर्राष्ट्रीय एकता की ओर गया।

विदेश नीति में स्वतंत्र भारत ने अनेक सफलतायें प्राप्त कीं। इन सफलताओं का मूल आधार यथार्थ में शांति के लिए हमारी सक्रिय दिलचस्पी है। गुट-निरपेक्ष देशों के कार्यों में हमने प्रशंसनीय हाथ बटाया है। हमने निर्णायिक महत्त्व के विदेशी विषयों में प्रगतिशील शक्तियों का पक्ष लिया है जिससे हमारी प्रतिष्ठा एवं प्रभाव बढ़ा है। भारत सही रास्ते पर चलता है, किसी के दबाव में नहीं आता। इसे कोई दुर्बल नीति न समझे। समाजवादी देशों के साथ हमारा सम्बंध उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। विश्व-शांति एवं प्रगति के उद्देश्य से भारत सरकार ने प्रायः सभी देशों के साथ राजनयिक सम्बंध स्थापित किये। साथ ही संयुक्त राष्ट्र-संघ के सक्रिय सदस्य के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत सब का मित्र है, किसी का शत्रु नहीं। यदि कोई जान-बूझ कर शत्रु बनना चाहे तो बात अलग है। हमारा देश शांति, मैत्री एवं सहअस्तित्व का संगम है। अपनी तटस्थ नीति के कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारा गौरव बढ़ा है। भारत दूसरे देशों के आंतरिक विषयों में कभी हस्तक्षेप नहीं करता और न अपने में चाहता ही है। इस उदार नीति के आगे युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। फिर भी भारत के पड़ोसी देशों ने अपनी विस्तारवादी नीति के कारण समय-समय पर आक्रमण किये। इन बाह्य आक्रमणकारियों में चीन एवं पाकिस्तान के नाम सर्वविदित हैं। चीन के आक्रमण ने भारत की आँखें खोलीं

(१९६२ ई०)। पाकिस्तान ने दो वार आक्रमण किये (१९६५ व १९७१ ई० किन्तु) मुँह की खाई। उसका अंग भंग हुआ और भारतीय सहायता से पूर्वी पाकिस्तान के स्थान पर एक नये बंग (वंगला) देश का अभ्युदय हुआ (१९७१ ई०)। इससे भारत का नाम बड़ी शक्तियों में गिना जाने लगा। हमारे प्रथम भूमिगत परमाणु विस्फोट (१८ मई, १९७४ ई०) की प्रमुख वैज्ञानिक घटना ने सबको आश्चर्यचकित कर दिया। अब पाक एवं चीन की भारत विरोधी नीति को देखते हुए परमाणु बम बनाने की आवाज़ उठ रही है। यह अत्यंत गर्व एवं संतोष का विषय है कि भारत ने प्रथम उपग्रह 'आर्य भट्ट' को अंतरिक्ष में छोड़कर विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में दूसरी बड़ी सफलता प्राप्त की है (१९ अप्रैल, १९७५ ई०)

(ख) **राजस्थान एवं केन्द्रीय सत्ता :**— कोई पौधा बीज से निकलते ही फलदायक वृक्ष नहीं बन जाता। राजनैतिक दृष्टि से भारत को स्वतंत्र हुए २८ वर्ष ही हुए हैं। यह अवधि किसी राष्ट्र की उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं, फिर भी यह निर्विवाद सत्य है कि देश लोकतंत्रीय समाजवादी व्यवस्था की ओर शनैः शनैः गतिशील हो रहा है। यह व्यवस्था अपने प्रारम्भिक काल में भले ही पुष्ट न हुई हो किन्तु स्पष्ट अवश्य हुई है। जन-सामान्य का जीवन-स्तर ऊपर उठ रहा है और उच्च वर्ग नीचे आ रहा है। नवीन शासन व्यवस्था की रीति-नीति के अनुसार ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इन वर्षों में केन्द्र के साथ राजस्थान का एक सर्वथा नवीन सम्बन्ध स्थापित हुआ। स्वतंत्र भारत में केन्द्रीय सत्ता काँग्रेस के ही हाथ रही और राजस्थान में इसी राजनैतिक दल का क्रमबद्ध शासन रहा, अतः दोनों के सम्बन्ध घनिष्ट बने रहे। प्रशासनिक, वित्तीय एवं न्यायिक विषयों में दोनों के सम्बंध अन्योन्याश्रित हैं। यह लक्ष्य करने की बात है कि जिस दल ने स्वतंत्रता के लिए सतत संघर्ष किया, वह अंततः विजयी हुआ और आज शासन-प्रबंध उसी के हाथ में है। जब-जब भी चुनाव हुए, जनता ने उसे अपना मत देकर विजयी बनाया।

आरम्भ में काँग्रेस को मुख्यतः राजपूतों ने ही चुनौती दी जो इस राज्य को अपना समझते थे। नये राजनैतिक ढाँचे में उन्हें पहले जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी और न वह शक्ति ही रह गई थी जिसका वे सदा से उपयोग करते आये थे। सन् १९५२ ई० में आम चुनावों के लिए खड़े होने वाले राजा-महाराजा स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में निर्वाचित होकर विधान-सभा में आये किन्तु

पाँच वर्षों के अनुभवों ने उन्हें बाध्य किया कि ठोस परिणाम की प्राप्ति के लिए किसी दल में सम्मिलित होना श्रेयस्कर है। अतः सन् १९५७ ई० में होने वाले दूसरे आम चुनावों में किसी दल का टिकट प्राप्त करने का महत्त्व उन्होंने समझा और सक्रिय दलगत राजनीति में वे अधिकाधिक भाग लेने लगे। आम चुनावों ने जन-जन में राजनीति के प्रति दिलचस्पी उत्पन्न की। साथ ही उनमें शक्ति और सत्ता का भाव भी जगा दिया। यह इसी का परिणाम है कि अब नेतृत्व शहर की अपेक्षा ग्राम-वासियों के हाथों में जा रहा है। अनेक राजा-महाराजाओं एवं जागीरदारों ने स्वतंत्र दल बनाकर नवोदित राजनीति में प्रवेश किया, किन्तु काँग्रेस के बहुमत के आगे उनकी एक न चली। सशक्त लोकमत के आगे उन्हें नत-मस्तक होना पड़ा। फिर भी राजस्थान के अनेक दूरदर्शी कुशल नरेशों तथा ठाकुरों ने समय की गति पहिचान कर पंचायत, नगर-परिषद्, जिला-परिषद्, विधान-सभा, लोक-सभा आदि के चुनावों में भाग लिया और विजयी हुए। कालान्तर में राजाओं के 'प्रिवीपर्स' एवं विशेषाधिकार समाप्त हुए। वे काँग्रेस के सदृश जनता में घुल-मिल कर लोकप्रिय नहीं हो पाये। यह उनके स्वभाव-संस्कार में भी नहीं था। नई पीढ़ी का तो प्रश्न ही नहीं, पुरानी पीढ़ी भी उन्हें भूलने लगी। लोकतंत्र ने प्राचीन शासन-पद्धति को ऐसा झकझोर दिया कि जिससे उच्च वर्ग अस्त-व्यस्त गया। वह चाहने पर भी कुछ न कर सका। काँग्रेस के शासन में उन्हें अपनी पैतृक चल-अचल सम्पदा की रक्षा करना कठिन हो रहा है। धरती के वे धणी अपने-अपने महलों एवं ठिकानों में कितने ही बड़े क्यों न हों, बाहर सामान्य नागरिक बनकर रह गये हैं। कुछ अवसरवादी लोगों ने अँग्रेजी वेश-भूषा तथा सामंती चोला उतारकर खादी पहन ली और काँग्रेस में जा मिले। इन पर कोई आँच न आई। यह सब समय की बलिहारी है! अस्तु,

(ग **नवीन व्यवस्था** :— राजस्थान सामंतवादी प्रथा का एक सुदृढ़ गढ़ था। गत २८ वर्षों में देश के अन्य किसी भाग की अपेक्षा यहाँ कहीं अधिक मौलिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का सार है— सामंतवाद के स्थान पर लोकतंत्र की स्थापना। यह जनता का कितना बड़ा अधिकार है कि वह मत देकर अपने मन-पसन्द व्यक्ति को शासन के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा देती है। चुनाव के द्वारा बहुमत पाने वाला राजनैतिक दल सत्तारूढ़ होता है। इसका नेता मुख्यमंत्री बनता है और अपनी रुचि से मंत्रिपरिषद् का गठन करता है। मंत्रिपरिषद् विधान-सभा की सर्वोच्च शासकीय संस्था है जिसमें विधान-

सभा के बहुमत वाले राजनैतिक दल के सदस्य होते हैं। यह राज्यपाल और विधान-सभा के बीच की कड़ी है। सिद्धान्तः राज्य की सम्पूर्ण कार्यपालिका-शक्ति राज्यपाल में निहित है परन्तु व्यवहारतः इन शक्तियों का उपयोग मंत्रि-परिषद् ही करती है। मंत्री अपने-अपने विभाग की नोति निश्चित करते हैं और योजनायें बनाते हैं। न्यायपालिका की दृष्टि से राजस्थान में भी एक उच्च न्यायालय की स्थापना की गई जिसका स्थान जोधपुर में रखा गया। सर्वप्रथम माननीय श्री कमलाकांत वर्मा मुख्य न्यायाधिपति के पद पर नियुक्त हुए। तत्पश्चात् श्री नवलकिशोर, श्री कैलाशनाथ वांचू, श्री कँवरलाल बाफना, श्री सरजूप्रसाद, श्री जवानसिंह राणावत, श्री दुर्गाशंकर दवे, श्री दौलतमल भंडारी, श्री जगतनारायण एवं श्री भगवतीप्रसाद बेरी प्रतिष्ठित हुए। आजकल श्री प्रकाशनारायण सिंघल इस पद को सुशोभित कर रहे हैं।

राज्य का सचिवालय जयपुर में ही रहा जहाँ से नीति को कार्यान्वित किया जाता है। परगने टूटे और जिले बने। जिले में उपमंडल और उप-मंडल में तहसीलें बनीं। प्रत्येक जिले में जिलाधीश की नियुक्ति हुई। जिले में कई विभाग खुले, जैसे— पुलिस, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, कृषि, बन, सिंचाई, उद्योग, सहकारी, जन-सम्पर्क आदि-आदि। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की स्थापना के फलस्वरूप प्रत्येक जिले में एक 'जिला-परिषद्' एवं तहसील स्तर पर 'पंचायत समिति' की स्थापना की गई। जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अगणित लोकतांत्रिक सभा-समितियों एवं संस्थाओं का जाल बिछ गया। ग्राम-ग्राम में पंचायतों की स्थापना हुई। नगर पालिकाओं का महत्त्व बढ़ा। पत्र-पत्रिकाओं की धूम मची। कहना निरर्थक न होगा कि राजस्थान देश का प्रथम राज्य है जिसने अपने समस्त जिलों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरणी की योजना को लागू किया (१९५९ ई०)।

केन्द्र ने राजस्थान की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग दिया। आरम्भ में राज्य-सरकार के सामने अनेक कठिनाइयाँ आईं, किन्तु धीरे-धीरे वे हल होती गई। इन वर्षों में कई भूमि-सुधार हुए और पंचवर्षीय योजनायें बनीं। अन्य राज्यों के सदृश यहाँ भी नये-नये उद्योग-धंधों की नींव पड़ी, कल-कारखाने खुले और कृषि के साधन बढ़े। सिंचाई के लिए बाँध बने। साथ ही नहरों, तालाबों एवं कुओं का निर्माण हुआ। अनेक नई सड़कें बनीं और बड़ी-बड़ी इमारतें

बनकर तैयार हुई। स्थान-स्थान पर स्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। यही नहीं जहाँ अस्पताल नहीं थे, वहाँ ये खोले गये। बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ जिससे जनता को लाभ पहुँचा। इस प्रकार स्थान-स्थान पर विकास के चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे। स्वतंत्रता-काल में राज्य का शासन-प्रबन्ध राज्यपाल द्वारा होता है। महामहिम सरदार गुरुमुख निहालसिंह राजस्थान के प्रथम राज्यपाल नियुक्त हुए। उनके पश्चात् डॉ० सम्पूर्णानन्द, सरदार हुकमसिंह एवं सरदार जोगिन्दरसिंह ने इस पद को सुशोभित किया। राज्य में सबसे पहले माननीय पंडित हीरालाल शास्त्री मुख्यमंत्री बने और तत्पश्चात् श्री टीकाराम पालीवाल, श्री जयनारायण व्यास, श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री बरकतउल्लाखाँ एवं श्री हरिदेव जोशी ने शासन-प्रबन्ध सँभाला। कहना न होगा कि इन सबके शासन-काल में प्रजातंत्र स्थिर तथा दृढ़ होता गया और अनेक लोक-कल्याणकारी योजनाओं का श्रीगणेश हुआ।

(घ) **राजनैतिक दलः**— लोकतंत्र में एक से अधिक दलों का होना आवश्यक है। राजस्थान में कई राजनैतिक दल सक्रिय हैं। कुछ नये दल भी बने, बिगड़े और मिटे। ये दल अखिल भारतीय भी हैं एवं प्रांतीय भी। भारत में इन विभिन्न दलों की सँख्या लगभग पचास होगी और राजस्थान में लगभग बीस। इनमें सत्तारूढ़ काँग्रेस, संगठन काँग्रेस, जनसंघ, साम्यवादी, मार्क्सवादी साम्यवादी, समाजवादी, प्रजा समाजवादी, क्रांतिकारी समाजवादी, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक समाजवादी, स्वतंत्र, भारतीय लोकदल (क्रांतिदल), मुस्लिम लीग, राम राज्य परिषद, हिंदू महासभा, आर्यसभा, किसान दल, लोकसेवक संघ आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देश का सबसे बड़ा और पुराना दल 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' विभक्त हो गया (१९६९ ई०) और उसने साम्यवादियों से गठ-जोड़ किया। भारतीय साम्यवादी दल काँग्रेस के समानान्तर चल रहा है। इसका अपना सिद्धान्त, कार्य-क्रम एवं लक्ष्य है। सामयिक तालमेल के अतिरिक्त इन दोनों में कहीं समानता नहीं है। शेष दल अपनी-अपनी विचार-धारा के अनुसार पृथक्-पृथक् कार्यक्रम की घोषणा करते हैं। काँग्रेस तथा साम्यवादी दल सत्ता के पक्ष में हैं और शेष सभी दल विपक्ष में। विपक्ष के सबसे बड़े दल जनता मोर्चे को 'विरोधी दल' की मान्यता प्राप्त है। मार्च, १९७५ ई. तक राजस्थान विधानसभा की कुल सदस्य-सँख्या १८४ थी जिसमें काँग्रेस के १५१ सदस्य थे, जनता मोर्चे के १६, साम्यवादी दल के ५, समाजवादी दल के २, जनसंघ का १ तथा

मार्क्सवादी दल का १। निर्दलीय सदस्य-संख्या ७ थी। अब आगामी चुनावों के लिये कुल सदस्य-संख्या बढ़ाकर २०० कर दी गई है। दलीय राजनीति में अनास्था के कारण निर्दलीय सदस्यों का अपना अलग अस्तित्व है। इनके दल-बदल ने राजनीति को एक दल-दल बना दिया है। भारतीय राजनीति में दलीय जोड़-तोड़-फोड़ अधिक है अतः नये मूल्य स्थापित नहीं हो सके बल्कि जो थे, वे भी जाते रहे। फिर एक विकासशील देश में इतने विरोधी दलों का औचित्य समझ में नहीं आता। राष्ट्रीय समस्यायें दल-विशेष को लाभ पहुँचाने के लिए नहीं वरन् सभी को एक होकर समाधान ढूँढने के लिए होती हैं। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए कुछ लोग दलीय राजनीति से क्षुब्ध हैं अतः दल-विहीन जनतंत्र की कल्पना करने लगे हैं। उनका कथन है कि आधे सदस्य निर्वाचित हों और आधे मनोनीत। जो हो, इसके लिए शीर्षस्थ राजनीतिज्ञों को आगे आकर मार्ग-दर्शन करना चाहिए।

संदेह नहीं कि भारत में अभी ऐसा कोई राजनैतिक दल नहीं जो काँग्रेस को पदच्युत कर सके। यदि सब दल मिल जायें तो भी ऐसा होना सम्भव नहीं। सत्ता में होने से काँग्रेस लाभजनक स्थिति में है। फिर भी विपक्षी दलों की सेवायें कम महत्त्वपूर्ण नहीं। यदि देश में प्रबुद्ध, प्रखर एवं पुष्ट विपक्ष न होता तो जनता अनेक विषयों को लेकर अंधकार में ही रह जाती। एक सुदृढ़ लोक-तंत्र के लिये वैकल्पिक विपक्ष का होना आवश्यक है जिससे सत्तारूढ़ दल अपने प्रचण्ड बहुमत के मद में मनमानी न कर बैठे। स्वयं काँग्रेस नहीं चाहती कि विरोधी दल प्रबल हों। विरोधी दलों की फूट से काँग्रेस को कुछ भी करने की छूट मिल जाती है। यदि कोई मदोन्मत्त गयंद हरे-भरे राष्ट्रीय उद्यान को रौंदता चले तो उस पर अंकुश लगाना आवश्यक हो जाता है। विरोधी दल महावत बनकर यह कार्य कर सकता है। वस्तुतः विरोधी दल काँग्रेस का विकल्प तैयार नहीं कर पाये। अब नेताओं का ध्यान इस ओर गया है। हाँ, सत्तापक्ष पर दवाव डालने वाली शक्ति के रूप में ये अवश्य उभरे हैं। भारतीय प्रतिपक्ष विभक्त है अतः सारे मत बँट जाते हैं और उसका लाभ काँग्रेस को होता है। वह अल्प प्रतिशत में भी विजयी की विजयी रह जाती है। यदि सत्तारूढ़ दल अपना कार्यक्रम पूरा न करे तो आगे प्रतिपक्ष के सत्तारूढ़ होने की सम्भावना रहती है और ऐसा उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मद्रास, केरल, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा तथा मध्य-प्रदेश में हुआ भी। किन्तु ये 'संविद' सरकारें अधिक दिनों तक नहीं चल पाईं।

प्रतिपक्षी दल ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन भी नहीं ला पाये जो सत्तापक्ष से सर्वथा भिन्न होता। अतः ये दल कांग्रेस के विकल्प की कल्पना से मतदाता को प्रेरित नहीं कर सके। साथ ही ये नीतियाँ एवं कार्यक्रम की विशिष्टता में भी पीछे रह गये। इसके लिए इन्हें जन-जीवन के सभी क्षेत्रों में विकल्प बनना होगा अन्यथा प्रचारात्मक लाभ के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा। एक दृढ़, सशक्त एवं रचनात्मक प्रतिपक्ष के अभाव में लोकतंत्र का रस जनता नहीं ले पाती। हाल ही में संगठन काँग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, समाजवादी दल आदि ने एक होकर गुजरात में जनता मोर्चा बनाया और विजय प्राप्त की (१२ जून, १९७५ ई०)। अतः सत्ता उनके हाथ में आ गई और काँग्रेस विपक्ष में जा बैठी। इससे विरोधी दलों का मार्ग प्रशस्त हो गया है। अन्य प्रांतों में भी जनता मोर्चे बनने लगे हैं। भारत में विरोधी दलों को एक होकर सरकार का स्वस्थ विकल्प प्रस्तुत करने का समय आ गया है। अब तक की गतिविधियों का निष्कर्ष यह है कि यदि राजनैतिक नेतृत्व दावपेचों और अपने विरोधियों को नीचा दिखाने में ही सारी शक्तियां क्षय करता रहा तथा विरोध विरोध के लिए ही होता रहा तो फिर हो चुका देश-कल्याण। दोष किसी एक दल का नहीं, सबका है। सभी ने स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया है और राजनैतिक क्षेत्र में होने वाले अनैतिक गठ-बन्धन राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं।

(ङ **प्रजातंत्र शासन-पद्धति :—** प्रजातंत्र शासन-पद्धति में जनता द्वारा जनता के हित के लिए जनता-सरकार की स्थापना होती है। इसका लक्ष्य व्यक्तित्व का विकास है। राज्य साधन है और व्यक्ति साध्य। यह पद्धति परस्पर 'बातचीत' के द्वारा किसी समस्या को हल करना सिखाती है जिससे सद्भावना, सहयोग तथा सहानुभूति की भावना बढ़ती है। अतः आज बातचीत का जोर बहुत बढ़ गया है। इसमें लोगों को बोलने, लिखने तथा आलोचना की स्वतंत्रता होती है। यही नहीं, अपने अधिकारों को प्राप्त करने हेतु प्रदर्शन की भी छूट होती है।

कोई भी शासन-प्रणाली गुण-दोष रहित नहीं। देश, काल एवं स्थिति के अनुसार प्रजातंत्र प्रणाली संसार में सर्वोत्तम है किन्तु इसके मूल में विरोध-भावना है जो राग-द्वेष, छल-कपट एवं बैर-वैमनस्य उत्पन्न करती है। इससे कटुता, तनाव, घृणा तथा हिंसा का वातावरण बनता है। कई लोग अनजान में शत्रु

बन जाते हैं और संघर्ष होने पर प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। राजनीति में दलीय छुआछूत इतनी बढ़ गई है कि मनुष्यता के नाते यदि एक दल का व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से बात भी कर ले तो वह संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। स्वराज्य से पूर्व विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष करने हेतु जो नेता हथेली पर जान लिए एक साथ घूमते थे, आज वे और उनके अनुयायी आपस में ही मर-मिट रहे हैं। पहले जितनी जन-धन की क्षति नहीं हुई थी, उससे भी कई गुना अधिक अब हो रही है। यह आज़ादी नहीं, बरबादी है। जब सब दलों का समान उद्देश्य जन-सेवा है तो फिर ये नित्य-नये संघर्ष प्रजातंत्र को शोभा नहीं देते। यह विरोध अब खुलकर सामने आया है। छोटी-बड़ी प्रायः सभी संस्थायें इसी रोग से पीड़ित हैं। लोक-सभा एवं विधान-सभायें क्रमशः देश एवं राज्य की सर्वोच्च संस्थायें हैं। यहाँ कई विधेयक प्रस्तुत किये जाते हैं जो कानून का रूप धारण करते हैं। यहाँ वर्षा, शीत एवं ग्रीष्मकालीन अधिवेशन होते हैं। इनमें एक ओर पक्ष है तो दूसरी ओर विपक्ष। सामने उच्च आसन पर अध्यक्ष विराजमान हैं। यहाँ धन्यवाद, निन्दा, शोक, मर्यादा, स्थगन, काम रोको, कटौती, ध्यानाकर्षण, विशेषाधिकार आदि नाना प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं जिन पर जमकर विचार किया जाता हैं। प्रश्नोत्तर काल में प्रश्न पूछे जाते हैं और सम्बद्ध मंत्री उत्तर देते हैं। कोई समर्थन करता है तो कोई विरोध। बातों ही बातों में उत्तेजना, टोका-टोकी, हंगामा, झड़प तथा नोक-झोंक होती है। यहाँ तक कि हाथा-पाँई की नौबत आ जाती है। इधर कुछ वर्षों की घटनाओं ने इन सभाओं की उपयोगिता तथा महत्त्व पर अनेक आशंकायें उपस्थित कर दी हैं। यदि सच पूछा जाय तो संसदीय व्यवस्था को आशानुकूल सफलता नहीं मिल पाई। यहाँ जो है वह कोरी बहस है जिसकी प्रक्रिया दीर्घ, जटिल एवं व्यय-साध्य है। इसकी गति धीमी होती है अतः कार्य शीघ्र नहीं हो पाते। सदस्यों की सुख-सुविधा तथा वेतन-भत्तों पर भी अपार धन-राशि खर्च होती है। इन सभाओं में व्यर्थ ही अमूल्य समय नष्ट होने के साथ प्रति मिनट राष्ट्र के हजारों-लाखों रुपये बातों ही बातों में बह जाते हैं। इन्हीं सब कारणों से स्वतंत्र भारत की ये संस्थायें 'बातों की वाड़ियां' बनकर रह गई हैं। प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में सरकार के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव लाया जाता है। कई दिनों तक बहस होती है और यह सब जानते हुए होती है कि अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं होगा। मत-विभाजन होने पर विपक्ष को मुँह की खानी पड़ती है।

देश का भला इसी में है कि अब आगे के लिए प्रस्तावों में इतना अधिक न उलझा जाय और तत्काल कारगर उपाय किये जायें। जनता प्रतीक्षा करते-करते इस व्यवस्था से ऊबकर बेबस होती जा रही है। हमें जो करना है वह तुरन्त और तेज गति से करना होगा।

(च) निर्वाचन पद्धति :— निर्वाचन लोकतंत्र के रथ की धुरी है। इसका अपना पृथक् शास्त्र है। हमारे यहाँ निर्वाचन के अतिरिक्त ऐसी कोई पद्धति नहीं जिसके आधार पर यह जाना जा सके कि महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय विषयों पर जनता का मत क्या है? एतदर्थ निर्वाचन लोकतंत्र का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है। चुनाव न हों तो राष्ट्रपति शासन लागू हो जाता है। भारत में लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना के साथ राष्ट्रव्यापी निर्वाचन की नींव पड़ी। राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, संसद के सदन, विधान-मंडल आदि चुनाव के द्वारा बनने लगे। जनता द्वारा निर्वाचित दल शासन करने लगा। आज देश में सभी कार्यों के लिए निर्वाचन-पद्धति का आश्रय लिया जाता है। जिस उम्मीदवार के पक्ष में अधिक मत आते हैं, वह विजयी घोषित होता है। छोटी-बड़ी प्रायः सभी संस्थाओं में चुनाव के समय लोगों में भारी उत्साह दिखाई देता है। जिधर देखो उधर चुनाव की चहल-पहल है। प्रत्याशी तथा उसके दलीय समर्थक रात-दिन भाग-दौड़ कर प्रचार करते हैं। प्रत्याशी सभा, भाषण, विज्ञापन, चित्रपट, आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं आदि साधनों के द्वारा जनता को अपने अनुकूल बनाते हैं। जिस उत्साह, उमंग एवं उल्लास के साथ चुनावों में काम-काज किया जाता है, यदि बाद में भी वैसे ही किया जाय तो देश का भला हो। मतदाताओं की संख्या २२ करोड़ है। स्वतंत्र भारत में भेद-भाव के बिना प्रत्येक नागरिक को, जो २१ वर्ष की अवस्था से कम नहीं है, मत देने का अधिकार प्राप्त है। प्रायः मतदाता प्रचार-कार्य और अपने लाभ को देखकर ही मत देते हैं। निर्वाचन की समस्त व्यवस्था सरकार करती है। इसके लिए पृथक् विभाग है। संदेह तथा विवादास्पद चुनावों का निर्णय न्यायाधिकरण द्वारा होता है। कहना न होगा कि चुनाव के कारण सरकारी काम-काज बहुत बढ़ गया है।

प्रजातंत्र सिद्धान्ततः एक आदर्श है किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं दिखाई देता। शब्द ठीक हैं किन्तु उनके पीछे कर्म-शक्ति का अभाव है। यही कारण

है कि चुनाव जनता के नाम पर एक उपहास बनकर रह गया है। नेताओं ने या तो सत्ता का पद सँभाला या विरोधी दल बनाकर विपक्ष में जा बैठे। एक ऐसी राजनीति चल पड़ी जिसमें पद, पैसे तथा प्रतिष्ठा को अनावश्यक महत्त्व मिला। जनता दूर जा पड़ी और नेता कुर्सी से चिपक गये। हमारा राष्ट्रीय चिन्तन राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिस्पर्द्धा की संकीर्ण सीमाओं में सिमट गया। कहते हैं, युद्ध तथा प्यार में सब क्षम्य हैं और इस प्रकार अज्ञानवश चुनाव भी युद्ध मान लिये गये। बैलट को बुलट और नेता को तोप की संज्ञा दी गई। निकटतम प्रतिद्वन्द्वी शत्रु हो गया। चुनाव-क्षेत्र रण-भूमि का रूप ले बैठे। जो हो, प्रस्तुत इतिहास इस बात का साक्षी है कि युद्ध का भी एक धर्म होता है और चुनाव के भी नियम हैं जिनके पालन में ही देश का हित है। चुनाव यदि स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना से हों तो उनका स्वागत है किन्तु दुर्भाग्य से भारतीय राजनीति में चुनाव तन, मन, धन और जन की अपार हानि कर रहे हैं। संघर्ष का कोई कारण न होने पर भी यहाँ संघर्ष होते हैं। एक विकासशील देश का करोड़ों रुपया इसमें खर्च हो जाता है। चुनाव ने मनुष्य को भ्रष्टाचार की ओर ढकेल दिया जिससे नैतिक पतन हुआ और सार्वजनिक जीवन दूषित बन गया। सर्वत्र पैसे की होड़ लगी हुई है। धन का जोर बहुत बढ़ गया है। जो पैसा लगाता है, लाभ चाहता है और जो पैसा देता है, वह भी। इस लेन-देन में राजनीति ने एक व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। ऐसी चालें चली गई और ऐसे हथकण्डे अपनाये गये जो नियम की सीमा में नहीं आते। इससे मुकदमेबाजी बढ़ी है। सब की दृष्टि मात्र मत-पेटी को भरने में ही लगी रही। काँग्रेस ने चुनावों में विजयी होने की सिद्धि प्राप्त कर ली है और इन्हें इतना व्यय-साध्य बना दिया है कि कोई अन्य दल इतना धन-संग्रह नहीं कर पाता। काँग्रेस की तुलना में अन्य दल निर्धन ही हैं। चुनावों में साधनों की प्रचुरता ही प्रमुख एवं निर्णायक है। यदि कोई प्रत्याशी चुनाव-क्षेत्र के बाहर अपने समर्थकों की एक ऐसी अखूट लम्बी कतार खड़ी कर दे जो सुबह से शाम तक मत देती रहे तो उसकी जीत निश्चित है। जब तक शासन-यंत्र, धन, सत्ता एवं बल का वर्चस्व समाप्त नहीं होता तब तक स्वतंत्र तथा निष्पक्ष चुनाव की कल्पना करना व्यर्थ है। केवल वैधानिक सुरुचि-पूर्ण साधनों का ही प्रयोग होना चाहिए। यदि सच्चाई, तथा ईमानदारी से देश-भक्त निर्वाचित हों तो राष्ट्र की बहुत सी कठिनाइयां दूर हो सकती हैं।

निर्वाचन-पद्धति दोषी नहीं है किन्तु क्रियात्मक रूप में अनेक त्रुटियां हो जाती हैं। जनता के सुशिक्षित होने पर ही इसका पूर्ण लाभ मिलता है। भारतीय मतदाता में अभी परिपक्वता नहीं आ पाई है। चुनाव-पद्धति की सफलता मत का सही उपयोग करने पर ही निर्भर है। चाहे कोई जीते चाहे हारे, भुगतना जनता को ही पड़ता है।

(छ) राजनैतिक नेता :— नेता देश का कर्णधार है। वह भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं विचार-धारा का प्रतीक है। जो देश की रक्षा तथा उन्नति के लिए अपना तन, मन, धन न्यौछावर कर दे, वह सच्चा नेता है। यदि नेता अपने उच्च आदर्शों एवं पवित्र कार्यों के द्वारा राष्ट्र का सही तथा समयानुकूल नेतृत्व करे तो वह जनता के गले का हार हो जाता है। एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ वह जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी पथ-प्रदर्शन करता है। नेता को चाहिए कि वह नि:स्वार्थ भाव से जनता-जनार्दन की सेवा करे, उसके दुख-सुख को अपना दुख-सुख समझे और राष्ट्र-हित को सर्वोपरि माने। स्वाधीनता-सँग्राम में हमारे नेताओं ने अपनी कथनी-करनी के द्वारा जो आदर्श उपस्थित किया, उसके पीछे जनता आँख मूँदकर चली। यह उसी का शुभ फल है कि आज हम स्वतंत्रता का सुख-भोग कर रहे हैं। इस दृष्टि से सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपाल-कृष्ण गोखले, पं० मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक विपिनचंद्र पाल, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाष-चंद्र बोस, मौलाना अबुलकलाम आजाद, राजगोपालाचार्य, सरोजनी नायडू, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, लाल बहादुर शास्त्री आदि के नाम राष्ट्रीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित हैं। राजस्थान में सर्वश्री विजयसिंह पथिक, अर्जुनलाल सेठी, लोकनायक जयनारायण व्यास, पं० हीरालाल शास्त्री, माणिकलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय आदि के नाम अग्रगण्य हैं। अस्तु,

स्वतन्त्र भारत में इने-गिने चोटी के नेता ही रह गये हैं, जिन पर हमें गर्व है। खेद है कि अधिकांश छोटे नवोदित नेता पथ-भ्रष्ट हो गये हैं। पहले का गौरव अब रौरव बनता जा रहा है और कहीं-कहीं इसने कौरव का रूप धारण कर लिया है। इन फुटकर नेताओं के लिए सेवा तो एक बहाना है, उद्देश्य सत्ता में आकर स्वार्थ साधना है। ऐसे नेताओं से राजनीति कलंकित हुई है और जनता इन्हें अपने ढंग से परिभाषित करती है। ढोंगी भक्तों के

सदृश ये 'जनता-जनता' का जप करते हैं पर उसकी ओर ध्यान नहीं देते। चुनाव के समय ये नेता अभिनेता बनकर नये-नये रूप तथा स्वाँग रचकर जनता के पास आते हैं और मीठी-मीठी बातें बनाकर उसे ठग लेते हैं। सत्ता में आकर इनसे मिलना दुर्लभ हो जाता है। सदैव उद्‌घाटन, भाषण और चाटण में लीन रहते हैं। बैठक, समारोह, सम्मेलन, अधिवेशन, अभियान, आंदोलन आदि इनकी दैनिक चर्या है। नेता उसी की सुनता है जिसके पीछे आवाज़ हो और अधिक सँख्या में मतदाता हों। यदि लोकतंत्र को सफलतापूर्वक चरितार्थ होने देना है तो इन्हें सत्ता हथियाने के लिए लालायित ही नहीं होना चाहिए। जनता के पास जाकर उसके कष्टों का निवारण करना इनका कर्त्तव्य है। अधिक काल तक सत्ता-मोह के कारण ही आज काँग्रेस का पहले जैसा आदर-सम्मान नहीं है। दलीय नेताओं में स्वार्थ-पूर्ति की होड़ लगी हुई है अतः जनता की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। यह कैसी विडम्बना है कि निर्वाचित प्रतिनिधियों के सामने असँख्य लोग अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि की विभीषिका से संत्रस्त होकर त्राहि-त्राहि करते हैं पर इनकी समुचित सहायता नहीं की जाती। अकाल राहत कार्यों की आवंटित राशि का सदुपयोग नहीं होता। प्रकृति की इस विकृति को वे देवी-देवता पर थोपते हैं जैसे देवता जनता को भूखों मारना चाहते हैं। पर स्वर्ग से उतरकर भूतल पर कोई देवता तो वोट माँगने नहीं आता! अल्पज्ञ अंगूठा-छाप नये नेताओं के लिए एक पृथक् लोक प्रशिक्षण-केन्द्र की स्थापना होनी चाहिए जहाँ एक निश्चित पाठ्य-क्रम के द्वारा इन्हें लोकतंत्र का मूल मंत्र समझाया जाय। आवश्यक शिक्षा-दीक्षा अर्जित करने पर ही इन्हें चुनाव-टिकट और फिर महत्त्वपूर्ण पद दिया जाना चाहिये। नेता सोचते हैं कि एक बार चुनाव जीत लेने पर विपरीत जनमत भी उन्हें नहीं उखाड़ सकता। अतः यदि वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करें तो उन्हें वापिस बुलाने की व्यवस्था होनी चाहिए। कम से कम भ्रष्टाचारी नेता की तो गाँधीवादी उपायों से खैर-खबर लेनी ही चाहिए। उनकी चल-अचल सम्पत्ति की समय-समय पर घोषणा होना आवश्यक है। हम देखते हैं कि योग्यतम सरकारी नौकर एक निश्चित आयु पाकर पद-निवृत्त हो जाता है, लेकिन नेता के लिए कोई अधिकतम आयु नहीं है। वह जीवन भर अवकाश ग्रहण नहीं करता। उसे एक वार से अधिक पद पर नहीं रहना चाहिए। नई पीढ़ी भ्रष्ट नेताओं के दूषित मार्ग पर चलने लगी है। हम जिस गंदे

राजनैतिक वातावरण में साँस ले रहे हैं, उससे अब दम घुटने लग गया है। अच्छा हो कि जनता स्वयं से पूछे कि वह अपने और अपने देश के लिए क्या कर रही है और नेता आगे आकर बतायें कि उन्होंने जनता की क्या भलाई की है ?

(क) **शासन व्यवस्था:—** शासन मानव-जगत् की सर्वोच्च शक्ति है जिसकी आज्ञा का पालन करना ही पड़ता है। इसके लिए केन्द्र तथा राज्यों में कई विभाग हैं जिनमें छोटे-बड़े अनेक कर्मचारी तथा अधिकारी व्यवस्था करते हैं। अतः इसे राजनैतिक संस्थान भी कहा जाता है। शासन से राजनीति को पृथक् नहीं किया जा सकता। वह भौतिक बल से अनुप्रेरित व्यक्ति अथवा दल का समाज पर अधिकार है जिसमें कर्त्तव्य-भावना चाहे न हो, भय और दण्ड अवश्य है। इससे शासित व्यक्ति चुपचाप शांतिपूर्वक कानून का आदर करते हुए जीवन के सही मार्ग पर चलता है। इसमें मनुष्य को दुख-सुख दोनों ही झेलने पड़ते हैं। सुख में वह फूला नहीं समाता किन्तु दुख में विवश हो जाता है। उसे किसी वस्तु के अभाव में तड़पकर रह जाना पड़ता है और कभी-कभी यंत्रणा भी भोगनी पड़ती है। अपनी असह्य अवस्था में मनुष्य को क्रांति भी करनी पड़ी है जिसके फलस्वरूप शासन-व्यवस्था में पट-परिवर्तन हुआ है। मानव-जाति का इतिहास असंख्य क्रांतियों से भरा पड़ा है। मनुष्य एक व्यवस्था से असंतुष्ट होकर उसे नष्ट कर देता है और दूसरी व्यवस्था को अपनाता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। शासन में उत्थान-पतन होते आये हैं, व्यवस्था में उथल-पुथल होती रहती है। काल की शिला पर कई लेख बने और मिटे। फिर भी मनुष्य की इच्छानुसार शासन-व्यवस्था स्थापित नहीं होती। अपने आरम्भ-काल में हमारे यहाँ परिवार के रूप में गण-शासन-प्रथा प्रचलित थी। कालांतर में इसका रूप बदला और सामंतवाद का सूर्य चमका जो अपनी सांध्य वेला में डूब गया। स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद पर आधारित शासन-व्यवस्था की स्थापना की गई जिसका परिचय दिया जा चुका है। शासन-प्रबन्ध में केन्द्र का सुदृढ़ होना नितांत आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में अधीनस्थ राज्य अनु-शासन का पालन नहीं करते।

लोकतंत्रीय शासन मंथर गति से चलता है। इसमें जनता को भरपूर ढील तथा छूट मिली होती है। शासन की बागडोर एक आदमी के हाथ में न होकर अनेक व्यक्तियों के हाथ में होती है अतः यह स्वेच्छाचारी नहीं हो पाता। इसमें शोषण

तथा अन्याय भी नहीं होता। वस्तुतः शासक और शासित दोनों ही अपने - अपने कर्त्तव्य का पालन करें और अधिकार का ध्यान रखें तो बापू के 'राम - राज्य' की कल्पना साकार हो सकती है। प्रत्येक नागरिक का यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि उसे जीवन की सामान्य सुख-सुविधायें उपलब्ध हों। गत २८ वर्षों तक लोकतंत्र का अर्चन - पूजन करने पर भी देश के कई भागों में जनता शुद्ध वायु, अन्न, जल, वस्त्र, आवास एवं जीविका के लिये तरस रही है। जो सरकार जनता से कर लेती है और संसार में सबसे अधिक लेती है उसे इन तात्कालिक कष्टों का निवारण करना ही होगा। साथ ही प्रत्येक नागरिक, चाहे वह किसी दल का हो, राज्य तथा राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करे जिससे हम एक राष्ट्र के रूप में प्रगति कर सकें। इतने वर्षों तक एक ही राजनैतिक दल का प्रचण्ड बहुमत होने पर भी प्रगति के अपेक्षित चिन्ह नहीं दिखाई देते। शासन की सफलता योग्य राजनीतिज्ञों तथा शासकों पर निर्भर है और एक ही दल में ये इतने नहीं मिल सकते जो समस्त देश का काम - काज सुचारु रूप से कर सकें। अतः शासन-व्यवस्था में सभी दलों की प्रतिभाओं का उपयोग राष्ट्रीय हित में करना होगा। अधिकांश प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति राजनीति के दल-दल में नहीं पड़ना चाहते। दलीय व्यक्ति में सत्ता और पद का लोभ होता है,। वे अपना लाभ पहले देखते हैं, देश-हित बाद में। पंच, प्रधान, प्रमुख, पार्षद, विधायक, सांसद, मंत्री आदि निर्वाचित प्रतिनिधि किसी न किसी दल के सदस्य होते हैं। इनका दृष्टिकोण राज्याधिकारी से भिन्न होता है। अधिकारी संघीय अथवा लोक-सेवा आयोग की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर आते हैं अतः वे योग्य, अनुभवी एवं कार्य-कुशल होते हैं। इन्हें निर्बाध रूप से शासन नहीं करने दिया जाता। दलीय राजनीति के हस्तक्षेप से इन अधिकारियों को अपना सामान्य काम-काज करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शासन में इस प्रकार का प्रभाव, दबाव एवं पक्षपात अनुचित है। वर्ग के भीतर व्यक्ति ऐसा विभक्त होता जा रहा है कि जिससे राष्ट्रीय एकता का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। बाहर हम गुट-निरपेक्ष हैं, भीतर गुट-सापेक्ष। यह सापेक्षता जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्रीयता, प्रांतीयता एवं भाषा के नाम पर भी फैली हुई है। हम जानते हैं कि सामान्य जीवन, सरकारी नौकरियों एवं विशेषतः चुनावों के समय ये तत्त्व प्रत्याशी की विजय में साधक बन जाते हैं। बाहर-भीतर का यह भेद स्पष्टतः एक विरोधाभास है। अतः आज हम घट-घट कर इतने घट गये

कि विघटन के द्वार पर पहुँच गये हैं। विभेदक शक्तियां सीना ताने घूम रही हैं और विध्वंसक तत्त्व देश को उजाड़ने में लगे हुए हैं। युद्ध-काल में राष्ट्रीय एकता की जो भावना जन-जन में देखने को मिलती है, शांति-काल में भी वैसी ही बनी रहे तो निश्चय ही राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

शासन में समस्याओं के बढ़ने के साथ-साथ विभागों की संख्या भी बढ़ती गई। राजस्थान में प्रमुख विभागों की संख्या ३० के आस-पास है जिनकी राज्य-व्यापी शाखायें हैं। स्वायत्त संस्थायें भी बहुत हैं जिन्हें अनुदान प्राप्त होता है। खेद है कि राज्य-कर्मचारियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि होने पर भी काम-काज शीघ्रता से नहीं निपटाया जाता। व्यक्तिगत दायित्व का स्थान सामूहिक दायित्व ने ले लिया है, अतः अपने अधिकारों का प्रयोग न करके सीधे-सादे प्रश्नों के लिए भी समिति, उप-समिति अथवा तदर्थ समिति बनाकर अधिकारी मुक्त हो जाते हैं। शासन में इन समितियों की भरमार है जिनमें राजनीति ने घुस-पैठ कर ली है। पूछने पर उत्तर मिलता है– काम-काम के ढंग से होता है। लोगों के कष्ट बढ़ रहे हैं और नित्य नये संकट आकर उपस्थित हो जाते हैं। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से जीवन अनिश्चित हो गया है। शासन में भ्रष्टचार का बोलबाला है। किसी न किसी रूप में घूस दिये बिना काम नहीं होता। रक्षक ही भक्षक बन गया है। भण्डाफोड़ होने पर आरोपों की जाँच होती है पर अधिकांश में न तो किसी को कोई आँच आती है और न साँच ही प्रकट होता है। जाँच की पुनः जाँच होती है और कई प्रकार की होती है। इनमें हजारों-लाखों रुपये खर्च होते हैं। नतीजा कुछ नहीं— वही ढाक के तीन पात। घूम-फिर कर जहाँ थे, वहीं आना पड़ता है। एक बार राज्य-सेवा में प्रवेश कर लेने पर फिर बहार ही बहार है। कोई किसी की परवाह नहीं करता। कर्मचारी पूरे समय काम नहीं करते। बीच का समय जल-पान में व्यर्थ नष्ट कर देते हैं। शासन शिथिल होता जा रहा है। अधिकारी किसी भी काम के लिए पहले 'ना' करते हैं, अटकलें लगाते हैं और मामले को लटकाये रखने में ही अपनी शान समझते हैं। प्रार्थी एक-एक कर्मचारी की शरण में जाकर आमद-खुशामद करते-करते थक जाता है और अंत में निराश होकर बैठ जाता है। इस दूषित वातावरण में योग्य, ईमान-दार एवं निष्पक्ष अधिकारियों का कार्य करना कठिन हो जाता है। वे विवश होकर चुपचाप अपना सेवा-काल पूरा करने में ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझते हैं।

दासता के युग में शताब्दियों तक दलित वर्ग का शोषण होता रहा अतः स्वतंत्र भारत के संविधान ने अनुसूचित जातियों, जन-जातियों एवं पिछड़े वर्गों की ओर विशेष ध्यान दिया। लोक-सभा तथा विधान-सभाओं में इनके लिए स्थान सुरक्षित रखे गये। सरकारी नौकरियों में भी इन जातियों का आरक्षण किया गया और पदोन्नति की सुविधायें दी गईं। प्रांतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं की प्रतियोगिताओं के लिए निर्धारित न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता का मान इनके लिए घटाया गया। छात्र-छात्राओं को शिक्षा तथा प्रशिक्षण के लिए पूरी सहायता एवं प्रोत्साहन दिया गया। इन वर्गों के लिए हम योग्यता को महत्त्व न देकर जाति को महत्त्व देते हैं। मनुष्य चाहे किसी जाति का क्यों न हो, प्रजा-तंत्र में सबको समान अवसर मिलना चाहिए। जाति के आधार पर संरक्षण देने की इस दीर्घकालीन व्यवस्था से कालान्तर में अन्य जातियां पिछड़ जायेंगी तथा योग्यता के स्थान पर अयोग्यता की मात्रा बढ़ेगी। अतः सुधार करते समय पहले इन वर्गों के जातिगत संस्कार, स्वभाव एवं प्रकृति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

संदेह नहीं कि हमारी नीति उदार है और योजना विशाल है, किन्तु अनुभव ने जिन नीतियों की निरर्थकता सिद्ध कर दी है, उन पर आगे चलने का दुराग्रह नहीं करना चाहिये। नीतियां कभी स्थायी नहीं होतीं और योजनायें भी धरी रह जाती हैं। राष्ट्र-हित के लिए इनमें समयानुकूल परिवर्तन करना वाँछनीय है। हम जिस नीति से अपना घर चलाते हैं और परिवार की उन्नति के लिए योजना बनाते हैं ठीक उसी श्रम, लगन एवं निष्ठा से राष्ट्रीय नीति एवं योजना में जुट जायें तो फिर पैसे-पैसे का सदुपयोग हो और लाभ मिले। खेद है कि जनता को योजनाओं का अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। प्रशासन ने जो चित्र खींचा, वह मृग-तृष्णा वनकर रह गया। इसमें विपुल धन-राशि का अपव्यय हुआ। सड़कें, कुएं, वन, तालाव, भवन आदि कहीं वने, कहीं नहीं बने और कहीं-कहीं तो वनकर मिट भी गये। हिसाव-किताव वरावर। इन लघु योजनाओं के साथ दीर्घ योजनाओं के अन्तर्गत उन वड़े-वड़े वाँधों और कारखानों के निर्माण हेतु विदेशों से अरवों रुपयों का कर्ज लेना पड़ा जिसका लाभ कई वर्षों वाद मिलेगा। दोप नीति अथवा योजना का नहीं वरन् उसके कार्यान्वियन का है। सरकार विवश है, जनता सहयोग नहीं करती।

दुर्भाग्य से भारतीय जनता ने लोकतंत्र-पद्धति को अभी पूरी तरह आत्म-

सात नहीं किया है। अतः आलोच्यकाल को हम लोकतंत्रीय समाजवादी व्यवस्था का प्रयोग-काल कह सकते हैं। जनता ने स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता, उच्छृंखलता, उदण्डता एवं अनुशासनहीनता से ले लिया है, अतः वह अनर्थ करने लगी है। सड़क एवं यातायात के नियमों को ही देखिये। जनता उनका खुला उल्लंघन करने लगी है, अतः दुर्घटनायें होती हैं और असंख्य लोग अकाल काल के ग्रास हो जाते हैं। फिर भी जनता पल भर के लिए भी रुकना नहीं जानती और निर्भय होकर एक-दूसरे से टकराती रहती है। इन वर्षों में हा-हुल्लड़, भीड़भाड़ एवं गुण्डागर्दी बढ़ी। समय ऐसा आ गया कि जो काम एक सच्चा, ईमानदार एवं चरित्रवान व्यक्ति नहीं करा पाते, वही काम पाँच-दस झूठे, बेईमान एवं दुश्चरित्र मिलकर आसानी से कराने लगे। अशांति उत्पन्न करने वालों की बन आई। तोड़-फोड़, छीना-झपटी तथा लूट-खसोट की अनेक घटनायें घटीं। आंदोलनों ने जोर पकड़ा और कभी-कभी तो भीषण रूप ले बैठे। सभा-संस्थाओं ने लम्बे-चौड़े माँग-पत्र पेश किये जो स्वीकृत होते गये। अतः लोगों का हौसला बढ़ता गया। अहिंसा के नाम पर हिंसा भी हुई। ऐसे समय में असामाजिक तत्त्वों की बन आई। आज जलसे, जलूस, प्रदर्शन, धरने, घेराव, सत्याग्रह, हड़ताल, भूखहड़ताल, क्रमिक भूखहड़ताल, अनशन, आमरण अनशन, बंद, तालाबंदी, आत्मदाह आदि ने नाक में दम कर रखा है। यह लक्ष्य करने की बात है कि जहाँ महात्मा गाँधी ने इनका प्रयोग किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए अंतिम अमोघ शस्त्र के रूप में किया था, वहाँ हमारे देशवासी स्वार्थ-पूर्ति के लिए बात-बात में नव-नव रूपों और शैलियों के द्वारा इनका दुरुपयोग करने लगे। इससे एक नया कौतुक खड़ा हो गया। स्वयं काँग्रेस ने जनता को ये शस्त्र दिये और आज उसी पर इनका वार हो रहा है। गाँधी गया और उसके साथ गाँधीवाद भी। जो शेष बचा है, उसे पुजारियों ने काँच की कीमती अल्मारियों में सजाकर रख दिया है। ऐसे विषम समय में वयोवृद्ध समाज-सेवी बाबू जय प्रकाश नारायण ने गाँधीवाद के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया है। जो हो, पुलिस इन नवीन सामूहिक आंदोलनों को शांत करने में ही लगी रही अतः वह चोरी, डकैती, बलात्कार, अपहरण और हत्या जैसे व्यक्तिगत जघन्य अपराधों की ओर कम ध्यान दे पाई। सेना ने भी सहायता की किन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियाँ सरकारी नियन्त्रण से बाहर होने लगीं। पुलिस तथा सेना भीड़ के आगे मूक दर्शक बनकर रह गई। जनता ने उनकी दशा दयनीय बना दी। कहीं-कहीं

गोलियां भी चलानी पड़ीं जिनमें कई लोग प्राणों से हाथ धो बैठे और कई हताहत हुए। स्वतंत्र भारत में पुलिस के कर्त्तव्य तथा अधिकार पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

आज हम जिस लोकतन्त्र के लिए जी रहे हैं उसके लिए संकट की घड़ी उपस्थित हो गई है। अनुशासन ऐसा भंग हुआ है कि मनुष्य बिना खूँटे का आवारा पशु जैसा बन गया है। इन आवारा पशुओं के झुंड के झुंड नागरिक जीवन को अस्त-व्यस्त करने में लगे हुए हैं। इससे अराजकता फैलने लगी। इन्हें पकड़कर बाँधने में सरकार की निष्क्रियता देश के मनोबल को तोड़ रही है। स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने से अपराध भी बढ़ते गये। इतिहास इस कथन की पुष्टि करता है कि प्रत्येक काल एवं शासन में अपराध हुए हैं किन्तु जितने निर्भीक, व्यापक एवं सुनियोजित अपराध स्वतन्त्र भारत में हो रहे हैं, वे हमारी आंतरिक दुर्बलता की ओर इंगित करते हैं। अशिक्षित ही नहीं, सुशिक्षित व्यक्ति भी विभिन्न प्रकार के कुत्सित अपराधों के दोषी पाये गये हैं। सम्पन्न घरानों की युवक-युवतियाँ भी इसी मार्ग पर चल पड़ी हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वराह वेंकट गिरि के शब्दों में— 'स्वतंत्र भारत में जेल-जीवन नागरिक जीवन से बेहतर बन गया है।' यही कारण है कि आज जेल जाना एक साधारण बात हो गई है। अब अपराधी को सुधारने की ओर ध्यान अधिक है।

स्थूल रूप से शासन की जो व्यवस्था केन्द्र में है वैसी ही राज्यों में। राजस्थान में भी शासन-प्रबन्ध का एक-समान रूप दृष्टिगोचर होता है। यहाँ भी व्यवस्थापिका का कार्य कानून बनाना, कार्यपालिका का उसे क्रियान्वित करना और न्यायपालिका का अपराधियों को दण्ड देना है। स्वतंत्र भारत में अनेक नये कानून बने किन्तु अपराधी उनसे बच निकलने के नये-नये मार्ग निकाल ही लेते हैं। अँग्रेजी ढंग का कानून पुराना पड़ गया है अतः उसमें समयानुकूल संशोधन अपेक्षित है। लोग न्यायालय में उपस्थित होकर ईश्वर की दुहाई देते हुए सच बोलने की शपथ लेते हैं पर बोलते हैं झूठ। नीर-क्षीर-विवेकी न्यायाधीश गवाह, जिरह तथा बहस के आधार पर निर्णय सुनाते हैं। कानून की प्रक्रिया अत्यंत जटिल, दीर्घ, मँहगी एवं कष्टप्रद होती जा रही है। कानून की दृष्टि में सभी समान हैं, कोई बड़ा और कोई छोटा नहीं है। और तो और, भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री गिरि तक को उच्चतम न्यायालय में उपस्थित

होकर साक्षी देनी पड़ी। इसी प्रकार प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी से उच्च न्यायालय के कटहरे में दो दिनों तक जिरह हुई। भारतीय न्यायाधीश अपनी स्वतंत्रता, निर्भीकता एवं निष्पक्षता के लिए विश्व-प्रसिद्ध हैं। चुनाव-याचिका को लेकर प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय से भारतीय संविधान, लोकतंत्र एवं न्यायपालिका की गौरव-गरिमा बढ़ी है (१२ जून, १९७५ ई०)। यह भारतीय राजनीति में एक अविस्मरणीय घटना है।

आज की इस वस्तु-स्थिति के परिप्रेक्ष्य में संविधान निर्माता डॉ० भीमराव अम्बेडकर का यह कथन स्मरण करने योग्य है- 'यदि वस्तुयें पतन की ओर जाती हैं तो उसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान निकृष्ट था वरन् हमें यह कहना पड़ेगा कि मनुष्य दुष्ट था।' इसी दुष्टता के दलन के लिए राष्ट्रपति ने बाह्य संकटकालीन स्थिति की घोषणा के बाद (१९७१ ई०) देश में प्रथम बार आंतरिक संकटकालीन स्थिति की भी घोषणा कर दी है (२६ जून, १९७५ ई०)। इसी प्रकार प्रथम बार पत्र-पत्रिकाओं पर सेंसर लगाया गया। इतना ही नहीं, केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, आनन्द मार्ग, जमात-ए इस्लामी और कुछ नक्सलपंथी गुटों समेत २६ संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया है (४ जुलाई, १९७५ ई०)। प्रतिबंध इन संस्थाओं की गतिविधियों, आंतरिक सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने के विरुद्ध होने के कारण लगाया है क्योंकि शांति, सुरक्षा, व्यवस्था तथा न्याय प्रदान करना सरकार का दायित्व है। अतः राष्ट्रपति ने लोक सभा का अधिवेशन बुलाकर संकटकालीन स्थिति की संपुष्टि कर दी है। (२१ जुलाई, १९७५ ई०)। इससे लोकतंत्र में भारत की अटूट आस्था का परिचय प्राप्त होता है।

(६) **सामाजिक अवस्था :—** मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ उसका सम्बंध अन्योन्याश्रित है। समाज से तात्पर्य अखिल भारतीय समाज से है जिसमें विविध वर्ण तथा जातियों के लोग रहते हैं। जाति को भी समाज की संज्ञा दी जाती है किन्तु यह उसका संकुचित रूप है। आदि काल में आर्य और अनार्य के नाम से केवल दो जातियां थीं जो अब बढ़कर चार हजार हो गई हैं। इन समस्त जातियों एवं उप-जातियों का आधार वर्ण, व्यवसाय तथा स्थान है। भारत में जातिमूलक संघर्ष वैदिक काल से चला आ रहा है।

जातियों की अधिकता ने व्यवसाय को लेकर मानव-मानव में एक हीन प्रकार की घृणा उत्पन्न की और यह घृणा समाज में इतने विकराल रूप में घुसी तथा फैली कि मनुष्य ने मनुष्य से पृथक् होने में गौरव समझा। वर्ण-भेद की रचना ईश्वर ने नहीं, स्वयं मनुष्य ने की है। मनुष्य ने ही मनुष्य को अस्पृश्य बनाया है। महाभारत काल के उपरांत जातिवाद का विष अधिक फैला और अस्पृश्यता ने सँक्रामक रोग का रूप धारण कर लिया। कहना न होगा कि इस अस्पृश्यता ने समाज का विघटन किया, एकता नष्ट की, कला-व्यवसाय की उन्नति को अवरुद्ध किया और सामाजिक संगठन को अस्त-व्यस्त कर दिया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एक ही परम पिता के प्रिय पुत्र हैं। जैसे किसी घर में चार भाई भिन्न-भिन्न व्यवसाय करते हुए भी कोई छुआछूत नहीं करते, वैसे ही देश में इन चारों वर्णों के लोग आचरण क्यों नहीं करते ? दुनिया में न तो कहीं भारत जैसा जाति-वैविध्य है और न अछूतों जैसा भेद-भाव। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य जाति से नहीं, कर्म से महान् बनता है। समाज में जान-बूझकर दुर्गन्ध फैलाने वाला व्यक्ति आज का सबसे बड़ा शूद्र है, जाति में चाहे वह ऊँचा हो। जातिवाद एक ऐसा बरगद है जिसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। ऊँच-नीच की भावना ने मनुष्य को संकीर्ण बना दिया अत: अछूत-समस्या उत्पन्न हुई है। समाज का एक-चौथाई भाग अस्पृश्य होने से काँग्रेस सरकार ने अछूतोद्धार की ओर विशेष ध्यान दिया है। इसीलिए छुआछूत को अपराध घोषित कर दिया गया है (१५ मार्च, १९५४ ई०)। ऐसे शुभ समय में अछूतों को चाहिये कि वे अपनी हीन-भावना त्यागकर आगे आयें और ऐसे कर्म करें जिनसे ऊँच-नीच का भेद-भाव स्वत: ही मिट जाये। जाति-भेद समाप्त करने का सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि लोग अपने नाम के पीछे जातिसूचक शव्द लिखना ही बंद कर दें, जातीय संस्थाओं को प्रोत्साहन न दिया जाय तथा तथाकथित ऊँची-नीची जातियों को परस्पर आदान-प्रदान से वंचित न रखा जाय। भविष्य में जाति-प्रथा का जीवित रहना सम्भव नहीं दिखाई देता। आज वेगार और दासता के दिन लद गये हैं।

समाज में नारी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह गृह-लक्ष्मी एवं पुरुषों की जीवन-संगिनी मानी गई है। उसने संस्कृति की रक्षा करने के साथ माँ बनकर समाज-सेवा की है। वह चिर काल से घर-गृहस्थी तथा वाल-वच्चों का पालन-पोषण करती आई है। वह पुरुष की प्रेरक और पूरक है। नारी का

यह दायित्व प्रकृति प्रदत्त है। प्राचीन भारत में नारी पुरुषों के सदृश स्वतंत्र थी। मध्यकाल में वह घर की सीमा में बंद कर दी गई। इस दशा में वह नाना प्रकार की कुप्रथाओं से ग्रस्त रही। आधुनिक काल में उसे अपनी दयनीय स्थिति का बोध हुआ, अतः वह अपने अधिकारों के लिए उठ खड़ी हुई। शिक्षा की ओर उसका ध्यान गया। आर्थिक पराधीनता तथा पति की निष्ठुरता के प्रति भी उसने आवाज़ उठाई। स्वतंत्र भारत के संविधान ने नारी की दशा सुधारने के लिए कई सद्प्रयत्न किये हैं। आज बाल-विवाह, बाल-हत्या, बहु-विवाह, वृद्ध-विवाह, दहेज, पर्दा तथा सती-प्रथा वर्जित हैं। दुष्ट पति से वह सम्बन्ध-विच्छेद कर सकती है। विधवा-विवाह भी होने लगे हैं। परम्परागत वेश्यावृत्ति पर अर्गला लगा दी गई है। नारी को पुरुष के बराबर अधिकार दिये गये हैं। सम्पत्ति पर भी उसका अधिकार है। समान कार्य के लिए उसे समान वेतन मिलता है। वह अब वकील, मुंसिफ, जज, डाक्टर, कलक्टर, प्रोफेसर आदि महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करने लगी है। केन्द्रीय एवं राज्य-सेवाओं में उसका प्रतिनिधित्व बढ़ रहा है। अपना मत प्रकट करने का उसे अधिकार है। वह चुनाव में खड़ी हो सकती है और शासन में कोई भी पद प्राप्त कर सकती है। वर्तमान महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी नारी-जगत् के लिए एक अजस्र प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं। इस दिशा में अनेक संस्थायें भी कार्यरत हैं जिनमें 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' (१९२६ ई०) की सेवाओं को नहीं भुलाया जा सकता। आशा है, वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय वनिता वर्ष में (१९७५ ई०) भारतीय नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर आगे बढ़ती रहेगी।

सँयुक्त परिवार-पद्धति हिंदू समाज की एक ऐसी विशेषता है जो अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। परिवार नागरिक शिक्षा की प्रथम पाठशाला है। इसे हम एक लाभदायक समिति कह सकते हैं। पाश्चात्य देशों की स्वच्छंदता तथा व्यक्तिवादी भावना के फलस्वरूप यह प्रथा भी विशृंखल होती जा रही है। नई पीढ़ी उन्मुक्त जीवन के पक्ष में है अतः वह पारिवारिक बन्धन में नहीं पड़ना चाहती। उसे अपने परिवार का अनुशासन प्रिय नहीं। विज्ञान ने उसे विलासी बना दिया है। शराब व अन्य नशीले पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सामाजिक अवमूल्यन ने एक नई वेश्यावृत्ति को जन्म दिया है। ये आधुनिक वेश्यायें विवश होकर नहीं वरन् धन कमाने तथा शाही जीवन बिताने के लिए होटलों तथा आलीशान कोठियों में रहती हैं। 'कॉल गर्ल', 'केबरे डांस' आदि

इसी के रूप हैं। उच्च वर्ग के लोग सामाजिक संस्थाओं, समाज-कल्याण समितियों, संगीत कला-केन्द्रों आदि की आड़ में अपनी काम-पिपासा शांत करने लगे हैं। सन् १९७३ ई० में युवा-युवतियों का एक-चौथाई भाग विभिन्न यौन रोगों से पीड़ित पाया गया। चरित्र-हीनता तथा नैतिक अधः पतन में चलचित्रों का भी प्रमुख हाथ रहा है। इनमें हिंसा, नग्नता एवं कामुकता की प्रचुरता रहती है। नई पीढ़ी इसकी प्यासी है और पुरानी पीढ़ी तृप्त। नये-पुराने का संघर्ष जारी है, उसमें सामञ्जस्य नहीं हो पाया है। खेद है कि समाज के नाम पर संस्थायें तो बहुत हैं लेकिन सुधार नाम-मात्र के हो रहे हैं। सामाजिकता कहने, सुनने और पढ़ने के लिए रह गई है। हम अपने पड़ोस, परिवार, गली और गाँव को ही भूलते जा रहे हैं। मनुष्य अपने ही रँग में रँगता जा रहा है। वह अपने घर तक ही सीमित है। राजनैतिक स्वतंत्रता ने समाज की कई मान्यतायें बदल दी हैं। मनुष्यता का लोप होता जा रहा है। हमारा समाज आज एक ऐसी विषम भूमि पर खड़ा है जहाँ कुरीतियाँ अधिक हैं। वस्तुतः समाज अपनी संस्कारजन्य दुर्बलताओं, अंधविश्वासों तथा रूढ़िवादी विचारों के कारण उन्नति नहीं कर पाता। अतः इनके दूर हुए विना नये समाज की संरचना सम्भव नहीं। इन समस्त कुरीतियों को दूर करने की महत्त्वाकांक्षा से आर्य समाज, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन आदि अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई। महावीर से लेकर संत विनोबा भावे के युग तक गौतम बुद्ध, रामानंद, कबीर, नानक, तुकाराम, राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद, विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गाँधी प्रभृति महापुरुषों ने उल्लेखनीय कार्य किये, किन्तु अभी इस क्षेत्र में बहुत-कुछ करना शेष है।

(७) **धार्मिक अवस्था :—** भारत एक धर्म-प्रिय देश है। यहाँ कई धर्म परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं जिनमें हिंदू, इस्लाम, ईसाई, सिख, जैन, बौद्ध, यहूदी तथा पारसी धर्म मुख्य हैं। इनके लिए स्थान-स्थान पर मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारे बने हुए हैं। यहाँ हमारा प्रयोजन हिंदू धर्म से है। जो अपने पूर्वजों की शास्त्रानुमोदित धार्मिक परम्पराओं को धारण करता है, वह हिन्दू है और उसका स्थान हिंदुस्तान (भारत) है। धर्म का अर्थ निश्चित नियमों का पालन करते हुए ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना है। ईश्वर सृष्टि का एक ऐसा रहस्य है जो प्रकट होने पर भी अप्रकट रहता है। मनुष्य को इसका बोध प्रकृति के माध्यम से हुआ, अतः सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र, पृथ्वी-आकाश, सरिता-सागर,

वन-पर्वत, सर्दी-गर्मी और वर्षा-वनस्पति की उपासना ईश्वरीय शक्तियों के रूप में हुई। ईश्वर इस जगत् की एक ऐसी वास्तविकता वन गई है कि जिसका विसर्जन कोई नहीं कर पाता। वेद हिंदू धर्म के मूल आधार हैं। इनमें 'धर्म' का अर्थ धार्मिक विधियों तथा क्रिया-संस्कारों से लिया गया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन इसका पक्षधर है। आर्य जाति ने अपने विशद ज्ञान तथा गहन अनुभव से जीवन-जगत्, आत्मा-परमात्मा की व्याख्या की जिससे धर्म की प्राण-प्रतिष्ठा हुई तथा अध्यात्म-दर्शन का समुचित विकास हुआ। हिंदू धर्म की सबसे बड़ी विशेषता देवी-देवता की मूर्ति का जप, तप और अनुष्ठान है। ईश्वर के विषय में हमारी ध्यान-धारणा इन्हीं मूर्तियों पर निर्भर है। मंदिर हिंदू धर्म के पवित्र स्थल हैं। पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, देव-दर्शन तथा तीर्थ-यात्रा इसी के अंग हैं। संसार के किसी भी अन्य देश में धर्म का समाज के साथ इतना गहरा संबंध नहीं दिखाई देता जितना भारत में। यही कारण है कि धर्म के मार्ग में समय-समय पर अनेक कठिनाइयां आईं, घोर अत्याचार हुए एवं रक्त की नदियाँ बहीं फिर भी मनुष्य का मन उसमें लगा रहा और आज भी वह उसकी रग-रग में समाया हुआ है।

जैसे भारत में अनेक जातियां हैं, वैसे ही धर्म भी। इस अनेकता में भी एकता के दर्शन होते हैं। हिन्दू संस्कार से आस्तिक, स्वभाव से धर्म-भीरु और प्रकृति से भाग्यवादी है। आर्ष-ग्रन्थों में कर्म पर विशेष जोर दिया गया है और गीता का उपदेश तो कर्मयोग का ही प्रतिपादन है, फिर भी जन-मानस भाग्यवाद में डूबा हुआ है। इससे आलस्य और अकर्मण्यता आई। वाह्याडम्बर और अन्धविश्वास बढ़े। मुसलमान शासकों के समय का साम्प्रदायिक विष अँग्रेजों के समय में देशव्यापी हो गया। पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के प्रभाव से धर्म को ठेस पहुँची और भौतिकता को बल मिला। भावना का स्थान बुद्धि ने ले लिया। शास्त्र-प्रमाण की निरर्थकता सिद्ध की जाने लगी। प्रत्येक बात का मूल्यांकन तर्क और विवेक की कसौटी पर कसकर वैज्ञानिक पद्धति से होने लगा। विज्ञान ने प्रकृति का रहस्योद्घाटन किया और एक-एक कर समस्त शक्तियों पर विजय प्राप्त की। ज्यों-ज्यों विज्ञान के चरण आगे बढ़ते गये, मनुष्य की अधिकाधिक भौतिक उन्नति होती गई। चन्द्रलोक के धरातल पर मनुष्य के अवतरण ने वैज्ञानिक उन्नति की गति में पंख लगा दिये (२१ जुलाई, १९६९ ई०)। कहने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य

एक छलाँग में सैकड़ों वर्ष आगे बढ़ गया। इससे धार्मिक मान्यताओं का महत्त्व घटा। असत्य रूढ़ियां, बाह्याचार और अन्धविश्वास हिलने लगे। प्रकृति के साथ विज्ञान का यह नवीन समझौता मानवता को किस ओर ले जायगा यह तो भविष्य ही बतायेगा, किन्तु यदि विवेक संतुलित न रहा तो पल भर में ही इस सृष्टि का विनाश हो जायेगा। यह संतुलन तथा नियमन धर्म के द्वारा सम्भव है।

धर्म ज्ञान की कसौटी है अतः चिंतनशील व्यक्ति इसके मर्म को जानते हैं। देश-काल के अनुरूप हमें अपने रहस्य को नया रूप देना होगा। दैनिक जीवन की जटिलताओं के कारण आज का व्यस्त मनुष्य धर्माचरण के लिए समय नहीं निकाल पाता अतः उसे शुद्ध अंतकरण से अपने भीतर ही ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। यह सब धर्म स्वीकार करते हैं कि ईश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करता है। मन ही मंदिर है, मनुष्य ही देवता है और यह पृथ्वी ही स्वर्ग है। यह आज का युगधर्म है। यदि मनुष्य अपने दैनिक व्यवसाय सही अर्थों में करने लगे तो यह उसका सबसे बड़ा धर्म होगा। मन, वचन और कर्म से दूसरे की सेवा करना सबसे बड़ा धर्म है और यही भगवान की पूजा है। धर्म कर्त्तव्य से पृथक् नहीं है इसलिए प्रत्येक प्रसंग में सही कर्त्तव्य का निर्णय करना धर्म है। भव-सागर को पार करने का उपाय नैतिक नियमों का पालन है। वस्तुतः मूर्ति पूजा कच्चे और दुर्बल चित्त के लिए है और ऐसे लोगों की सँख्या अधिक है अतः इनके लिए मंदिर जाना लाभदायक है। यदि मंदिर शांत, शुद्ध तथा पवित्र हों तो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की झाँकी पाना कठिन नहीं है। यहाँ की दैनिकचर्या में सुधार होना चाहिए। इससे सामान्य जनता सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, धृति आदि भावनाओं के द्वारा उदात्त होगी।

धर्म का प्रमुख अर्थ नैतिकता है जिसके बिना कोई समाज अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। आज हमारा कितना नैतिक अधः पतन हो रहा है, यह व्यवहार में स्पष्ट दिखाई देता है। यह कैसा विरोधाभास है कि धर्म-प्रिय जनता अधर्म के मार्ग पर चलने लगी है। भलाई-बुराई, सच-झूठ और पाप-पुण्य की परिभाषायें बदल रही हैं। और तो और, मनुष्य भगवान को ही खरी-खोटी सुनाने लग गया है। धर्म ढोंग बनता जा रहा है। चारों ओर पाखंड का बोलबाला है। पाखंडी साधु, और चमत्कारी बाबा लोग फल-फूल रहे हैं। धर्म के नाम पर आज विश्वास करना धोखा खाना है। इसकी आड़ में बलात्कार की

घटनायें होती हैं। हिंदू को पशु-बलि और नर-बलि की कोई चिन्ता नहीं। मूर्त्तियों और चित्रों को चुराने में भी कोई हिचक नहीं। आज धर्म अपनी शक्ति, पुजारी अपनी निष्ठा तथा संस्थायें अपनी प्रतिष्ठा खोती जा रही हैं।

भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है। इस निरपेक्षता से अभिप्राय समस्त धर्मों के प्रति सम-भाव है। वसुधा को एक परिवार मानने वाला देश कदापि साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। वर्तमान काँग्रेस सरकार सब धर्मों के प्रति समान व्यवहार करती है किन्तु जनता में अपने-अपने धर्म के प्रति जो कट्टरता है, वह स्थान-स्थान पर संघर्ष कराती है। धर्म में भी राजनीति आ गई है। चुनाव के समय कई नेता अधिक मत-प्राप्ति के लोभ में साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारते हैं। कई व्यक्ति आर्थिक प्रलोभन में राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने में लगे रहते हैं। यदि आर्थिक और राजनैतिक स्वार्थों की बात छोड़ दी जाय तो धर्म-निरपेक्षता स्थापित करना कठिन नहीं है। देश में जितने धार्मिक संगठन और संस्थायें हैं उनके प्रति सरकार की नीति उदार है। इनके अखिल भारतीय सम्मेलन होते हैं जिनमें धर्म की महत्ता प्रकट की जाती है। स्वतंत्र भारत में धार्मिक आचार-विचारों के पुनर्गठन का समय आ गया है। वर्तमान वर्ष में जैन-धर्म भगवान महावीर की २५०० वीं देशव्यापी जयंती मना रहा है (१९७५ ई)। हर्ष का विषय है कि अब विश्व-धर्म सम्मेलन हो रहे हैं और प्रेम, मैत्री तथा शांति के नये प्रयास किये जा रहे हैं। यह निश्चित है कि जब तक हिंसा, अंधविश्वास तथा आर्थिक और जातीय मतभेद नहीं मिटेंगे, धर्म का उद्देश्य अधूरा ही रहेगा। इस प्रसंग में बैरन फ्रे ब्लोमवर्ग (अमेरिका) के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—'संयुक्त राष्ट्रसंघ की तरह ही विश्व-धर्म का साझा मंच गठित किया जाय और उसका मुख्यालय भारत में हो' (नवम्बर, १९७५ ई०)। अपने नये रूप में भारत विश्व का नीति-निदेशक और अध्यात्म-गुरु है। अतः उसे विश्व-धर्म की रूप-रेखा तैयार करने के लिए पृथक् अन्तरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना करनी चाहिए। यह उसके गौरव के अनुकूल होगा।

(८) **आर्थिक अवस्था :–** प्राचीन काल में यह शस्य-श्यामला धरती धन-धान्य से परिपूर्ण थी और थी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र! हम आत्म-निर्भर थे और अनेक वस्तुओं का निर्यात करते थे। इनकी बाहर बड़ी माँग और प्रतिष्ठा थी। भारत की श्री-समृद्धि से लालायित होकर विदेशी दस्युओं ने देश पर बारम्बार आक्रमण

किये। इतिहास साक्षी है कि इन विदेशी जातियों के शोषण से हमारी अर्थ-व्यवस्था को धक्का लगा। देश की सम्पत्ति विदेशों में जाने लगी और वहाँ की वस्तुओं का आयात होने लगा। महात्मा गाँधी ने इन विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की जन-चेतना उत्पन्न की। काँग्रेस ने 'खादी-व्रत' द्वारा इस भावना का प्रसार किया।

संदेह नहीं कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत में समाजवाद की स्थापना हुई। भारतीय समाजवाद राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन-पद्धति का ऐसा आधार है जिसमें समानता, स्वाधीनता एवं बंधुता के सार्वभौम मानवीय आदर्श सन्निहित हैं। समाजवाद का प्राथमिक लक्ष्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आधार-भूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने, कार्य करने और एक सम्मानपूर्ण जीविका उपार्जन करने का अवसर प्राप्त हो। प्रत्येक व्यक्ति को उसको क्षमता के अनुसार अपने श्रम का पारिश्रमिक प्राप्त हो। इस सिद्धांत को व्यवहार में लाने के लिए नित्य नये प्रयोग हो रहे हैं। स्वतंत्र भारत में सरकार ने छोटे-बड़े प्रायः सभी उद्योगों के उत्थान-पुनरुत्थान में सक्रिय रुचि दिखाई है। कृषि के क्षेत्र में एक नई हरित क्रांति के दर्शन हो रहे हैं। फलतः कृषक वर्ग का जीवन-स्तर ऊपर उठ रहा है और गाँव समृद्ध होते जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों उत्पादन बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों जन-संख्या भी बढ़ती जाती है। सँयुक्त राष्ट्रसंघ का अनुमान है कि आज से २५ वर्षों बाद संसार की जन-सॅख्या ६ अरब हो जायेगी। पृथ्वी पर जन-भार अधिक बढ़ने से यौन-विकृति, अपराध, मनुष्य-भक्षण, युद्ध, कलह, महामारी और मानसिक रुग्णता का भयंकर प्रसार होने लगेगा। ऐसी स्थिति में समाज का अनुशासन भंग हो जायेगा, नैतिकता का नाम भी नहीं रहेगा और मानव-जाति पुनः पाषाण-युग की ओर लौट जायेगी। जन-सॅख्या वृद्धि से मानव के भविष्य का लोमहर्षक दृश्य दिखाई दे रहा है। आज देश में कीड़े-मकोड़ों की तरह जो जन-सॅख्या बढ़ती जा रही है, उसे परिवार-नियोजन के सिद्धांतानुसार नियंत्रित करना होगा अन्यथा जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होना सम्भव नहीं। सरकार इसके लिए समुचित सहायता प्रदान कर रही है।

यह सच है कि मँहगाई की मार ने प्रायः सभी देशों के व्यक्तियों को सताया है किन्तु भारत में तो इससे लोगों की कमर ही टूट गई है। इतने कम वर्षों में इतनी अधिक मँहगाई को देखकर बड़े-बूढ़ों का दिल धड़कने लगता है। मुगल-

सम्राट् औरंगज़ेब का समय बीते लगभग तीन-सौ वर्ष हुए हैं। उस समय चावल एक रुपये का सवा मन, तेल इक्कीस सेर और घी साढे-दस सेर बिकता था। अँग्रेजी शासन-काल में चावल सवा-रुपये मन, दाल डेढ़-रुपये मन, तेल सरसों पाँच रुपये मन और घी सोलह रुपये मन मिलता था (१६१० ई०)। समय-चक्र के साथ भाव बढ़े। आज़ादी से ०-५ वर्ष पूर्व सन् १६४२ ई० में चावल चौंतीस रुपये मन, दाल पच्चीस रुपये मन. शक्कर चालीस रुपये मन, घी एक-सौ-चालीस रुपये मन, कोयला दो रुपये मन, दूध पाँच रुपये मन और धोती-जोड़ा बारह रुपये में बिकता था। जब से अर्थ-व्यवस्था की कुंजी हमें मिली है, भाव स्थिर न होकर बढ़ते ही रहते हैं। सन् १६५२ ई० में चावल चालीस रुपये मन, चीनी पैंतीस रुपये मन, घी दो-सौ रुपये मन, कोयला दो रुपये मन, दूध अठाईस रुपये मन और धोती-जोड़ा दस रुपये में मिलता था। गत २०-२५ वर्षों में मँहगाई अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गई है। सन् १६६६ ई० की समाप्ति पर बाजारों में गेहूँ पचास रुपये मन चावल अस्सी रुपये मन, घी चार-सौ-पचहत्तर रुपये मन, वनस्पति दो-सौ-पच्चीस रुपये मन, तेल दो-सौ रुपये मन, दाल साठ रुपये मन, नमक छः रुपये मन, कोयला पाँच रुपये मन, दूध साठ रुपये मन और धोती-जोड़ा सोलह रुपये के भाव पर बिकता था। आज प्रति क्विंटल गेहूँ एक-सौ-अस्सी रुपये, चावल चार-सौ-पचास रुपये, शक्कर पाँच-सौ रुपये, घी दो हजार दो सौ रुपये, कोयला साठ रुपये, दूध तीन-सौ रुपये और धोती-जोड़ा सत्तर रुपये में मिलता है (१ मन = ३७ किलोग्राम, १०० किलोग्राम = १ क्विंटल)। आज़ादी के दो वर्ष बाद सन् १६४६ ई० में रुपये का मूल्य सौ-पैसे माना जाय तो वह आज घटकर २७.६ पैसे रह गया है।

आलोच्य काल में विज्ञान ने सबको भौतिकवादी बना दिया। जैसे राष्ट्र-राष्ट्र में धन की होड़ लगी हुई है वैसे ही जन-जन में भी। दौलत के मोह-बंधन ने सबको जकड़ रखा है। पैसा ही सबका मुख्य ध्येय रह गया है। शिष्टाचार का स्थान भ्रष्टाचार ने ले लिया है। अर्थ-व्यवस्था का आधार नैतिक मूल्य हैं जिनके अभाव में समाज का अवमूल्यन होता जा रहा है। आज मनुष्य पैसे के लोभ में दूसरे का गला घोंटने में तनिक भी नहीं हिचकता। अभाव, कर-चोरी, मुनाफाखोरी, जमाखोरी, कालाबाजारी, कालाधन, मुद्रा स्फीति, विदेशी मुद्रा की धोखाधड़ी, मिलावट और तस्करी ने हमारी अर्थ-व्यवस्था को कलंकित कर दिया है। वेतन-भोगियों को छोड़कर अंधाधुंध कमाई में लगे लोग कर-वंचना

करते हैं। कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर व्यापारी मूल्य बढ़ाते रहते हैं। थोक व्यापारी बड़े-बड़े गोदामों में पहले तो माल छिपा देते हैं और फिर उसे ऊँचे दाम पर बेचते हैं। कालाबाजारी करते रहने से काला धन बढ़ता रहता है। इसके फलस्वरूप मुद्रा स्फीति हुई है। मिलावट का तो हाल यह है कि लोगों ने खाद्य-पदार्थों और दवाइयों तक को नहीं छोड़ा। इससे न जाने कितने लोगों के जीवन का दुखद अंत हुआ है। तस्करी ने तो एक ऐसा जाल फैलाया कि जिससे अर्थ-व्यवस्था क्षत-विक्षत हो गई। हर्ष का विषय है कि सरकार ने आंतरिक सुरक्षा कानून (Misa) के अन्तर्गत ऐसे लोगों की धर-पकड़ करना आरम्भ कर दिया है। गत १-२ वर्षों से इन दोषों को दूर करने के लिए विशेष अभियान चलाये जा रहे हैं। फलतः स्थिति में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है।

आज हमारे सामने अर्थ-व्यवस्था सर्व-प्रमुख है। गरीबी, बेकारी और बेरोजगारी से जनता विशेष दुखी है। किसान, मजदूर, व्यापारी एवं राज्य-कर्मचारी किसी में आंतरिक प्रसन्नता नहीं दिखाई देती। उसके भीतर निराशा की भावना ने घर कर लिया है। यदि देश की सारी सम्पत्ति गरीबों में बाँट दी जाये तो भी गरीबी नहीं मिट सकती तथा आर्थिक समानता नहीं आ सकती। आवश्यकता इस बात की है कि देश आत्म-निर्भर बने। इसके लिए उत्पादन बढ़ाना होगा और उसका सही, समान तथा न्यायपूर्ण ढंग से वितरण करना होगा। प्रत्येक वस्तु का राष्ट्रीयकरण अथवा सरकारीकरण समस्या का निदान नहीं। वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में गरीब और गरीब बना, धनवान और धनवान बना तथा इन दोनों के बीच में मध्यम वर्ग पिसने लगा। यह देखकर आंतरिक संकटकालीन स्थिति की घोषणा के उपरांत प्रधानमंत्री ने निम्न एवं मध्यम वर्ग के लिए जिस २१ सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा की है (१ जुलाई, १९७५ ई०), उसका समस्त क्षेत्रों में स्वागत हुआ है और अब प्रत्येक राज्य में इसे क्रियान्वित किया गया है। कहना न होगा कि इसके माध्यम से सरकार ने मूल्यों का मोर्चा सँभाला है, भूमिहीनों को भूमि, सिंचाई व्यवस्था, आर्थिक साधन और आवश्यक उपकरण जुटाये हैं तथा मध्यम आय वर्ग को आयकर में राहत देकर जन-साधारण में राष्ट्रीय अनुशासन की वृद्धि की है। निश्चय ही इससे लोगों को सहायता मिलेगी और उनकी आर्थिक दशा में सुधार होगा। आज चल-अचल सम्पदा की एक निश्चित सीमा से व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता। समय ने सबको निचोड़ कर रख दिया है।

समाजवादी देशों के साथ आर्थिक सहयोग भारत की अर्थ-व्यवस्था का एक सुदृढ़ स्तम्भ है। विश्व की आर्थिक स्थिति जितनी अनिश्चित इन वर्षों में रही उतनी पहले कभी नहीं। भारत पर भी इसका प्रभाव पड़ा। कर-भार बढ़ा। भारत में परोक्ष कर संसार भर में सबसे अधिक हैं। इन परोक्ष करों से जन-साधारण के कष्ट बढ़ते जा रहे हैं। विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लोभ में आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्यात करना पड़ा जिन्हें देशवासी ताकते ही रहे। पेट्रोल का मूल्य चार गुना बढ़ जाने से (१९७४ ई०) देश का अरबों रुपया खर्च होते देखकर सरकार ने 'बम्बई हाई' में तेल के अनेक कुएं खुदवाये। इससे हमारी आर्थिक दशा सुधरने की आशा है। यह संतोष का विषय है कि भारत विश्व में साइकिल, सिलाई-मशीन एवं ट्रांजिस्टर के उत्पादन और निर्यात में सबसे आगे है। यह देखकर गर्व होता है कि भारत अब उन देशों को भी अपने यहाँ के बने हुए जहाज और हवाई जहाज भेजने लगा है जहाँ से पहले वह इन्हें मँगाता था। हमें अपनी कठिन आर्थिक स्थिति में निराश होने की आवश्यकता नहीं। चुनौतियों का सामना श्रम, एकता तथा निष्ठा से करना होगा। यदि सच पूछा जाय तो आपातकाल में भारतीय अर्थ-व्यवस्था सुधरने लगी है। मूल्यों में सुधार होने से कृषि एवं औद्योगिक दोनों ही क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ने लगा है। आज देश प्रगति के एक नये मोड़ पर आ खड़ा हुआ है।

(९) **शैक्षणिक अवस्था** :— एक समय था जब भारत विश्व का गुरु था। देववाणी संस्कृत राष्ट्रभाषा थी। यहाँ के तक्षशिला, मध्यमिका, मथुरा, अहिच्छत्रा, कन्नौज, अयोध्या, काशी, पाटलिपुत्र, नालंदा, विक्रमशिला, वलभी, उज्जयिनी, धानाकारक एवं काञ्ची विश्वविद्यालयों की कीर्ति-कौमुदी दूर-दूर तक फैली हुई थी। देश-विदेश के सहस्रों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते और विभिन्न विद्याओं में पारंगत होकर जीवन में प्रवेश करते थे। कालांतर में मुसलमानों और तत्पश्चात् अँग्रेजों के शासन-काल में यह आदर्श पद्धति नष्ट हो गई। यही नहीं, राष्ट्रभाषा के स्थान पर उर्दू, फारसी तथा अँग्रेजी में शिक्षा दी गई अत: विद्यार्थी-समुदाय पराधीन हो गया। लार्ड मैकाले के अभिशाप ने बाबू बनने की होड़ लगा दी (१९२८ ई०)। खेद है कि स्वतन्त्र भारत में भी इतने वर्षों तक वही ढांचा और ढर्रा विद्यमान है। वही पराधीन-काल की कक्षा, शिक्षा परीक्षा और दीक्षा का क्रम चला आ रहा है।

शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास है। यदि शिक्षा शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक शक्तियों का निर्माण न करे तो भिक्षा तुल्य है। आधुनिक शिक्षा सैद्धांतिक है, व्यावहारिक नहीं। वह अक्षर-ज्ञान कराती है, जीवन-ज्ञान नहीं। यह शिक्षा हमें तथ्यों की बाह्य जानकारी देती है, भीतरी शक्तियाँ नहीं जगाती। यही कारण है कि शिक्षण-संस्थाओं के उत्तीर्ण विद्यार्थी जीवन की अन्य परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण ही रह जाते हैं। शिक्षा उपाधियां प्रदान करती है, जीविका नहीं। नाना प्रकार की उपाधियों से अलंकृत विद्यार्थी इधर-उधर भटकता रहता है। उसके सामने एक निश्चित उद्देश्य नहीं होता। शिक्षण-संस्थाओं की आत्मा उसका 'टाइम-टेबल' (समय-सारणी) है लेकिन आज न 'टाइम' का पता है और न 'टेबल' का। घंटा बजने पर कक्षा लगती है और विद्यार्थियों की भीड़ जमा होती है। अध्यापक आता है और शुष्क ज्ञान देकर चला जाता है। कोई किसी को नहीं जानता। अवकाश के दिन अधिक होने से पाठ्य-क्रम पूरा नहीं हो पाता। शुल्क वर्ष भर का लिया जाता है किन्तु पढ़ाई तीन-चार महीनों की हो पाती है। आज शिक्षा का अर्थ यही रह गया है कि येन-केन-प्रकारेण उपाधि मिले और उसके सहारे नौकरी प्राप्त की जाय। सही अर्थों में ज्ञानोपार्जन की प्रवृत्ति का ह्रास होता जा रहा है। परम्परागत मूल्य क्षत-विक्षत हो रहे हैं। शिक्षा व्ययशील होती जा रही है, पाठ्यक्रम बोझ बना हुआ है और योग्य अध्यापकों का अभाव है। देश-काल के अनुरूप मनोवैज्ञानिक ढग की शिक्षा नहीं दी जाती। सह-शिक्षा विकारयुक्त हो रही है। साधन सीमित हैं और माध्यम में एकरूपता नहीं। परीक्षा योग्यता की कसौटी नहीं रह गई। सफलता का रहस्य प्रभाव बन गया। परीक्षा की परीक्षा करने से पता चलता है कि इस प्रक्रिया में स्तर-स्तर पर अनेक दोष आ गये हैं। सारा खेल अंकों का है जो प्रेमपूर्वक लुटाये जाते हैं। एक ओर उत्तीर्ण प्रतिशत बढ़ रहा है तो दूसरी ओर स्तर निरतर गिरता जा रहा है। नकल करने का दंडनीय कुकृत्य साहसिक कार्य बन गया। निर्दोष निरीक्षक एवं परीक्षक पिटने लगे। छूट अधिक मिलने से विद्यार्थी मनमानी करने लगे। वे बेरोजगारी, अपराध, असंतोष एवं मादक द्रव्यों की ओर प्रवृत्त हुए। दुर्भाग्य से स्वतंत्र भारत की शिक्षण-संस्थाओं में भी राजनीति ने घुस-पैठ कर ली। विद्यार्थी तथा अध्यापक विभिन्न दलों में विभक्त हुए। ज्ञान-मदिर क्षुद्र स्वार्थों तथा घटिया दलबंदी से घिर गये। चुनावों ने गुड़-गोबर कर दिया। उदण्डता, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता तथा अराजकता

फैलने लगी। शांति भंग होती गई। गम्भीर शिक्षण तथा गहन शोध-कार्य के लिए शांत एवं पवित्र वातावरण जाता रहा। यह लक्ष्य करने की बात है कि अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं ने भी बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया। अनेक देशों में उग्र आंदोलन हुए। इन्डोनेशिया का तख्ता ही उलट गया, फ्रांस में भूकम्प आया, पाकिस्तान काँप गया, अमेरिका जैसे देश को झुकना पड़ा और जापान के विश्व-विद्यालय बंद हो गये। भारतीय शिक्षण-संस्थाओं में भी आंदोलन हुए। विद्यार्थी-नेता उचित अनुचित मांगों को लेकर राजनैतिक भाषा-शैली में बातें करने लगे। राष्ट्रीय समय और सम्पत्ति की हानि हुई। पता नहीं, यह शिक्षा-प्रणाली मनुष्य के जीवन को क्या बनाना चाहती है?

किसी भी राष्ट्र में शिक्षक और शिक्षार्थी ही उसकी वास्तविक शक्ति होते हैं। यदि वे साथ दें तो किसी भी क्षेत्र में परिवर्तन लाया जा सकता है। स्वतंत्रोपरांत राजनैतिक दल कुर्सी और सत्ता छीनने में ऐसे उलझ गये कि विद्यार्थियों के भविष्य की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। समय आ गया है, हमें शिक्षा-पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा। यदि छात्र-छात्राओं का पल-पल रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगाया जाय तो शिक्षा का उद्धार हो। शिक्षा भारतीयता से ओतप्रोत होनी चाहिये। आयातित विदेशी समाधान हमारी समस्याओं के हल नहीं है। मानसिक ज्ञान के साथ शारीरिक, धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक एवं राष्ट्रीय शिक्षा देने की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है। विद्यार्थी की दैनिक चर्या में इनका प्रबन्ध होना चाहिए। यदि विद्यार्थी को श्रम, निष्ठा कर्त्तव्यपरायणता तथा स्वावलम्ब का पाठ पढ़ाया जाय तो वह बेकार कदापि नहीं रह सकता। स्वाधीन राष्ट्र के समस्त शिक्षित राज्य-सेवा में नहीं लगाये जा सकते। पढ़ने-लिखने के साथ श्रम करना होगा। शिक्षा का प्रमुख कार्य हमें चारित्रिक गुणों से भरकर उत्तम मनुष्य बनाना है। शिक्षण-संस्थाओं में एक-एक विद्यार्थी के गुणावगुणों की शुद्ध संचिका रखी जानी चाहिए और उसी के आधार पर वह उत्तीर्ण घोषित होना चाहिए। कक्षा का अध्यापक ही विद्यार्थी का सबसे बड़ा परीक्षक है। वह अपने शिष्य की नाड़ी जानता है, बाहर का परीक्षक नहीं। विद्यार्थी की कसौटी ज्ञान है, उपाधि नहीं अतः इसका अंतिम निर्णायक कक्षा का अध्यापक ही होना चाहिए। अनौपचारिक कक्षाओं के द्वारा विद्यार्थी और अध्यापक एक-दूसरे के सन्निकट आ सकते हैं। यहाँ राज-नैतिक ढंग के चुनावों से क्या लाभ? आवश्यक हो तो होनहार विद्यार्थियों को

मनोनीत किया जा सकता है। विद्यार्थी राजनीति का अध्ययन अवश्य करें लेकिन सक्रिय राजनीति में भाग न लें तो यह उनके हित में होगा। माँ भारती के पवित्र प्रांगण में माँगें शालीनता से रखनी चाहिए जिससे उसका गौरव बढ़े।

शिक्षा केन्द्र का नहीं राज्यों का विषय है। अधिकांश योजनायें राज्यों द्वारा केन्द्र की सहायता से क्रियान्वित होती हैं। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय नियोजन समूह की स्थापना हुई (१९६६ ई०)। प्रारम्भिक शिक्षा सुधार के लिये एक राष्ट्रीय संस्थान बना (१९५६)। माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिये मद्रास विश्वविद्यालय के उप-कुलपति डॉ० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में एक माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति हुई (१९५२ ई०) तथा एक अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद् की नींव पड़ी। उच्च शिक्षा में सुधार के लिये डॉ० राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित हुआ (१९४८ ई०) जिसके सुझावों को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने एक स्थायी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन किया (१९५३ ई०)। सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री डॉ० दोलतसिंह कोठारी की अध्यक्षता में एक आयोग बनाया गया (१९६६ ई०) जिसके फलस्वरूप एक नीति प्रस्ताव पारित हुआ (१९६८ ई०) और सस्तुतियों को स्वीकार किया गया किन्तु दुर्भाग्य से कोई निर्णायक कार्यवाही नहीं हो पाई। इन संस्तुतियों को केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति के सामने रखा गया (१९७२ ई०) जिसने स्वीकृति प्रदान कर इस प्रणाली को समस्त देश में लागू करने की सलाह दी। अंत में सरकार ने इस पर अपनी मुहर लगा दी (१९७४ ई०)। इसमें शिक्षा की एकरूपता, राष्ट्रीय एकता, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक एकता, आत्मनिर्भरता और शारीरिक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में जो विचार-मंथन हुआ है, उसे अब त्वरित सोच-समझकर लागू किया जाना चाहिए। अधिक विलम्ब होने से शिक्षा-जगत् में निराशा उत्पन्न हो रही है। यह हर्ष की बात है कि राज्य-सरकार शिक्षा पर पूर्वापेक्षा कई गुना अधिक व्यय कर रही है। शिक्षण-संस्थाओं की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। राजस्थान में पहले जहाँ एक भी विश्वविद्यालय नहीं था वहाँ अब जयपुर (१९४७ ई०), जोधपुर (१९६२ ई०) एवं उदयपुर (१९६२ ई०) ये तीन विश्वविद्यालय हैं। बिड़ला संस्थान, पिलानी को भी विश्वविद्यालयीय मान्यता प्राप्त है। प्रत्येक जिले में कला, वाणिज्य एवं विज्ञान का कम से

कम एक महाविद्यालय है । छात्र-छात्राओं के लिए पृथक्-पृथक् अनेक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं । प्रारम्भिक शिक्षा का तो गाँव-गाँव और नगर-नगर में जाल फैला हुआ है । अब इसे अनिवार्य और निःशुल्क बनाया जा रहा है । साथ ही कई व्यावसायिक विद्यालय और विशिष्ट संस्थान भी कार्यरत हैं । तकनीकी शिक्षा में भी उन्नति हुई है । पत्राचार तथा प्रौढ़ शिक्षा की पृथक् व्यवस्था है । इस प्रकार शिक्षण-संस्थाओं और समितियों की कमी नहीं हैं, आवश्यकता है इन्हें सुव्यवस्थित करने की ! सरकार इसके लिए कृतसंकल्प है । आपातकालीन स्थिति की घोषणा के उपरांत इन संस्थाओं में अनुशासन की एक नई लहर आई है । विद्यार्थी तथा अध्यापक शांति से अध्ययन-अध्यापन में दत्त-चित्त हैं । कहना न होगा कि २१ सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षा को प्रमुखता दी गई है । पाठ्य-पुस्तकों, काँपियों और कागज की पर्याप्त पूर्ति बनाये रखने हेतु कागज का उत्पादन बढ़ने लगा है । स्थान-स्थान पर बुक बैंक खुले हैं । शिक्षण-संस्थाओं में 'रैगिंग' और नये छात्रों को परेशान करने की प्रथा, जो बहुत विकट हो गई थी, समाप्त कर दी गई है । प्रवेश, उपस्थिति, अध्ययन, अध्यापन एवं परीक्षा में कसावट आने लगी है । आशा है कि आज का विद्यार्थी राष्ट्रीय नीति में ढलकर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाने के साथ राष्ट्र का मस्तक भी ऊँचा उठायेंगे । अस्तु,

(१०) **साहित्यिक अवस्था :**— साहित्य विशिष्ट शब्द-रचना के रूप में नवीन भावों तथा विचारों से बना हुआ जीवन का रस है । भाषा भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है जिसे अपनाये बिना काम नहीं चलता । मनुष्य अपने जीवन-जगत् में किसी न किसी भाषा का प्रयोग करता है और उसमें साहित्य-रचना करना भी कवियों तथा लेखकों का कर्म रहा है । प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक किसी भी भाषा में साहित्य की इस रस-गंगा के दर्शन किये जा सकते हैं । जैसा देश-काल होगा वैसा ही उसका साहित्य भी ! इतिहास इस कथन की पुष्टि करता है कि भारतीय साहित्य विभिन्न कालों में वीर, भक्ति, शृंगार एवं राष्ट्रीय रचनाओं का अमित भण्डार रहा है । कहना न होगा कि साहित्य ने गद्य-पद्य की नाना विधाओं में स्वतंत्रता का चित्रण कर उसकी प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

भारतीय भाषाओं में सदियों से मान्य तथा प्रतिष्ठित हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनने का गौरव मिलना ही था । स्वतंत्र भारत के संविधान ने हिन्दी को

राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि घोषित किया (१४ सितम्बर, १९४९ ई०)। अतः हिन्दी का प्रचलन बढ़ा। इसके साथ पन्द्रह प्रान्तीय भाषाओं को भी अपने-अपने क्षेत्र में काम-काज करने की सुविधायें प्रदान की गई। इनमें संस्कृत, असमिया, उडिया, बंगला, पंजाबी, काश्मीरी, गुजराती, उर्दू, तमिल, तेलगू, कन्नड, मलयालम, मराठी एवं सिन्धी के नाम सर्वविदित हैं। हिन्दी का शेष प्रांतीय भाषाओं के साथ घनिष्ट सम्बंध स्थापित हुआ और वे एक-दूसरे की पूरक बनीं। हिन्दी राष्ट्रीय जन-जीवन की अनिवार्यता बनती जा रही है। यह हिन्दी-भाषी क्षेत्रों की मातृभाषा है और शेष प्रांतों की राष्ट्रभाषा। शासन का काम-काज हिन्दी में होने से वह राजभाषा भी है। शिक्षा का माध्यम हिन्दी होता जा रहा है और राष्ट्रीय एकता की भावना जोर पकड़ती जा रही है। केन्द्रीय एवं प्रांतीय हिन्दी संस्थान, निदेशालय, अकादमियाँ तथा सभा-संस्थाओं के सद्-प्रयत्नों से अनेक उल्लेखनीय रचनात्मक कार्य हो रहे हैं। भाषा-कोष, पारिभाषिक शब्दावली तथा इतिहास लेखन में गति आई है। सभी क्षेत्रों में हिन्दी आगे बढ़ रही है। इस दृष्टि से नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी; हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा आदि की सेवायें कदापि नहीं भुलायी जा सकतीं। हर्ष का विषय है कि विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर के प्रथम अभूतपूर्व आयोजन से (१०-१३ जनवरी, १९७५ ई०) हिन्दी अन्तरराष्ट्रीय भाषा के रूप में उभर रही है। विदेशों में इसके प्रचार-प्रसार, अध्ययन-अध्यापन तथा अनुवाद-अन्वेषण की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। एकता के मार्ग में दलीय राजनीति एवं क्षेत्रीय संकीर्णता के कारण भाषा के नाम पर उपद्रव भी हुए जिनमें जन-धन की क्षति हुई। राष्ट्रभाषा के प्रश्न को लेकर मद्रास में आग भभक उठी। बम्बई में गुजराती-मराठी को लेकर निरीह रक्तपात हुआ। तेलगू के लिए आन्ध्र प्रदेश बना। पंजाब में भी आंदोलन उठ खड़ा हुआ और अन्ततः पंजाबी सूबा बनकर रहा। राजनैतिक दृष्टि से राजस्थान हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त माना गया।

साहित्य-रचना की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होती है। प्रत्येक युग का साहित्य एक सुनिश्चित परम्परा का प्रतीक होता है। हिन्दी कविता—विशेषतः आधुनिक हिन्दी कविता की भी एक अविच्छिन्न परम्परा है। युग-चेतना के अनुरूप इसी परम्परा में नये-नये प्रयोग होते रहते हैं और प्रत्येक युग की काव्य-रचना-प्रक्रिया भिन्न-भिन्न प्रकार की काव्य - सृष्टि प्रदान करती रहती

है। छायावाद (१९१५–'३५ ई०), प्रगतिवाद (१९३५–'४२ ई०) और प्रयोगवाद (१९४३–'५० ई०) का बोलबाला इसका परिणाम था। इन्हीं विकास सरणियों का उत्कर्ष नई कविता है। अकविता, लघु कविता, मिनी कविता या काव्यहीन कविता आदि भी इस विकास-क्रम के विभिन्न सामयिक सृष्टि-सोपान हैं। आज समय नहीं, क्षण महत्त्वपूर्ण है अतः भिन्न-भिन्न क्षणिकायें ही उत्पन्न हो रही हैं, लम्बी-चौड़ी जीवन-गाथायें नहीं। ये कणिकायें ही मणिकायें बन रही हैं। साहित्यिक मान-मूल्य बदल रहे हैं, उनका विघटन हुआ है। विज्ञान फैल रहा है, साहित्य सिमट रहा है। संवेदनायें क्षत-विक्षत हो गई हैं, जीवन में कोई तारतम्य नहीं रह गया है। अस्तु, सन् १९५० ई० से लेकर आज तक की काव्य-धारा के विश्लेषण-विवेचन की एक यही ऐतिहासिक पीठिका है। यही अध्ययन-प्रक्रिया साहित्यिक इतिहास की नींव रखती है।

आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास का ऐतिहासिक स्वरूप भी कम क्रांतिकारी नहीं है। हिन्दी निबन्ध और आलोचना को शुक्लोत्तर युग की बहुमुखी विकासोन्मुख प्रगतिशीलता तथा प्रयोगशीलता का सम्पर्क लाभ करने से पूर्व उन्हें भारतेंदु, द्विवेदी तथा शुक्ल युग की समस्त रचना-प्रक्रियाओं से होकर निकलना पड़ा है। इसी प्रकार 'नई कहानी' और 'नये उपन्यास' को देवकीनन्दन खत्री और प्रेमचंद युग की रचना-कला की चारदीवारी को तोड़ने में कितना अधिक संघर्ष करना पड़ा है – इसी का आलेखन उसका उपयुक्त इतिहास है। गद्य की अन्य विधाओं जैसे नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोतार्ज आदि के विकास का भी ऐसा ही ऐतिहासिक तारतम्य है। कहने का आशय यह कि स्वतंत्रता के उपरांत से आज तक के साहित्य की विभिन्न विधाओं की पृष्ठभूमि में एक अविच्छिन्न परम्परा का योगदान है जिसे सहज ही नकारा नहीं जा सकता। साहित्य-रचना की पृष्ठभूमि का यही परम्परा-बोध इतिहास-बोध कहा जाता है जिसकी पीठिका पर साहित्य का विश्लेषण-विवेचन स्यात् अधिक सार्थक होता है।

यह लक्ष्य करने की बात है कि स्वतंत्रोपरांत हिन्दी साहित्य राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होकर नव-नव विधाओं में एक नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ। शनैः शनैः इसमें राजनैतिक दलों की विचार-धारायें प्रवाहित होने लगीं। नये-नये विचारों का समावेश होता गया। साहित्य को राजनीति से जोड़ने का प्रयास चलता रहा। इसके फलस्वरूप साहित्य में

राजनैतिक विचारधाराओं के समानान्तर अनेकानेक क्रांतियां तथा उत्क्रांतियां चलती रहीं। यह देखकर प्रसन्नता है कि स्वतन्त्र भारत में प्रतिभासम्पन्न कवियों तथा लेखकों को विभिन्न सभा-संस्थाओं, अकादमियों तथा ज्ञान-पीठ ने पुरस्कृत किया है। ये पुरस्कार हजार रुपये से लेकर लाख रुपये तक के हैं जिनके प्रति आज का साहित्यकार कम आकर्षित नहीं हुआ है? जिस कवि तथा लेखक के पास प्रचार, प्रकाशन और सम्पर्क साधना की सुविधा है वह प्रकाश में अधिक आया है। राजकीय प्रश्रय देकर अनेकानेक व्यवस्थाओं से जोड़कर तथा अन्यान्य सुख-सुविधायें प्रदान कर उनके स्वतन्त्र चिन्तन को शासकीय उपस्कारिता के लिए उपयोग किया जाने लगा। यही कारण है कि साहित्य के दर्पण में समाज की सही तस्वीर नहीं दिखाई दी। आज पूर्वापेक्षा लिखने के लिए विषय और उपादान इतने अधिक हो गये हैं कि जिनका रस खींचकर साहित्यकार समाज का मार्ग-दर्शन कर सकता है। राष्ट्रीय उत्थान के लिए नवीन आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुसार मौलिक साहित्य का सृजन अपेक्षाकृत कम हो पाया हैं। विज्ञापन और प्रकाशन के इस युग में परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त रचनायें लिखी गईं। कोई स्थान कवि तथा लेखक से रिक्त नहीं किन्तु महत्त्व की दृष्टि से इनकी संख्या कम है। यह देखकर गर्व होता है कि हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाओं की साहित्यिक गरिमा आज के विश्व-साहित्य की विशिष्ट रचनाओं की गरिमा के समकक्ष है। कविता के क्षेत्र में अज्ञेय, मुक्तिबोध तथा शमशेर बहादुरसिंह का स्थान ऊँचा है। इनके अतिरिक्त कुँवर नारायण, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिजाकुमार माथुर, दुष्यंत कुमार, भवानीप्रसाद मिश्र, भारतभूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय, धूमिल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नाटक के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायणलाल और मोहन राकेश तथा कथा के क्षेत्र में अज्ञेय, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव और मनु भण्डारी विशेष लोकप्रिय हुए हैं। अन्य लेखकों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, श्रीकांत वर्मा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आलोचना के क्षेत्र में विश्वविद्यालयों के हिन्दी प्राध्यापक प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। इनमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, आ० नंददुलारे वाजपेयी, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० नामवरसिंह एवं आचार्य डॉ० विश्वनाथ-

प्रसाद मिश्र ने नेतृत्व किया है। सन् १९५० ई० के पश्चात् के चारण साहित्य को भी हिन्दी के इसी ऐतिहासिक विकास-क्रम में देखा जाना चाहिए।

(११)**सांस्कृतिक अवस्था** :—प्रायः 'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ सुधरे, संशोधित एवं परिष्कृत संस्कारों से लिया जाता है। आजकल यह शब्द एक व्यापक अर्थ ग्रहण करता जा रहा है। संस्कृति मनुष्य, जाति, समाज और राष्ट्र के कला-कौशल, भाषा-साहित्य, धर्म-दर्शन, आचार-विचार रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, बोल-चाल, रुचि-अरुचि, ज्ञान-विज्ञान, रीति-रिवाज एवं विधि-विधान की सूचक है। इन समस्त तत्त्वों के ज्योति-पुञ्ज को संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक सभा-संस्थाओं की आचार-संहिताओं में इसका रूप निखरकर सामने आता है। वस्तुतः संस्कृति जीवन का एक विशेष दृष्टिकोण है। सभ्यता संस्कृति की आधार-शिला है। भौतिक उन्नति सभ्यता है तो आत्मिक उन्नति संस्कृति। एक स्थूल है दूसरी सूक्ष्म। सभ्यता नश्वर है, संस्कृति शाश्वत।

प्राचीन आर्य-संस्कृति एक प्रकाश-स्तम्भ बनकर सारे विश्व को आलोकित करती रही। संस्कृत संस्कृति बन गई। वैदिक काल के त्रिकाल-दर्शी ऋषियों ने काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और अटक से लेकर कटक तक के बनों, पर्वतों, नदियों, झरनों, तीर्थों और त्यौहारों का अपनी कृतियों में अनुपम चित्रण कर इस देश की अखण्डता अथच एकता का दिग्दर्शन कराया है। इनके तप-तेज ने ही व्यापकता, समन्वयता, अनुकूलता, धर्म-प्रियता एवं आध्यात्मिकता का मंत्र देकर इसे महान बनाया है। अनेकता में एकता इसकी अन्यतम विभूति है। कालांतर में जो जातियाँ भारत में आई वे यहाँ की संस्कृति में समा गईं। यवनों के शासन-काल में मुस्लिम-संस्कृति का उद्भव हुआ जिसके साथ भारतीय संस्कृति ने सामञ्जस्य स्थापित किया। अँग्रेजों के शासन-काल में इस सस्कृति को ठेस पहुँची। मुसलमान उनके कहने में आकर अपने हिन्दू भाइयों को भूल गये जिससे देश विभक्त हुआ। यह हमारी संस्कृति की विशाल-हृदयता नहीं तो और क्या है कि पाकिस्तान बन जाने पर भी उससे अधिक मुसलमान बन्धु भारत में शान से रहते हैं और हिन्दुओं के साथ एकता का प्रदर्शन करते हैं। कहना न होगा कि पाश्चात्य संस्कृति के फलस्वरूप भारतीय जनता में विदेशी भावना आई और उसने विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश किया। स्वतंत्रता

प्राप्त करते ही सांस्कृतिक चेतना के पुनरुत्थान की योजना बनी। यह स्वीकार करना होगा कि इस क्षेत्र में अत्यन्त कम कार्य हुआ है।

आज हम संस्कृति के क्षेत्र में कहाँ खड़े हैं, इसका परिचय किस प्रकार दिया जाय? वर्तमान भारतीय संस्कृति वाह्य संस्कृतियों का सम्मिश्रण है। नवीन दलीय राजनीति ने इसे प्रभावित किया है। जीवन में भौतिक चमक-दमक तो आई किन्तु आत्मिक तप, तेज और त्याग जाता रहा। नई-नई विचार-धाराओं के कारण संस्थाओं की बाढ़ आई। अर्थ का अनर्थ हुआ तथा इनके केन्द्र भोली जनता को ठगकर झोली भरने लगे। गाँव और शहरी संस्कृति का भिन्न-भिन्न विकास होने लगा। आज मनुष्यता का लोप होता जा रहा है। मानवीय मूल्य वदल गये हैं। संस्कृति का मूल्य पैसा रह गया है। यही कारण है कि दुर्लभ चित्रों एं अलभ्य कला-कृतियों को उड़ाने में कलाबाजी मानी जाती है। नैतिकता का इतना अधःपतन पहले कभी नहीं हुआ। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि पुराने और नये में समन्वय नहीं हो पाता। वेश-भूषा में नवीन पीढ़ी ऐसी ही गई है कि लड़के-लड़कियों को पहिचानना कठिन हो गया। हिप्पीकट, बेलब्रॉटम, फैशन, नशा, सिनेमा आदि की मस्त-मौज में वह अंधी हो रही है। खान-पान वदल गये हैं। जातीय संस्कृति नष्ट होती जा रही है। भ्रष्ट आचार-विचार के कारण लोग पतित होते जा रहे हैं। रीति-रिवाज लेन-देन बन गये हैं। त्यौहार दिखावे के हैं, भीतर से उनका कोई सम्बंध नहीं है। बोलचाल शिष्टता को भी लजाती है। विज्ञान के प्रभाव से हमारी संस्कृति भौतिकता पर आधारित है। विलासप्रिय उपकरणों को सँजोना ही ही मनुष्य का ध्येय रह गया है। आज जिस वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्कृति का विकास होता जा रहा है उसमें सूर्य, चन्द्र और सितारों के पार जाकर घर वसाने की योजना वन रही है। रूस तो इतना आगे बढ़ गया है कि शुक्र ग्रह से वातें करने लग गया है (२२ अक्तूबर १९७५ ई०)। समय की गम्भीरता को देखते हुए हमें आज प्राचीन संस्कृति का समयानुकूल नवीनीकरण करने की आवश्यकता है।

संदेह नहीं कि साहित्य, संगीत और कला के विना सभ्यता एवं संस्कृति स्थिर नहीं रह सकती अतः इन्हें राष्ट्रीय भावनाओं से भरना होगा। जब तक साहित्य सत्यं, शिवं एवं सुंदरम् का प्रतीक न होगा तब तक सारे प्रयत्न निष्फल

ही रहेंगे। नेताओं को चाहिए कि वे चिर पुरातन राम-कथा से शिक्षा ग्रहण करें। राम के वनवास जाने पर भरत राज्य करने के लिए भी तैयार नहीं हुए और राजधानी में न रहकर वनवासी के रूप में नदीग्राम में बड़े भाई की चरण-पादुका की ओर से शासन चलाते रहे। स्वतंत्र भारत में सांस्कृतिक चेतना अभिनंदनीय है किन्तु इस क्षेत्र में हमें सतर्कता, संजगता एवं सावधानी रखनी होगी। आत्म-बल के अभाव में संस्कृति का दृढ़ होना सम्भव नहीं। यह सतोष का विषय है कि केन्द्र एवं राज्य-सरकारें इस दिशा में कार्यरत हैं। विभिन्न देशों से भारत के सांस्कृतिक आदान-प्रदान हो रहे हैं। अनेक शिष्ट-मण्डल आते रहते हैं और परस्पर समझौते भी होते हैं। विदेशों में भारतीय संस्कृति को आदर मिला है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण हमारे जल-वायु के अनुकूल नहीं। देश में अनेक सरकारी, अर्द्ध सरकारी एवं गैर सरकारी सभा-संस्थायें संस्कृति के उत्थान हेतु सक्रिय हैं। इन्हें सरकार से आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। आपातस्थिति में व्यर्थ की झूठी सांस्कृतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाकर सरकार ने शुभ कार्य किया है। स्थान-स्थान पर युवकों का जो मुंडन-संस्कार हो रहा है, उससे भारतीयता की रक्षा होगी। भविष्य में संस्कृति का रूप क्या होगा, यह कहना कठिन है किन्तु इतना निश्चित है कि विधि-विधान को लेकर उच्चतम न्यायालय के अंतिम निर्णय के बाद (७ नवम्बर, १९७५ ई०) अपने पद की गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखकर प्रधानमंत्री ने जो कदम उठाये हैं, उनसे स्वतंत्र भारत सही दिशा में उन्नति के पथ पर उत्तरोत्तर आगे अग्रसर होगा और उसकी संस्कृति सारे विश्व में उजागर होगी।

(१२) **राजपूत एवं चारण**:—स्वतंत्रता-काल के इस विवरण, विश्लेषण तथा विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थान में राजपूतों की वह स्थिति नहीं रह गई जो पहले थी। यह उनका पतन-काल था। समय की तेज धारा में सामंतवाद बह गया और पूँजीवाद भी डूबने लगा। जीवन के नाना क्षेत्रों में अभूतपूर्व परिवर्तन होने से सामान्य राजपूत का भविष्य भँवर में पड़ गया। नई व्यवस्था ने राजा-महाराजा एवं जागीरदार को हिला दिया। वे अपने वंश-परम्परागत शासन से च्युत हो बैठे। अँग्रेजों के चले जाने के बाद उन्हें विजयी कांग्रेस के आगे नत-मस्तक होना पड़ा। जनता दूर जा पड़ी थी और उसमें मिलने-जुलने

का समय जाता रहा था। अतः उनका प्रभाव दिन-दिन कम होने लगा। राजपूत जाति विभिन्न दलों में विभक्त हो गई। ऊँच-नीच का जातीय भेद-भाव मिटने लगा। सदियों से पद-दलित अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जन-जातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग ने सामंतवादी शोषण से मुक्त होकर संतोष की साँस ली। पराधीन काल में स्वयं काँग्रेस ने उनके उत्थान के लिए संघर्ष किया। सत्ता में आते ही इस दल ने सर्वप्रथम इन आहत लोगों को राहत पहुँचाने के लिए कानून बनाये और अनेक योजनाओं का श्रीगणेश किया। फलतः शताब्दियों से पिछड़ी जातियाँ धीरे-धीरे ऊपर उठने लगीं और ऊपर की जातियां नीचे आने लगीं। आज सभी जातियों के व्यक्ति जीवन के समान धरातल पर खड़े हैं।

स्वतंत्र भारत में राजपूत सामान्य नागरिक बनकर रह गये। समाजवाद ने उन्हें झकझोर दिया। प्रारम्भिक वर्षों में राजपूतों को जो विशेष सुविधायें प्राप्त थीं, वे भी समाप्त हो गईं। राजपूत नई शासन-व्यवस्था में अपने को नहीं संभाल पाया और न परिस्थितियों के अनुरूप ढाल पाया। इससे वह दुविधाओं में पड़ गया। आर्थिक दृष्टि से वह शनैः शनैः क्षीण होता गया। अतुल सम्पदा के वे 'धणी' अपनी सम्पत्ति पर अधिकार खोने लगे। निश्चित सीमा से अधिक की जर-जमीन से वे हाथ धो बैठे। महल सूने पड़ गये और विशाल दुर्ग काँप उठे। इनका उपयोग जनता के हित में किया जाने लगा। राजपूतों को अपनी स्थिति बनाये रखना कठिन हो गया। स्वार्थ ने सबको घेर लिया। और तो और, जयपुर की भूतपूर्व महारानी सम्प्रति लोकसभा-सदस्या श्रीमती गायत्री देवी तक को विदेशी विनिमय तथा तस्करी गतिविधि निरोधक कानून के अन्तर्गत बंदी बनाया गया और सामान्य जनता श्रेणी में रखा गया (३० जुलाई, १९७५ ई०)। यह एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना है।

आज राजपूत जीवन के एक नये मोड़ पर खड़ा है। समय और परिस्थिति-वश उसे खेती, व्यापार एवं नौकरी करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। कृषि के क्षेत्र में सागड़ी (बंधक मजदूरी) प्रथा की समाप्ति से उसे स्वयं कड़ा परिश्रम करना पड़ रहा है। कुछ महानुभावों ने शिक्षा प्राप्तकर केन्द्र एवं राज्य-सेवा में महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किये हैं। कुछ नवीन राष्ट्रीय साँचे में ढलकर पच से लेकर मंत्री तक के पद पर आसीन हुए। यह लक्ष्य करने की बात है कि इस जाति के बहादुरों ने पुलिस तथा सेना की नौकरी में प्रशसनीय सेवायें कर

अच्छा नाम कमाया। यही बहादुरी जब नगर की सड़कों पर मारपीट के रूप में प्रकट हुई तब कायरता कहलाई। व्यापार में विचार तथा व्यवहार का सामञ्जस्य नहीं हो पाया। ऐसे लोग अपनी झूठी ऐंठ और थोथी शान में गाँठ का भी गँवा बैठे। व्यापार राठौड़ी से नहीं, भाईचारे से चलता है। उचित व्यवहार तथा नैतिकता ही सफल व्यापार की कुंजी है। जन-जीवन में जोर-जबरदस्ती से भय-आतंक उत्पन्न करना आज की सबसे बड़ी हिंसा है। इन चरणों में फौज का भगोड़ा एक भूतपूर्व तोपची बैठा है जिसके पास अपनी व्यावसायिक दुर्गन्ध को सूंघने के लिए नाक ही नहीं है। इस प्रकार जो राजपूत जाति कभी भौतिक उत्कर्ष पर पहुँची थी, इस काल में विशेष प्रभावित हुई।

आलोच्य काल में चारण-कवियों ने राजपूतों को लक्ष्य करके जिन रचनाओं की सृष्टि की है, उनसे उनमें पनपी बुराइयों का ही बोध होता है। स्वर्गीय कवि नाथूदान बारहठ (डाभड़) की दृष्टि में वह पथ-भ्रष्ट हो चुका है। उन्होंने अपनी खीझ इन शब्दों में प्रकट की है—

'बाज मती रे बायरा, खाली मत कर खेत।
रही नहीं (तो) की राळस्यों, रजपूतों सिर रेत ॥'

वयोवृद्ध कवि श्री बद्रीदान कविया के शब्दों में—

'ब्रिटिश हकूमत ह्वी विदा, छिन में भारत छोड़।
राजा - महाराजा रुळ्या, ठाकरड़ों की ठोड़ ॥
क्यारे - क्यारे फट पड्या, जमीं काज खग झेल।
हुंस-हँस दीधी हींजडो, पृथ्वी हाथ पटेल ॥'

प्रसिद्ध जन-कवि रेवतदान कल्पित की कविता का यह अंश देखिये, जिसमें स्वतंत्रोपरांत राजपूतों का यथ्य-तथ्य चित्र अंकित किया गया है—

'भंवर नै नित आवै भटका, भंवर नै नित आवै भटका।
वे सौ-सौ नौकर संग, कठै वो मैलां री बसणो।
वे ऊंधा गोडा घाल, कठै वो मरजी री हसणो।
रे जाजम गदरा ढाळ, कठै वो चौपड़ री रमणो।
रे मूंछां रै वट देय, कठै वो सभा बीच जमणो।
सुण करसा साची बात, बायरो उलटो ही वै' गो।
रे मिटगी ठकराई, नाम ठाकर सा बस रै' गो।

वे चरका फरका मांस, कठै वे दारू रा गटका ।। भंवर नै०
रे ग्रैठो माने आज कुण, कुण दै लाटो पीस ।
कांम बिगाड़ै आज कुण, किण पर काढां रीस ।
अणगिण हूती वे दासियां, रहती चहल-पहल ।
वां बिन लागै हाय रे, सूना आज महल ।
हमैं वे डावड़ियां कठै, जकै करती नित मटका ।। भंवर नै०
लागी गई बेगार, रही हमैं न लाग ।
पूंख गया वे आगडा, दै न टकै रो साग ।
ने पैली आ जांणता, (कै) लुट जासी ग्रै बाग ।
तो गुण गांधी रा गावता, बांध तिरंगी पाग ।
पर बात पुरांणी वे करै, ज्यां रै घर घाटो ।
मीठा री मन में रही, नै मिळै नहीं खाटो ।
खारो नैर पीवां तो कींकर फांसी में लटकां ।
सुण करसा साची वात. भंवर नै नित आवै भटका ।।'

लकीर के फकीर ठाकुरों के प्रति श्री भँवरदान वीठू 'मदकर' की यह भर्त्सना देखिये—

'ठाकर विष छोड़ साकर रो ठाकर, आखर आखर समज अरोड़ ।
चाकर खिसक गया कर चोरी, छोरी पण नाठी घर छोड़ ।।
भारत भयो सुतंतर भोला, डोला फाड़्यां कोण डरै ।
चटी फसाद डकेत्यां चोगी, क्यां कोरी करड़ाण करै ।।
वरतमान वखत वोटां रो, सोटां रो आयंमियो सूर ।
रंग खाटण सेवक वण रांगड़, वांगड़ पण रो मूंडो बूर ।।'

इन कवियों ने पुरुषों के साथ नारी-समाज का वर्णन निर्भीकता से किया है। व्रजलाल कविया (बिराई) ने महारानियों और ठकुरानियों की तस्वीर उतारते हुए लिखा है—

'केई ठकरांणियां कनातों कोट कर, देखती कदे नह भाय डोटी ।
जके महारांणिया खेत लग जावसी, अकेली सीस पर धार ओडी ।
सत्रुवां तणै मन हरख दरसावसी, करैला माजनो एक कोडी ।।'

राजपूत जाति के साथ चारण जाति भी प्रभावित हुई। राजा के साथ कविराजा की स्थिति भी बड़ी डाँवाडोल हो गई। जब आश्रयदाताओं का ही कहीं 'ठिकाना' नहीं रहा तब कवियों को आश्रय कैसे मिलता ? क्षत्रिय राजवंशों का सूर्य-अस्त हो जाने से इन कवियों का भविष्य धूमिल हो गया। अतः वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए इन्हें अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। उत्तम तो यह होगा कि कवि व्यक्ति की कविता का परित्याग कर स्वार्थ एवं प्रलोभन को सदैव के लिए बिदा कर दे। अब व्यक्तिगत कविता का युग बीत चुका है। स्वर्गीय ठा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने ऐसे कवियों को आड़े हाथ लेते हुए लिखा था— 'आज अपने देश या हिंदू जाति के हित के लिए अपनी बलि देने वाला एक भी महाराणा प्रताप या शिवाजी दिखाई नहीं देता, जिसकी प्रशंसा कर हम अपने को कवि कहलाना सार्थक समझें। अब तो ओदी में बैठकर राईफलों द्वारा शेर या सूअर का शिकार करने वाले वीरों की गणना में समझे जाते हैं और चारण कवियों से अपनी वीरता के झूठे काव्य सुन पाइयों में उनको प्रसन्न भी करते हैं। एक रुपया देकर चारण कवियों द्वारा कर्ण कहलाना आजकल बहुत सुलभ है। चोरों, लुटेरों, व्यभिचारियों आदि की प्रशंसा हमने अर्थ-लोलुप चारण कवियों से सुनी हैं।'

वर्तमान समय में विभिन्न जातियों का प्राचीन रूप शनैः शनैः मिटता जा रहा है। एतदर्थ चारण साहित्यकारों को दूरदर्शी बनकर अपनी रीति-नीति में समयानुकूल परिवर्तन करना होगा। एक निश्चित लक्ष्य के अभाव में यह जाति अपना साहित्यिक मार्ग तय नहीं कर पाई है। चारण कवि एवं लेखक देश-कालानुसार लोक-जीवन सम्बंधी विषयों पर ही कविता लिखकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रख सकते हैं और इधर स्वतंत्रता-काल में ऐसा होने लगा है। राज्याश्रय के अभाव में अब धीरे-धीरे 'चारण' शब्द का वह वंश परम्परागत अर्थ प्रायः लुप्त होता जा रहा है। 'चारण' का शुद्ध साहित्यिक अर्थ देवत्व अथवा क्षत्रियत्व अथवा मनुष्यत्व की कीर्ति का प्रचार करना है और जो कविता एवं इतिहास के द्वारा इनमें से किसी को भी अपना विषय बना लेता है, वह है चारण ! अतः इस समाज को अपने काव्य-क्षेत्र का विस्तार कर जीवन एवं जगत् की व्यापकता देखनी होगी। सम्पूर्ण राष्ट्र के हित-अहित को ध्यान में रखते हुए साहित्य का सृजन करना होगा। जिन राज्य-दरबारों में रहकर वे मलार गाया करते थे, अब न तो वे महल ही रह गये हैं और न वे राजा ही। अब राज्य प्रजा

का है। तलवार और तोप बीते युग की बातें हैं। समय प्रतिपल इतना तेजी से बदल रहा है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। जल-थल-वायु पर विज्ञान का अधिकार हो गया है। अणु-आयुध क्षण भर में ही सृष्टि का नाश कर सकते हैं। भयभीत होकर वड़े-बड़े राष्ट्र निः शस्त्रीकरण की वार्ता कर रहे हैं। 'जीओ और जीने दो' का नारा गूँज उठा है। अहिंसा के इस युग में युद्ध-वर्णन शोभा नहीं देता। संसार सदियों की शिक्षा के पश्चात् आज मार-काट बंद करने के लिए विचार-विमर्श कर रहा है। अतः चारण कवि का कर्त्तव्य है कि वह स्वतंत्र भारत की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप काव्य-रचना करे। इस हेतु यदि वह सत्तारूढ़ दल की गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए उसे कर्त्तव्य-पथ पर चलाने के लिए उपदेश देता रहे तथा निष्काम सम्पर्क रखकर लोक-रक्षा में हाथ बँटाये तो यह उसकी परम्परा के अनुकूल होगा और राष्ट्र के लिए श्रेयस्कर भी। सच्चाई, ईमानदारी तथा समझदारी से लिखा हुआ साहित्य चिरन्तन होता है।

संदेह नहीं कि आज का युग परस्पर वार्तालाप का है। अब सब समस्याओं का एक ही हल रह गया है—बातचीत। हमें नहीं भूलना चाहिए कि वार्ता की भी एक सीमा होती है। जब कोई भी विकल्प न रह जाय तब अंततः शस्त्र उठाना ही पड़ता है। आत्म-रक्षा पौरुष है। वीर रस चिरन्तन। जीवन में अहिंसा के साथ हिंसा का भी महत्त्व है। यदि कोई अहिंसा से सीधे मुँह बात भी न करे तो बाध्य होकर राष्ट्रीय जन-रक्षा एवं कर्त्तव्य-पालन के लिए लड़ना-भिड़ना भी पड़ता है। हिंसा समय और परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में कभी-कभी वरदान सिद्ध हो जाती है। यदि कोई स्वतंत्र राष्ट्र की सीमा को चुपचाप पादाक्रांत करने लगे और समझाने-बुझाने पर भी न माने तो प्रतिरक्षा लिए बल-प्रयोग करना ही पड़ता है। डाकुओं का पीछा करने वाला सिपाही तो रात-दिन लड़ाई के नशे में ही रहता है। अँधेरी रात में सेंध लगाकर आया हुआ कोई व्यभिचारी यदि शयन-कक्ष से किसी की काँता उड़ा ले जाय तो क्या पंचशील का मंत्र पढ़ने से वह संकट टल जायगा? चाहे जिस दृष्टि से देखा जाय—युद्ध की आवश्यकता सदैव रही है, आज भी है और भविष्य में भी रहेगी। हाँ, रूप एवं मात्रा में भेद अवश्य हो सकता है। वीर-काव्य के प्रणेता चारण को विचलित होने की कोई आवश्यकता नहीं। संकटकालीन साहित्य का ही दूसरा नाम चारण साहित्य है। संकट की घड़ियों में यह साहित्य एक प्रकाश-

स्तम्भ है। स्वतंत्रोपरांत इन कवियों ने चीन तथा पाक से हुए युद्धों को लक्ष्य करके जो गीत रचना की है, वह बड़ी ही प्रेरणादायक है।

चारण जन्मजात कवि है और इतिहास का ज्ञाता भी। वह सत्तारूढ़ शासक-दल का सनातन समालोचक है। अतः वह अजर-अमर है। उसने सत्तारूढ़ शासक दल के अच्छे कार्यों की प्रशंसा और बुरे कार्यों की निंदा की है। पहले वह राजपूत के गीत सुनाता था तो आज जनता के गीत सुना रहा है और उसके द्वारा पुरस्कृत भी हुआ है। इन वर्षों में केन्द्र तथा प्रांत में कांग्रेस का शासन होने से वह उसकी गुण-दोष व्यंजना करने लगा है। शासन को सत्पथ पर लगाना चारण का कर्त्तव्य है। इसके लिए वह कविता तथा इतिहास का पाठ पढ़ाता है। इससे प्रेरित होकर जो प्रांत या देश के लिए कुछ कर गुजरता है उसका नाम अमर हो जाता है। सच पूछिये तो अब चारण साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है। कवि तथा लेखक सम-सामयिक जीवन तथा जगत् की व्यवस्था करने लगे हैं। उसके विषय और उपादान भले ही बदले हों, साहित्य-सेवा में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया है। चारण चुस्त, साहसिक, परिश्रमी, दृढ़, कर्त्तव्य-परायण एवं शासन-पटु है। उसने कई राजवंशों का उदय तथा अस्त होना देखा है। उसके स्वयं के जीवन में कई उतार-चढ़ाव आये हैं। भू-भवन की सीमा निर्धारित हो जाने से धनाढ्य चारण प्रभावित हुए हैं। सामान्य चारण जीविकोपार्जन के लिए कृषि, पशु-पालन एवं राज्य-सेवा करता आया है और आज भी कर रहा है। शेष व्यक्ति व्यापार में सूझ-बूझ से कार्य करते हैं। कृषि के क्षेत्र में श्री अचलदान आढा, तेजदान वणसूर, बद्रीदान किनिया, प्रभुदान कूंपडावास, चंडीदान देथा, सूर्यदेवसिंह बारहठ आदि ने विशेष ख्याति अर्जित की है। इनमें से श्री सूर्यदेवसिंह बारहठ (माहेंद) तथा चंडीदान देथा (बोरूंदा) राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किये गये है।

इन वर्षों में कई योग्य एवं प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति जीवन के नाना क्षेत्रों में आगे बढ़े और अपने विशिष्ट गुणों के कारण चमके। अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में सँयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत विश्व स्वास्थ्य संगठन के सचिव डॉ० मुरली मनोहर आढा (पांचेटिया) सबसे आगे हैं। वैज्ञानिकों में नेहरू पुरस्कार से विभूषित डॉ० के० डी० सिंह तथा श्री रघुराजसिंह अग्रज हैं। श्री मोहनसिंह कविया फिल्म डायरेक्टर के रूप में उन्नति कर रहे हैं। राष्ट्रीय क्षेत्र में श्री हेतुदान उज्वल,

साँवलदान उज्वल, कैलाशदान उज्वल, चरणदास आढा एवं फतहसिंह देवल भारतीय प्रशासनिक सेवा के अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र हैं जिन्होंने कठोर घड़ी में भी अपने कर्त्तव्य का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। इसी प्रकार श्री बाघदान (बघ्घोमल) केन्द्र में सहायक सचिव के पद पर नियुक्त हुए। रेल-सेवा में श्री लालसिंह उज्वल बेजोड़ हैं और उच्च पद पर प्रतिष्ठित हैं। जल-थल-वायु सेना में भी इस जाति के वीरों का योगदान रहा है। नौसेना में देशनोक के अश्विनीकुमार सिढायच तथा सांवलदान रतनू (चौपासनी), थल-सेना में अमर शहीद लेफ्टिनेंट देवपालसिंह, केप्टिन जोधसिह उज्वल, केप्टिन फतहसिंह सिंढायच, केप्टिन रूपसिह सिंढायच, वासुदेव देवल, केप्टिन महावीरसिंह सांदू, केप्टिन जसवंतसिंह बाटी, सुरेन्द्रसिंह वीठू तथा वायुसेना में लेफ्टिनेंट चक्रवती सांदू, ओमप्रकाश आढा आदि के नाम सगर्व लिये जा सकते हैं। राज्य-प्रशासन में श्री शुभकरण कविया, मोहन-सिंह महियारिया, शुभकरण आढा, जोरावरसिंह सांदू, फतहसिंह मानव, मघराज उज्वल, भवानीशंकर वीठू, शक्तिदान महड्डू, चंडीदान देवल, सहसकरण आढा, चावंडदान देवल, ईश्वरदान सांदू, देवीसिंह बारहठ, जयसिंह कविया, भँवरसिंह खिडिया आदि की सेवायें उल्लेखनीय हैं। तहसीलदार के पद पर श्री रूपसिंह सिंढायच, प्रभुदान उज्वल, थानसिह खिडिया, बालूसिंह सांदू. शिवराज उज्वल, देवीसिंह आढा, कानदान बारहठ, वचनदान देवल, शक्तिदान वीठू, जीवनसिह बारहठ, दुर्गादान वीठू, उदयसिंह देवल, के० के० लधाणी आदि सुशोभित हैं। न्यायाधीश के रूप में श्री लक्ष्मीदान सांदू, सुमेरदान देवल, विजयकरण आढा, गणेशदान आसिया, सवाईसिंह कविया आदि आदरणीय हैं। विधिवेत्ताओं में श्री बैजदान बारहठ, प्रभुदान बारहठ, बद्रीदान कविया, जयकरण बारहठ, सुखदेव किनिया, हणवन्तदान बारहठ, उदयकरण आढा, अभयकरण बारहठ, सादूलसिंह बारहठ, मोहनसिंह बारहठ, शत्रुशालसिंह बारहठ, चालकदान बारहठ, चावंडदान सांदू, माधोसिंह सांदू, जोरावरसिंह वणसूर, वद्रीदान सांदू, दुर्गादान सांदू, वसुदेव सांदू, गुमानसिंह वारहठ, मनमोहन किनिया आदि अग्रगण्य हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में डॉ० शिवदत्त उज्वल, डॉ० जोरावरसिंह, उज्वल, डॉ० करणीसिंह रतनू, डॉ० वासुदेव कविया, डॉ० देवेन्द्रकुमार उज्वल, डॉ० नरपतसिंह, डॉ० दलपतसिंह. डॉ० सुमेरसिंह वारहठ, डॉ० अश्विनीकुमार कविया, डॉ० रविन्द्रसिंह सौदा, डॉ० मूलसिंह वारहठ, डॉ० जीवनसिंह उज्वल, डॉ० तेजसिह उज्वल, डॉ० चन्द्रसिंह उज्वल, डॉ० भीमदान देथा, डॉ० दुर्गादान

देवल, डॉ० सोहनसिंह बारहठ, डॉ० जोरावरसिंह बारहठ, डॉ० गिरवरसिंह हापावत, डॉ० हरीसिंह सांदू, डॉ० नरेन्द्रकुमार जुगतावत आदि लोकप्रिय हुए हैं। इनमें से प्रसिद्ध सर्जन डॉ० ज़ोरावरसिंह उज्वल तथा होनहार डॉ० देवेन्द्रकुमार उज्वल से और अधिक आशायें थीं किन्तु क्रूर काल ने उन्हें हमसे छीन लिया। पशु-चिकित्सकों में डॉ० दुर्गादान कविया, डॉ० कल्याणदान सांदू, डॉ० गुमानसिंह वीठू, डॉ० जयसिंह खिडिया, डॉ० हरकरण उज्वल, डॉ० नरेन्द्रसिंह बारहठ आदि की सेवायें नहीं भुलाई जा सकतीं। पुलिस सेवा में श्री रामसिंह बारहठ, जैतदान उज्वल, धनसिंह लालस, कुबेरदान देथा, सुल्तानसिंह सांदू, खंगारसिंह सांदू, जयसिंह उज्वल, महताबसिंह महियारिया, ब्रजराजसिंह जगावत, रामसिंह जगावत, करणीदानसिंह आढा आदि ने नाम कमाया है। उच्च माध्यमिक स्तर तक कई अध्यापक सेवारत हैं, किन्तु उच्च शिक्षा के क्षेत्र में डॉ० शक्तिदान कविया, डॉ० ब्रजलालसिंह गाडण, डॉ० सोहनदान बारहठ, डॉ० वासुदेव देवल, भँवरसिंह सामौर, अम्बादान सिढायच आदि प्राध्यापक ख्याति अर्जित कर रहे हैं। श्री नारायणसिंह कविया ने आबकारी अधीक्षक, श्री अक्षयसिंह रतनू ने राज्य सचिवालय, जयपुर तथा श्री वृद्धकरण उज्वल ने आयकर अधिकारी के रूप में सराहनीय सेवा की है। लेखा-विभाग में श्री भोपालदान उज्वल, मेघदान उज्वल आदि अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दे रहे है। बैंक सेवा में श्री जयकरण किनिया, इन्द्रदान रतनू, माधोसिंह सांदू, नारायणसिंह उज्वल, माधोसिंह सिढायच, नरपतसिंह सांदू, हिम्मतसिंह आदि निष्ठा से कार्य कर रहे हैं। नई व्यवस्था में कई लोग पंच, सरपंच, पार्षद, प्रमुख तथा प्रधान के रूप में जनता की सेवा कर रहे हैं। यह लक्ष्य करने की बात है कि इस सेवा के उपलक्ष में स्व० भेरुसिंह देवल (जैतारन) का स्मारक उनकी अक्षय कीर्ति का द्योतक है। श्री सुखदेव वीठू नगर-परिषद के अध्यक्ष रह चुके हैं। पंच-प्रधान के रूप में श्री सूर्यदेवसिंह बारहठ, देवकरण बारहठ, केसरीसिंह मूंदियाड़, तेजसिंह वरणसूर आदि की सेवायें सराहनीय हैं। लोकप्रिय श्री केसरीसिंह मूंदियाड चुनाव में विजयी होकर विधानसभा के सदस्य बने। पुरुषों के सदृश नारी-समाज में भी चेतना आई और शिक्षा की ओर ध्यान गया। शुभ श्री सोहनकुंवर इस समाज की प्रथम मैट्रिक, पद्मजा प्रथम बी० ए०, आनंदकुंवर प्रथम एम० ए० तथा शोभाकुंवर प्रथम एल०-एल० बी० हैं। महिला चिकित्सकों में डॉ० श्रीमती मदनकुंवर तथा डॉ० उमा उज्वल ने यश कमाया

है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि राजस्थान के तपस्वी नेता केसरीसिंह सौदा की पौत्री नगेन्द्रबाला विधान-सभा-सदस्या के रूप में कुशल नेतृत्व कर रही हैं। इन विशिष्ट व्यक्तियों में कई पुरस्कृत हैं।

(१३) राजस्थानी भाषा और साहित्य :— राजस्थानी ढाई करोड़ नर-नारियों की जीवन्त भाषा है। भूतपूर्व राज्यों के एकीकरण से अब इसकी सीमायें सुनिश्चित हो गई हैं। यह वीरों की भाषा है और बड़ी स्वाभिमानिनी है। इसकी आन, बान और शान ही निराली है। इस भाषा का इतिहास सहस्रों वर्ष प्राचीन है। इसमें स्वतन्त्र सम्प्रेक्षण की क्षमता है। जो भाव या विचार अभिव्यक्त होता है, उसे उसी रूप में समझा जाता है। यह एक सशक्त, समृद्ध एवं स्वतंत्र भाषा है। इसकी अनेक बोलियां हैं। राजस्थानी में ऐसे भाव-बोधक शब्द मौजूद हैं जिनका पर्याय अन्य भाषाओं में दुर्लभ है। यहाँ के किसी निवासी से बात कीजिए, संदेह दूर हो जायगा। राजस्थानी अपने संस्कार, स्वभाव, प्रकृति, स्थिति एवं वातावरण में जुदा है, इसे कौन अस्वीकार करेगा ? जो चारण-गीत राजस्थान में गूँज रहे हैं वे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहीं पर भी नहीं सुनाई देते। जो रस राजस्थान और राजस्थानी में है, वह भूमण्डल में और कहीं नहीं। फिर भी राजस्थानी को पृथक् महत्त्व न देना आँखों को धोखा देना है।

जहाँ तक प्रान्त का सम्बन्ध है, स्वाधीनता की स्वर्ण किरण ने बिखरे हुए भूतपूर्व राज्यों का एकीकरण कर इसे एक विशाल रूप प्रदान कर दिया है किन्तु जब तक ये विभिन्न राज्य भावात्मक एकता के सूत्र में नहीं पिरो दिये जाते तब तक राजस्थान का यह नवनिर्मित स्वरूप अपूर्ण ही माना जायगा। इस अभाव की पूर्ति के लिए चारणों को राजस्थानी का रूप सुधारना होगा, कलाकारों को अपनी उपयोगी एवं ललित कलाओं में रंग-विरंगे चित्र चित्रित करने होंगे और कवियों तथा लेखकों को अपने काव्य-कलश में रस का पंचामृत तैयार करके अकुलाई धरती की चिर तृषा को शांत करना होगा। वस्तुत: भाषा के माध्यम से ही राजस्थान का जन-जन, चाहे वह यहाँ का निवासी हो अथवा प्रवासी, एक-दूसरे के सन्निकट आकर मन और मन का तथा हृदय और हृदय का सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। जब राजस्थान का अतीत वर्तमान के लिए नव-संदेश लेकर खड़ा है तब सबसे पहले आत्मा के आनन्द-भाव में मग्न होकर कहना

होगा – राजस्थान की धरती हमारी माता है और हम उसके पुत्र ! इस उदात्त भावना के आगे कोई भी कठिनाई नहीं आ सकती। हम अपनी संस्कृति को कितना ही गौरव क्यों न प्रदान करें, इस उर्वर भाव को हृदयंगम किये बिना सारा रूप कुरूप है, रंग निरंग है और रस नीरस है।

राजस्थानी की वर्तमान अवस्था का परिचय. किस प्रकार दिया जाय ? सत्य और अहिंसा की दीप-शिखा ने दासता के निविड़ अंधकार को विदीर्ण कर हमें आलोक में खड़ा कर दिया है। पन्द्रह अगस्त का शुभ दिन हमारे राष्ट्रीय इतिहास में एक महान् पर्व का प्रतीक है। विभाजन का निर्मम नश्तर सहकर जब राष्ट्र का हृदय छटपटाता हुआ देश के अन्य भागों में बिखर गया तो उसके करुण आर्त्तनाद को सुनकर जहाँ एक ओर हमारी लोकप्रिय सरकार ने तत्परता के साथ उसके पुनर्वास का प्रबन्ध किया वहाँ दूसरी ओर राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने की महत्त्वाकांक्षा से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के परम पद पर आरूढ़ किया। राजस्थानी को अन्य पन्द्रह प्रांतीय भाषाओं के सदृश पृथक भाषा मानने की आवश्यकता नहीं समझी गई। एक ओर आधुनिक काल की अंग्रेजी और अंग्रेजियत ने प्रांतवासियो के मन-मस्तिष्क को जकड़ रखा है तो दूसरी ओर हिन्दी की सर्वव्यापकता ने सबका ध्यान अपनी ओर केन्द्रित कर दिया है। इन दोनों के बीच राजस्थानी अपना भाग्य-निर्णय नहीं कर पाती। नवशिक्षित वर्ग अपनी मातृभाषा की अवहेलना करने लग गया है, यहाँ तक कि उसे परस्पर राजस्थानी में बातचीत करने में भी लज्जा का अनुभव होने लगता है। जिस राजस्थानी के एक दोहे में सिंहासन को पलट देने की अद्‌भुत क्षमता थी, उसमें लिखना-पढ़ना तो दूर रहा, बोलना तक सभ्य समाज की शान के विरुद्ध समझा जाने लगा है। यही कारण है कि राजस्थानी में रचना करने वाले इने-गिने ही रह गये हैं।

दुर्भाग्य से दलीय राजनीति के चश्मे ने दृष्टि-भेद उत्पन्न कर दिया है। निम्न नेता भाषा को अपना-अपना रंग देकर स्वार्थ-पूर्ति में लगे हैं। कुछ वर्षों पूर्व राजस्थानी साहित्य में जिनका नाम-निशान तक नहीं था, वे नव-नव विधाओं के स्वयंभू बन बैठे हैं। ये लोग पक्ष-विपक्ष बनाकर राजस्थानी का झंडा लिये घूमते हैं, झूठा प्रचार करते हैं और सरस्वती के पवित्र मन्दिर में घुस-बैठकर घटिया किस्म की राजनीति चलाते हैं। इनकी पढ़ने-लिखने में कोई रुचि नहीं।

साहित्य-रचना से ये कोसों दूर हैं। सभा-संस्थाओं को ये बातें शोभा नहीं देतीं। इससे उदर-पूर्ति भले ही हो जाय, राजस्थानी भाषा और साहित्य का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। साहित्यिक एवं शैक्षिक दासता के कारण व्यक्ति ने अपना मत खो दिया है।

राजस्थान का एकीकरण शांतिपूर्वक सम्पन्न हुआ लेकिन राजस्थानी का रह गया। अतः इसके स्थिर एवं निश्चित रूप की ओर विद्वानों का ध्यान गया। समय के साथ-साथ आवाज़ उठी कि इसके सम्भाव्य स्वरूप पर भी विचार कर लिया जाय। यह विषय विचार का नहीं व्यवहार का है, वक्तृता का नहीं लेखन का है और कामना का नहीं साधना का है। भाषा की एकरूपता के लिए सभी बोलियों का उचित प्रतिनिधित्व ही इसका हल है। सम्भव है, सीमा-परिवर्तन के कारण नवागंतुक व्रज, गुजराती एवं सिन्धी भाषा-भाषियों को कुछ कठिनाई हो किन्तु प्रांत के व्यापक हित में उन्हें राजस्थानी अपनाना होगा। शब्द एक सिक्का है। जिन लोगों ने यहाँ बसकर इसमें आदान-प्रदान किया है, उनका काम जमा है। ऐसे लोगों को राजस्थानी से रागात्मक तादात्म्य स्थापित कर ऐसा घुल-मिल जाना चाहिये जैसे वे यहीं के हों। हिन्दी जानने वाला राजस्थानी सीखने में देर नहीं करता क्योंकि ये दो भाषायें परस्पर एक दूसरे से आवद्ध हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'वीर गाथा काल' (चारण काल) के रूप में राजस्थानी को जो मान्यता मिली है, वह इसका उदाहरण है। आलोच्य अवधि के नवोदित साहित्य का अनुशीलन करने से पता चलता है कि कवि एवं लेखक अपने-अपने भूतपूर्व राज्यों की सीमाओं से बँधे हुए हैं। यह वर्ग क्षेत्रीयता से ग्रस्त है और क्षुद्र भावनायें उस पर हावी हैं। लगता है, जहाँ जो हुआ है उससे बढ़कर और कहीं कुछ नहीं है। संकीर्ण जातीय भावनाओं से साहित्य कलुषित होता है। शब्दों की अनावश्यक कपाल-क्रिया में क्या रखा है? जैसे बांडी, खारी, सूकड़ी, जोजरी, जवाई आदि सहायक नदियाँ लूनी में मिलकर एकाकार हो जाती हैं वैसे ही विभिन्न बोलियों को राजस्थानी में मिलकर एकाकार हो जाना चाहिये। जिस दिन राजस्थानी में अखिल भारतीय स्तर पर मौलिक गद्य-पद्य की रचनाओं का प्रकाशन हो जायगा, उस दिन इस पर राजकीय मुद्रा अंकित होने में देर नहीं लगेगी। अतः कवियों तथा लेखकों का दायित्व है कि वे रात-दिन इसमें अनवरत काव्य-रचना करते रहें और आलोचक इनका सही मार्ग-दर्शन करें। भाषा निर्मल नीर है,

इसके बहते रहने में ही भला है। हाँ, प्रजातन्त्र में भाषा जन-साधारण की होनी आवश्यक है। इस प्रकार साहित्य-साधना करने से समस्यायें स्वयं अपना समाधान ढूँढ लेंगी और राजस्थानी आप ही आप स्थिर तथा निश्चित हो जायेगी। भाषा के इस परिवर्तन काल में साहित्यकारों से अपेक्षा की जानी चाहिए कि वे अपने सृजन में मानव के चिरन्तन सिद्धान्तों की रक्षा करने के साथ नव-समाज की सम-सामयिक समस्याओं से चेतन जनभावना की ओर ध्यान देंगे।

शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थानी की जो उपेक्षा हुई, वह किसी से छिपी नहीं। स्वतन्त्रता-काल के आरम्भ में राजस्थानी ने एम० ए० हिन्दी की उच्चतम कक्षा में वैकल्पिक विषय के रूप में प्रवेश किया। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर की स्थापना हुई ही थी (१९४७ ई०) और वहाँ सर्वप्रथम आठ प्रश्न-पत्रों में सातवाँ प्रश्न-पत्र राजस्थानी का रखा गया। यह सातवाँ प्रश्न-पत्र तीन भागों में विभक्त था। प्रथम भाग में उर्दू, मराठी, बंगाली तथा गुजराती, द्वितीय भाग में संस्कृत, पाली, अपभ्रंश तथा डिंगल और तृतीय भाग में पाँच हिन्दी कवियों का विशेष अध्ययन निर्धारित हुआ। इस प्रकार इन तीनों भागों के कुल तेरह विषयों में से अपना मनोनुकूल कोई एक विषय विद्यार्थी को लेना पड़ता। फलतः इने-गिने विद्यार्थी ही राजस्थानी में प्रवेश लेने लगे। पाठ्य-क्रम सरल होने पर भी विद्यार्थियों की संख्या नहीं बढ़ी। केवल दो पुस्तकें निर्धारित थीं—पृथ्वीराज कृत 'वेलि' का अंश और 'चौबोली' संग्रह की चार कहानियाँ। आगे एक-दो पुस्तकें और जुड़ गईं किन्तु कोई विशेष अन्तर नहीं आया। षटमासी प्रणाली के क्रियान्वित होने पर इस परीक्षा के तीसरे-चौथे प्रश्न-पत्र में भी राजस्थानी को स्थान प्राप्त हुआ। इसी प्रकार बी० ए० कक्षा में भी हिन्दी कवियों के साथ कतिपय राजस्थानी कवि-कृतियों का अंश भी निर्धारित किया गया। इस विश्वविद्यालय के पद-चिन्हों का अनुकरण कर उदयपुर विश्वविद्यालय ने भी एम० ए० हिन्दी पाठ्य-क्रम में राजस्थानी को वैकल्पिक विषय बनाया (१९६२ ई०)। दो-तीन पुस्तकों की घटत-बढ़त को छोड़-कर विशेष भिन्नता नहीं दिखाई देती। हाँ, षटमासी प्रणाली के लागू होने पर नवीनता यह आई कि राजस्थानी के आधुनिक कवियों तथा लेखकों को भी पाठ्य-क्रम में स्थान प्राप्त हुआ।

राजस्थानी की शिक्षा में जोधपुर विश्वविद्यालय (१९६२ ई०) सबसे आगे है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् सन् १९७१-'७२ ई० तक तो राजस्थानी का रूप जयपुर और उदयपुर जैसा ही रहा किन्तु सन् १९७२-'७३ ई० में उपकुलपति प्रो० वी० वी० जॉन के शासन में हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० नामवरसिंह ने राजस्थानी पाठ्य-क्रम को एक नया रूप प्रदान किया। एम० ए० (उत्तरार्द्ध) हिन्दी के चार प्रश्न-पत्रों में 'साहित्य सिद्धान्त और आलोचना' तो अनिवार्य कर दिया गया किन्तु शेष तीन प्रश्न-पत्रों में चार-पाँच वर्ग रखे गये जिनमें से एक वर्ग लेना पड़ता। प्रत्येक वर्ग के तीन प्रश्न-पत्र रखे गये। इनमें से एक वर्ग 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' का था। इसके प्रथम प्रश्न-पत्र में राजस्थानी भाषा, राजस्थानी साहित्य का इतिहास तथा संस्कृति, द्वितीय में राजस्थानी काव्य के नये-पुराने संग्रह और तृतीय में राजस्थानी गद्य की नई-पुरानी विधाओं का अध्ययन-अध्यापन आरम्भ हुआ। कहना न होगा कि राजस्थानी वर्ग के इन तीनों न-पत्रों से राजस्थानी भाषा और साहित्य की गहराई तक पहुँचने का प्रयास किया गया किन्तु अनावश्यक छूट मिलने से कक्षा में विद्यार्थी बहुत कम प्रवेश लेने लगे। उपकुलपति प्रो० पी० एन० मसालदान के कार्य-काल में सर्वप्रथम राजस्थानी के एक पृथक विभाग की स्थापना का प्रस्ताव पारित हुआ। फलत: एक समिति का निर्माण हुआ जिसने विस्तृत प्रतिवेदन दिया। वर्तमान उपकुलपति प्रो० सतीशचन्द्र गोयल ने इतिहास में सर्वप्रथम बार एक पाठ्य-क्रम समिति का गठन किया जिसकी अध्यक्षता करने का सौभाग्य मुझे मिला। इस समिति ने सूझ-बूझ के साथ बी० ए० प्रथम वर्ष से लेकर एम० ए० उत्तरार्द्ध तक का पाठ्य-क्रम निर्धारित किया किन्तु स्वार्थवश एम० ए० राजस्थानी का श्रीगणेश नहीं हो पाया। हाँ, जुलाई १९७४ ई० से ऐच्छिक विषय के रूप में बी० ए० प्रथम वर्ष की कक्षाएँ आरम्भ हुईं जिन्हें इन पँक्तियों के लेखक तथा डॉ० शक्तिदान कविया ने अपने सामान्य कार्य-भार के अतिरिक्त नि:शुल्क पढ़ाकर अपनी मातृभाषा के प्रति अनन्य अनुराग का परिचय देकर एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

एम० ए० हिन्दी उत्तीर्ण छात्र-छात्रा राजस्थानी भापा और साहित्य से सम्बद्ध विषय पर शोध-प्रवन्ध लिखकर पी०-एच० डी० तथा डी० लिट् की उपाधियाँ प्राप्त करते हैं। राजस्थान के तीनों विश्वविद्यालयों में अनुसंधान की नियमावली प्राय: समान है। यह लक्ष्य करने की वात है कि स्वतन्त्रोपरांत

राजस्थानी में जितने विषयों पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं, उतने पहले कभी नहीं। वस्तुतः यह एक शोध का युग है। अब पहले की अपेक्षा राजस्थानी के 'डाक्टर' भी अधिक दिखाई दे रहे हैं फिर भी रोग का इलाज नहीं हो पाता और नई-नई बीमारियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। राजस्थानी में मौलिक विषयों की कमी नहीं है। खोज की दृष्टि से यह क्षेत्र खाली पड़ा है। अन्वेषकों को चाहिए कि वे अस्पर्शित विषयों पर अनुसंधान करें और उसे संसार के सामने लायें। यह क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों का कर्त्तव्य है कि वे अपने-अपने क्षेत्रों के साहित्य का पता लगायें और उसके संग्रह, सम्पादन एवं प्रकाशन का प्रबन्ध करें। शोध राष्ट्रीय भावनाओं की पूर्ति में योग दे और इसके लिए विषय-चयन में सावधानी रखना अत्यंत आवश्यक है।

गत तीस वर्षों से राजस्थानी की एम० ए० कक्षा का अध्यापन करने से यह लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि यदि राजस्थानी को लोकप्रिय बनाना है तो इसकी शिक्षा का आरम्भ ऊपर से न होकर नीचे से होना चाहिए। हर्ष का विषय है कि 'राजस्थान माध्यमिक शिक्षा मंडल' ने इसे बारहवीं कक्षा तक वैकल्पिक विषय के रूप में पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने का निर्णय किया है (१४ नवम्बर, १९७५ ई०)। आगामी सत्र से जब राज्य में 'हायर सेकेन्डरी' का बारह वर्षीय (१०+२+३) पाठ्य-क्रम लागू होगा तब राजस्थानी भाषा को उसमें वैकल्पिक विषय के रूप में सम्मिलित कर लिया जायेगा। अब ९ से १२ वीं कक्षाओं में राजस्थानी भाषा की शिक्षा वैकल्पिक विषय के रूप में दी जायेगी। ६ से ८ वीं कक्षा तक इसे वैकल्पिक विषय में पढ़ाये जाने का निर्णय पहले ही लिया जा चुका है। इस प्रकार अब विश्व में प्रथम बार कक्षा छः से लेकर स्नातकोत्तर कक्षा तक राजस्थानी भाषा और साहित्य का अध्ययन-अध्यापन किया जा सकेगा। देखना यह है कि हर कक्षा में कम से कम दस विद्यार्थी आते हैं या नहीं? जहाँ तक एम० ए० का प्रश्न है, इस वर्ष सन् १९७५-७६ ई० के सत्र में केवल सप्त ऋषि ही रह गये हैं।

विलम्ब से ही सही, राजस्थानी के नाम पर अब तक जो हुआ है वह ऊँट के मुँह में जीरे के तुल्य है। इन दिनों इस स्थिति में परिवर्तन दिखाई देने लगा है और राजस्थानी साहित्यकारों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। जनमत उभरने लगा है। लोग परस्पर राजस्थानी का अधिकाधिक व्यवहार करने लगे

हैं। प्रान्त के निवासी-प्रवासी, कवि-लेखक, छात्र-छात्रा और अध्यापक-प्राध्यापक सभी इसमें विचार-विमर्श करते हैं। यह भविष्य का शुभ संकेत है। राजस्थानी साहित्य की प्रकाश-किरणे अब धीरे-धीरे स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के प्रांगण को आलोकित करने लगी हैं। विश्वकवि टैगोर तथा पं० मालवीय की भावनाओं को मूर्त्त रूप देने का समय आ गया है। वह दिन दूर नहीं जब संविधान द्वारा स्वीकृत अन्य प्रांतीय भाषाओं के सदृश राजस्थानी भी अपना स्थान ग्रहण कर लेगी। राजस्थानी का पक्ष प्रबल है। जब राजस्थान हिन्दी भाषा-भाषी प्रांत है तब समझ में नहीं आता, हिन्दी पाठ्य-क्रम में राजस्थानी कवियों तथा लेखकों को स्थान क्यों नहीं दिया जाता ? और जब राजस्थान राजस्थानी भाषा-भाषी प्रान्त है तब यहाँ की प्रांतीय भाषा राजस्थानी को मान्यता क्यों नहीं प्रदान की जाती ? भाषा का प्रश्न अनन्त काल तक नहीं टाला जा सकता। हमें किसी एक स्थिति को स्वीकार करना होगा। राजस्थानी दुविधा में न रहकर सुविधा में रहना चाहती है। ज्ञान-विज्ञान जन्म-भाषा में ही गले उतरता है, अन्य भाषाओं में नहीं। उच्च प्राथमिक स्तर पर एक अनिवार्य विषय है—तीसरी भाषा। यह तीसरी भाषा बालकों के लिए राजस्थानी होनी चाहिये क्योंकि घर में जब वे अपने माता-पिता से अन्य भाषा में बातें करते हैं तो उन्हें अटपटा लगता है। उन्हें हिन्दी तथा अँग्रेजी अनिवार्यतः पढ़नी पड़ती है। इस प्रकार त्रिभाषा सिद्धान्त का भी पालन हो जाता है— मातृभाषा राजस्थानी, राष्ट्रभाषा हिन्दी और अन्तरराष्ट्रीय भाषा अँग्रेजी। अन्य प्रांतीय भाषाओं को यहाँ थोपना न्यायसंगत नहीं। विश्वविद्यालयों में राजस्थानी को एम०ए० हिन्दी में अनिवार्य कर देना चाहिये। जिस प्रकार अन्य प्रांतों में वहाँ की भाषा अनिवार्यतः पढ़ाई जाती है उसी प्रकार राजस्थानी साहित्य तथा संस्कृति के कीर्ति-स्तम्भ इन तीनों विश्वविद्यालयों में यहाँ की भाषा को यह गौरव मिलना ही चाहिए। किस-किस कक्षा में कौन-कौन सी पुस्तकें उपयुक्त रहेंगी, इसके लिए खींचतान की आवश्यकता नहीं। अभी जो मिले, उनसे शिक्षा दी जाय और आवश्यकतानुसार इन्हें तैयार कराया जाय। क्रम-क्रम से आगे बढ़ने में ही बुद्धिमत्ता है। अध्ययन-अध्यापन ऐसा हो कि जिससे विद्यार्थी आकर्षित होकर यह विषय ले। इसी प्रकार पाठ्य-क्रम ऐसा होना चाहिए कि जिससे इस प्रांत की भाषा, साहित्य और संस्कृति दूर-दिगन्त् तक फैले।

भाषा के क्षेत्र में तुष्टिकरण का त्याग कर स्थायी हल की चेष्टा करनी

होगी। ऐसी स्थिति न आ जाये कि न तो हिंदी हिंदी ही रहे और न राजस्थानी राजस्थानी ही। राजस्थानी हिन्दी से मुक्त होकर विधिवत् स्वतंत्र विभाग के रूप में प्रतिष्ठित, पोषित एवं विकसित हो, ऐसी मंगलकामना हिन्दी के विद्वान भी करते हैं। अतः कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में इसके पृथक् विभाग खुलें जहाँ प्रथम वर्ष बी. ए. से लेकर एम. ए. तक की शिक्षा दी जाये और आगे शोध का मार्ग प्रशस्त हो। हिन्दी की वेश-भूषा में राजस्थानी-रमणी की शोभा मारी जाती है। राजस्थानी के अध्यापकों की पृथक नियुक्ति हो और बी० ए० तथा एम० ए० के उत्तीर्ण विद्यार्थियों को राज्य-सेवा में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कोई भी भाषा राजकीय अनुकम्पा के अभाव में विकसित नहीं हो सकती। हर्ष का विषय है कि राज्य-सरकार राजस्थानी के संवर्द्धन की ओर ध्यान दे रही है। वह मुक्त कर से वर्तमान सभा-संस्थाओं को आर्थिक अनुदान देती है। राजस्थानी का प्रचार-प्रसार इन्हीं पर निर्भर है। इस दृष्टि से आकाशवाणी, जयपुर की सेवायें सर्वथा स्तुत्य हैं। प्रथम बार श्री विजयदान देथा को केन्द्रीय अकादमी द्वारा पाँच हजार की राशि से पुरस्कृत किये जाने तथा श्री कोमल कोठारी को 'नेहरू फैलोशिप' का सम्मान दिये जाने से (नवम्बर, १९७५ ई०) राजस्थानी का गौरव बढ़ा है और उसे अखिल भारतीय मान्यता प्राप्त हुई है।

(१४) **चारणेतर साहित्य :—** संदेह नहीं कि राजस्थानी भाषा एवं साहित्य की रचना सभी जातियों ने की है किन्तु इस क्षेत्र में सदियों से जैन, चारण, राजपूत, मोतीसर तथा भाट जातियाँ विशेष सक्रिय रही हैं। स्वतंत्रता-काल में जातीय महत्त्व का ह्रास होते रहने से इन जातियों का वर्चस्व शनैः शनैः क्षीण होने लगा। अब पहले की तरह रचना करने का विधि-विधान जाता रहा। इनके साथ अन्य जातियों के शिक्षित युवक भी सम-सामयिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर इस ओर प्रवृत्त हुए। यहाँ तक कि अनुसूचित जातियां, जन जातियां एवं पिछड़ा वर्ग भी पीछे नहीं रहा। यही कारण है कि स्वतंत्रता के इस सुनहरे समय में सभी जातियों के द्वारा साहित्य-सेवा हो रही है। कहना न होगा कि इन वर्षों में साहित्य में प्रचलित प्रायः प्रत्येक विधा विकसित होने लग गई है। राजस्थानी का चारणेतर साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है और पृथक् अध्ययन का विषय है। पद्य में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही हैं। गद्य में निबन्ध, कहानी, रेखा-चित्र, गद्य-गीत, उपन्यास तथा नाटक अपना अलग महत्त्व रखते हैं। बाल कथाओं, प्रौढ़ कथाओं तथा लोककथाओं का भी अभाव नहीं।

अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का अनुवाद भी हो रहा है। संक्षेप में देश, काल और परिस्थिति के अनुसार नया-नया साहित्य प्रकाश में आ रहा है जो मात्रा में कम होने पर भी अन्य भाषा-भाषियों की टक्कर का है।

आलोच्य काल में पूर्वापेक्षा साहित्य-प्रकाशन भी अधिक हुआ। इसका श्रेय पत्र-पत्रिकाओं को है जिनके माध्यम से कवियों तथा लेखकों की रचनायें जनता के बीच लोकप्रिय होने लगीं। इनमें हरावळ, जागती जोत, जलते दीप, मरु भारती, राजस्थान-भारती, मधुमती, ओळमो, जळम भोम, मरुवाणी, जाण-कारी, लाडेसर, वरदा, ललकार, परम्परा, अमर ज्योति आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनके आधार पर चारणेतर दिवंगत विभूतियों में सर्वश्री शिवचंद भरतिया, सुकदेवप्रसाद 'काक', रामकरण आसोपा, श्रीनारायण अग्रवाल, भगवतीप्रसाद दारुका, मुकुनदास रामसनेही, महाराज चतुरसिंह, जानकीदास निरंजनी, शिवकरण रामरतन दरक, केशवलाल राजगुरु, अमृतलाल माथुर, ठाकुर फतहसिंह, जयनारायण व्यास, साधु मोहनराम, जगन्नाथ उपाध्याय, हीरालाल शास्त्री, माणिक्यलाल वर्मा, वीरदास 'वीर', मोहनराज शाह, गणेशीलाल 'उस्ताद', दौलतसिंह लोढ़ा, गुलावचंद नागोरी, मदनमोहन सिद्ध, शोभाराम जम्मड़, मथरादास भट्टड़, ठाकुरदत्त दाधीच, सूर्यकरण पारीक, जगदीशसिंह गहलोत, निरंजननाथ आचार्य, व्रजलाल वियाणी, गिरधारीसिंह पड़िहार, सुमनेश जोशी, मोहनसिंह, घूंघलीमल, मानक मेहता, विष्णुदत्त आचार्य आदि के नाम आदर-सम्मान के साथ लिये जाते हैं। इनकी काव्य-साधना से राजस्थानी भाषा एवं साहित्य का समुचित विकास हुआ है। भविष्य के लिए वर्तमान कवियों तथा लेखकों को दृढ़ संकल्प एवं अनवरत परिश्रम करना होगा। यह प्रवुद्ध वर्ग अपनी अजस्र लेखनी से लिखता हो रहे, कहीं रुकने का नाम न ले। निः स्वार्थ भाव से लिखी गई रचना का मूल्य सबसे अधिक है। ऐसा साहित्य समाज की सेवा है। आज साहित्य समाज के साथ अपना घनिष्ट सम्बंध स्थापित करने में लगा हुआ है। वर्तमान साहित्य-सेवियों में वदरीप्रसाद साकरिया, श्रीलाल नथमल जोशी, अन्नाराम सुदामा, किशोर कल्पनाकांत, भूपतिराम साकरिया, मुरलीधर व्यास, नानूराम संस्कर्ता, लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, सौभाग्यसिंह शेखावत, नृसिंह राजपुरोहित, दीनदयाल ओझा, मूलचंद प्राणेश, वैजनाथ पँवार, भँवरलाल नाहटा, श्रीचंदराय माथुर, गोविन्दलाल माथुर, सत्य-प्रकाश जोशी, पुष्कर मुनिजी, जगदीश माथुर, गुलावकंवर शेखावत, नारायणदत्त

श्रीमाली, पारस अरोड़ा, मुकनशंकर पारीक, भगवानदत्त गोस्वामी, अश्विनीकुमार चितौड़ा, श्रीनाथ मोदी, गणपतिचन्द भण्डारी, कल्याणसिंह राजावत, लक्ष्मण-सिंह 'रसवंत', मनोहर शर्मा, मनोहर प्रभाकर, चंद्रशेखर व्यास, कन्हैयालाल सेठिया, विश्वनाथ 'विमलेश', भीमराज 'मंगल', मनोहरलाल शर्मा, कान्ह महर्षि, भगवतीलाल शर्मा, पुष्पेन्द्र झाला, बजरंगलाल पारीक, सवाईसिंह धमोरा, गणपतिलाल डांगी, सुमेरसिंह शेखावत, बनवारीलाल मिश्र 'सुमन', दयाशंकर आर्य, श्रीमंतकुमार व्यास, बुद्धिप्रकाश, नारायणसिंह भाटी, गजानन वर्मा, भीम पांडिया, मुकुनसिंह राठौड़, भरत व्यास, आशाचंद भंडारी, हस्तीमल जैन, दामोदरप्रसाद, अंबालाल जोशी, मुनि पुनमचंद, रावत सारस्वत, रामदत्त सांकृत्य, नागराज शर्मा, फूलचंद बांठिया, धनदास पचौरिया, देवेन्द्र मुनि, कुबेरसिंह राष्ट्रकूट, चेतनल बिस्सा, तोलाराम हीरावत, दानू सांगाणी, प्रेमचंद गवन्द, गणपत स्वामी, नंद भारद्वाज, तेजसिंह जोधा, सत्येन जोशी, राजेन्द्र बोहरा, भागमल जोशी, नाँगीलाल चतुर्वेदी, कल्याणसिंह शेखावत, वेंकट शर्मा, गोवर्धन हेड़ाऊ, नागराज शर्मा, यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र', हरमन चौहान, मदभेर टुकुल, मणि मधुकर, मेघराज मुकुल, कोमल कोठारी, वेद व्यास, हनुमंतसिंह देवड़ा, कन्हैयालाल सहल, नरोत्तमदास स्वामी, अगरचंद नाहटा, देवीलाल पाली-वाल, चंदूसिंह मनोहर, भगवतीलाल शर्मा 'अरुण', दीनानाथ खत्री, मोहनलाल पुरोहित, भूरसिंह राठौड़, मदनराज मेहता, रामप्रसाद दाधीच, राजकृष्ण दुगड़, महावीरसिंह गहलोत, पतराम गौड़, ब्रजमोहन जावलिया, मोहन आलोक, सांवर दइया, रामनिवास शर्मा 'मयंक', जबरअली सय्यद, जगदीशसिंह सिसोदिया, राधाकृष्ण शर्मा, हीरालाल माहेश्वरी, मदनगोपाल शर्मा, प्रतापसिंह राठौड़, ब्रजनारायण पुरोहित, निर्मोही व्यास, विनोद सोमानी 'हंस', उम्मेदसिंह राठौड़, दामोदरप्रसाद शर्मा, छत्रपालसिंह, ठाकुर ज्ञानसिंह मीकमकोर, नांगीलाल व्यास, रमेशचंद्र 'मधुकर', उदयवीर शर्मा, महेन्द्र भानावत, नरेन्द्र भानावत, शांता भाना-वत, विद्याधर शास्त्री, अमोलकचंद जांगिड़, गोविन्द अग्रवाल, कल्पना शर्मा, त्रिलोक गोयल, सत्यनारायण स्वामी, ठाकुर रामसिंह, रतन शाह, रामनाथ व्यास 'परिकर', रामस्वरूप 'परेश', किरण नाहटा, मोतीलाल मेनारिया, पुरुषोत्तम मेनारिया, शिवसिंह चोयल, श्रीलाल मिश्र, कन्हू शर्मा, लक्ष्मीकमल, सुरेन्द्र अंचल, आभा शर्मा, शिखरचंद कोचर, अद्भुत शास्त्री, नेमीचंद पुंगलिया, परमेश्वर द्विरेफ, जुगल परिहार, कुन्दन जोशी, मदनमोहन माथुर, कुमार गलित.

बंशीधर जड़िया, हेमराज बाड़मेरा, गोविन्दराम हेड़ाऊ, भंवरलाल सुथार, मदन-लाल डागा, दीनदयाल कुंदन, सत्यनारायण अमन, लीला मालवीय, अर्जुनसिंह शेखावत, शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश', जमनाप्रसाद टाड़ा, छत्रपालसिंह, रामेश्वर लाल श्रीमाली, मानक तिवारी 'बंधु', ओंकार पारीक, आत्माराम भाकल, रामबक्ष जाट, भागीरथसिंह भाग्य, नारायणसिंह 'पीथल', परमेश्वर बगड़का, मोठालाल खत्री, ब्रजभूषण भट्ट, हरिनारायण महर्षि मोहन 'माधुरी', सरनामसिंह शर्मा, गोपालनारायण बहुरा, गोवर्द्धन शर्मा, कन्हैयालाल शर्मा, चंद्रशेखर भट्ट, नाथू-लाल, दुर्गादत्त नाग, प्रेमजी प्रेम, चंद्रसिंह, बशी बेकारी आदि के नाम प्रकाश में आये हैं। इस नामोल्लेख में किसी विशेष क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है। इनमें कवि, लेखक, अनुवादक, आलोचक एवं सम्पादक सभी सम्मिलित हैं। इनमें से कई साहित्यकार पुरस्कृत हो चुके हैं। इन सबसे भविष्य में बड़ी-बड़ी आशायें हैं।

१५. (क) **चारण साहित्य** :— इन वर्षों में देश-विदेश तथा राजव्यापी परिवर्तनों को चारण जाति ने प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा, मन में समझा और हृदय से स्वीकार किया। वस्तुत: चारण साहित्य विभिन्न राजवंशों के उत्थान-पतन की गाथा है जो अधिकांशत: स्फुट छंदों में प्रकट हुई है। आज भी इस जाति के कवि सत्तारूढ़ शासक दल के नेताओं का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। राजतंत्र हो या जनतंत्र वे इसके आगे अपना मंत्र पढ़ते रहते हैं। समय के साथ इस जाति के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। साहित्यकारों ने देखा कि नवयुग की आकांक्षायें और आवश्यकतायें, स्वरूप और लक्षण पहले से सर्वथा भिन्न हैं। अतीत में जो भाषा ओज तथा उत्साह के बल पर काव्य की भाषा बनी, कालांतर में प्रसिद्ध हुई और उसे मान्यता मिली। किन्तु नवोदित काल का प्रगतिशील चारण परम्परा से दूर हटने लगा तथा उसकी रुचि भिन्न-भिन्न दिशाओं में व्याप्त होने लगी। नामकरण संस्कार तक में उसने 'दान' और 'सिंह' शब्दों का मोह त्यागकर 'जयहिन्द', विश्व विकास', 'वंदे मातरम्', 'मनुज', 'मानव,' 'साधना', 'मधुकर', 'मणिधर', 'कल्पित' आदि साहित्यिक तथा राष्ट्रीय नाम रखने की नई परम्परा का सूत्रपात किया। आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक से उसके जीवन में परिवर्तन आया। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। युद्ध, योद्धा और युद्धभूमि का रूप बदल गया। नये-नये अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होने लगा। चारण साहित्य की दृष्टि से यह एक परिवर्तन-काल ही माना जायगा क्यों-

कि परिवर्तित परिस्थितियों से प्रभावित होकर उसमें नवीन विचारों तथा भावों का सन्निवेश हुआ। साहित्य का क्षेत्र संकुचित न होकर विस्तृत होने लगा। अन्य कवियों के सदृश राजस्थानी के चारण कवियों का ध्यान राजपूत जाति ही नहीं प्रत्युत् समस्त देश एवं प्रांतवासियों की ओर उन्मुख हुआ। फलत: विविध विधाओं में प्रांतीय एवं राष्ट्रीय भावनाओं का चित्रण होने लगा। विषय-वस्तु की दृष्टि से उनमें नवीनता आने लगी। वे नये अंदाज के साथ नव-लेखन करने लगे। चारण साहित्य आत्मा, रूप और शैली की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का अनुकरण करता हुआ नवीन आवश्यकताओं के अनुरूप गतिशील हो रहा है। यह लक्ष्य करने की बात है कि इन कवियों ने स्वतंत्रता के कुछ वर्ष पूर्व से ही दूरदर्शी बनकर राष्ट्रोपयोगी रचनायें लिखना आरम्भ कर दिया था अत: इनकी कद्रदानी अधिक हो रही है। सौभाग्य से इन्होंने परतंत्रता तथा स्वतंत्रता काल की शासन-पद्धतियों को निकट से देखा है। ऐसे कवि साहित्य के सेतु हैं। ये एक ऐसे संधि-काल पर खड़े हैं जहाँ प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों प्रकार की शैलियों का अपूर्व सामञ्जस्य हो रहा है। अत: आलोच्यकाल प्राचीन, अर्वाचीन एवं सम्मिश्रित शैलियों का संगम है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि चारण कवि तथा लेखक स्वतंत्रोपरांत समस्याओं का संस्पर्श करते हुए नई शैली में साहित्य-रचना करने लगे हैं। सीमा-पार बाह्य आक्रमणकारियों को मार भगाने के लिए इन्होंने जो शंखनाद किया वह राष्ट्र को जगाने में पूर्ण सक्षम है। इन समस्त कारणों से यदि इस काल को 'नवचरण' की संज्ञा दी जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

राजस्थान वीरों की खान है। वीर रस के चित्रण में चारण आज भी अग्रज है। वीरों की प्रशंसा और कायरों की निन्दा करना वह आज भी भूला नहीं है। राष्ट्रीय युद्धों में वीरगति प्राप्त योद्धाओं की पुण्य स्मृति में गीत रचना कर इन कवियों ने बड़ा उपकार किया है। राजस्थानी माँ ने अपने शिशु को संस्कृति के श्रेष्ठतम पाठ अपने दूध में घोलकर पिलाया है। इस वीर प्रदेश की मातायें अपने शिशुओं को 'हालरिया' गाती हुई क्या कहती हैं, इसे कवि श्री कैलाशदान उज्वल के शब्दों में सुनिये—

'हालरिया हाले हरवल में, रण झूंझण री कुल री रीत।
अवश करे सरवस निज अर्पित, गावे मायड़ मीठो गीत॥
अपणो धर माथे अन्यायी, निजर कुटिल जद नोंखे।

हिचके मती हार हीये रा, फोड़े जा पापी आँखे ।।
माथो जद तक धड़रे माथे, आगे की दुशमण आवे ।
पावन प्रिय भारत भू उपर, पग नह को देवण पावे ।।
सुमुखि धरा र धरम जद संकट, आप पड़यो अबखो अप्रमाण ।
वध-वध लड़िया तूझ बडेरा, पाछो तक्यो न देतों प्राण ।।
रण जीत्यों धरती री राजस, थकियो जीव अलौकिक थाट ।
इन्द्रलोकरी अनुपम अपसर, वरमाला ले जोवे वाट ।।
उज्वल कुल री कीरत उज्वल, कर राखे सुत उज्वल काम ।
उत्तम सीख मानियां इतरी, निश्चय उज्वल होवसी नाम ।।'

इस प्रकार की रचनाओं से राष्ट्रीय भावनाओं को बल मिला। कवि के हाथों में पड़कर जड़ चेतन हो गया। चीनी आक्रमण के समय 'हेमाळे री हेलो' के रूप में वीरों का आह्वान करता हुआ कवि भँवरदान वीठू 'मदकर' की यह ओजस्वी वाणी देखिये—

'सुदुर उतराद सूं शत्रु दल सालल्या, घूंसवा हिंद री देव धरती ।
चीरतो सरहदां चीन फौजां चली, धर्म गुरू शीश पर पांव धरती ।।
संग पंच शील रै मित्रता शांयति, ऊभमी हाय तोबां उचर-ी ।
थांभवा कुदरती भींत थरथराती, भारतीय होयजा फौज भरती ।।
पुरुष पाखर वणो वचावण पाहड़ां वीहड़ां रखावण वाड़ बांधो ।
तालियां रोप बंदूक तोफां तणी, सांपडी भुजावां रीठ सांधो ।।
सिकिम भूटान लद्दाख नेफा सुधि अराती टैंक भैंसां उतरती ।
थाँभवा कुदरती भीत थरथराती भारतीय होयजा फौज भरती ।।'

आज भी चारण वीर-धर्म का पुजारी है। इसकी अभिव्यक्ति दूहा, सोरठा, कवित्त, छप्पय, निसाणी, बेलि तथा विभिन्न गीत छंदों में आज भी हो रही है। काश्मीर पर हुए आक्रमण के समय (१८ जुलाई, १९४८ ई०) हवलदार मेजर पीरूसिंह शेखावत, ग्राम बेरी रामपुरा, झुंझनूं ने टीथवाल मोर्चे पर वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किया। इससे चारण कवि अत्यंत प्रभावित हुए। भारत-चीन युद्ध में (१६ नवम्बर, १९६२ ई०) मेजर शैतानसिंह, ग्राम बाणासर (फलौदी) की अद्वितीय वीरता पर मुग्ध होकर चारण कवियों ने जिस प्रशस्ति काव्य का सृजन किया है, वह भविष्य के लिए मार्ग-दर्शक है।

इळा चढी चाक नाक बचातां चुसूल अड़ौ,
सूर चंद्र भरे लाख सूरमै री साख ॥'

वीरता में राजस्थान सबसे आगे रहा है और आज भी है। आज भी चारण आवश्यकता पड़ने पर रणभूमि में कूद पड़ता है। कलम और तलवार का अद्भुत सँयोग ज्यों का त्यों बना हुआ है। स्वर्गीय लेफ्टिनेंट देवपालसिंह देवल ने कमला बागान, जयंतियापुर (बंगला देश) में भारतीय सैन्य-दल का जो नेतृत्व किया, वह एक आदर्श है। रक्त से लथपथ होने पर भी शत्रुओं का संहार करते हुए उस वीर योद्धा ने वीरगति प्राप्त की (२८ नवम्बर, १९७१ ई०)। इस उपलक्ष्य में उसे 'महावीर चक्र' से विभूषित किया गया। श्री देवकरण बारहठ (इंदोकली) ने इस विराट् शौर्य-पराक्रम का प्रकाशन इस सशक्त 'वेलियो' गीत में किया है—

'भारत पाक सीम जुध भिडतां, झुक तोपां माची बम्ब झाल।
आरंभ समर हरोलां आगे, प्रारभ जुद्ध भिडियो देपाल॥
नाथूराम सिढाईच नांनो, दादो जिण्रो माधोदास।
दूषण रहित घरांणा दोनू, कुलभूषण मांमो केलास॥
आद कहावत चलती आवे, तिणने साची करी सतेज।
मामा जिणरा हुवे मारका, भूंडा क्यूं निपजे भाणेज॥
सरणगता विधूषण सारू, भूमी बंग हिन्द बद भाव।
हुवो पाक पहिलो हमलावर, अवसान्ति भारत मे पाव॥
फौजां पाक नील धुज फरकी, हिन्द फौजां चौ नजर हुई।
अस्त्र सस्त्रां सूरा आवडिया, नूवा तरीका राड़ नई॥
धिन सुत भान हिन्द धरतीसूं, काढ दिया अरियां ने कूट।
लारे वेह तिरंगो लियां, पाकिस्थान फेर दी पूठ॥
भागा धके छोड़ भारत भू, पूरब बंग में कियो प्रवेस।
लोगां तणी कुसी खां लागी, दोनों भिड़े एक व्हे देश॥
खेल रयो रण खेल खिलाड़ी, ठेल रयो पाछा अरि ठाट।
रण भू रेल गयो रत रेलां, झेल रयो अरियां दल झाट॥
घेर रयो रण पाक घटावां, ठेर रयो रवि रथतन ठांम।
मेर रयो वण शिव माला रो, धुर्जटि लेर गयो निज धांम॥'

साहित्य समाज का दर्पण है। इसमें अपने समय की गतिविधियों का

चित्रण किसी-न-किसी रूप में होता ही है। चारण साहित्य में भी वर्तमान समाज, अर्थ-व्यवस्था, राजनैतिक दल, शासन-प्रबन्ध, निर्वाचन, नेता आदि को लेकर नई-नई रचनायें लिखी गई हैं जिन्हें सामान्य जनता बड़े चाव से सुनती है। उसे इसका रसास्वादन बड़ा चोखा और अनोखा लगता है। सर्वश्री उदयराज उज्वल, देवकरण बारहठ, रेवतदान कल्पित, भँवरदान बीठू 'मदकर', जयकरण बारहठ, अक्षयसिंह रतनू, अजयदान बारहठ प्रभृति कवियों की स्फुट रचनाओं से चारण काव्य के 'नवचरण' की पुष्टि होती है। यह तो भविष्य की एक भूमिका मात्र है।

जो सुख स्वाधीनता में है, वह पराधीनता में कहाँ ? स्वाधीन-काल में भारत की सर्वांगीण उन्नति के लिए जितना व्यय हो रहा है उतना पहले कभी नहीं हुआ। गाँवों की ओर विशेष ध्यान दिया गया अतः वहाँ की कायापलट हो गई। अपने गाँव ऊजळा जाने पर जब वहाँ विकास ही विकास दिखाई दिया तब कवि उदयराज उज्वल का मन-मयूर नाच उठा—

'पैली गांमां नै कुण गिणता, अबतो गांमां में सत्ता रे।
पैली तो संकट पाता हा, पथ खुलगा सुखरा करता रे॥
काळां में करसा रुळता हा, अब करसा सगळा तिरगा रे।
वेगारां डंडासूं लेता, हिंसा पथ वाळा गिरगा रे॥
माडां मजदूरी लेता हा, श्रमदांन प्रेमसूं देवै रे।
विद्या रो परवंध कमती हौ, इसकूलां इधकी वेवै रे॥
ओखद भी दूरा मिलता हा, घर बैठां आखद आवै रे।
जल रो संकट भी जादा हो, वौतेरो कष्ट मिटावैरे॥
सांवतिया फाटक जूडीशल, चोरी अर अनरथ करता रे।
पसुवां नैं संकट पूरौ हौ, निरदोसां जेळां घरता रे॥
अब तो पंचायत गांमां में, थपगी सुखदायक जड़ियां रे।
जल्दी अर सोरौ न्याव मिळै, बिन बड़ी कचेड़ी चढियां रे॥
दवियोडी जनता हिंसा सूं, जो मुखसूं चूं नह करती रे।
सुख रूप स्वराज मिळतां हीं, आणंद री घड़िया वरती रे॥
वो छूत अछूत रौ रोग गयो, समाजां थपगी समता रे।
सत्ता सूं हिंसा भूत गयौ, मुख पावै भारत माता रे॥
अब गांमौगांम विकास करै, सहयोग र पेम समेत सबै।
निज गांम ऊजळां देख लियौ, 'उदय' सह उन्नति पंथ भवै॥'

देश में सर्वत्र अनुशासनहीनता को देखकर इस कवि का हृदय क्षुब्ध हो उठा। वह इस समस्या की तह में पहुँचकर इसके कारणों का भी स्पष्ट उल्लेख करता है—

'भाव जिकां भगवांन, प्रेम जियां माता पिता।
समझै गुरू सनमांन, अनुसासण मारग उदय॥
फिरंगां तणौ प्रभाव, हिंदवांणै इसड़ौ हुवो।
भूला भगती भाव, अनुसासण निबळौ उदय॥
सत्याग्रह रै सांग, राजकाज अटके रया।
कूवे पड़गी भांग, अनुसासण भूलै उदय॥
सत स्वराज रै साथ, आई बाढ समाज में।
अलटपुलट घण आज, अनुसासण निबळौ उदय॥'

श्री देवकरण बारहठ समस्त चुनावों के निर्विरोधी पंच एवं उप-सरपंच हैं। उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में प्रवेशकर अपनी काव्य-धारा को नया मोड़ प्रदान किया है। चुनावों में राग-द्वेष, वैर-वैमनस्य एवं छल-कपट को देखकर कवि को ठेस पहुँची है। अतः वह निर्विरोध चुनाव के पक्ष में है। एक उदाहरण निरर्थक न होगा—

'फल सह भोग्या फूट रा, फेर बढ़ रही फूट।
भूत भविष्यत भाल रे, रे भारत रंगरूठ॥
कर रिषी मुनियां जहूं करी, विश्व-प्रेम री बूठ।
विधानिक पथ वेवणो, रे भारत रंगरूठ॥
छोड़-छोड़ छाल छुद्रता, कपट भेद रा कोकी।
पड़ मत जाजे पतन में माडे आंख्यां मीच॥
सुधरयां गांमां कर सके, थूं भारत सब थोका।
कृषक न भाजन कोपरा, वाणी कार्य विलोक॥
वीर करावो विश्व ने, बुद्धिवानी रा बोध।
पंच तथा सरपंच पुनि, वणणा विना विरोध॥
पड़ गुड़ किणी प्रकार सूं, आसण रुध्या आप।
सुभ कारज कर नहीं सक्या (तो) पंच वणण मेंई पाप॥'

रेवतदान 'कल्पित' तो मानो इंग्लैंड के राजकवि जान मेन्सफील्ड के स्वर में स्वर मिलाकर कह रहा है— 'न अब मैं उन शासकों की और उन पादरियों की

प्रशंसा में अपनी काव्य-रचना को कलुषित नहीं करूँगा जो बहिष्कृत हैं, पतित हैं, आहत हैं। अन्य कलाकार आज भले ही विलास, मदिरा एवं वैभव का स्वप्न देखें। मैं तो अब उनके गीत गाऊँगा, उनकी कहानी कहूँगा जो रुग्ण हैं, अंधकार में हैं, जो पीड़ित और शोषित हैं।' शायद इसीलिए चारण कवि 'रजवट' को उपालम्भ देने लगा और जनता आनंद लेने लगी। कवि रेवत नेहरूजी तक को मीठा 'ओळबो' देने लग गया। वह सम्पन्न का विरोधी और विपन्न का पक्षधर है। राजस्थानी का यह होनहार कवि समाजवादी विचार-धारा से प्रभावित है। वह अपने युग के साथ साथ आगे बढ़ रहा है। राजस्थान के शोषित किसान को देखकर उसका हृदय विचलित हो जाता है अतः वह चीख उठता है—

'इण माटी में सौ-सौ पीढ़ी, मरगी भूखी प्यासी।
भाग भरोसे रह्यौ बावळा, प्रीत करी आकासी॥
कदै तो पड़ग्यो काळ अभागो, गिण-गिण काढ्यो दोरो।
कदै तो ठाकर लाटो लाट्यो, कदै लाटग्यो बोरो॥
कदै तो बैरी दावो पड़ग्यो, कदै आयगी रोळी।
कितरा दिन तक सबर करेला, माटी हँसने बोली॥
रे बंदा चेत मांनखा चेत, जमानो चेतण रो आयो॥'

वह कहीं भोले किसान को जगाता है तो कहीं आने वाली विपदा से बचाने के लिए सावधान भी करता है। वह पूँजीवाद का कट्टर विरोधी है। इंकलाब पर उसका पूर्ण विश्वास है। अतः कहीं-कहीं उसमें साम्यवादी स्वर भी आ गया है। 'रोयां रुजगार मिलै कोनी' का यह अंश देखिये—

'व्हे लखपतियां रो राज जठे, भूखां रो पेट पळै कोनी।
आंख्यां रै ऊंडै समदर रा, मोत्यां रो मोल घणो मूंघो॥
इमरत नै मद रे प्यालां सूं, आंसू रो तोल घणो मूंघो।
सोना-चांदी रा सिक्कां सूं, मेणत रो कोल घणो मूंघो॥
यां लखपतियां री बोली सूं, मजदूरी बोल घणो मूंघो।
भिड़ जावण दो मैल-झूंपड़ा झगडै रो जोग टळै कोनी॥
घण मूंघा मोती मत ढळका, रोयां रुजगार मिलै कोनी॥'

लोकप्रिय कवि भँवरदान वीठू 'मदकर' कमरे में उड़ आये कपोत से पूछते हैं—

नेक पंखी कलजुग रा नारद भाग भयों तू भाई।
देश हिंद मां कांई दीठो, वतला दे कोक वधाई॥
हेकांता करां हथाई चोखी कोई गप-सप चोल।
हां हां बोल कबूतर बोल रे खोटां रा पड़दा खोल॥'

यह सुनकर कबूतर क्या उत्तर देता है, यह भी देख लीजिए—

'मैं रमता जोगी महलां सूं झूंपड़ियां लग जावां।
ऊँच नींच रो भेद न आणा, घर घर अलख जगावां॥
गुटकूं गुटकूं कर गावां, मंन री वातां अणमोल॥ हां-हां बोल०

नेता करते नाच देशनां सरग वणावण सारूं।
जूठा कवल करै जंनता सूं, हुड़दंग वाज हजारूं॥
दशियां नां पावै दारू, ? मूंगो वोटां रो मोल॥ हां०

मंत्रीजी बैठा महलों मां, खूब मलींदा खावै।
लूंट खसोट करे लोकां सूं अफसर मौज उड़ावै॥
लाखां री रिस्वत लावै, परजा मां दीठी पोल॥ हां०

पुलिस तो परजा री रक्षक क्यूं भक्षक कहलावै।
कोतवालजी घूंस कतल, चौरी मां बढती चावै॥
मुनसीजी धूंम मचावै (जद) मुड़दां रा चूकै मोल॥ हां०

विना विचारे आज बी० डी० ओ, लाखों बजट लुटावै।
आधी रकमां हड़प इंजिनियर, महंगी कार मुलावै॥
विकाश विनाश करावै, आ, रिस्वत री रांफा रोल॥ हां०

एक रूपइया ले इन्सपेक्टर, मान वेच झख मारै।
जण कारण वाजारां मां, वेईमांनों की पौ बारै॥
हर तरफ हाय तौबा है, पोपां में माची पोल॥ हां०

दलीय राजनीति के घटाटोप में देश की जो दशा हुई और समय रहते प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने जिस महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया, उससे प्रभावित होकर श्री जयकरण वारहठ की कविता का यह उदाहरण देखिये-

'गढ़ कोट किले ढह गये, जहाँ मदहोश झूमते राजवंश।
जनता को लूटकर सुरा पीते थे निर्बल के शाशक वे नृशंस॥

स्वातंत्र्य लहर कुछ विरळ हुई, खादी कीचड़ से कर मलीन ।
शासक नेता लोभी बनकर, झोली को भर दी पकड़ मीन ।।
धनी लोग जो निर्वाचित, अर्जित पूंजी के लिए मंत्र ।
मिल गये वांव संग वृक्षों के, कर धूली धूसरित प्रजातंत्र ।।
गठित मोर्चा के कारण, सन गया रेत में राजतंत्र ।
लूट डकैती हत्यायें, बढ़ चली ढहाने प्रजातंत्र ।।
उस समय इन्द्र या इन्द्रा ने, क्या खूब व्यवस्था बनवाई ।
पकड़े सब देश कलंकों प्रतिक्रियावाद के अगवाई ।।
जनतंत्र बचाने धनिकों से, पूंजीगत बड़े झमेला में ।
राष्ट्रभावना लानी है, जनतंत्री बली की वेला में ।।
आज गरीबी ताकत से पूंजी का कोट ढहाना है ।
इन्द्रा के हाथों अगवाई, सब देश एक हो जाना है ।।
हमें परीक्षा घडियों में, संकट में लगी दुहाई को ।
इन्द्रा के पीछे चलना है, हर पार कुवा कर खाई को ।।'

कहने का अभिप्राय यह कि भाव-पक्ष की दृष्टि से चारण-काव्य में एक परिवर्तन आने लगा है । यह परिवर्तन भाषा में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । अब डिंगल एवं पिंगल के साथ हिन्दी में कविता करने वालों का भी अभाव नहीं । अक्षयसिंह रतनू देश-हित में अपना बलिदान करने हेतु कहते हैं—

'एक दिन निश्चय निकलना प्रान मेरा ।
देश हित में धन्य हो जीवन अगर कुर्बान मेरा ।।
चंद दिन की जिन्दगी में हूँ स्वयं महमान मेरा ।
और बनता मरे चमड़े का न कुछ सामान मेरा ।।
स्वार्थ तो पशु भी निभाते हैं वृथा अभिमान मेरा ।
देश हित में हो अगर अपमान भी है मान मेरा ।।'

राजस्थानी के यशस्वी कवि अजयदान बारहठ रचित यह 'जन्माष्टमी' शीर्षक कविता कितनी संस्कृतनिष्ठ हो गई है ?—

'नाशक कंस नृशंस, वत्स-अरि-अमर विनाशक ।
त्रासक कालिय क्रूर, पूर पय पार्थ प्रकाशक ।।
श्रुति सुधारक सेतु, हेतु-जग निज जन तारक ।

अधम उद्धारक अमित, सकल सुर काज संवारक ॥
उन पुरुष पुरातन कृष्ण की, यह जन्म तिथि जग पावनी।
है 'अजय' पर्व सर्वोपरी, अरु हरि-भक्ति दृढ़ावनी ॥'

इस प्रकार चारण साहित्य अपने कुल-गौरव की रक्षा करने के साथ-साथ इस युग की नई रोशनी से जगमगा रहा है। यहाँ गत अध्यायों के सदृश पृथक प्रवृत्तिमूलक अध्ययन प्रस्तुत न कर स्वतंत्रता काल के शेष जीवित चारण कवियों तथा लेखकों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के साथ-साथ उनकी उल्लेखनीय रचनाओं के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं जिनके आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने में देर नहीं लगती कि यह साहित्य नई दिशा की ओर कदम बढ़ा रहा है। गत अध्याय में भी यथास्थान जीवित कवियों का विवरण, विश्लेषण तथा विवेचन दिया गया है किन्तु इन चुने हुए कवियों में नवीन धारा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। दुख है कि इनमें से एक-दो कवि अभी हाल ही में चल बसे हैं।

(ख) **कवि एवं कृतियाँ** – **१. बद्रीदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१८९० ई०) और पाली (मारवाड़) जिलान्तर्गत ग्राम बासनी के निवासी हैं। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा मातृभाषा राजस्थानी में अपने पिता अजीतदान जी से प्राप्त की (१८९७ ई०)। साथ ही पं० शंकरलाल (बनेड़ा) से भी ज्ञान ग्रहण किया। इस प्रकार इन्होंने दस वर्ष की आयु में कविता लिखना आरम्भ कर दिया। यह देखकर रायपुर-ठाकुर हरीसिंह ने इन्हें अपने पास रख लिया। रायपुर राजघराने की सेवा करते हुए ये अपना ज्ञान बढ़ाते गये। ठाकुर साहब के निधन के बाद ये जोधपुर आ गये जहाँ इन्होंने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की। आजकल आप वकालत के साथ-साथ साहित्य-साधना भी कर रहे हैं। आप वयोवृद्ध होने पर भी उत्साही हैं। जो कोई इनके पास जाता है उन्हें ये अपनी रचनायें बड़े प्रेम से सुनाते हैं।

बद्रीदानजी राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के ज्ञाता हैं। ये 'चारण-पत्रिका' के सम्पादक भी रह चुके हैं। इन्होंने प्राचीन-अर्वाचीन दोनों प्रकार की रचनायें लिखी हैं। 'बोम्बर बावनी' तथा 'रणबंका राठौड़' गुजरे जमाने की याद दिलाती हैं। महाराजा सरदारसिंह, सुमेरसिंह, उम्मेदसिंह एवं हनुवंतसिंह (जोधपुर) पर लिखे शोक-गीत इसी श्रेणी में आते हैं। अर्वाचीन ढंग की रचनाओं में 'जयहिंद शतक', 'केर सतसई', 'कांदा पच्चीसी' आदि उल्लेखनीय

है। सम्प्रति गीता का राजस्थानी में अनुवाद कर रहे हैं। इन्होंने फुटकर कवितायें भी बहुत लिखी हैं। संक्षिप्त होते हुए भी इनकी रचनायें अपने-अपने कालों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

एक बार प्रसिद्ध काँग्रेस-नेता लोकनायक श्री जयनारायण व्यास ने समस्या दी— 'जय हिन्द !' श्री कविया आशु कवि के रूप में धड़ाधड़ दोहे सुनाने लगे जिसका नमूना इस प्रकार है—

'गांधी तो त्यागी घणो जिन्नो मुफतीयो जिन्द।
पाक थान ले ने पड्यो, हार वी' क जय हिन्द ।।
नागी द्रुपदा निरखतां, कुरुवंश निष्कंध।
नार हजारों नग्न की, हार वी' क जय हिन्द ।।
सीता रावण ने हरी, (जिणा) काट लिया दसकंध।
हा लाखों तीय हर लई, हार वी' क जय हिन्द ।।'

'केर-सतसई' में प्रकृति की अद्‌भुत देन 'केर' की महिमा देखिये—

'हिय हरियो हरियो रहै, हरदम हरियो हैर।
तू मरुधर रा कल्पतरु, (थने) किण विध भूलों कैर ।।
आलू गोभी यों आगे, ठीक न जावे ठैर।
सब सागों रा सेहरा, किण विध भूलों कैर ।।'

और अंत में, गीता-अनुवाद का यह दोहा कितना प्रेरणादायक है?—

'नर वैने नामरदगी, ओभैं नैंह समराट।
हिवड़ा री तव हीणता, भड़ उठ भिड़ भारात ।।'

२. ईश्वरीदानसिंह— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१८९५ ई०) और सवाईमाधोपुर जिलान्तर्गत ग्राम बंवली बिशनपुरा के निवासी हैं। जीवित कवियों में इन्हें डिंगल, पिंगल, हिन्दी, उर्दू तथा फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त है। ये राव साहब धूळा तथा जयपुर दरबार के राज्य-कवि रह चुके हैं। इसलिये लोग इन्हें 'ठाकुर' कहकर पुकारते हैं। इनकी रचनाओं में 'कूर्म विजय', 'कमधज कबंध', 'पचरंग प्रकाश', 'महिपति रघुकुल नेम ग्रंथ', 'शेखावत प्रकाश', 'मोहन भक्ति प्रकाश' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर रचनाये भी बहुत लिखी हैं।

ईश्वरीदानसिंहजी परम्परागत कवि हैं। 'पचरंग प्रकाश' में जयपुर के पचरंगी झंडे की तवारीख़ है किन्तु साथ ही काव्य-सौन्दर्य देखते ही बनता है। इसमें महाराजा मानसिंह (प्रथम) तथा बादशाह अब्दुलाखां उज़वक़ (पठान) के युद्ध का चित्रोपम वर्णन है। काबुल के इस युद्ध में महाराजा को विजयश्री प्राप्त हुई थी। शह-शाह-तुरान की सेना आती देखकर मानसिंह की सेना सजने लगी। इसका वर्णन कवि ने छंद 'पद्धरी' में किया है—

'ये सुनत ख़बर युवराज मान, क़ाबुल रक्षक जो वंश-भान।
आज्ञा सुभटन को दी तुरन्त, सब सजे वीर कूरम दुरंत।।
भुजदंड फडक ब्रहमंड ओर, धक धकिये जोश मूंछन मरोर।
हो गए कंध केहरि समान, खिच गई भौंह मानो कमान।।
चढ़ गये तौर जिन सार पार, चस गये नैन जैसे अंगार।
सजधज बलिष्ठ होकर तयार, गर्जंत अनेक भट दळ संभार।।
संसार मोह को त्याग दीन्ह, वह समय अंत सब लियो चीन्ह।।'

छंद 'भुजंगप्रयात' में तोपों का यह वर्णन भी द्रष्टव्य है—

'चिती चाव पै चंचळा तोप चाळी, किलक्की मनो क्रोध में होम काळी।
दगी जौर पै तेज बारूद जागी, लखी यों मनो लंक में लाय लागी।।
अड्यो जाय आकाश में यो उजाला, मनो बीजळी सी उठी ज्वाल माला।
भयो घोर अंधार ना भान भास्यो, फळै काळ सो रूप आक प्रकास्यो।।
धरै धीर नाहीं धरा को धुजावै, डकै डाकनी डूंगरो को डिगावै।
इहि रीत दोनों दिशा में तड़क्की, किधो कंस पै माहमाया कड़क्की।।'

३. **तखतदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और पाली जिलान्तर्गत ग्राम आंगदोष के निवासी हैं। इनकी गणना राजस्थानी के उत्तम कवियों में की जाती है। आपने फुटकर कवितायें लिखी हैं। एक उदाहरण देखिये—

'ऊंट जवाहर अरब रो, निज कर घाल नकेल।
झटको दे झेकावतो, पड़ गयो पार पटेल।।'

४. **माधौसिंह**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९०१ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम मोगड़ा के निवासी हैं। इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की (१९२४ ई०) फिर राज्य-सेवा में लग गये। आपने स्वास्थ्य निरीक्षक, नगर-परिषद्, जोधपुर तथा पुलिस-विभाग में इन्सपेक्टर के पद पर कार्य किया

है। आजकल अपने गाँव में ही रहते हैं। मिलने पर प्रायः कहा करते हैं - गाँव में सब-कुछ है— शुद्ध वायु, स्वच्छ जल और अनुकूल भोजन लेकिन विद्या और विद्वान के बिना सब सूना है। ग्राम्य-जीवन से स्नेह होने के साथ कवि विद्वानों से मिलने को उत्सुक रहता है। चश्मा लगाना तो दूर, इस अवस्था में भी आँखों का तेज ईश्वरीय कृपा से ज्यों का त्यों बना हुआ है।

माधोसिंहजी आरम्भ से ही राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के उपासक रहे हैं। इन्होंने अपने पूर्वज कवियों एवं लेखकों की कई कृतियों का अध्ययन किया है। कई बातें इनके कंठ में निवास करती हैं। ये डिंगल एवं पिंगल दोनों भाषाओं में स्फुट काव्य-रचना करते हैं। साथ ही प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों ढंग की रचना करने में समर्थ हैं। स्वतंत्रता-काल के वीर योद्धाओं का वर्णन करते हुए कवि ने ये उद्‌गार प्रकट किये हैं—

'भारत रा अणियों भंवर, जिण पुळ सजै जवांन।
दरकै छाती दोयणां, थरकै पाकिसथांन।।
मुंड दिये हरमाळ में, रुंड रचै घमसांण।
तिकां कोतुहळ भालवा, रथ ठंभै रातांण।।
हर नाचै नारद हसै, अछरां वरण अधीर।
भारत रा जिण पुळ सुभट, हिचै जुधां हमगीर।।'

प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की प्रशंसा में उसका कथन है—

'कह्या बंगहित काज, वचन जिके निरवाहिया।
इणसूं भारत आज, अजसै तोसुं इन्दिरा।।
विध विध किया विहाल, यायाखां पापी असुर।
विलसै सुख बंगाल, अब अवलंब तो इन्दरा।।'

५. **गोविन्ददान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९०२ ई०) और जोधपुर राज्यान्तर्गत ग्राम बिराई के निवासी हैं। इनके पिता जसवंतदानजी जब ये केवल नौ महीने के थे, स्वर्गवासी हो गये। कवि-कुल में जन्म लेने के कारण आप काव्य-पाठ में दक्ष हैं। वृद्धावस्था में भी आपको अनेक छंद कंठस्थ हैं। आप समाज-सुधार में विशेष रुचि लेते हैं और अपने क्षेत्र में इतने लोकप्रिय हैं कि सभी जातियों के लोग पारस्परिक झगड़े निपटाने के लिए इनकी सहायता लेते हैं। इन्होंने निर्विरोध रूप से अपनी पंचायत में पंच, उप-सरपंच तथा पंचायत

समिति, बालेसर के सहवृत्त सदस्य के रूप में कार्य किया है । आजकल आप अपने गाँव में ही कृषि-कार्य की देखभाल करते हैं ।

गोविन्ददानजी ने फुटकर रूप से राजस्थानी साहित्य की सेवा की है । शोक-काव्य एवं वर्तमान भ्रष्टाचार को लक्ष्य करके जो दोहे कहे गये हैं, वे उल्लेखनीय हैं । एक उदाहरण देखिये—

'कांम सड़क ऊपर करैं, खास हृदै विच खोट ।
मजदूरी (तो) वांनै (इ) मिळै, (पण) नेता हड़पै नोट ।।'

६. **सीताराम**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९०८ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम नैरवा के निवासी हैं । इनके पिता का नाम हाथीरामजी है । जब इनकी अवस्था ढाई वर्ष की थी तब उनका स्वर्गवास हो गया अत: पालन-पोषण ननिहाल में हुआ । इनके नाना शादूलजी एक प्रसिद्ध विद्वान एवं कवि थे । उन्होंने इन्हें अपने गांव सरवडी (सिवाना) में प्रारम्भिक शिक्षा दी । इसके पश्चात् ये आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए जोधपुर आकर क्रमश: राजमहल मिडिल स्कूल तथा दरबार हाई स्कूल में भर्ती हुए किन्तु विशेष सफलता नहीं मिली । इन्होंने संस्कृत का ज्ञान पं० भगवतीलालजी से प्राप्त किया जिनका ये बहुत आभार मानते हैं । इस समय कबीर पंथी साधु जुढिया गाँव के पनारामजी मोतीसर जो राजस्थानी के उच्च ज्ञाता थे, उनकी देख-रेख में वर्षों तक इन्होंने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया । इस प्रकार संस्कृत, हिंदी एवं राजस्थानी इन तीनों भाषाओं का आपने अध्ययन किया है ।

सीतारामजी कई वर्षों तक माध्यमिक पाठशाला में शिक्षक के रूप में सेवा कर चुके हैं । राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के आप मर्मज्ञ हैं । इसके साथ रजिस्टर्ड वैद्य भी हैं और आयुर्वेद शास्त्र में पर्याप्त रुचि रखते हैं । ये कवि के रूप में नहीं लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं । इन्होंने कई ग्रन्थों का सफलतापूर्वक सम्पादन किया है जिनमें 'विडद सिणगार', 'प्रेमसिंह रूपक', 'रघुवर जस प्रकाश' एवं 'सूरज प्रकाश' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । मौलिक रचना में 'राजस्थानी-व्याकरण' का नाम लिया जा सकता है । इनके जीवन का ध्येय यही है कि किसी तरह 'राजस्थांनी सबद-कोस' का कार्य सम्पूर्ण हो और इस हेतु पावटा (जोधपुर) स्थित कार्यालय में साधना कर रहे हैं । यह कार्य प्रांतीय एवं केन्द्रीय सहायता से चल रहा है । जोधपुर विश्वविद्यालय ने इन्हें

'डाक्टर' की मानद डिग्री प्रदान की है (१६ जनवरी, १६७६ ई०)।

'राजस्थानी सबद-कोस' छः हजार पृष्ठों का एक मूल्यवान ग्रंथ है। इसका प्रथम खंड एक जिल्द में भूमिका सहित ११७५ पृष्ठों का है जो अ से घ तक चलता है। द्वितीय खंड दो जिल्दों में है— पहली में च, ट तथा त वर्ग है और दूसरी में थ, द, ध तथा न वर्ग हैं। तृतीय खड तीन जिल्दों में है— पहली में प और फ, दूसरी में केवल ब तथा तीसरी में भ और प वर्ग हैं। पहली दो जिल्दों पर कर्त्ता के रूप में स्व० उदयराज उज्वल का भी नाम है। चतुर्थ खंड भी तीन जिल्दों में है– पहली में व, दूसरी में स तथा तीसरी में स का अवशिष्ट और ह है। इस कोष में एक शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं जैसे 'गजगाह' के ६ और 'अंब' शब्द के १५ अर्थ हैं। एक उदाहरण देखिये—

'अंब— सं० पु० [सं०] १ शिव, महादेव (ना० डिं० को) [सं० अंबक] २. नेत्र, नयन। [सं० अंबुधि] ३. समुद्र (अ० मा०) [सं० अंबु] ४. जल। उ०–नैण नीरज में अंब बहै रे, गंगा बहि जाती – मीरां ५. चन्द्रमा। [सं० अंबुद] ६. बादल। [सं० आम्र] ७. आम का वृक्ष या उसका फल। उ०–मारगि-मारगि अंब मौरिया, अंबि-अबि कोकिल अलाप।– वेलि [सं० अंबर] ८ आकाश। ६. वस्त्र। सं० स्त्री [सं० अंबा] १० उमा, पार्वती। उ०– अंब हुकम गई अंब अराधण, सुख-सागर दरसायौ हे माय।– गी० रां० ११. दुर्गा। १२. धरती। १३ शक्ति। १४ माता, जननी। उ०– आज कही तो आप जाइ आबूं, अंब जात्र अंबिका तणी।– वेलि० [सं० अंबु] १५ कांति॥'

इतना होते हुए भी कुछ शब्द छूट गये हैं तथा कहीं-कहीं भ्रामक शब्द और शब्दार्थादि दिये गये हैं। राजस्थानी के एक अन्य कोष-कर्ता आचार्य श्री बदरी प्रसाद साकरिया ने 'वैचारिकी' में क्रमशः पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए लिखा है— 'प्रस्तुत राजस्थानी सबद कोस में शब्द, व्युत्पत्ति, अर्थ, व्याख्या, उदाहरण और शब्द के रूप-भेदों आदि को लेकर के जो सहस्रों भूले हैं, उनके सुधार की नितांत आवश्यकता है। परन्तु राम जाने, कब, कैसे और कौन उनका संशोधन करेगा, कहना कठिन है। अनेक स्थल ऐसे हैं जो समीक्षायुक्त संशोधन की अपेक्षा रखते हैं।'

७. **देवकरण**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६०६ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम इंदोकली के निवासी हैं। इनके पिता का नाम जोधदान जी है। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने काका बद्रीदानजी से ग्रहण की।

आप पंच तथा सरपंच भी रह चुके हैं। राजस्थानी के परम्परागत चारण कवियों में इनका नाम आदर के साथ लिया जायगा। साथ ही अर्वाचीन पद्धति की अनेक रचनायें उपलब्ध होती हैं जिनमें बहुत सी प्रकाशित हो चुकी हैं। आप अध्ययन में विशेष रुचि रखते हैं। संस्कृत, राजस्थानी, ब्रज तथा हिन्दी भाषाओं के आप जानकार हैं। तीव्र स्मरण शक्ति होने के कारण आपको प्राचीन इतिहास की बातें तथा गीत असँख्य मात्रा में कंठस्थ हैं। राजस्थान के इतिहास तथा काव्य का प्रामाणिक ज्ञान रखने वाले वर्तमान विद्वानों में आप अग्रणी हैं। इनकी वेशभूषा, रहन-सहन एवं बोलचाल में सादगी तथा ग्रामीण जीवन की झलक मिलती है। इनके विषय में कई प्रतिष्ठित जागीरदारों एवं विद्वानों ने छंद-रचना कर इन्हें सम्मानित किया है। इन पर आकाशवाणी से वार्ता भी प्रसारित हो चुकी है।

देवकरणजी की कृतियों में 'गाँधी शतक', 'फर्जी नेताओं री फजीती', 'रावण-जटायु संवाद', 'वीर माळा', 'देपाळदे री वेल', 'शैतान सुजस', 'बंगला देश विजय', 'साख-प्रीत संवाद', 'सीहण दे चरित', 'पंच प्रबोध', 'मनुष्य चेतावनी', 'लाग बाग लतेड', 'दुर्गा पच्चीसी', 'व्याकरण दोहावली', 'पन्द्रह अगस्त पच्चीसी' आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त फुटकर रचनायें भी बहुत लिखी हैं। 'वोट' किसे नहीं देना चाहिए, इसके लिए कवि का यह कथन देखिये—

'जो जनता रा चोरे नोट, वाने नंहि देवणो वोट।
चुगली झूठा ने गुण चोर, धूंस खाय अपराधी घोर॥
जिकण बिरछ री छाया चावे, उण पर लेर कवाड़ी आवे।
एक खर्च कर मांडे आठ, मन रे नंहि लागोड़ी माठ॥
छमा बनावे छठे छमास, पवित्र पंच राखे नही पास।
झोड़ी, जमा खरच कर झूठा, आंगलियां रा करे अंगूठा॥
गैला चूक गुड़ावे गोट, वाने नहीं देवणो वोट।
अत्याचारी, चोर उघाड़ा, धोले दिवस मांडणा धाड़ा॥
खरा वणे ने हिरदे खोट, वांने नहीं देवणो वोट॥'

८. अर्जुनसिंह— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९१० ई०) और पाली जिलान्तर्गत ग्राम मृगेश्वर के निवासी हैं। इनके पिता रिडमलदानजी राजस्थानी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि रह चुके हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव के निकट

सेवाड़ी कस्बे में हुई और फिर ये राजमहल स्कूल, जोधपुर में पढ़ने लगे। इन्होंने मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की है। आजकल आप कृषि-कार्य में रत हैं। साथ ही आप राजस्थानी में फुटकर काव्य-रचना भी करते हैं। आप ने प्रत्येक रस में कवितायें लिखी हैं जिनमें हास्य-व्यंग्य की कवितायें विशेष लोकप्रिय हैं। यह अत्यंत शोक का विषय है कि इस विवरण के छपते-छपते ही कवि का स्वर्गवास हो गया (२० जनवरी, १९७९ ई०)। प्रसिद्ध डॉ० शिवदत्तजी उज्वल के सेवा-भाव की प्रशंसा में इनकी कविता का यह उदाहरण देखिये—

'केतां बिला कढाविया, केतां बचाया कार,
ओले केतां उबारिया, गंगहरे केई वार।
गंगहरे केई वार घणा खल गाहिया,
सरणायों साधार भुजां ब्रद साहियां।
अवरू किया आसान समवडो उपरा,
खाग त्याग दोहू राह, वेध नागेसरा॥'

९ अक्षयसिंह— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९१० ई०) और मूलत: नागौर जिलान्तर्गत ग्राम जीलिया चारणवास के निवासी हैं। इनके पिता का नाम झूंझारसिंहजी है। माता का स्वर्गवास हो जाने के कारण इनका लालन-पालन अपनी बुआ के यहाँ राजगढ़ (अलवर) में हुआ और वहीं इन्हें प्रारम्भिक शिक्षा दी गई। विघ्न - बाधाओं के कारण इनका अँग्रेजी का अध्ययन तो अधूरा ही रह गया किन्तु अलवर के प्रसिद्ध विद्वान् श्री गिरधारीलालजी भट्ट (तैलिंग) के सानिध्य में पूर्वार्जित हिन्दी एवं संस्कृत ज्ञान का परिष्कार किया और प्राचीन ग्रन्थों का पारायण कर काव्य - विषयक अच्छी व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। तत्कालीन अलवर-नरेश श्री सवाई जयसिंह देव ने जब भारत में सर्व प्रथम हिन्दी देवनागरी को राजभाषा घोषित किया तथा तत्शिक्षणार्थ कर्मचारी-प्रशिक्षणालय की स्थापना की तब इन्हें प्रधानाध्यापक नियुक्त किया गया। एक बार अर्थ-संकट से तंग आकर इन्होंने अलवरेन्द्र को एक दोहा लिख भेजा जिससे इनकी दुगनी पदोन्नति हो गई और ये उनके निजी प्रधान कार्यालय में बुला लिये। जब अलवरेन्द्र के देश-प्रेमपूर्ण क्रियाकलापों से क्रुद्ध होकर अँग्रेज सरकार ने उन्हें निर्वासित कर दिया (१९३३ ई०) तब सर फ्रांसिस वायली नियुक्त हुआ और उसने इनसे गुह्य भेद लेना चाहा किन्तु इन्होंने कुछ भी बताने से इन्कार कर दिया। इससे कुपित होकर एकमात्र इनको ही कमी

में ले लिया गया। यह उल्लेखनीय है कि अखिल भारतीय चारण सम्मेलन, जोधपुर के खुले अधिवेशन में इन्होंने अपने कविता-बद्ध भाषण में तत्कालीन अँग्रेज शासकों की कड़े शब्दों में आलोचना की। इनके १२५ छंदों को सुनकर श्रोताओं ने सर्वसम्मति से इन्हें 'चारण मैथिलीशरण' की उपाधि से समलंकृत किया। इन्होंने कई मन्त्रालयों में मुख्य रीडर, निजी सहायक तथा शाखाधिकारी के रूप में राज्य-सेवा की है। आपने अलवर राज्य के अत्यल्प-संख्यक चारण समाज को संगठित करके श्री करणी चारण छात्रावास की स्थापना की है। राज्यसेवा से अवकाश ग्रहण कर जयपुर में भी इन्होंने श्री करणी चारण छात्रालय का निर्माण कराया है। आजकल आप अक्षय कुटीर, जयपुर में अपना अधिकांश समय अध्ययन एवं लेखन में व्यतीत कर रहे हैं। महाकवि श्री नर-हरिदास रचित 'अवतार चरित' की व्याख्या लिखने में इन दिनों परिश्रम रत है।

अक्षयसिंहजी ने चौदह वर्ष की अवस्था में कविता लिखना आरम्भ कर दिया था। प्रारम्भिक अवस्था में इन्होंने श्री मद्‌भागवत के दशम स्कंध का छंदोबद्ध अनुवाद किया किन्तु न रुचने के कारण फाड़ डाला। इन्होंने 'अक्षय जय स्मृति', 'अक्षय किशोर स्मृति', 'अक्षय रत्न स्मृति', 'अक्षय संदेश,' 'अक्षय तेज नीति समुच्चय,' 'श्री करणी पूजा पद्धति,' तथा 'चित्तौड़ के तीन शाकै' नामक कृतियों की सृष्टि की है जो प्रकाशित हैं। पत्र-पत्रिकाओं में राजस्थानी, ब्रज तथा हिन्दी में फुटकर रचनायें भी बहुत छपी हैं। इन्होंने चीन एवं पाक के साथ संघर्ष में वीर योद्धाओं की जो प्रशस्तियां लिखी हैं, वे बड़ी ही प्रेरणा-स्पद हैं। इसी प्रकार इनकी बसंत वर्णन, वर्षा ऋतु वर्णन, शेखावटी वर्णन आदि बहुत-सो नव सामयिक स्फुट रचनाय आकाशवाणी, जयपुर से प्रसारित होती रहती हैं। राजस्थानी कविता के उदाहरण स्वरूप यहाँ कवि की रचना 'जयपुर री झमाळ' का उपसंहार दिया जाता है। इसमें जयपुर की आद्योपांत वशेषताओं का निरूपण है—

'हिन्द पाक जुध हाल में, कीरत जैपुर कीह।
सिद्ध किद्ध वड़ि सिन्ध में, सुभड़ भवानीसिंह॥
सुभड़ भवानीसिंह, बिमाणां वाहनो।
ऊतारी अविलम्ब, दम्भ रीपु दाहनो॥
महि हजार पंच मील, चरच अर चाचरो।
वीर वाह ले वाह, छीनियो छाछरो॥'

इसी प्रकार प्रकृति-प्रेम-सूचक 'बसंत-वर्णन' की यह प्रस्तावना देखिये—

'अवनी ओपै आज भी, राजा पण ऋतु राज।
पतझड़ डूँडाँ पादपां, छद पौशाकां छाज॥
छद पौशाकां छाज, शिरोपा साजिया।
फूटरमल फळ फूल, भूषणाँ भ्राजिया॥
लता पता लहलही, चहचही चहुँ दिशाँ।
सजी धजी सिणगार, मह धणी इण मिसां॥'

१०. अजयकरण— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९१० ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम चौपासनी के निवासी हैं। इनके पिता का नाम जवारदानजी है। इनके पास कई हस्तलिखित ग्रंथ तथा बहियाँ है। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी है, यथा—

'नौमी वेरो नीवलो, करसण पावणा काज।
चावां मरुधर चौधरी, गैना नै गजराज॥'

११. लालसिंह— ये दधवाडिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९११ ई०) और उदयपुर जिलान्तर्गत ग्राम धारता के निवासी हैं। इनके पिता का नाम आवड़दानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता की देख-रेख में हुई। विद्याध्ययन के पश्चात् इन्होंने मेवाड़ राज्य में नौकरी कर ली (१९३१ ई०) तथा कई वर्षों तक निरीक्षक के पद पर कार्य किया। इन्हें महाराणा भूपालसिंह जी (उदयपुर) के राज्य-दरबार में मान-सम्मान प्राप्त था (१९३९ ई०)। आपने सहायक वन-अधिकारी के पद से अवकाश ग्रहण किया है। संघर्ष ही उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है और यही बात इनके जीवन में पाई जाती है। दुर्भाग्य से १९ वर्ष की आयु में ही इन्हें जागीर सम्बंधी मुकदमों ने घेर लिया जो अब तक चल रहे हैं। ईश्वर में अटूट आस्था रखते हुए ये साहसपूर्वक उनका सामना कर रहे हैं।

लालसिंहजी ने जटिल परिस्थितियों से जूंझते हुए काव्य-रचना की है। इनकी पाँच पद्य-रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं—'भक्तिशतक', 'जन्माष्टमी', 'करुण कहानी', 'जय जवान, जय किसान' तथा 'बिलखता बाँगला।' अप्रकाशित रचनाओं में 'प्रताप पच्चीसी', 'लाल दोहावली', 'वनिता विनोद', 'दोहावली गीता', 'बापू बत्तीसी', 'विरद बत्तीसी', 'शराब और शराबी', 'रावण शिर

सॅवाद', 'कुतांरी करतूत', 'प्यारा राजस्थान' तथा 'बटोही राम' के नाम लिये जा सकते हैं। इसी प्रकार गद्य-रचनाओं में 'भारतीयों का धन' तथा 'अजमायश सुदा अकसीर नुस्के' नामक दो कृतियां प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर रचनायें भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार इनके काव्य में प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों प्रकार की रचनायें पाई जाती हैं। यहाँ 'जय जवान, जय किसान' का एक उदाहरण देखिये—

'देखूं इन अखियान तें, सहविधि सम्पन्न देश।
जय जवान किसान लिखो, यही एक उद्देश।।
हल धर बल धर वीर दुहुँ, करत परस्पर बात।
लालसिंह वाको लिखी, काव्य कला के साथ।।
इक कृषि कर पौषण करे, इक रक्षा रण धीर।
दोहु सहायक देश रा, बलधर-हलधर बीर।।
इक अरपण जिय जान तें, इक पैदा कर धान।
सच्चा सेवक देश रा, जय जवान जय किसान।।'

वीर जवान का यह मनोबल देखिये, कितना ऊँचा है ? —

'तुपक तोप अरु टॅंक तक, गाड़ी बखतर बन्द।
तोड़ूं इनको तनिक में, नहि छोड़ूं रिपु वृन्द।।
सनमुख सेना शत्रुरी, तोपां री घरड़ाट।
सैनिक ठाड़ो ठाट सूं, रोके रण री वाट।।
फोड़ूं पैटन टॅंक को, तोड़ूं यन्त्र रडार।
अरियां रा दल ऊपरे, उछल पड़ूं अबार।।
जल थल वायू सैन में, बोले जहां विचार।
हर वेलां तैयार हूँ, लडवाने ललकार।।
शैल धमोड़ा मैं सहूँ, तुमक तीर तलवार।
मात्र धरा रे कारणे, सब सहवा तैयार।।
तुपक तेग तोपां चले, गोली जाण गिलोल।
शत्रुन के सनमुख तवे, खोलू सीनो खोल।।'

१२. **बद्रीदान**—ये आढा शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९११ ई०) और सिरोही जिलान्तर्गत ग्राम भांखर के निवासी हैं। इनके पिता का नाम शम्भुदानजी है।

इनकी सामान्य शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। इन्होंने बीस वर्ष की अवस्था में भगवद् प्रेरणा से कविता लिखना आरम्भ की। ये दोहा-सोरठा, छप्पय तथा गीत रचना में सिद्धहस्त हैं। देवी-भक्ति की चिरजायें लिखने में इन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इस भक्त कवि का साहित्य अप्रकाशित है। यहाँ इनकी भक्ति-रचना का एक गीत दिया जाता है—

'सुरों राय नवें लाख साथ लिधो सगत्त, ध्वजा त्रीशूल ले वार धाई।
भीड पृथ्वीराज की मंजवा भवोनी, आगरे सुधारियों काम आई।।
पकडीयों राव मुगल तणो पातस्या, जादवों करी फरियाद जरणी।
जैल तुरखों तणी तोड भट जोगणी, कुशलती लाविया आप करनी।।
सेवगों सुधारिया कोंम केता सगत अनेकों परवाड़ों जीत आई।
बदरिये कहें संभाल थूं बीरद ने मौहाला गुना मत भाळ माई।।
भवोनी बालका आपरै भरौसे चालका करीजे स्याय साची।
ईश्वरी अरज आढो करे आपने विश्वरी भुजायत आप वाची।।'

१३. **शुभकरण**—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९१३ ई०) और पाली जिलान्तर्गत ग्राम बासनी के निवासी हैं। इनके पिता का नाम बद्रीदानजी है जिनका परिचय वयोवृद्धतम कवि के रूप में सर्वप्रथम दिया जा चुका है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा चांवडिया गाँव में हुई। फिर इन्होंने चारण छात्रावास, जोधपुर में रहकर बी० ए० उत्तीर्ण किया और तत्पश्चात् हिंदू विश्वविद्यालय, काशी में विद्याध्ययन के लिए गये। एम० ए०, एल० एल० बी० की उपाधि लेकर इन्होंने राज्य-सेवा स्वीकार कर ली। भू० पू० मारवाड़ राज्य एवं आज के राजस्थान में उच्च पदाधिकारी के रूप में आपकी प्रशंसनीय सेवायें रही हैं। आप हाकिम के पद को सुशोभित कर चुके हैं। अब सेवा-निवृत्त होकर जयपुर में वकालत रत हैं। इन्होंने 'चारण पत्रिका' का भी सम्पादन किया है।

शुभकरणजी राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के सेवक और लेखक हैं। इसके संवर्द्धन में सदैव इनका हाथ रहा है। आपने विद्यार्थी-काल में 'चारण काव्य' पर एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखा था जिसकी प्रशंसा हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक स्व० आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने की थी। इन्होंने राजस्थानी में स्फुट काव्य-रचना की है। गर्मियों में किसी मित्र ने कहा—चलो, कश्मीर चलें। इस पर कवि ने उत्तर दिया—

'अठे निकट आडोवळो शीतल वहै समीर।
झरना ज्युं टांपा झरैं क्युं जावों कश्मीर।।'

इनकी प्रशंसात्मक कविता का एक उदाहरण देखिये—

'आज कालरा अधिपती, रिळिया पच्छिम रंग।
आरज ध्रम अनुरत्त ओ, गुण सागर नृप गंग।
ध्रम चर्चा चित्त नह धरे, शास्त्र न कोई सतसंग।
(पण) इष्ट बली ध्रम आस्तिक, गुण सागर नृप गंग।।
उणी समे इज ईहगों थाप्यो देव सथान।
पधरावी करनी प्रतिम, पुष्कर मध्य प्रमान।।
सुधरायो मन्दिर सुविज्ञ. नरपत बीकानेर।
धिन धिन धिन ध्रम धारणा. दिल घण ऊँच दिलेर।।'

१४. प्रभुदानसिंह— ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९१९ ई०) और जयपुर जिलान्तर्गत ग्राम किशनपुरा के निवासी हैं। आपके पिता का नाम शेषदानसिंहजी है। आपने जोबनेर से मैट्रिक उत्तीर्णकर (१९३९ ई०) सतत् राज्य-सेवा की और गत वर्ष इससे निवृत्त हुए हैं (१९७४ ई०)। ये विद्यार्थी-काल से ही कवितायें लिखते आये हैं। इनकी रचनायें भक्ति काव्य के अन्तर्गत आती हैं जिनमें 'श्री दुर्गा शप्तशती' तथा 'श्री मद्भागवत गीता' का अनुवाद, 'श्री करणीजी का जीवन-चरित्र महाप्रयाण तक,' 'श्री जगदम्बा की प्रार्थनायें,' 'भगवत भजन व स्तुति' आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त फुटकर छंद भी अनेक हैं। 'करणी-चरित्र' का यह उदाहरण देखिये—

'सर्व रूप त्रय लोकमय, वंदौ पुरुष विराट् छवि।
करणी कीरति कथत 'प्रभु' क्षमहु भूल सब संत कवि।।
करणी करुणाधाम ग्राम देशाण विराजै।
लाल ध्वजा यश विमल मूर्ती छवि अनुपम छाजै।।
शेखा हित बन सेन आप मुल्तान सिधाई।
लाई बंधु छुड़ाय कीर्ति जग अवलों छाई।।
भक्त काज सारे सकळ, विरद विचारो करनला।
'प्रभु' चारण चितवत् सभी देशनोक दुर्गे कला।।'

१५. उजीणसिंह— ये सामौर शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२० ई०) और

चूरू जिलान्तर्गत ग्राम बोबासर के निवासी हैं। इनके पिता का नाम चतुरदानजी है जो राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि रह चुके हैं। शिक्षा-दीक्षा सामान्य होने पर भी कवि-कुल में जन्म लेने के कारण इन्हें साहित्यिक परम्परा विरासत में प्राप्त हुई है। अपने क्षेत्र के विकास-कार्यों में विशेष अभिरुचि लेते हैं। आप ग्राम विकास समिति के संस्थापक सदस्य हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है किन्तु इसके साथ-साथ साहित्य-सेवा भी करते रहते हैं। बांगला देस मुक्ति संग्राम से सम्बंधित इनकी रचना 'विजय-सतक' बहुत लोकप्रिय हुई। इसके अतिरिक्त स्फुट रचनायें प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। इन रचनाओं के प्रस्तुतीकरण की इनकी अपनी मौलिक विशेषता है। उदाहरण के लिए 'विजय-सतक' का यह अंश देखिये--

'लेवण नै कसमीर नूं, घणा बजातो गाल।
को याह्या किरड़ी हुई, खो बैठो बंगाल ॥
निरहत्था लाखां मिनख, मूंगी तूं खायाह।
काकी जायां सूं भिड़्या, होवै आ आयाह ॥
निकसन तो कर बापरो, जग सारै जाणीह।
मिनख घणो अळगो करयो, ताना साह ताणीह ॥
राज विभीषण नै दियो, जियां राम जग तेस।
जण बळ नै भारत दियो, बियां बांगला देस ॥
माणक उरमाती मरद, जबरोड़ा जग जीत।
भुजबळ थारै भारती, गाया जस रा गीत ॥'

अकाल के संदर्भ में कवि का निर्दारात्मक स्वर भी देखिये—

'कुरसल री इण देस में, अब न रही ओगाळ।
आज अनिरछर आंपरत, पगां चालता काळ ॥'

इसी प्रकार चाँद पर चढ़ने वालों की भर्त्सना करते हुए भी कवि का मानवतावादी स्वर ही मुखरित हुआ है—

'कारक घणो सिकुरयो मिनख, इण धरती रो आज।
बिरक चांद पर चढ़णियां, लोग न थांनै लाज ॥'

१६. **नारायणसिंह**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२० ई०) और पाली जिलान्तर्गत ग्राम मोख के निवासी हैं। इनके पिता का नाम

सुमेरदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा जोधपुर में हुई जहाँ से मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करके आप अध्यापक हो गये। आगे अध्यापन कार्य के साथ-साथ अध्ययन भी करते गये और इस प्रकार एम० ए० हिन्दी तथा बी० एड० की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। ये धुन के पक्के हैं और जो काम हाथ में लेते हैं उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। आपका जीवन ग्रामीण क्षेत्रों में ही व्यतीत हुआ है। सम्प्रति राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, निम्बेड़ा कला में मुख्य अध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

नारायणसिंहजी बाल्यावस्था से ही राजस्थानी काव्य-क्षेत्र में रुचि लेते रहे हैं। इन्होंने अपने गेय गीतों के दो संकलन प्रकाशित कराये हैं—'मीठे बाल गीत' (१९६१ ई०) तथा 'प्रेरणा के गीत' (१९५७ ई०)। इनका वर्ण्य विषय राजस्थान की धरती और यहाँ का शौर्य है। इनके अतिरिक्त फुटकर रचनायें लिखने में भी पीछे नहीं रहते। यहाँ 'धरती कासमीर री' का एक उदाहरण देखिये—

'अम्बर गरजे धर हिले, सुण भारत रा वीर।
शीश भलां ही देवजे मत दीजे कशमीर॥
इण धरती री म्हांने अभिमान ओ इंपर वारों प्राण ओ—
धरती काशमीर री॥
हँसतोड़ा फुलड़ों री घाटी महके केसर क्यारियां।
ज्यारी शोभा देख लजावे अमरापुर री नारीयां
रसवन्ती धरती में निपजे दाख बिदान ओ धरती....
इण धरती में हड़पण सारु दुस्मण घणा लपके है।
अंगुरी खेतों रे सारु मूंडे पाणी टपके है।
पण आंगल आंगल धरती सारु जासी जान ओ धरती....
इमरत सर जोबोले जम्मू दुस्मन गोला नांखिया।
सरगो धो लाहौर लेतो भुट्टो गोडा टेकिया॥
कसमीरी धरती सूं पापी पड़िया डाण ओ धरती....
चौबिसी छबेजी शापता दुस्वे वे ने दौड़िया।
टैंक ने बन्दूक गोला डरता लारे छोड़िया॥
पूछड़ी दबाय कायर कियो पयाण ओ धरती....
हाजी पीर हेलो दीन्हो अयूब अठी मत आवजे।

टुट्टी नाई भले नचड़ो भारत सू नत सावजे ॥
काश्मीर खोदेला यारो कब्रिस्तान श्रो धरती....।'

१७. जोरावरसिंह— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२१ ई०) और पाली जिलान्तर्गत ग्राम नूगेश्वर के निवासी हैं। इनके पिता का नाम नाथूदान जी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मिडिल स्कूल, सेवाड़ी में हुई फिर आपने मैट्रिक, इन्टर उदयपुर से और बी० ए० जसवंत कॉलेज से उत्तीर्ण की (१९४४ ई०)। विद्याध्ययन के पश्चात् ये जोधपुर राज्य-सेवा में तहसीलदार पद पर नियुक्त हुए। फिर तो शनैः शनैः उन्नति करते गये तथा राजस्थान-प्रशासनिक-सेवा में आकर (१९५० ई०) अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को सुशोभित किया। अभी आप 'राजस्व अपील अधिकारी' के पद से सेवा-मुक्त हुए हैं।

जोरावरसिंहजी उदयपुर में शिक्षा ग्रहण करते समय कवितायें लिखने लगे। इन्होंने कविता प्रतियोगिताओं में भाग लिया तथा प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त किया (१९३८-'३९ ई०)। डा० केसरीसिंहजी बारहठ (सौन्थाणा) को आप अपना गुरु मानते हैं और इन्हीं से कविता लिखने की प्रेरणा मिली। समाज-सुधार की महत्त्वाकांक्षा से आपने कवितायें लिखी हैं। कवि ने राष्ट्रपिता गाँधी का यशोगान इन शब्दों में किया है—

'ध्रुव से अटल अरु सलिल से नम्र संत,
बीर, बीर ! पीर पर अजय है तेरे काज।
दीनन तें दीन बनि सेवा करि जग की तूं,
सेवाग्राम संत बन्यो उर को सम्राट आज।
अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र साज हटा नग्न होय पूज्य,
मिटाने लंगोटी कसी विश्व की नग्नता आज ॥'

१८. फतहसिंह मानव — ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२१ ई०) और पाली जिलान्तर्गत ग्राम वासनी के निवासी हैं। इनके पिता का नाम ठा० ठाकुरदानजी है जिनका इनके बाल्यकाल में ही स्वर्गवास हो गया। इनकी शिक्षा-दीक्षा दरबार हाई स्कूल, जोधपुर, हरबर्ट कॉलेज, कोटा तथा जसवंत कॉलेज, जोधपुर में हुई। आप बी० ए० करने के बाद जोधपुर राज्य-सेवा में लग गये और संयुक्त राजस्थान बनने पर राजस्थान-प्रशासनिक-सेवा के लिए चुन लिये गये (१९५० ई०)। राज्य-सेवा में रहकर आपने कई महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया

है। इन्हें भारत सरकार ने अणुशक्ति विभाग के 'राजस्थान एटेमिक पावर प्रोजेक्ट' में मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के रूप में नियुक्त किया (१९७१ ई०)। जनगणना में आपकी सराहनीय सेवा के उपलक्ष्य में भारत सरकार ने रजत पदक तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया (१९७१ ई०)।

फतहसिंहजी विद्यार्थी-जीवन से ही साहित्य-साधना और आराधना करते आये हैं। इन्टर में तीन-सौ पृष्ठों का एक उपन्यास लिखा और बाद में कहानियाँ, गद्य-काव्य एवं लेख इत्यादि लिखे जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। आपकी रचनायें आकाशवाणी, जयपुर से भी प्रसारित हुई हैं। उल्लेखनीय है कि इन्होंने उत्कृष्ट कोटि के हिन्दी गद्य-काव्य लिखे हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' का यह उदाहरण निरर्थक न होगा—

'समुद्र सरोवर, तड़ाग सभी मेरे सन्मुख आये, पानी भी देखा और उसका प्रवाह भी,
उसके अन्तर में छिपे अनमोल मुक्ताओं की भी कल्पना की।
उनको भी देखा जो गहन जल के अन्तर्पटों में डुबकी लगा रहे थे,
अथवा जल के अन्दर पैठने का उपक्रम कर रहे थे।
मैंने उन सभी को देखा, देखकर उनकी वन्दना की और अनुगमन का साहस
किया लेकिन जल-समूह की अगाधता को देखकर घबरा गया,
जल-राशि में थोड़ा-सा आगे बढ़ा ही था कि सहसा पाँव ठिठक गये,
मैं डरा कि कहीं जल-मग्न न हो जाऊँ इसीलिये शीतल जल-राशि में पाँव तक
न बढ़ा सका।
मेरे सन्मुख ही अनेकानेक साहसी पुरुष आये, डुबकी लगाई और मुक्ताओं से
अंजुलिया भरकर कृत-कृत्य होकर चले गये।
लेकिन मेरी अंजुलि अभी तक खाली है, वक्षस्थल में साहस का अभाव है,
चरण द्वय ठिठके हुए खड़े हैं और भयांत होकर कम्पित हो रहे हैं।
क्या जीवन की अन्तिम श्वास तक मैं इसी प्रकार किनारे पर खड़ा ही रहूँगा और
मुझे कुछ भी नहीं मिल सकेगा ?
यद्यपि मैंने सागर, सरोवर और तड़ाग सभी देखे॥'

१९. अनोपदान— ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२१ ई०) और बाड़मेर जिलान्तर्गत ग्राम भिणकली के निवासी हैं। इनके पिता का नाम कवि हेमराजजी है। इन्होंने मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की है। बाल्यावस्था से ही इन्हें

अपनी मातृभाषा से विशेष अनुराग रहा है। जब आप चौदह वर्ष की आयु के थे तब शरीर में पीड़ा रहती थी। अत. आपने चारण-देवी सिलां माजी के स्थान पर धरना दिया जिससे पीड़ा का अंत हुआ और कविता करने का भी अनुभव हो गया (१९३७ ई०)। आप कई वर्षों से अपने क्षेत्र में पंच, उप-सरपंच एवं सरपंच के प्रतिष्ठित पदों पर निर्विरोध चुने गये हैं। इससे इनकी लोकप्रियता प्रकट होती है। आजकल आप शिव पंचायत समिति में वित्तकर एवं करारोपण के निर्विरोध सदस्य हैं। व्यावसायिक दृष्टि से आप पशु-पालन एवं खेती करते हैं।

अनोपदानजी राजस्थानी के प्रसिद्ध भक्त कवि हैं। इन्होंने 'देवी सीलां माजी की स्तुति,' 'उम्मेद उदारता', 'हरि रस का रस', 'भारत भुगतारियो का वर्णन', 'चार वाक् चोको', 'टिडी रासा', 'चारणों का विरद वाखोण' आदि रचनायें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त फुटकर छंद भी बहुत हैं। कतिपय रचनायें प्रशंसात्मक हैं किन्तु भक्ति की रचनायें उत्तम हैं। 'हरि रस का रस' में कवि ने हिंदी वर्णमाला को लेकर गीत सांणोर के रूप में जो भाव-सुमन पिरोये हैं, वे अपूर्व हैं। इसी प्रकार 'चार वाक् चोको' में वह कहता है—ईश्वर एक है और वैदिक, जैन, ईसाई, इस्लामी चार मत के चार वाक् ईश्वर को इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—

दोहा— 'अलख निरंजन एक है, गरु अनेकां ज्ञान।
पंथ असंखां प्रापती कर देखो कल्याण॥'

छंद रेणकी— 'वेदक वरणंत ओम हरि ईश्वर जोगेसर धर ध्यांन जपै।
हरहर महादेव विसंभर हरिहर करकर सुमिरन पाप कपै॥
पूरण परिब्रह्म परमेसर प्राप्त अजर अमर आतम उजला।
मांनत गति मुगत जगत अत मत मत कुदरत पत सत अनत कळा॥
अरिहंत हित अनत जैन मत उचरत तुरत सुरत कर सुमत निरणै।
उपजत अंतः करण अहिंसा उत्पुत भगवंत अणिहंत भगत भणै॥
तृष्णा चित्त त्रिपत तरत व्रत तपस्या प्राप्त केवल ज्ञांन पला।
मानल गत मुगत जगत अत मत मत कुदरत पत सत अनत कळा॥
ओमनीपोटेण्ट रटन ईसाई माइ लॉरड ऑलमाइटी।
ओमनीप्रोजेन्ट सेंट फिस ओमनी इटरनल गॉड इटर नंटी॥

क्रियेटर यो बा क्रियेचर दू क्रिचन सालवेसन वी आफ सलाह ।
मानत गत मुगत जगत अत मत मत कुदरत पत सत अनत कळा ।।
अल्लाह आवाज मजब इसलामी ला हे ला अल्लाहईलील्लाह ।
म्होला मालक रब बिसमल्लाह सिल्लिाह सालम सिलसिल्लाह ।।
खुल्ला दीदार अवलीया दाखल किबला काबल जिन्नत कळा ।
मानत गत मुगत जगत अत मत मत कुदरत पत सत अनत कळा ।।
कुदरत पत सत अखंड कळा ।।'

२०. **कैलाशदान**— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२२ ई०) और जैसलमेर जिलान्तर्गत ग्राम ऊजलां के निवासी हैं। इनके पिता का नाम डॉ० शिवदत्तजी है जिन्होंने चिकित्सा के क्षेत्र में कीर्ति अर्जित की है। इनकी शिक्षा के तीन प्रमुख केन्द्र हैं—जोधपुर, जयपुर और लखनऊ। इन्होंने एम० एस सी की उच्च उपाधि गणित विषय में प्राप्त की और साथ में एल-एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण की है। विद्याध्ययन के पश्चात् आप जोधपुर राज्य में नायब हाकिम के पद पर नियुक्त हुए (१९४४ ई०) फिर हाकिम बने। राजस्थान बनने पर आपने अनेक उच्च उत्तरदायित्वपूर्ण पदों को सुशोभित किया है। अपनी योग्यताओं के कारण ये शनैः शनैः उन्नति करते गये। सन् १९५७ ई० में आप संघीय लोकसेवा आयोग द्वारा भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए चुने गये। यह उल्लेखनीय है कि सन् १९७१-'७२ ई० में भारत द्वारा जीते गये पाकिस्तानी क्षेत्र के जब आप आयुक्त थे तब छाछरो एवं बीजणोट के किले पर तिरंगा फहराने का श्रेय इनको ही है। सम्प्रति मरु-विकास आयुक्त के पद पर जोधपुर में सेवारत हैं।

कैलाशदानजी प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। आपकी राजस्थानी, हिन्दी एवं अँग्रेजी में कई वार्तायें आकाशवाणी, जयपुर केन्द्र से प्रसारित होती रहती हैं। राजस्थानी भाषा तथा साहित्य से आपका विशेष अनुराग है। राजस्थली कार्यक्रम को सफल बनाने में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इन्होंने 'भगवती श्री करणीजी महाराज' के दिव्य चरित को उजागर करने हेतु अँग्रेजी में एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है जो शोधकर्त्ताओं के लिए अत्यंत उपयोगी है। इसका हिन्दी अनुवाद भी तैयार है। इनका लिखा हुआ स्फुट काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। 'मोहन माथे म्होने मोद' कविता में कवि राष्ट्र-पिता गाँधी पर न्यौछावर होता हुआ कहता है—

'हेमालो निरखै हरखायो, गद-गद गँग धार निज गोद ।
भल-भल करे आज धर भारत, मोहन माथे मन तन मोद ॥
अबखी वगत सदा आगेइ, टणकों खग पौण रूखाली टेक ।
विन खागौं राखणियो बाजी, ओ युग पुरुष जनमियो एक ॥
साच, धर्म रो झाल सहारौ, लीना दुर्गम मारग लांघ ।
नेह नींव री भींत निकालै, वैर प्रवाह लियो इण बांध ॥
साम दाम अरु दंड भेद सह शस्त्र उचित अरियण संहार ।
तेज अहिंसा शस्त्र तोल इण, प्रबल झेलिया लोह प्रहार ॥
ओछी वात न रसणा आणी, माणी कीरत जोत महान ।
प्रतिमा आज आंकने प्रथमी, मौन्यो गांधी पुरुष महान ॥'

२१. राजलक्ष्मी देवी साधना— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुई हैं (१९२३ ई०) और माणिक भवन कोटा इनका जन्म-स्थान है। इनके पिता का नाम रणजीतसिंहजी है जो स्वतंत्रता सँग्राम के प्रमुख सेनानी देशभक्त ठा० केसरीसिंहजी के सुपुत्र हैं। इनकी शिक्षा-दीक्षा पितामह के संरक्षण में कोटा गर्ल्स हाईस्कूल में हुई। आरम्भ से ही इनकी रुचि काव्य की ओर रही है। आपका पाणिग्रहण श्री फतहसिंह मानव के साथ हुआ (१९३७ ई०)।

श्रीमती राजलक्ष्मी की साहित्यिक साधना गद्य और पद्य दोनों में ही आरम्भ हुई। तत्कालीन प्रमुख पत्रों में आपकी कहानियाँ, गद्य-काव्य एवं कवितायें प्रकाशित होती थीं। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनों में आपको निमंत्रित किया जाता रहा किंतु आंतरिक संकोचवश इन्होंने ऐसे समारोहों का त्याग किया। आकाशवाणी, जयपुर से आपकी कई कवितायें, वार्तायें एवं लेख इत्यादि प्रसारित किये गये हैं। इन्होंने डिंगल, पिंगल, गुजराती और हिन्दी में काव्य-रचना की है। मुख्यतया देश-भक्ति, आत्म-चिंतन तथा ईश्वर-भक्ति ही इनके विषय रहे हैं। भाव-सौंदर्य की दृष्टि से इनकी तुलना हिंदी की यशस्वी कवयित्री स्व० सुभद्राकुमारी चौहान से की जा सकती है। हजारों की संख्या में की गई इनकी कविता सभी प्रकार के छंदों, दोहों, सवैयों, कवित्तों, पदों, चतुष्पदों आदि से परिवेष्टित हैं। सरलता, सत्यता, कर्मठता एवं विवेकशीलता आपके स्वाभाविक गुण हैं। प्रकाशन की ओर कम रुचि होने के कारण आपने अपने काव्य-संकलन प्रकाशित नहीं कराये।

सन् १९४७ ई० में 'आह्वान' लघुकाव्य अवश्य प्रकाशित हुआ। आपके लिखने की क्षमता आश्चर्यजनक है। आपने एक पुस्तक एक दिन में ही सम्पूर्ण कर दी। साधनाजी अपने इसी जीवन में परम सत्य को प्राप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं तथा निरन्तर जागरूक हैं। राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—'श्री साधना उस वंश की बेटी है जो अपनी वाणी से वीरों में साहस और उत्साह भरकर समर में भी उन्हें अमरता प्रदान करने का कार्य पीढ़ियों से करता आया है। उनके बड़ों ने इससे भी बढ़कर देश की स्वतंत्रता के लिए स्वयं अपना बलिदान किया है। मेरा संकेत स्वर्गीय बारहठ केसरीसिंहजी की ओर है जिनकी पौत्री होने का गौरव साधनाजी को प्राप्त है। उन्हें और उनकी बहनों को पुरखों का कवित्त भी उत्तराधिकार रूप में प्राप्त हुआ है। यह हर्ष और संतोष की बात है। उन्होंने राजस्थान की सीमा से बढ़कर राष्ट्र की भाषा में रचनायें की हैं। यह और भी प्रसन्नता की बात है। उन रचनाओं में भी परम्परागत स्वर गूँजता है। उनके संस्कारों ने उनकी वाणी को ओज दिया है और स्वयं उन्होंने उसे करुण कोमल भावना दी है। मुझे आशा है, हिंदी प्रेमी उसका आदर करेंगे और उनके कृतज्ञ होंगे। तथास्तु।'

'अमर शहीद प्रताप' के विषय में कवयित्री के ये वास्तविक, अनुभूतिमय, संवेदनशील एवं हृदयस्पर्शी उद्गार देखिये—

'केहरी हो बंदी जेलां में परिवार लियां मां पीहर ही।
घरवार छुटचो परिवार लुटचो, सब बिखर गया कण-कण रे ज्यूं॥
लाखां री पूंजी रा मालिक रोटी बिन दुखड़ों पाता हा।
भारत मां रो करुणा क्रन्दन, सह सक्यो वीर नहीं उठ बोल्यो॥
ममा धोती रे खातीर बस, दो रुपिया किण सूं लाकर दो।
जो कई वार कर दान लुटा, देती ही माणिक जेवरात॥
पण आज पईसा रे खातिर, फैलावे किण रे द्वार हाय।
ला दिया रुपया लेकर चाल्यो, वो पुत्र प्राण सूं हो प्यारो॥
उण दिन सूं फिर मिल न सक्यो, मारे आंखडल्यां रो तारो।
नेणां में रंग गुलाबी ले, मां रो मतवाळो चाल्यो हो॥
धरती री छाती धूजी ही, अंबर भी थरहर हाल्यो हो।
वासग री करवट बदली ही, समंदा रो पाणी हाल्यो हो॥

नदियां रे नीर तीर छांड्या, वादळ पथरा, नीचे पड़िया।
हेमाळे रो हिम दिघल वह्यो, सूरत सीतल वै चाल्यो हो।।
मरदां रे भूखे दिल मांहि, जद रंग वीरता रा चढिया।।'

२२. **रेवतदान कल्पित**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२४ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम मथाणिया के निवासी हैं। इनके पिता का नाम भेरूदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। बचपन से ही इनकी काव्य के प्रति रुचि रही। आगे जोधपुर आकर इन्होंने मिडिल तथा मैट्रिक की परीक्षायें उत्तीर्ण की और यहीं से बी० ए० तथा एल०-एल० बी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आपने हिन्दी की 'प्रभाकर' परीक्षा भी उत्तीर्ण की है। स्वजातीय बंधुओं के बीच चारण छात्रावास, जोधपुर में रहने से इनका काव्य-प्रेम परिवर्द्धित हुआ एवं चारण' पत्रिका के माध्यम से ये 'ऊगता कवि रेवत मथाणिया' के नाम से प्रसिद्ध हुए। काव्य-जगत् में कल्पना करते रहने से इन्हें 'कल्पित' नाम विशेष प्रिय है। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में भाग लेते रहने से इन्हें पुरस्कार भी मिले हैं। कॉलेज-जीवन में इनके काव्य में नया मोड़ आया। शिक्षा के उत्तरोत्तर विकास के साथ इनके हृदय में समाजवादी विचार विकसित होते गये। यही कारण है कि रेलवे आडिट की नौकरी से त्याग-पत्र देकर आप प्रजा समाजवादी दल में कार्य करने लगे और विधान-सभा के चुनाव में ओसियां क्षेत्र से खड़े हुए। आपने राजस्व प्रतिनिधि तथा पंच के रूप में भी जन-सेवा की है। आप राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंड की समिति के सदस्य तथा प्रजासमाजवादी दल की प्रांतीय समिति के सँयुक्त मंत्री भी रह चुके हैं। आजकल आप मथाणिया में कृषि के साथ वकालत करते हैं और कवि-सम्मेलनों में भाग लेते हुए काव्य-सृजन भी करते हैं। इन दिनों साहित्य-जगत् के साथ राजनैतिक क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हैं।

रेवतदानजी समाजवादी कवि हैं। राजस्थान के लोकप्रिय जन-कवियों एवं स्पष्टवक्ताओं में इनका नाम आदर से लिया जाता है। इनके काव्य में सामंतशाही विरोधी विचार विशेष रूप से प्रकट हुए हैं तथा विद्रोह का स्वर मुखर है। यद्यपि इनकी प्रारम्भिक रचनायें भक्ति-भावना, प्रकृति-चित्रण एवं प्रेम-वर्णन से ओतप्रोत है तथापि अब इनके काव्य में प्रमुख रूप से कृपक एव मजदूर के चित्र उभर कर सामने आये हैं। इनकी चुनी हुई कविताओं के सँग्रह

'चेत मांनखा', 'धरती रा गीत', 'ओळबौ' आदि के नाम से प्रकाशित हुए हैं। 'रे बंदा चेत मांनखा चेत, जंमानौ चेतण रौ आयौ' का मूलमंत्र देकर कवि ने नव जागरण में योग दिया है। अनेक कविताओं में देश-भक्ति एवं प्रदेश-गौरव-प्रेम की भावना अभिव्यक्त हुई है, यथा —

'औ भारत रौ सिरमौड़ देस है बंका वीरां रौ।'
'रे सेर बाजरी रै साटै माथै जिसा मतीरा दीना।'
'मायड़ निज वीर सपूतां नै मिस दूध दूधियौ पायौ हो।'
'जे मातृभूमि रौ मुगट हेमाळौ खण्डित हुयग्यौ,
तो इण धरती नै लोर निपूती कैवैला।
रे लाज मरैला ऊँचौ सीस झुकैला नीचौ,
मौते हँसैला कायरता नै माटी मोसा देवैला।।'

इसी प्रकार—'जद इण धरती री लाज परायै हाथां लुटगी।
तौ मां बैनां री लाज बचायां कांई होसी।।
जे तैर्नासह री धजा तिरंगी हेमाळै सूं नीची पड़गी।
तौ लाल किलै में आजादी त्यौंहार मनायां कांई होसी।।'

गद्य के क्षेत्र में इनका 'कृष्णाकुमारी' नाटक तथा एक एकांकी सँग्रह उल्लेख्य कृतियां है जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। इसके अतिरिक्त स्फुट रचनायें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

२३. **अमरसिंह**— ये देपावत शाखा में उत्पन्न हुए हैं और इनका जन्म-स्थान बीकानेर राज्यान्तर्गत माता करनीजी का निवास-स्थान देशनोक है। आपके माता-पिता बाल्यकाल ही में चल बसे अत: इनका लालन-पालन नानी के द्वारा हुआ। ये निर्भीक, स्पष्टवक्ता, समाज सेवी तथा अपने आप में बहुत गहरे थे। देशनोक में आपका सम्मान एवं प्रेम बहुत अधिक था। अपनी जन्म-भूमि के सामाजिक सुधार एवं विकास की ओर आपकी पूर्ण रुचि थी। आपने बिहार राज्य में पूर्णिया जिले में अपने एक साथी के साथ जूट का व्यापार शुरू किया था। वहाँ भी जन-मानस पर इनके चरित्र की छाप थी। आपका विवाह श्रीमती नगेन्द्र बाला, कोटा के साथ फरवरी १९४७ ई० में हुआ।

अमरसिंहजी राजस्थानी के उच्च कोटि के कवि थे। आपने उमर खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद राजस्थानी में बड़ी खूबी से किया। महाकवि

कालिदास कृत 'मेघदूत' का राजस्थानी में अनुवाद कर प्रकाशन करवाया तथा 'श्रेणी बीजनन्द' नामक राजस्थानी लोक-गाथा को बड़े ही अनूठे ढंग से चित्रित किया। आपको मथैपुरा में अचानक दिल का दौरा पड़ा। वहाँ से उपचार के लिए कोटा लाये गये और इन्दौर में भी इलाज हुआ। किन्तु डाक्टरों के अथक परिश्रम के बाद भी अगस्त १९६९ ई० में कोटा में आपके जीवन की लीला समाप्त हो गई। इनका काव्यात्मक विवेचन गत अध्याय में दिया जा चुका है। यहाँ राजस्थानी 'मेघदूत' का यह हृदयस्पर्शी उदाहरण देखिये—

'दुरबळ देह अडोळी अँग-अँग झरै नैण आँसू झर-झर।
खाय पछाड़ गिरै धण सेजां छावै मुखड़ै केस बिखर॥
देख हाल इण विरहण बादळ होसी थांरा नैण सजळ।
वहे पराये दुख हुय कातर दिल सज्जनां रो मीत! पिघळ॥'

२४. **चंद्रदान**— ये सिंढायच शाखा में उत्पन्न हुए है (१९२४ ई०) और चुरू (बीकानेर) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम भारतदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा चुरू में हुई। फिर आगे अध्ययन हेतु बीकानेर चले गये। आपने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० हिन्दी तथा 'साहित्यरत्न' की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हैं। भारत सरकार द्वारा आपको शोध के लिए दो सौ रुपये मासिक छात्रवृत्ति स्वीकृत हुई (१९५५ ई०)। विद्यार्थी-काल से ही आपने लेखन-कार्य आरम्भ कर दिया था अतः एक मँजे हुए लेखक के रूप में सामने आये। इनका साहित्यिक सभा-संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ये उनकी गतिविधियों में बराबर भाग लेते रहते हैं। बीकानेर की स्थानीय संस्थाओं में विभिन्न विषयों पर आपके सारगर्भित भाषण हुए हैं। बाहर के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समारोहों में जाकर आपने कई निबंध-पाठ किये हैं। आप भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग; राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर तथा सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर के सदस्य हैं। आपको हिन्दी, अँग्रेजी एवं राजस्थानी भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। आप संस्कृत तथा गुजराती भी जानते हैं। संत साहित्य तथा लोक साहित्य से सम्बंधित साहित्य का आपने विशेष अध्ययन किया है। आप भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर के अध्यक्ष रह चुके हैं। सम्प्रति भारतीय विद्या मंदिर रात्रि महाविद्यालय के प्रिन्सिपल हैं।

चंद्रदानजी ने राजस्थानी आलोचना-क्षेत्र में विशेष रुचि प्रदर्शित की है। उनकी समर्थ लेखनी ने दो शोधपूर्ण ग्रंथ लिखे जो प्रकाशित हो चुके हैं—'गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा' तथा 'अलखिया सम्प्रदाय।' आपने 'सभा शृंगार', 'पीरदान ग्रंथावली' एवं 'हरिरस' ग्रंथों के साहित्यिक सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। इसके अतिरिक्त इनके अनेक लेख प्रांतीय एवं भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। उदाहरण के लिए 'हरिरस का काव्य-सौन्दर्य' का यह उद्धरण देखिये—

'हरिरस भक्त ईसरदासजी के निश्छल हृदय की सहज अभिव्यक्ति है। अपने प्रभु से क्या दुराव और क्या छिपाव। इसीलिए यह रचना इतनी मार्मिक है। कवि ने एक ओर तो सगुण-निर्गुण में समन्वय करते हुए 'सर्वदेव नमस्कार: केशव प्रति गच्छति' के अनुसार एक देववाद का आदर्श उपस्थित किया है तथा दूसरी ओर कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों में तुलसी की तरह सामंजस्य करते हुए अंत में भक्ति का अनुसरण किया है। इसलिए वह हरि और 'हरिरस' काव्य को एक मानता है और कहता है कि इस काव्य के पढ़ने वाले दुःखों से मुक्त होकर सद्गति को प्राप्त होंगे।'

२५. **करणीदान** - ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२५ ई०) और गंगानगर जिलान्तर्गत ग्राम फेफाना के निवासी हैं। इनके पिता का नाम नोपदानजी है। आपने एम० ए० तथा बी० एड० परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं और राजस्थानी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के सशक्त कवि एवं लेखक हैं। इनके राजस्थानी प्रकाशित साहित्य में १. झिंडियो (लोकप्रिय बाल-कथाओं पर आधारित काव्य) २. झरझर कथा (फुटकर कविताओं का सँग्रह) ३. शकुन्तला (महाकाव्य) एवं ४. आदमी रो सींग (मौलिक कहानियों का सँग्रह) नामक कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। महाकाव्य 'शकुन्तला' कवि की मौलिक सृजन है। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थानी के पाठ्यक्रम में इसका संक्षिप्त संस्करण स्वीकृत हुआ है। इसी प्रकार हिन्दी में आपने छः रचनायें लिखी हैं जिनमें एक-एक कविता तथा कहानी-सँग्रह और शेष चार उपन्यास हैं। 'शकुन्तला' का यह उदाहरण देखिये जिसमें प्रेम का निरालापन, यौवन की चंचलता एवं नई कल्पना देखने को मिलती है—

'री प्रेम न पूछै जात पांत, ओ प्रेम न जाणै नाम हाम।
री प्रेम पूर्ण परमेशर है, ओ सकल धरम रो सकल धाम॥

वो लाज प्यार रो मूर्त रूप, अल्हड़ जौबन झुक झूम फिरै ।
पळकै मुळकै कर निरत थिरक, कम्पन धड़कन नवनूर झरै ।।
चरणां नै चूमै हरी दूब, गालां नै चूमै झुकी डाल ।
अळकां नै रीस इसी आई, ढक लिया गुलाबी लाल गाल ।
उलट्यो घूंवट ज्यूं दीप जग्या, मावस री घोर अँधेरी में ।
पूनम मुळकी कीं दूर हटा, बादळ री काळी ढेरी नै ।।'

२६. **विजयदान**— ये देथा शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२६ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम बोरूंदा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम सवलदानजी है जो राजस्थानी के अच्छे कवि रह चुके हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राथमिक शाला, जैतारण में हुई फिर बाड़मेर में रहकर हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् जसवंत कॉलेज, जोधपुर से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। विद्यार्थी-काल से ही हिन्दी कहानियाँ लिखने की ओर इनकी विशेष रुचि रही है। आजकल आप राजस्थानी कथा-साहित्य के भण्डार को समृद्ध बनाने में पूर्ण रूप से संलग्न हैं।

विजयदानजी ने अपनी जन्मभूमि में 'रूपायन संस्थान' की स्थापना कर राजस्थानी कथा साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की है। यह संस्था प्रांतीय एवं केन्द्रीय सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त कर विकसित होती जा रही है। इसके पुस्तकालय में देश-विदेश की लोक-कथाओं का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है। राजस्थानी लोक-कथाओं को अपनी शैली में सविस्तार लिखकर 'बातां री फुलवाड़ी' नामक लगभग बारह भाग प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ से 'वाणी' नामक राजस्थानी मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी हुआ है जिसके ये भी एक सम्पादक हैं। 'लोक-संस्कृति' नामक हिन्दी-पत्रिका भी इस संस्था से प्रकाशित हुई है जिसमें इनका हाथ रहा है। बाल-साहित्य पर भी इनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आपने राजस्थानी कृतियों का भी सम्पादन किया है जिनमें 'सांझ', 'मेघदूत', 'दुर्गादास', 'चेत मांनखा', 'राधा', 'दीवा कांपे क्युं', 'संभाल' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अपना प्रेस होने से इनके लिए प्रकाशन की कोई समस्या नहीं है। अब तक आधुनिक राजस्थानी साहित्य में गद्य का जो अभाव खटक रहा था, उसकी पूर्ति करने में आपने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यह देखकर केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने इन्हें पाँच हजार की राशि से

पुरस्कृत किया है (१९७५ ई०)। यहाँ उनकी 'बावळौ पिंडत' गद्य-रचना का एक उदाहरण दिया जाता है —

> 'औ पिंडत तौ अजब बावळौ कोई जलमै तौ रोवै, मरै तौ हंसै। मसांण नै बस्ती कैवै, बस्ती नै मसांण कैवै। बीज नै ब्रच्छ कैवै, ब्रच्छ नै बीज कैवै। छांट नै समंदर कैवै, समंदर नै छांट कैवै! भाखर नै कण कैवै, कण नै भाखर कैवै। श्रौ पिंडत तौ अजब बावळौ है।'

२७. **मनुज** — ये देपावत शाखा में उत्पन्न हुए हैं श्रौर इनका जन्म-स्थान बीकानेर राज्यान्तर्गत माता करनीजी का निवास-स्थान देशनोक है। श्रापके बड़े भाई श्री श्रमर देपावत राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि रह चुके हैं। इनकी राजस्थानी कवितायें स्वाभाविकता तथा क्राँति का उद्घोष लिये हुए हैं। इन दोनों भाइयों से राजस्थानी को बड़ी-बड़ी श्राशायें थीं किन्तु श्रकाल काल के कराल गाल में समा जाने से साहित्य की क्षति हुई है। सन् १९५२ ई० की भयंकर रेल दुर्घटना में कवि का देहान्त हो गया। श्राप बहुत लोकप्रिय हुए। 'रे धोरां श्राळा देश जाग', 'जद झुके शीश' श्रादि श्रापके सुन्दर गीत हैं।

जन-चेतना उत्पन्न करने में मनुज ने महत्त्वपूर्ण भूमिका श्रदा की है। वह जन-साधारण को जगाते हुए कहता है —

> 'उठ खोल उणींदी श्राँखडल्यां, नैणां री मीठी नींद तोड़।
> रे रात नहीं श्रब दिन उगियो सुपना रो झूठो मोह छोड़।
> अब दिन आवैला एक इसो, धोरां री धरती धूजैला।
> श्र सदा पथरां रा सेवक अब, श्राज मिनख नै पूजैला।
> इण सदा सुरंगै मरुधर रा, सूतोड़ा जागै श्राज भाग।
> छाती पर पैणा पड्या नाग, रे धोरां आळा देश जाग॥'

२८. **सांवलदान**— ये श्रासिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं श्रौर पाली जिलान्तर्गत ग्राम वीजलिया वास के निवासी हैं। इनके विषय में विशेष विवरण ज्ञात नहीं हुश्रा किन्तु श्राप श्रच्छी कवितायें लिखते हैं। एक नमूना देखिये—

> 'भूपों दीनी भोम, कवियों ने गुण कारणे।
> करसों वाली कोम, क्यूं धणियो कोसण करै॥
> पूरो दुख पटवारियां, पालण दे नह पेट।
> सुण वेगी ले शीशवद, मकबूजा दुख मेट॥'

२९. **नगेन्द्र बाला**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुई हैं (१९२६ ई०) और माणिक भवन, कोटा इनका जन्म-स्थान है। इनके पिता का नाम रणजीतसिंह जी है। पितामह राजस्थान केसरी ठा० केसरीसिंहजी राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी नेता के रूप में चिरप्रतिष्ठित हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा 'महारानी गर्ल्स हाई स्कूल', कोटा में हुई। जब राष्ट्रपिता बापू ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ किया (१९४२ ई०) तभी से ये राष्ट्रीय आंदोलन-धारा में बाल्यावस्था में ही कूद पड़ी। कोटा और बूंदी सत्याग्रहों में आपने सक्रिय भाग लिया तथा विशाल जन-सभाओं में जाकर भाषण देना आरम्भ किया। जब राष्ट्रपिता की अस्थियाँ कोटा में लाई गईं तो अपार जन-समूह के आगे अश्वारोही होकर राष्ट्रीय ध्वज लेकर आप उसका नेतृत्व कर रही थीं। देश-भक्ति, समाज-सेवा तथा त्याग-भावना के साथ माँ सरस्वती की भी आप पर पूर्ण कृपा रही और बहुत पूर्व इन्होंने एक कविता लिखी थी जिसकी यह पंक्ति इनके समग्र जीवन को चरितार्थ करती है— 'सिंहनी हूँ डर नहीं, वन देवियों संग खेल होगा।' उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के १९४७ ई० के जयपुर अधिवेशन में आपने अपनी सहोदरा योगेन्द्र बाला के साथ स्वयं-सेवकों का संचालन किया था। आपका पाणिग्रहण श्री अमरसिंह देपावत के साथ हुआ (१९४७ ई०) जो स्वयं बड़े समाज-सेवी और श्रेष्ठ कवि थे।

श्रीमती नगेन्द्र बाला राजस्थान में पंचायती राज के श्रीगणेश के साथ ही कोटा जिला परिषद् की प्रमुख चुनी गईं (१९६० ई०)। ये भारत की प्रथम महिला जिला-प्रमुख हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने चम्बल बेराज का उद्घाटन करते हुए १९६१ ई० में नगेन्द्र बाला को लक्ष्य करके कहा था—'मैं चाहता हूँ, देश में ऐसे जन-सेवक हों जैसे आपके प्रमुख हैं।' सन् १९६२ ई० में आप छबड़ा क्षेत्र से राजस्थान विधान-सभा के लिए चुनी गईं और १९७१ ई० में पुन: कोटा दीगोद क्षेत्र से विधान-सभा के लिए विजयी हुईं तथा अभी काँग्रेसदल की सचेतक (whip) हैं। इस प्रकार आपको चारण जाति की प्रथम विधान-सभा सदस्या होने का गौरव प्राप्त है। इसके अतिरिक्त आप प्रदेश काँग्रेस कार्यकारिणी की सदस्या भी हैं तथा राज्य समाज-कल्याण बोर्ड की सदस्या के साथ-साथ आकाशवाणी, जयपुर की परामर्शदात्री समिति की भी सदस्या हैं। कोटा के जन-जीवन में आपका विशिष्ट स्थान है। जिस अप्रतिम देशभक्ति और त्याग का परिचय इनके पूर्वजों ने दिया, उसी आदर्श को सम्मुख रखकर आप

राजनैतिक क्षेत्र में सेवा, निष्ठा एवं ईमानदारी से आगे बढ़ रही हैं। साथ ही आप उन्नत विचारक और कुशल लेखिका भी हैं। आपने कई फुटकर सुन्दर गद्य-गीत लिखे हैं, जैसे—

'प्रेम-संदेश लेकर उड़ान भरने से पूर्व
सुदूर की ओर एक दृष्टिपात कर
अपनी पाँखों का पौरष देख लेना
कहीं मार्ग में अन्य सहारे की आवश्यकता प्रतीत न होने लगे !
जीवन-पाथेय की पूर्णता पर भी विचार कर लेना अन्यथा,
पावन पुनीत मुक्ति-संदेश अधूरा न रह जाये
गन्तव्य का छोर छूना है तुम्हें !
विकट घाटियाँ, पहाड़, रेतीले टीबे और
रेगिस्तान के लम्बे मार्ग, जहाँ
गजनवी की फौजों ने जल के अभाव में दम तोड़ा था,
तुम्हें पार करना है।
जहाँ-जहाँ धरातल पर किंचित विश्राम है
अपना पात्र धरोगे, स्मरण रहे पात्र से
झरने वाली बूंद अमरता प्रदान करेगी
उस धरा को ॥'

३०. **रामदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२७ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम मथाणियां के निवासी हैं। इनके पिता का नाम मेहरदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव में हुई और उसके बाद जोधपुर विश्वविद्यालय से बी० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। इन्होंने १९४६ ई० में राज्य-सेवा में प्रवेश किया। सामाजिक कार्यों में ये १९५२ ई० से रुचि लेने लगे और समाज के दुर्बल वर्गों के लिए कार्य किया। समाज-सेवा के साथ-साथ आप साहित्य-रचना भी करते हैं। इसे ये अपनी इष्टदेवी का वरदान मानते हैं। इन्होंने एक ऐसी अलबेली 'समाज सतसई' की सृष्टि की है जिसमें अँग्रेजों के समय में भारतीय समाज की क्या दशा थी, आज कैसी है तथा भविष्य में कैसी होगी ?—इसका छंदोवद्ध वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त आपने 'अपनायत इक्कीसी', 'सामी सीख सताईसी' आदि फुटकर

रचनायें भी लिखी हैं। उदाहरण के लिये 'समाज सतसई' के कतिपय दोहे देखिये—

'लखिया लोयण लागणा, चंचल चितकत चोर।
साइकल सोहे सुन्दरी, कुतन कलों कश्मीर॥
स्वतंत्र समाजवाद री, प्रजातांत्रिक पोशाक।
धारण करता धूजे धणी, मन मैला नापाक॥
बिन शस्त्र वार करणरी, नेशर नहीं नाखून।
छोड़ दे प्राणी छछून्दर, क्रूर कला करन खून॥
सज सेना सूरज सिधाई, गगन गाजन्तो शीस।
आटो कर उड़ावियो, गरब पठानो पीस॥'

३१ केसरीसिंह— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और पाली जिलान्तर्गत ग्राम नूंदियाड़ के निवासी हैं। आप प्रधान तथा विधान-सभा के सदस्य रह चुके हैं। आपने स्वामी शरणानन्दजी की पुण्य स्मृति में शोक-काव्य लिखकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है, यथा—

'नैन धन्य मन जिन लख्यौ, (वो) संकर रुप रसाल।
धन्य सीस चरणां झुक्यौ, श्रीमुख चूम्यौ भाल॥
स्रवणों वाणी संभळी, सुधा झरत श्रीकण्ठ।
बार अनेकन बिन पियौ, इमरत वो आकण्ठ॥
(पण) भमत फिरयौ, भूलै पड़यौ, बिबिध लुभाणै लाग।
मन-अलि धिक मोह्यौ नहीं, गुरु-पद-पद्म पराग॥
साहिल बैठ सनंद रै, परख्यौ परमानंद।
अवगाह्यौ ऊंडौ नहीं, मैं मूरख मतिमंद॥'

३२. योगेन्द्र बाला— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुई हैं (१९२८ ई०) और माणिक भवन, कोटा इनका जन्म-स्थान है। आपकी शिक्षा-दीक्षा भी परिवार के प्रबुद्ध वातावरण में 'महारानी गर्ल्स हाई स्कूल', कोटा में हुई। कहना न होगा कि इन्होंने राष्ट्रभक्ति और साहित्य-सौष्ठव को पारिवारिक परम्परा के रुप में प्राप्त किया। अपनी सहोदरा नगेन्द्र बाला के साथ-साथ आपने भी १९४२ ई० के राष्ट्रव्यापी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लिया और कोटा तथा बूँदी के प्रजामण्डलों द्वारा संचालित आंदोलनों में सक्रिय कार्य किया।

राष्ट्र-चेतना और सेवा के साथ-साथ योगेन्द्र बाला पर माँ सरस्वती की भी कृपा रही और अनेक कवितायें, छंद इत्यादि लिखने का आपको भी श्रेय प्राप्त है। आपका पाणिग्रहण श्री शक्तिदान मेहडू, राजोला कलां, जोधपुर के साथ हुआ (१९४७ ई०) जो राजस्थान प्रशासनिक सेवा के सुयोग्य अधिकारी हैं (१९६० ई०)। इनकी लिखी हुई कवितायें कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'राष्ट्रवाणी' के सम्पादक महोदय ने इनके विषय में लिखा है—'सुश्री नगेन्द्र बाला तथा योगेन्द्र बाला राजस्थान के सुप्रसिद्ध त्यागी व तपस्वी सेनानी तथा कविवर स्व० श्री केसरीसिंहजी बारहठ की पौत्री तथा राजस्थान की सुपरिचित कवयित्री सौभाग्यवती राजलक्ष्मी 'साधना' की छोटी बहनें हैं। इन सबका परिवार ही राजस्थान की सेवा और साहित्य-साधना में सदा अग्रणी रहा है।' उदाहरण के लिए यहाँ इनकी हिन्दी कविता 'जीवन जीत है या हार' की ये पँक्तियां देखिये—

'दिवस बीते रात आती, दीप की लौ टिमटिमाती।
अरुणिमा की रक्त आभा-आ, पुनः दीपक बुझाती।।
यों सदा प्रत्यागमन—दो रूप में निशि-दिवस होता।
एक मिटता दूसरे हित, वह स्वयं अस्तित्व खोता।।
क्या यही है दो हृदय का, प्रेम-बल-अधिकार?
इनकी जीत है या हार?
वह गलेगी या जलेगी, जो कहाती देह नश्वर।
अमर-आत्मा देह में, कैसा सुदृढ़ बंधन परस्पर।।
किन्तु अंतिम के क्षणों में, बंध भी यह टूट जाता।
जगत के जंजाल से, मानव सदा को छूट जाता।।
क्या यही चर-अचर के, प्यार का प्रतिकार?
जीवन जीत है या हार?'

३३. करणीशरण— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२८ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम इंदोकली के निवासी हैं। इनके पिता का नाम किशोरदानजी है। ये अपने काका देवकरणजी को गुरु मानते हैं जिन्होंने इन्हें काव्य-रचना करना सिखाया। आजकल आप पटवारी के रूप में राज्य-सेवा कर रहे हैं और साथ ही साथ कवितायें भी लिखते रहते हैं। आप शक्ति के उपासक हैं और इसमें आपकी अटूट आस्था है। इनकी अधिकांश रचनायें

भक्ति काव्य की कोटि में आती हैं। साथ ही कतिपय हास्य रस की कवितायें भी लिखी हैं जिनमें 'डालडा री डकार', 'चाय रो चरित्र', 'कामयाब री कूँजी', 'शराब री शहादत' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी कविता का यह नमूना देखिये—

'पुरुषार्थ तमाम हाय, स्त्री अरु पुरुषों को।
डंके की चोट दे के, डालडो डकार ग्यो॥'
'स्वास को उठाय अरु, स्वास्थ्य को बिगारे हाय।
ऐ रे चाय तेरे उपर, लाय क्यूं नहीं लाग गी॥'
'इस जमाने में तुजे कामयाब होना हो तो,
नेता बन राख खूब अपने पास वोटों को।
वोटों की कमी हो तो दूसरी उपाय कहूँ,
दिखा देना जाय हाथी छाप वाले नोटों को।
नोटों की तजवीज़ अगर नहीं हुवे तो फिर तू
सिक्स प्रस फोर बनके, हाथ रख सोटों को।
सोटों को चलाने में तेरे में ताकत नहीं तो
रखना पड़ेगा पास भूठे सर्टिफिकटों को॥'

३४. खीमदान— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९२८ ई०) और बाड़मेर जिलान्तर्गत ग्राम वाळेवा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम पहाड़दानजी है। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा सात वर्ष की अवस्था में अपने पिता से घर पर ही ग्रहण की (१९३५ ई०)। घर की परिस्थितियों के कारण ये सातवीं कक्षा से आगे नहीं पढ़ सके किन्तु राजस्थानी तथा व्रज के ग्रंथों का पारायण करने से साहित्य की ओर इनकी रुचि बढ़ी और राजस्थानी में काव्य-रचना करने लगे। समाज-सेवा करना आपके जीवन का उद्देश्य है। इसके लिए ये घर के काम-धंधे छोड़कर निःस्वार्थ भाव से जुटे रहते हैं। आज-कल आप कृषि एवं पशु-पालन का व्यवसाय करते हैं।

खीमदानजी की प्रथम रचना 'पावस-पच्चीसी' है। आपने उत्तम कोटि का भक्ति-काव्य लिखा है जिसमें 'सुवध पच्चीसी', 'शक्ति शतक', 'करणी बाल चरित', महिषासुर मर्दिनी', करणी रा छंद' आदि कृतियां उल्लेखनीय हैं। 'अकाल वर्णन' में दुर्भिक्ष का वर्णन है। 'विकास-विनाश', 'देश-रक्षा', 'समाज-

सुधार' आदि कृतियां सम-सामयिक हैं। ये सब प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। इसके अतिरिक्त इनकी फुटकर कवितायें भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। एक उदाहरण देखिये—

'भारत रो ऊँचो सर करणो, दिल मां लेस मात्र नी डरणो।
संख्या मै दुसमण घण सारा, सीह् सांमै की स्याल बिचारा।।
असल महीनां पिता ओई है, सुत मेले हित देस सई है।
सो धन्य मात धर्म नां सेवै, देस रक्षा अपणो पुत्र देवै।।'
'हाय अकल कुछ काम ही लावो, दुनीया सुधरी क्यांन देखावो।
रूस अमरेका तरकी रूड़ै, देखो ग्रह मंगल लग दोड़ै।।
मांय नशां क्रोडां खरचाओ, उणसैं नी तरकी मां आओ।
उलटा मूरख असभ कहावे, जगत रीत सर नीचा जावे।।'
'बार्ड के पंच काम मैं पोल है, सरपंच काम मै पोल सदावैं।
समिति सदस्यों रे काम पोल है, ओ सिय काम मै पोल ही आवैं।।
प्रधान के काम में है अत पोल ही, बी. डी. ओ. पोल में ढोल बजावै।
सरकार को हाय कोई समुझाय, विकास नहीं ए विनास दिखावै।।'

३५. **भँवरदान 'मणिधर'**—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए है (१९३२ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम रसाल के निवासी हैं। इनके पिता का नाम हरीसिंहजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता की देखरेख में हुई। ये राजस्थानी और ब्रज दोनों भाषाओं के ज्ञाता हैं। आप धार्मिक एवं राष्ट्रीय विचार-धाराओं के व्यक्ति हैं। अखिल भारतीय दीनबंधु कांग्रेस की राजस्थान शाखा के संगठन मंत्री हैं। इन्होंने 'करुणा पच्चीसी', 'करुणाष्टक' तथा 'करुणा बहोत्तरी' नामक कृतियां लिखी हैं। साथ ही फुटकर कवितायें भी लिखते रहते हैं। आप अच्छे संगीतकार भी हैं और समदड़ी में रहते हैं। राजस्थानी के साथ हिन्दी में भी रचनायें लिखते हैं। इनकी कविता का यह उदाहरण देखिये—

'गजां पीठ पै नोपतां रोज घल्लै। जिकां सेवगां इंदरा घात घल्लै।'
सुणो सारदा आपरा हंस सोरा। छतां आपरै छांग सी कंठ मोरा।।
घकै आ विधाता कनै मोर ध्यायो। उनै आज रा राज री सोच आयो।
चरंदा परंदा सभी जाय चोंक्या। धण्या दीठ आप नै पांव धोक्या।।'

३६. **उदयसिंह**—ये पाल्हावत बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और अलवर के निवासी हैं। इनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई है अतः इन दोहों-सोरठों से ही संतोष करना पड़ रहा है—

'पुहमी अत पळकेह, किरण वीरता तन कढ़ै।
भाटी तूं मळकेह, भांण रूप हिंद भाळ पर॥
सबद कह्या रण साथियां, जाहर हुवा जहांन।
अड्यो मरचो चूसूल पर, सौ-सौ रंग सैतान॥
मरचो मरचो मूरख मुणै, कहै न स्याणो कोय।
मरै जिस्यो भाटी मरद, कुण फिर अम्मर होय॥'

३७. **जयकरण**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९३५ ई०) और बाड़मेर जिलान्तर्गत ग्राम डावड़ के निवासी हैं। इनके पिता नाथूदानजी राजस्थानी के एक अच्छे कवि रह चुके हैं। इनकी वंश-परम्परा में क्रमबद्ध साहित्य-सेवा होती चली आ रही है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बाड़मेर में हुई फिर इन्होंने बी० ए० (राजस्थान, १९५७ ई०) तथा अँग्रेजी में एम० ए० (पंजाब, १९६९ ई०) की उपाधियाँ प्राप्त कीं। सम्प्रति पुलिस विभाग में निरीक्षक के रूप में सेवारत हैं। आप गत २३ वर्षों से निष्ठा से राज्य-सेवा कर रहे हैं। यह उल्लेखनीय है कि आप मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और अन्तरराष्ट्रीय इन तीनों भाषाओं में रचनायें लिखते हैं।

जयकरणजी एक प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। परम्परा का पालन करते हुए भी आप नव-नव सम-सामयिक रचनायें लिखने में सिद्धहस्त हैं। आपकी राजस्थानी कविता का यह उदाहरण देखिये जिसमें राजस्थान राज्य के पुलिस महानिरीक्षक वीरवर गणेशसिंहजी, आई० पी० एस० के गुणों की प्रशंसा की गई है—

'गुणवंती रतनो गजब, दीपण भारत देश।
पुलिस प्रशासक प्रांत रो, गौरव मुकुट गणेश॥
मन उज्वल मधुरा वयण, धीरज सगुण धनेश।
भलपण वंको भाटीयो, गहिरे वीर गणेश॥
रजपूती रो सेहरो, वीरत ध्रम रो वेश।
अनवी मानी अडिग ओ, ज्ञानी वीर गणेश॥'

३८. रामलाल—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और अलवर के निवासी हैं। इनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई है अतः इन दोहों से ही संतोष करना पड़ रहा है—

'विपत बादळा शीस पें, मेंढिया अधिक महान।
सूरज ज्यूं चमक्यो सदा, धनि-धनि राजस्थान॥
खाल्यां उपटी खून हूं, उगळी नाल्यां अग्ग।
भिड्यो समर सैतान भड़, पड्यो न पाछो पग्ग॥
धमक तोप धूजै धरा, सोला उछटै सूळ।
मारि-मारि रोळा मचै, तदपि न दियो चसूळ॥
तड़कै गोळी तिड़ तिड़ै, पळकै तोपां पांण।
खळकै नाला खून का, सिंह झलकै सैतांण॥'

३९. शिवदत्त—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९३५ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम सीहू के निवासी हैं। इनके पिता का नाम मानसिंहजी है। इन्होंने प्राथमिक शिक्षा खींवसर से ग्रहण की। फिर चारण छात्रावास में रहते हुए श्री सुमेर स्कूल, जोधपुर से हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आप शिक्षा-विभाग में अध्यापक हो गये (१९५८ ई०) और अध्ययन का क्रम जारी रखते हुए बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। प्राचीन साहित्य से आपका विशेष अनुराग है।

शिवदत्तजी विद्यार्थी-जीवन से ही कवितायें लिखते आ रहे हैं जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। आप हिन्दी एवं राजस्थानी दोनों में काव्य-रचना करते हैं। राजस्थानी कविताओं के साथ आप कहानियां भी लिखते हैं। फुटकर कविताओं में 'आजादी', 'बंगाल रो काळ', 'गाँधी', 'तिलक', 'जवानी', 'कळायण' 'हाळी' आदि लोकप्रिय हुई हैं। आप कई बार आकाशवाणी, जयपुर से 'मरुवाणी' कार्यक्रम के अन्तर्गत चारण-शैली में कविता-पाठ कर चुके हैं। महात्मा गाँधी में गहरी आस्था होने से कवि ने उनके निधन पर आठ-आठ आँसू बहाये हैं—

'अंधारे घरो दिवळो हो, निवळां रो साथी नामी हो।
हर दिल रो दरद पिछांणे हो, जाणे वो अन्तरजामी हो॥

गाँधी ने दुनिया प्यारी ही, दुनिया ने गाँधी प्यारो हो।
अणपार हिया में नेह भरियो, गाँधी रो हिवड़ो न्यारो हो।।
पण मोतड़ली कर दी मनमानी, खूटी पर लागी नां बूंटी।
गाँधी पर गोळी क्यूं छूटी, लाखांरी किस्मत क्यूं लूटी।।'

'बंगाल रो काळ' के दुर्भिक्ष का यह मार्मिक स्थल देखिये—

'खाय तड़ाछ पडियो भूखो, रोठी विन रोयो अठे मानवी।
दांणां सूं प्राण घणा सस्ता, आ वात सुणी, रे रुकी जाह्नवी।।
फळ फूल विना मरगा पंछी, घास विना मरगी गायां।
आख्यां फोड़ी रे! रोय रोय, रोठी रे सारू मिनख जायां।।
काम चल्यो नहीं सोने सूं, पहरियोड़ों रेगो सब गहणो।
अरे अठे वस इणी जगहं, रोठी विन रुळगो मिनखपणो।।'

और 'कळायण' (काली घटा) में कवि का यह प्रकृति-प्रेम द्रष्टव्य है—

'उड़े असमांन में वादळ, के गजराज आया है।
काजळ गिरि तूट ने टुकड़ा, अरे असमांन छाया है।।
भकां में वीजली चमके, तो सोवनी रेख ज्यूं दमके।
पावस आज आयो है, धर-धर गिगन में धमके।।
ठंडी लेर चलतोड़ी, सुणो संदेश लाई है।
देवण लो रूप धरती ने, कळायण आज आई है।।'

४०. **भँवरदान**—ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९३५ ई०) और बाड़मेर जिलान्तर्गत ग्राम भिणकली के निवासी हैं। इन्हें अपने नाम के आगे 'मदकर' लिखना प्रिय है। इनके पिता का नाम हेमराजजी है। कवि अनोपदान इनके बड़े भाई हैं। इन्होंने पूर्व विश्वविद्यालय परीक्षा उत्तीर्ण की है। आप लगभग आठ वर्ष तक भारतीय सेना में सेवा करने के बाद 'स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर' में 'हैड केशियर' हैं। बाल्यकाल से ही अपने पिता तथा भ्राता के सान्निध्य में आपने अनेक कवितायें कंठस्थ कर ली थीं और इसके नियमों की जानकारी प्राप्त करने के बाद स्व० उदयराजजी उज्वल की सत्प्रेरणा से प्रथम रचना लिखी (१९६४ ई०)।

भँवरदानजी अपने क्षेत्र के अत्यत लोकप्रिय कवि हैं। कवि-मंच पर इनकी धाक है। इन्होंने कई राष्ट्रीय, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं अन्य रचनायें लिखी हैं। इन रचनाओं में देश, काल और परिस्थिति का सुंदर चित्रण है। 'समाजवाद' के लिए कवि का कथन है—

'सपना साचै समाजवाद का होसी साकार।
कामगार वणैला आधार राज काज का।।
श्रमिक किशान कारीगरों का होसी समाज।
लाधैलान को लुटेरा अबला की लाज का।।
धरा का सपूत रैसी रैवैला न कोई धणी।
विश्व राज करैला इनशान विना ताज का।
आज का सामंत पूंजीवाद नें साम्राजशाही।
जासी डूब जातरी ज्यूं जीरण जहाज का।।'

कवि ने 'त्रिकूट बँध गीत' में प्रकृति का यह वर्णन खूब किया है —

'आसाढ़ ऊबां आथड़ै, पाहड़ां सिर अरगत पड़ै।
उतराद भुरजां मंडे आड़ंग, कटण मरूधर काळ।
छांमणां जळ नदियां छिळै, मद कांमणां साजण मिलै।
रळ वळ वदळ वळ रळ वदळ, सळ वळ सकळ वळ ढळ सजळ।
वळ वळ कजळ कांठल शबल, पळ पळ चपल बीजळ प्रबल।
भळ भळ गुडळ जळ भूंमंडळ, खळ खळ उथल तालर खळल।
मलहार सुण विरहण मचल, हळ हाल हळधर कर हकल।
चल बलध चंचल चाल।।'

४१. रामसिंह—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९३७ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम मौलासर के निवासी हैं। इनके पिता का नाम गंगासिंहजी है। बाल्यावस्था से ही कविता की ओर इनकी रुचि है। इन्होंने 'साहित्य रत्न' की परीक्षा उत्तीर्ण की है। सम्प्रति राज्य-सेवा में रत हैं। आपने स्फुट काव्य-रचना की है। एक उदाहरण देखिये—

'पीसा पीसै पीसणू, पीसा पीसण जोग।
पीसा प्यारा है जठै, बठै पिसीजै लोग।।
धधक धधक हिवड़ो बळै, सासां लागी लाय।
कुण नै कैवा कुण सुणै, मिनख मिनख नै खाय।।'

४२. **शक्तिदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४० ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम बिराई के निवासी हैं। इनके पिता का नाम कवि गोविन्ददानजी है जिनके ये इकलौते पुत्र हैं। आप डेढ़ वर्ष की अवस्था में मातृ-वात्सल्य से वंचित हो गये। इनकी शिक्षा-दीक्षा के प्रमुख तीन केन्द्र हैं— मथाणिया, बालेसर एवं जोधपुर। जब ये सातवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तभी इनकी 'करणी यश प्रकास' नामक प्रथम कविता प्रकाश में आई। स्व० उदयराजजी उज्वल के मार्ग दर्शन प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से ये साहित्य क्षेत्र में अग्रसर हुए। ये अपने गाँव के प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने बाहर रहकर एम० ए० हिन्दी की उपाधि प्राप्त की है और अपनी जाति में प्रथम पी-एच० डी० हैं। ये राजस्थानी, ब्रज एवं हिन्दी तीनों के ज्ञाता हैं। इन्हें प्राचीन छंद-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान है और इस शैली में छंद-रचना तथा काव्य-पाठ में बेजोड़ हैं। आप आकाशवाणी पर कविता-पाठ के लिए विशेष रूप से आमंत्रित किये जाते हैं। आपके शोध-प्रबन्ध का विषय है—'डिंगल के ऐतिहासिक प्रवन्ध काव्य (१७००-२००० विक्रम)। आप कई सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं में प्रतिष्ठित पदों पर कार्य कर रहे हैं। आप आधुनिक कवि-सम्मेलनों में भाग लेते रहते हैं। वर्तमान में जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हैं।

शक्तिदानजी प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति में विशेष आस्था रखते हैं। इन्होंने राजस्थानी के गद्य-पद्य के कई संकलन तैयार किये हैं जिनमें 'रंगभीनी' 'लाखीणी', 'सोढायण', 'काव्य-कुसुम', 'दर्जी मयाराम री वात' आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनमें से प्रथम दो संकलन बी० ए० तथा एम० ए० के पाठ्य-क्रम में स्थान पा चुके हैं। इनकी प्रकाशित मौलिक रचनाओं में 'करणी यश प्रकास', 'प्रीत पच्चीसी' एवं 'बरसाळे रा दूहा' के नाम उल्लेखनीय हैं। अँग्रेज कवि ग्रे के शोक-काव्य (Elegy) का आपने राजस्थानी पद्यानुवाद किया है। इनकी अप्रकाशित रचनाओं में 'करणी सुजस प्रकास' तथा 'खोटै नेता रो खुलासो' है। पद्य के साथ-साथ गद्य लिखने में भी आप सिद्धहस्त हैं। इनकी स्फुट रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। इसके अतिरिक्त आप 'तरुण शक्ति' तथा 'चारण पत्रिका' के सम्पादक भी हैं। उदाहरण के लिए जमाना कैसा आया है, इसे कवि कृत 'उडतो पंछी' में देखिये—

'आज जमाना औड़ो आयो, भोळप सूं मानव भरमायो।
खुद रै हाथां वेलां बोई, पायो फळ जद मन पछतायो।।

गी नैणां री सरम, मरम रा घट में पड़िया घाव रे।
प्रीत रो संदेस पठावण, उडता पंछी आव रे।।
खिलकां मांय अदावत खाटी भाई-भाई री जड़ काटी।
अेक दूसरै री अटकळ में, पांतरग्या बडकां री पाटी।।
मूंडै मीठा घट में खोटा, दुनियां खेलै दाव रे।
प्रीत रो संदेस पठावण, उडता पछी आव रे।।'

विधि सम्मत स्वच्छ प्रशासन समय पर न्याय देकर जनता का विश्वास बनाये रख सकता है। यदि संसार की करतूतों को देखा जाय तो फिर न्याय की नौका ही डूब जायेगी—

'जोयलै नवलख तारां वीच, चांनणौ चांद सूं होवै।
करे कुण राजहंस विन न्याव, निवेड़ौ नीर खीर जोह्वै।।
करे कुण वाड़ विनां रखवाळ, विगाड़ू सेढ़ां रा वासी।
जगत री करतूतां मत जोय, न्याव री नाव डूब जासी।।'

४३. **ओमप्रकाश**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४० ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम इंदोकली के निवासी हैं। इनके पिता का नाम कवि देवकरणजी है। इन्होंने डीडवाना से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर जोधपुर इंजीनियरिंग कॉलेज से यांत्रिकी विभाग की बी० ई० उपाधि प्राप्त की। आजकल आप लोक निर्माण विभाग, जयपुर में कान्ट्रेक्टर हैं। आपने विविध विषयों पर पाँच-सौ के आसपास दोहे लिखे हैं। इनके 'भारत-पाक युद्ध' (१९७० ई०) के कतिपय दोहे देखिये—

'धुब तोपां थरकी धरा, धुरै त्रंबक घमसाण।
झालै देव झिकोळियो, (जाणे) मंदराचल मेहराण।।
जंगी 'सैवरजेट' ने, हाथ दिखाया हिन्द।
पोळा झड़ बूठा पवन, पड़िया जाण परिन्द।।
फिर दोळा गोळा फचर, नट टोळा हिन्द 'नेट'।
फावै बणिया फिड़कला, (ए) जंगी 'सैवरजेट'।।
'नेट' झपट धर नांखिया, विकट लपेटां वाज।
फोगट दीधा फ्रांस थे, मगतां हाथ 'मिराज'।।
आछा वेग उंतावला, सजित विकट रण साज।
चम्पै डरता न चढै, 'मिग' रे धकै 'मिराज'।।'

४४. भँवरसिंह—ये खिड़िया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम रलावता के निवासी हैं। इनके पिता के नाम दुर्गादानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा उच्च माध्यमिक विद्यालय, जावला में हुई जहाँ से आपने प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे भी राजकीय कॉलेज, किशनगढ़ से बी० ए० तथा एम० ए० हिन्दी की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् चयड़िया कॉलिज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुये। आपने राजस्थान विश्वविद्यालय से 'ढोला मारू रा दूहा' पर शोध-कार्य आरम्भ किया था किन्तु इस बीच राजस्थान प्रशासनिक सेवा के लिये चुन लिये गये (१९७४ ई०)। जो लिखित प्रतियोगिता हुई उसमें आपने सबसे अधिक अंक प्राप्त किये। आपने 'शिव साधना' तथा 'विरद विपिन' नामक कृतियां लिखी हैं जो अप्रकाशित हैं। फुटकर रचनायें अवश्य प्रकाशित हुई हैं। सन् १९६५ ई० के भारत-पाक युद्ध का वर्णन आपने 'पाक-पच्चीसी' में किया है, यथा—

'अब लर्पाहि पाक पड़ी अबकी, बरिबंड ही बंब जवै बबकी।
धर नीव हि देस पै सैन धकी, जमराण जनात जमाव जकी॥
कर क्रूर करार दबै कमकी, हिय हेरही मौत भई हनकी।
दम हार अवेंहि लहौर दई, गढ़ रा गढ़ को अब सैन गई॥
तिहू लोक इहां जंग देख तपी, चप पैंटन सेबर चेट चपी।
झप झैप झपैट झंडेस रपी, रज रज्जत है न आकास रपी॥'

४५. गिरदान ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और बाड़मेर जिलान्तर्गत ग्राम बाळाद के निवासी हैं। इनके पिता का नाम नरसिंहदानजी है। ये फुटकर काव्य-रचना करते हैं। इनके शोक-गीत का यह अंश देखिये—

'सुणियो दिन एक शोक संदेशो, श्रवणो नही सुहायो।
आछो सुत निछमण उजल रो, धर ढदो ढठ धायो॥
वाणी चित्त विचळित मग बहियां, हुई घणी हित हांणी।
कित गयो सिंहडायच कविराजा, मोह छोड़ माडाणी॥
साहित अर जाति रो सेवक, कांज पराया कीना।
नाथा हरे छोड नरपुर ने, लख सुरपुर मग लीना॥
पंडत कव लेखक पछितावे, सारा झुरे सनेही।
मोह लगाय बहिर्यां मारग, डूबी तजने देही॥'

४६. **कानदान**—ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४१ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम झोरड़ा के निवासी हैं। ये अपने नाम के आगे कल्पित' लगाकर काव्य-रचना करते हैं। इनके पिता का नाम हीरदानजी है। जब ये पन्द्रह वर्ष के थे तब से ही कविता लिखने लग गये। आजकल आप राजकीय उच्च प्राथमिक शाला, नागौर में अध्यापक के रूप में राज्य-सेवा कर रहे हैं। इनकी कविताओं का सँग्रह श्री हरि-लीला इमरत' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमें ४५० दोहों में श्री हरिरामजी महाराज का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसके अतिरिक्त आपने फुटकर कवितायें भी बहुत लिखी हैं जिनमें 'आजादी रां रुखवाळा', 'चेत मानखा', 'भाई रो भाई पणो', 'रैत रोवै बापड़ी', 'थूं बोल तो सरी', 'पड़दे रे भीतर मत झांकी', 'मुरधर म्हारो देस', 'गीत मिलण रा गाऊंला', 'चन्दर चकोरी' आदि लोकप्रिय हुई हैं। कवि-मंच पर आप सस्वर कविता-पाठ करते हैं। यहाँ इनकी 'आजादी रां रुखवाला' कविता का यह उदाहरण देखिये—

'आजादी रां रुखवाळां सूता मत रीज्यो रै।
आवैला घण मोड़ मारग पर, चलता रीज्यो रै॥
आजादी खातर मां-बैणां, कांकड़ में बांठां रूळगी।
हत्यळवे मैंदी लाग्योडी, ओरां रे हाथा चढ़गी॥
नुंवै दिन कामण घर काळा, काग उड़ाती ही रैगी।
मां बांरी बेटां रे खातर, पुरस्योड़ी थाळयां रैगी॥
वळीदानां री मूंघी घड़ियां, याद करिज्यो रै।
आजादी रा रुखवाळां, सूता मत रीज्यो रै॥'

और 'चेत मानखा' में कवि की यह राष्ट्रीय भावना मुखरित हुई है—

'चेत मानखा दिन आया, झगड़ै रा ढोल घुरावांला।
उठो आज पसवाड़ो फेरो, सूता नाहर जगावांला॥
मत ताको पाछी भारत रां, जुद्ध में रड़क बजावांला।
दुशम्यां री छाती रे मायें, दुनाळयां झड़कावांला॥
आज देश री सीमा मायें, हंस हंस सीस चढावांला।
मरग्या तो मां री गोदी में, रहग्या तो गुण गावांला॥'

४७. **भँवरसिंह**—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४२ ई०) और जयपुर जिलान्तर्गत ग्राम खेडी चारणान के निवासी हैं। इनके पिता का नाम

रामलालदानजी है। इन्होंने आठवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की ही थी कि पिता चल बसे अतः घर-परिवार का भार इन पर आ पड़ा। फिर भी साहसपूर्वक आगे बढ़ते गये। अपने काकोसा श्री अक्षयसिंह रतनू को काव्य-गुरु मानकर उनके सान्निध्य में अध्ययन का क्रम जारी रखा और राजस्थानी तथा हिन्दी ग्रंथों का पारायण किया। पं० राधावल्लभजी शास्त्री (कचनारिया) के व्याकरण से इनकी संस्कृत के प्रति रुचि बढ़ी और प्रसिद्ध कवियों का काव्य हृदयंगम किया। साथ ही आपने वेदों का स्वाध्याय किया जो आज भी चल रहा है। इसके अतिरिक्त संगीत-शास्त्र का भी अध्ययन किया तथा कई राग-रागनियां सीखकर स्वयं गेय पद भी लिखे। इनकी लिखी हुई स्फुट रचनायें उपलब्ध होती हैं। आप प्रधानतः वीर रस के कवि हैं और चौरासी प्रकार के गीतों में झम्माल गीत इन्हें सर्वप्रिय है। अतः इसी छंद में इनका वीरों का यह यशोगान देखिये—

'वाजै वाजा वाहरु, साजै शूरां शान। गाजै गौरव गीतडां, राजै राजस्थान।
राजै राजस्थान, (क) वीर वसुन्धरा। मरण तणी मुरजाद, पवित्र परम्परा।।
जबर हुया जूझार, कला रण खेत में। मोत्यां मूंगा मिनख, रल्या इण रेत में।
आखी घण इतिहास में, साखी घर संसार। राखी रजवट राजव्यां, वांकी टेक विचार।।
वांकी टेक विचार, प्रतिज्ञा पालणां। उमडयां अरियांवात, घात घण घालणां।
घण चौरासी घाव अंग में ओपणां। सांगा सा सीसौध, रणां पग रोपणां।।
शरणागत वत्सल सदा, धर्म धुरंधर धीर। हुया हठी हम्मीर सा, बांका रजवट वीर।
वांका रजवट वीर, (क) नेम निभावणां, वचनां वांका विरद, मरद मर जावणां।।
रणांज रणथम्भोर, जोध घण जूटिया, हुया अमर हम्मेश, लाभ जग लूटिया।।'

४८ भँवरसिंह—ये सामौर शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४८ ई०) और चुरू जिलान्तर्गत ग्राम बोवासर के निवासी हैं। इनके पिता का नाम कवि उजीणसिंहजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता की देख-रेख में गाँव में हुई। फिर आप उच्च शिक्षा के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर चले गये जहाँ आपने एम० ए० हिन्दी की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आजकल आप लोहिया कॉलेज, चुरू में हिन्दी के व्याख्याता पद को सुशोभित कर रहे हैं। आप राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के प्रबल समर्थक हैं और इसमें आरम्भ से ही इनका अनुराग रहा है। इन्होंने 'शृंगार शतक' का 'सिणगार

सतक' के नाम से भावानुवाद किया है। सन् १९६५ ई० के भारत-पाक युद्ध के संदर्भ में राजस्थानी की प्रतिनिधि रचनाओं का सम्पादन 'मरण त्यूंहार' के नाम से प्रकाशित किया है। आधुनिक राजस्थानी की कवितायें भी 'मरुवाणी', 'मरुश्री' (पत्रिकायें) तथा 'आज रा कवि' (संकलन) में प्रकाशित हुई हैं। आपकी कवितायें आकाशवाणी, जयपुर से प्रसारित होती रहती हैं। आप पद्य के साथ-साथ गद्य में निबन्ध, कहानियाँ आदि भी लिखते रहते हैं। आजकल आप 'राजस्थानी का चारण शक्ति-काव्य' विषय पर पी०-एच० डी० के लिए शोध-प्रबंध लिखने में रत हैं।

भँवरसिंहजी राजस्थानी के होनहार कवि हैं। इनकी मातृभूमि-प्रेम की प्रतीक 'नमो जुग वाल्ही धरा महाण' कविता की ये पँक्तियां देखिये—

'मोड़ वंधियोड़ा मुड़ता मुळक, गोरड़यां री गळवांहां छोड़।
देवता करतब हित बळिदांन, नेह रा बंधण नाता तोड़॥
जठै काळा पख काळी रात, काळ ऊचाळै रा सहवास।
वठै वाळकिया वेघरवार, जलमिया घर घर रा ऊजास॥
चढाई सात भोम रै चरण, पालणै झोटा खांती प्रीत।
जदी सिर आंख्यां पर असवार, जिणां रै जस रा गौरव गीत॥
अठै रो वळिदानी इतियास, चारणां रै सुर में साकार।
न कोरी वीते जुगरी वात, आंवतै जुगरो है आकार॥
कमर कस भरम भाग रौ मेट, धरा सिणगारी मैनत पाण।
वणाई मांटी कंचन जोड़, इस्या करसा पारस परवांण॥'

इसी प्रकार आपकी 'धरा सिणगार चावै है', 'मुगती जुद्ध रो गीत', 'परभात', 'तानासाहां रै नांव', 'इंदर राजा क्यूं मांड्यो रूसणो', 'मरणों ही मंगळ वण्यो हमैं', 'महल सपनां रा वणा मत' आदि कवितायें विशेष लोकप्रिय हुई हैं। इन सब में कवि का जीवन के प्रति आशावादी स्वर मुखरित हुआ है। इन्होंने राजस्थानी की ओजस्विता को नई कविता में नये मूल्यों के साथ प्रतिष्ठापित किया है। यथा, 'धरा सिणगार चावै है' की ये पँक्तियां लीजिए—

'हजारां वरस स्यूं उजड़ी धरा तो सिणगार चावै है।
जुगां लग जुद्ध स्यूं जूझी धरा तो प्यार चावै है॥

एटम जुद्ध बुझती झळां फेरू क्यूं जगावै है।
हजारां बरस सूं उजड़ी धरा तो आंण चावै है।।'

४९. **नंदकिशोर**—ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४४ ई०) और सवाई माधोपुर जिलान्तर्गत ग्राम बंवली बिशनपुरा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम ईश्वरीदानसिंहजी है। ये अपने नाम के आगे 'नवाब' लिखते हैं। आप चारण समाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं और विभिन्न आयोजनों में भाग लेते रहते हैं। आजकल आप राजस्थान विद्युत मण्डल में राज्य-सेवा कर रहे हैं। यह उल्लेखनीय है कि आप राजस्थानी, व्रज तथा हिन्दी में कवितायें लिखने के साथ-साथ उर्दू भाषा में भी गजलें तथा रुवाइयां लिखते हैं। इसके अतिरिक्त कहानी तथा नाटक लिखने में भी आपकी रुचि है। एक रुवाई देखिये—

'जो शख्स किसी शख्स के, काम नहीं आता।
उसका किसी की वज्म में, नाम नहीं आता।।
महफ़िल के चांद होते हैं, अहले-वफ़ा 'नवाब'।
गो ज़िन्दगी में उनको, आराम नहीं आता।।'

और एक शे'र भी—

'जीते जी तो हाल न पूछा, आज ये कैसी भीड़ लगी है।
नवाव तुझे अपने कांधों पर, आये हैं ले जाने लोग।।'

५०. **रामजीवनसिंह**—ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४५ ई०) और जयपुर जिलान्तर्गत ग्राम सेवापुरा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम कवि जोगीदानजी है। इन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय से एम० ए० हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण की है। आजकल आप आकाशवाणी, जयपुर में पदाधिकारी हैं। सन् १९६५ ई० के भारत-पाक युद्ध के समय वीररस पूर्ण राजस्थानी कविताओं का जो संग्रह 'मरण त्यूंहार' के नाम से प्रकाशित हुआ, उसके आप सह-सम्पादक रह चुके हैं। इसी प्रकार आपने 'नागदमण' का भी सम्पादन किया है। 'मूमल' नामक राजस्थानी काव्य के सृजक आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आपने 'हठी हमीर' के नाम से राजस्थानी में एक उपन्यास भी लिखा है। आप राजस्थानी की नवीन प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं। आप फुटकर रचनायें भी लिखते रहते हैं। यहाँ इनकी 'हिये री हूंस' एवं 'सींधू राग रा बोल' नामक लोक प्रचलित रचनाओं का एक-एक उदाहरण दिया जाता है—

'ओ, म्हारा सांईना !
मैं हिवड़ा रा थाळ में प्रीत रो दीवो जोय,
आंसू रो अरघ जळ ले—
हरख री रोळी मेल
मिलण री हूंस रा आखा ले
घर रै दरवाजै ऊभी, थांरो मंगळ आरतो उतारूं
जे तूं भागतै बैरी री पीठ देख आवै
लांबी भुजावां रो बंदणवार करूं
जाणै, आ हिये री हूंस कद पूरी होसी ।।'
'जिका रण गंगा में सिनान कर
जलम भोम री लाज रै खातर
पुरखां रा लोही भरया खांडा सूं मांड्या इतिहास री
अजाद रै वास्तै
जुद्ध री जळती झाळां में कूद सहीद व्हैगा
जीवण नै, मायड़ री कूख रै सारथकता दी—अमर व्हैगा
उण जूंझारां रा सनमान मैं ही
सींधू राग रा बोल गूंजै ।।'

५१. **सोहनदान**— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६४६ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम मथाणिया के निवासी हैं। इनके पिता का नाम शक्तिदानजी है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई और वहीं से आपने हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे उच्च शिक्षा के लिए जोधपुर आकर एम० ए० हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर शोध में मन लगाया। इसी विश्वविद्यालय से आपने 'राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आजकल आप जोधपुर विश्वविद्यालय में व्याख्याता के रूप में सेवारत हैं।

सोहनदानजी एक परिश्रमी अध्येता हैं और स्वभाव से नम्र हैं। इनकी प्रारम्भिक रचनायें भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं। भगवती श्री करणीजी के जीवन-चरित्र एवं उनके प्रवाड़ों से सम्बन्धित रचनायें ऐसी ही हैं। उल्लेखनीय है कि राजस्थानी गद्य के क्षेत्र में इन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसमें इन्होंने कहानी,

निबन्ध एवं आलोचना की ओर विशेष ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त व्यंग्य लिखने में भी पटु हैं। इनका 'फगडा' नामक व्यंग्य लेख प्रसिद्ध है। एक उदाहरण देखिये—

'फगडा करौ अर पेट भरौ। इण घर आइज रीत। आज तांई रौ इतिथास ई इणरी पूरी-पूरी साख देवै। भगवांन रै भगवांनपणै री मैलायत फगडां रै चूनै अर गारै सूं चिणियोड़ी। पछै बापड़ौ नाकुछ मांनखौ फगडां रै पांण दो रोटी री जुगाड़ बैठावै तौ किणी नै किणी भांत रौ अैतराज नीं हूवणौ चाईजै।.... सिरैपोत भगवांन रा फगडा इज चौड़ै आंयोड़ा चोखा। किसन भगवांन—चोर-चोर, मन माडै ई माखणियौ मठोठणौ, गोपियां सूं मसखरियां करणी, वांरी पारियां रा बटीड़ उठाय दईड़ौ ढोळांय देणौ, बंसली री तांन छेड़ गोपियां नै घर-वसू नीं राख परबस कर देणी, जमना रै कांठै बाछड़ा चारता थकां मखमल रै मांन कंवळी हरियल घास माथै लुटणौ अर किलकारियां करणी, वां इज रूप री रास, प्रीत री प्रांण गोपियां नै बिजोग री लाय में न्हांख मथरा में ठकरायत री मौजां मांणणी !'

५२. वसुदेव—ये देवल शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४८ ई०) और पाली जिलान्तर्गत ग्राम बासनी के निवासी हैं। इनके पिता का नाम बालूदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा उच्चतर माध्यमिक स्तर तक सोजत में हुई। फिर जोधपुर विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में प्रथम आकर एम० ए० राजनीति-शास्त्र की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके लिए आप स्वर्ण-पदक से अलंकृत हुए। इतना ही नहीं, आपने शोध-प्रबन्ध लिखकर इस विषय में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। सम्प्रति जोधपुर विश्वविद्यालय के राजनीति शास्त्र विभाग में व्याख्याता के पद को सुशोभित कर रहे हैं।

वसुदेवजी राजस्थानी भाषा एवं साहित्य में रुचि रखते हैं। आरम्भ में इन्होंने भक्ति भावनापूर्ण रचनायें लिखी हैं और जाति में प्रचलित अंध-विश्वासों एवं कुरीतियों पर व्यंग्य किये हैं। आजकल आप राजनीति, समाज-सुधार एवं विश्व-व्यापी समस्याओं पर स्फुट रचनायें लिखते हैं। विषय वैविध्य की दृष्टि से ये रचनायें अवलोकनीय हैं। इनके गद्य का एक उदाहरण देखिये—

'मातमा गाँधी नुंवा भारत री थरपणा वास्ते जिका दीठ दीनी ही अर जिका सुपना उणां देख्या हा वै सगळा आजादी मिळयाँ रै पछै ई अधूरा इज रैवता लाग रह्या हा इणरो कारण ओ हो के जिण अनुसासन अर मेहनत री इण खातर जरूरत ही उणसूं देसवासी

अजांण इज हा। आपतकाल पांणी खातर तरसती खेती रै ज्यूं आयो। वे सगळी बातां जिणरी मुळक नैं लांठी जरूरत ही वे सगळी चीजां अबै एक एक करने सामने आय री है। सरकार पण इसा पगळा लीधा है जिण सूं गरीब जनता री भलाई ह्वै सके अर पीढ़ियां लग जिण मुसीबतां माय रैयत फसियोड़ी ही उण सूं उणनै मुगती मिळ सकै। आज सगळा आपरा फर्ज नै समझे, अनुसासन री कीमत नै जांणे अर मुळक रै खातर कांम कर रह्या है।'

५३. नारायणसिंह— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४९ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम भदोरा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम धनेसिंहजी है जिनकी देखरेख में इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव में हुई। आपने जोधपुर विश्वविद्यालय से एम० ए० हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण की है (१९७४ ई०)। वर्तमान में चारण कवि कुँभकरण पर शोध कर रहे हैं।

नारायणसिंहजी का राजस्थानी भाषा एवं साहित्य से विशेष नाता है। इन्होंने एक वर्ष तक शिकागो विश्वविद्यालय में हिन्दी-प्राध्यापक डॉ० कालीचरण बहल के साथ राजस्थानी व्याकरण पर कार्य किया। इसके पश्चात् इसी विश्व-विद्यालय के इतिहास-प्राध्यापक नोरमन पी० जिलगर के शोध-प्रबन्ध में सहायक के रूप में कार्य किया। इसके लिए इन्हें प्रमाण-पत्र मिले हैं। आजकल आप 'राजस्थानी सबद कोस' कार्यालय, जोधपुर में कार्यरत हैं। इन्होंने गद्य-पद्य दोनों में सेवा की है। पद्य में 'सगती असुर संग्राम', 'छप्पय महभायरा' एवं 'नागौरी बैलां ने रंग' उल्लेखनीय रचनायें हैं। आप फुटकर दोहा, गीत आदि भी लिखते हैं। गद्य में 'हरोळ रौ हट', 'पेट रौ पंपाळ', 'एकांकी रसिया तीज रमाय' तथा 'राजस्थानी भासा माथै एक नीजर' निबंध के नाम लिये जा सकते हैं। इनके गद्य और पद्य का एक-एक उदाहरण देखिये—

'लळवळ भेवै लळकता, सुथरै डील सुचंग।
भारतवाळी भौम पर, नसल नागौरी रंग॥
अदहद चले ऊंतावळा, ढांण अनोखे ढंग।
भारतवाळी भौम पर, नसल नागौरी रंग॥
सुगट सिगाड़ी साकवर, ओपे पाखर अंग।
भारतवाळी भौम पर, नसल नागौरी रंग॥'

'इण रळियावणी रुत में तीज रौ सुरंगौ तिवार आया करै। जद तीजरी कोडीली तीजणियां कोयल सरीखा कंठ सूं गीतां रा घमरोळ उडावती थकी परदेसी पीव री वाटां जोवै। सरोदा लेवती काग उडावै। देवता नैं बोलवा बोलै। जिकां रा साजन घर वसै वे अगानैणियां जोवन रा हचोळा लेवती थकी उनमत्त व्हैय रंगभीणी रुत रो रस लूटै। लागणियां लोयणां में अणियाळौ सुरमौ सारियां प्रितम रै गळै लाग रंगरळियां मनावै। घणै आदर सतकार सूं मदवा री गहरी मनवारां घणा थौरा कर-कर नैं देवै।'....

५४. लक्ष्मणदान— ये किनिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४९ ई०) और सीकर जिलान्तर्गत ग्राम मनरूपजी का बास के निवासी हैं। इनके पिता का नाम गणेशदानजी है। इनकी शिक्षा-दीक्षा प्रसिद्ध क्रांतिकारी ठाकुर कानसिंहजी बारहठ की देख-रेख में हुई। आपने बी० कॉम, एल-एल० बी तक शिक्षा प्राप्त की है। आजकल आप राज्य वित्त निगम जयपुर में कार्यरत हैं। ये राजस्थानी के प्रबल समर्थक हैं। कविता के क्षेत्र में आरम्भ से ही इनकी रुचि रही है। इनकी अधिकांश रचनायें भक्ति से साधर्म्य रखती हैं जिनमें भगवती स्तुति (चिरजायें) उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त 'जैतरी जीत' रचना भी लिखी है। अँग्रेजी भाषा को लक्ष्य करके कवि ने लिखा है—

'चिरजीवौ इँगलिश मदर, अध्ययन ही गँभीर।
नेता हैं सब उसके सेवक, हम उनकी तसवीर।।
हम उनकी तसवीर कि मैडम बन गई देवी।
पापा डैडी पिता बन गये मुन्नी बन गई बैबी।।
कर स्टडी राणाजी नै क्यों मर-मर कर जीवो।
इँगलैंड भलै ही छोड़ो देवि, पर भारत में चिरजीवो।।'

५५. सुखदेव— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४९ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम खारी खुर्द के निवासी हैं। इनके पिता का नाम रामदानजी है। इनका प्रमुख व्यवसाय खेती है। बाल्यावस्था से ही इनकी कविता की ओर रुचि रही है। इन्होंने अपने नाना स्व० पाबूदानजी (खराडी) से दोहे और फिर भजन लिखने सीखे। वर्तमान में आप देश-भक्ति तथा शृंगार की स्फुट रचनायें भी लिखते हैं। इनकी रचनायें अभी अप्रकाशित हैं। आप कवि-सम्मेलनों में भाग लेकर अपनी कवितायें मंच पर सुनाते हैं। उदाहरण देखिये—

'आज कठै अरजी करसूं, सुध लेन यहाँ कोई मात हमारी।
जानत होय अजान भयो, माता भूल हुई हमसे बहु भारी॥
बालक मात तिहारो ही दास हूं, तार सके तो ले मात उबारी।
दे सुमती 'सुखदेव' कहै, (पुनि) मेटहु मात तूं चिंत हमारी॥'

५६. **चावण्डदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६५० ई०) और सीकर जिलान्तर्गत ग्राम दीपपुरा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम मानदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता की देख-रेख में घर पर ही हुई। आपकी शृंगार रस में बहुत रुचि एवं गति है। आपने स्फुट काव्य-रचना की है जिसमें भजनों की संख्या अधिक है। यहाँ 'चिरजा' का एक नमूना दिया जाता है—

'अम्बा म्हानै एक भरोसो थारो, म्हारा सब विध काज सँवारो।
देशणोक निज धाम दयानिध, निरधारां आधारो॥
आवत पात जात नित देवत, लेवत नाम तुम्हारो॥
करनल नाम सगत किनियाणी, नासत 'टेम' निहारो॥
कालो गोरो साथ लियां अब, लंकाळो ललकारो॥
गावत चावण्डदान ध्यान धर, चाहत दरशण थारो।
आवत जेज करी मत अम्बा, लाजै बिरद तुम्हारो॥'

५७ **मदनसिंह**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६५० ई०) और सीकर जिलान्तर्गत ग्राम नरसिंहपुरा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम आशकरणजी है। आप रामनाथजी कविया, तिजारा एवं 'लावारासा' के रचयिता श्री गोपालदानजी की वंश-परम्परा में से हैं। आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। आजकल आप राजस्थान सहकारी स्पिनिंग मिल, गुलाबपुरा में कार्यरत हैं। इनकी लिखी हुई बहुत सी फुटकर रचनायें हैं जिनमें शृंगार एवं भक्ति रस की रचनायें मुख्य हैं। एक सवैया देखिये—

'आप लिखी सिणगारहि के रस मैं रळियो दिन चारहि तांई।
चींठ रियो अलि अम्बुज ज्यूं खुशबू दिनरातहि लैत सवाई॥
सोच सखा नित रोज पराग कहां पनपै अति भाग वड़ाई।
क्यूं नहीं आप लई अपनाय सही समझाय मुझे ही वताई॥'

५८. लक्ष्मणसिंह— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६५१ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम खैण के निवासी हैं। इनके पिता का नाम चैनदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा मारवाड़ मूंडवा के हाईस्कूल में सम्पन्न हुई। सम्प्रति राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम में कार्यरत हैं। इनकी लिखी हुई रचनाओं में 'शक्ति सागर', 'गोविन्द गरिमा', 'विविध विलास', 'भारत-पाक युद्ध वर्णन' आदि मुख्य हैं। इनकी करनीजी पर लिखी कविता का यह उदाहरण देखिये—

'नमौ करणि हरणि दुख क्रोड़, जपूं तव नामज बै कर जोड़।
नमौ विरजाह रजा हथवीस, नमौ कुमुदा दुख दूर करीस।।
नमौ दुरगा गिरजा शिवना, नमौ विमला भव तार निहार।
नमौ महमाय नमौ सुरराय, नमौ गवरि हिंगळाज गिगाय।।
सारण कारज सेवगां, गज तारण गोबिन्द।
वेली भगता मन बसै, वंदू पद अरविन्द।।'

५६. प्रकाश रामावत— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुई हैं (१६५२ ई०) और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम इंदोकली इनका जन्म-स्थान है। इनके पिता का नाम करणीशरणजी है। इन्होंने आठवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की है। आपका विवाह सूरजसिंह रामावत के साथ हुआ है। आप ज्योतिष विद्या की जानकार हैं। इनकी लिखी हुई फुटकर रचनायें प्राप्त होती हैं। हरिगीतिका छंद में लिखी हुई श्री करनीजी की स्तुति का यह अंश देखिये—

'जय रूप भैरव हरनि भय जग श्याम गौर स्वरूपयम्।
चामुण्ड के अगवान चेलक आंच शूल अनूपयम्।
सिन्दूर चरचित अंग शोभा फूलमाल फबेसरी।
जय आद करनल जगत जननी आप माया ईश्वरी।।'

६०. अर्जुनदेव— ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१६५४ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम मथाणिया के निवासी हैं। इनके पिता का नाम कवि रेवतदानजी है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा महेश स्कूल, जोधपुर में हुई। उच्च शिक्षा हेतु जोधपुर विश्वविद्यालय में इनका अध्ययन जारी है। अपने पिता के सदृश ये भी समाजवादी भावनाओं से प्रभावित हैं किन्तु वर्तमान राज-नीति में कोई आस्था नहीं है। इन्होंने स्फुट रचनायें लिखी हैं जो अधिकांश

में 'ललकार', 'कन्ट्रोलर' आदि पत्र-पत्रिकाओं प्रकाशित हुई हैं। इनकी कविताओं का विषय प्रेम अथवा प्रकृति है। कुछ रचनाओं में सामाजिक विसंगतियों पर भी प्रहार किया गया है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिये—

'बांध हिये रो आज फूटग्यो, भर्‌या नैण सुखाऊं कींकर।
रैयत भूखी मांगे रोटी, गीता सूं बिलमाऊं कींकर।।'
'जाग मुलक रा मोट्यार, मोह नींद रौ छोड़ दै।
चेत बगत रा अभिमन्यु, इण चक्रव्यूह नै तोड़ दै।।'

६१. **मोहनसिंह**—ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९५७ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम चौपासनी के निवासी हैं। इनके पिता का नाम अचलदानजी है। इन्होंने उच्चतर माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण की है (१९७५ ई०)। ये एक होनहार बालकवि के रूप में प्रकट हुए हैं और अच्छी कवितायें लिखते हैं। वर्षा के अभाव में इन्द्रदेव को उपालम्भ देता हुआ कवि अपने गीत 'साणौर प्रहास' में कहता है—

'प्रथन पुछ्‌ पण जोड़ने बातड़ी पुरन्दर,
वसुधा तुझ्‌ बिन कोय बीजो।
कोपियो मरु मे आज किण कारणे,
देवपत खुलासो भेव दीजो।।
पोढीयो नंचितो आप हुय पाधरो,
राजवी आज किण काज रुठो।
काळ री झाळ में मोनखो कळकळे,
वसुधा छोंट नी मेह वूठो।।'

परिशिष्ट

६२. **गुलाबदान**—ये खिडिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और झुंझनू जिलान्तर्गत ग्राम सादूलपुरा के निवासी हैं। दुर्भाग्य से अभी हाल ही में इनका निधन हुआ है (१९७५ ई०)। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

६३. **गोपीदान**—ये वीठू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और बीकानेर जिलान्तर्गत ग्राम देशनोक के निवासी हैं। इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है जिसमें वीरगति प्राप्त मेजर शैतानसिंह पर लिखी कविता प्रसिद्ध है।

६४. **शंकरदान**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम रामासणी के निवासी हैं। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

६५. **ब्रजलालसिंह**— ये गाडण शाखा में उत्पन्न हुए हैं और झुंझनू जिला-न्तर्गत ग्राम दुलसाच के निवासी हैं। इन्होंने पाबूजी पर शोध-ग्रन्थ लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। सम्प्रति सेठ पोद्दार कॉलेज, नवलगढ़ में आचार्य हैं। इनकी फुटकर रचनायें महत्त्वपूर्ण हैं।

६६. **तेजदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम बिराई के निवासी हैं। इनके पिता का नाम रामदानजी है। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

६७. **शंकरसिंह**— ये आसिया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम भांडियावास के निवासी हैं। इन्होंने 'मयाराम दर्जी री वात' का शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

६८. **अखैदान**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम बिराई के निवासी हैं। इनके पिता का नाम खुशालदानजी है। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं।

६९ **भिक्षुदान**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९३२ ई०) और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम चौपासनी के निवासी हैं। इनके पिता का जसदानजी है। आप संस्कृत, हिन्दी एवं राजस्थानी तीनों के जानकार हैं। अभी आयुर्वेदिक औषधालय में वैद्यक का कार्य करते हैं। इनके पास बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इन्होंने फुटकर कवितायें लिखी हैं जिन्हें ये सस्वर मंच पर सुनाते हैं।

७०. **सूर्यदेवसिंह**—ये बारहठ शाखा में उत्पन्न हुए हैं और अलवर जिलान्तर्गत ग्राम माहुंद के निवासी हैं। इनके पिता बलवंतसिंहजी उच्चकोटि के कवि गिने जाते हैं। इन्होंने एल-एल० बी तक शिक्षा प्राप्त की है। आप एक सुशिक्षित, प्रतिष्ठित, प्रगतिशील एवं प्रभावशाली व्यक्ति हैं। अपने क्षेत्र के लोकप्रिय कांग्रेसी नेता हैं तथा पंचायत समिति के प्रधान हैं। साथ ही वकालत भी करते हैं। कृषि के क्षेत्र में इन्हें भारत सरकार ने 'पद्म-श्री' की उपाधि से अलंकृत किया है। आप राजस्थानी एवं हिन्दी दोनों में सुन्दर रचनायें लिखते

रहते हैं जो जन-समाज में प्रिय हैं। कवि-मंच पर जमने वाले कवियों में आप अग्रणी हैं।

७१. **सोमकरण**— ये वरणसूर शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जालोर जिलान्तर्गत ग्राम मोतीसरी के निवासी हैं। इनके पिता का नाम दुर्गादानजी है। इन्होंने फुटकर प्रशसात्मक गीत लिखे हैं।

७२. **चंद्रप्रकाश**— ये देवल शाखा में उत्पन्न हुए हैं (१९४८ ई०) और ग्राम गोटीपा (उदयपुर) के निवासी हैं। इनके पिता का नाम भूरसिंहजी है। आपने एम० एस-सी० परीक्षा रसायन-शास्त्र में उत्तीर्ण की है। इनकी स्फुट रचनाये मिलती हैं।

७३. **गिरधारीदान**— ये उज्वल शाखा में उत्पन्न हुए हैं और बाड़मेर जिलान्तर्गत ग्राम भीयाड़ के निवासी हैं। इन्होंने फुटकर प्रशंसात्मक कवितायें लिखी हैं।

७४. **इन्द्रदान**— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जैसलमेर जिलान्तर्गत बारहट रो गांव के निवासी हैं। इन्होंने राजस्थानी की एक नई वर्णमाला बनाई है।

७५. **मनोहर**— ये लालस शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम नैरवा के निवासी हैं। इन्होंने विज्ञान में बी० एस-सी० तक की शिक्षा प्राप्त की है। आजकल आप रूपायन संस्थान, बोरूंदा में कार्यरत हैं। इनकी पत्र-शैली सुन्दर है।

७६. **लूंगीदानसिंह**— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और सीकर के निवासी हैं। सम्प्रति रींगस राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक हैं और फुटकर रचनायें लिखते हैं।

७७. **हिम्मतसिंह**— ये मिश्रण शाखा में उत्पन्न हुए हैं और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम गवारडी के निवासी हैं। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

७८ **नाथूसिंह**— ये सांदू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम हिलोड़ी के निवासी हैं। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

७९. **अंबादान**— ये देपावत शाखा में उत्पन्न हुए हैं और बीकानेर जिलान्तर्गत ग्राम देशनोक के निवासी हैं। इनकी फुटकर रचनायें मिलती हैं।

८०. चैनदान— इनकी शाखा का पता नहीं चला किन्तु ये नागौर जिलान्तर्गत ग्राम गावड़ा के निवासी हैं। इनके पिता का नाम हरदानजी है। इन्होंने फुटकर मरसिया-काव्य लिखा है।

८१. माधोदान— ये कविया शाखा में उत्पन्न हुए हैं और जोधपुर जिलान्तर्गत ग्राम बिराई के निवासी हैं। इन्होंने फुटकर काव्य-रचना की है।

८२. रामसिंह— ये रतनू शाखा में उत्पन्न हुए हैं और नागौर जिलान्तर्गत ग्राम जीलिया चारणवास के निवासी हैं। इनकी फुटकर कवितायें मिलती हैं।

यह है आज के चारण का नव-चरण! कहाँ वह विलास से लिप्त राजाओं का कीर्ति-गान और कहाँ आज के चारण की यह चेतना! यह देखकर हर्ष होता है कि वह आज देश की पीड़ा एवं निराशा को पहचानने लगा है और जन-समाज की ओर बढ़ रहा है लेकिन अभी वह मार्ग में ही है। विश्वास है कि स्वतंत्रता के नवीन वातावरण में विकसित राजस्थान का चारण साहित्य राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिए विगत काल के सदृश उपादेय सिद्ध होगा। चारण राष्ट्र-निर्माण एवं सामाजिक चेतना का प्रहरी बनेगा। अस्तु,

॥ इति ॥

कविनामानुक्रमणिका

ध

न

प

विशिष्ट सम्मतियाँ

....'चारण साहित्य निश्चय ही भारतीय साहित्य का एक अत्यंत शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण अंग है। डॉ० जिज्ञासुजी ने बड़ी निष्ठा के साथ इस साहित्य का अध्ययन, मनन और प्रकाशन किया है। उनके जैसे साधक ही इस बड़े कार्य को सम्पन्न कर सकते थे।....'

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
वाराणसी

....'साहित्य के इतिहास-लेखन में जिस श्रम, साधना, निष्ठा और समीक्षा-दृष्टि की अपेक्षा होती है, डॉ० जिज्ञासु की इस कृति में इन सभी तत्त्वों का सम्यक् साक्ष्य मिलता है। यह ग्रंथ इतिहास, शोध, समीक्षा और राजस्थानी साहित्य के अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्त्व का है।....'

—प्रकाशनारायण मसलदान
कुलपति,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

....'राजस्थान के चारण कवियों को इतिहासवद्ध करने की आवश्यकता बराबर महसूस की जाती रही और डॉ० जिज्ञासु ने इस आवश्यकता को पूरा किया। 'चारण साहित्य का इतिहास' नामक दो खण्डों में रचित उनका ग्रंथ न केवल पठनीय एवं संग्रहणीय है, वल्कि उन्होंने भारतीय साहित्य के महान् चारण काल को विस्मृति के गर्त्त में चले जाने से वचाने का एक ऐसा महान् कार्य किया है, जिसके लिए वे स्वयं भी महान् वीर कवियों की भाँति चिर-स्मरणीय रहेंगे।....'

—अक्षयकुमार जैन
सम्पादक,
नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली

....'डॉ० जिज्ञासु कृत 'चारण साहित्य का इतिहास' भाग १-२ हिंदी एवं राजस्थानी के शोध-ग्रंथों में एक कीर्तिमान स्थापित करता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस शोध-ग्रंथ का हिन्दी एवं राजस्थानी जगत् में समादर होगा तथा इस दिशा में प्रवृत्त शोधार्थी इससे लाभान्वित होंगे।....'

—डॉ० हरवंशलाल शर्मा
अध्यक्ष, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय तथा वैज्ञानिक
और तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

[भारतीय विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागाध्यक्षों की सम्मतियां]

....'किसी भी साहित्य का इतिहास-लेखन कठोर श्रम, अनवरत साधना, शोध-क्षमता तथा आलोचनात्मक दृष्टि की अपेक्षा करता है। डॉ० जिज्ञासु की ये विशेषतायें अपना परिचय इस ग्रंथ के प्रथम भाग की रचना में दे चुकी हैं और इस कृति में ये और भी स्पष्ट रूप में सामने आई हैं।....'

डॉ० नगेन्द्र, दिल्ली

....'चारण साहित्य का इतिहास अत्यंत मनोयोगपूर्ण लिखा गया है और वह मौलिक सामग्री से परिपूर्ण है। मैंने स्वयं इससे बहुत कुछ सीखा क्योंकि राजस्थानी साहित्य के सम्बंध में हिन्दी के पाठक कुछ मोटी-मोटी बातें जानने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते।....'

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रयाग

....'डॉ० जिज्ञासु ने चारण साहित्य को इकट्ठा करने और उसे काल-क्रम से संकलित कर आवश्यक सूचनायें देने में जो परिश्रम किया है, वह सराहनीय है।....'

डॉ० माताप्रसाद गुप्त, आगरा

....'प्रस्तुत इतिहास एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुसंधान का प्रमाण है। आठ-सौ-इक्यावन चारण कवियों के वृत्तों और कृतियों को काल-क्रमानुसार प्रस्तुत करना स्वयं श्लाघ्य है। फिर शतशः अज्ञात कवियों एवं कृतियों को अंधेरे गर्त्तों में से निकालना असाध्य की साधना थी जिसे जिज्ञासुजी ने सिद्ध कर दिया है। ग्रंथ का महत्त्व अपरिमेय है।....'

डॉ० सत्येन्द्र, जयपुर

....'सुयोग्य लेखक ने चारण साहित्य को विभिन्न साहित्यिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में भी देखा है: उसकी साहित्य-तात्त्विक दृष्टि बड़ी प्रखरता से चारण साहित्य में गतिशील रही है। इसी का परिणाम है कि डॉ० जिज्ञासु की लेखनी ने तत्त्व-गवेषण के साथ मूल्यांकन की व्यवस्था भी इस कृति में की है। जो भाषिक गुत्थियाँ निर्णयात्मक दृष्टिकोण से अनेक भाषाविदों से ओझल रही हैं, उनका वैज्ञानिक उत्प्रेक्षण डॉ० साहब ने बड़ी गंभीरता और सूक्ष्मता से किया है। इस प्रकार इस एक ही ग्रंथ को हम तीन सम्मिलित दृष्टिकोणों से एक ही साथ देख सकते हैं। विवेचना और गवेषणा की ऐसी सामंजस्यपूर्ण स्थिति का विनिवेश कुछ ही सधे हुए समीक्षक कर पाते हैं।....'

डॉ० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण', जयपुर

....'प्रथम बार चारण कवियों का वैज्ञानिक ढंग से इतना व्यापक साहित्यिक विवेचन हुआ है। हमारे विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी ने एक बार कहा था कि राजस्थानी साहित्य का हमारे विश्व-विद्यालयों में अध्यापन क्यों नहीं किया जाता? इसके लिए विद्वान लेखक ने एक द्वार खोल दिया है। राजस्थानी के क्षेत्र में डॉ० जिज्ञासुजी की यह अपूर्व देन सदैव स्मरणीय रहेगी।....'

डॉ० विजयपालसिंह, वाराणसी

....'मैंने डॉ० जिज्ञासु का राजस्थान के चारण कवियों पर किया गया महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय अनुसंधान कार्य देखा और पढ़ा। इसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य की लुप्त और विशृंखलित कड़ियों की खोज के साथ-साथ हमारे ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन के नये वातायन खोले हैं और अनेकानेक लुप्त और विस्मृत पर महत्त्वपूर्ण कवियों पर गवेषणापूर्ण सामग्री एकत्र की है।....'

प्रो० कल्याणमल लोढ़ा, कलकत्ता

....'हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग के इतिहास में चारण कवियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। परवर्ती हिन्दी साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों के स्रोत चारण साहित्य में उपलब्ध होते हैं। उन प्रवृत्तियों के अध्ययन के लिए चारण साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। इस दृष्टि से डॉ० जिज्ञासु का यह प्रयत्न अभिनन्दनीय है। इस ग्रन्थ से हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी को समझने में साहित्य के इतिहासकारों को सहायता मिलेगी।....'

डॉ० राजकिशोर पाण्डेय, हैदराबाद

'....अद्यतन ऐसा ठोस और गम्भीर शोधपरक कार्य राजस्थानी के साहित्यिक क्षेत्र में नहीं हुआ है। विद्वान लेखक ने हिन्दी साहित्य की इस अज्ञात सामग्री को अत्यंत वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाशित किया है। मुझे अपने विभाग के इस वरिष्ठ सहकर्मी पर वस्तुतः गर्व है। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह कृति देश-विदेश के विद्वत्समाज में सम्मानित, प्रशंसित एवं पुरस्कृत होगी। प्रस्तुत भाग पर डॉ० जिज्ञासु डी० लिट्० उपाधि के अधिकारी हैं।....'

डॉ० नित्यानंद शर्मा, जोधपुर

समीक्षायें

....'लेखक ने अनेक चारण कवियों, उनकी कला-कृतियों, विभिन्न रूपों और काव्य-प्रवृत्तियों का विकासात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया है। साथ ही उनके

सांस्कृतिक परिवेश प्रस्तुत कर राजस्थानी का इतिहास भी अंकित कर दिया है। इसमें लेखक ने तथाकथित 'वीरगाथा काल' (चारण काल) के उन चारण कवियों को स्थान दिया है जो वीरकाव्य एवं राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के आधारस्तम्भ हैं।....'

'प्रकर', दिल्ली

....'प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक के ज्ञात और अज्ञात चारण कवियों की रचनाओं और उनके आलोचनात्मक अध्ययन को इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है। चारण साहित्य सम्बंधी इतनी विपुल मात्रा में साहित्य-सामग्री प्रथम बार प्रकाश में आ रही है। इस शोध कार्य से न केवल राजस्थानी को वरन् हिन्दी को भी महान गौरव प्राप्त हुआ है। डॉ० जिज्ञासुजी की लगन, अध्यवसाय, और परिश्रम की जितनी प्रंशसा की जाये, थोड़ी होगी।....'

'राष्ट्रवीणा', अहमदाबाद

....'राजस्थानी साहित्य के अध्ययन का कार्य इस ग्रंथ के द्वारा आगे बढ़ा है। अनेक ऐसे रचनाकारों एवं उनकी कृतियों का परिचय इस ग्रंथ में दिया गया है जो अब तक विस्मृति की गुहा में थे। डॉ० जिज्ञासु ने राजस्थानी के चारण साहित्य की विपुलता और चारण रचनाकारों की विराट्-प्रतिभा के दर्शन हमें इस ग्रंथ में कराये हैं।....'

'लोक-साहित्य', जोधपुर